कलशामृत-६

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी समयसार कलश टीका के सन् १९७७-७८ के प्रवचन)

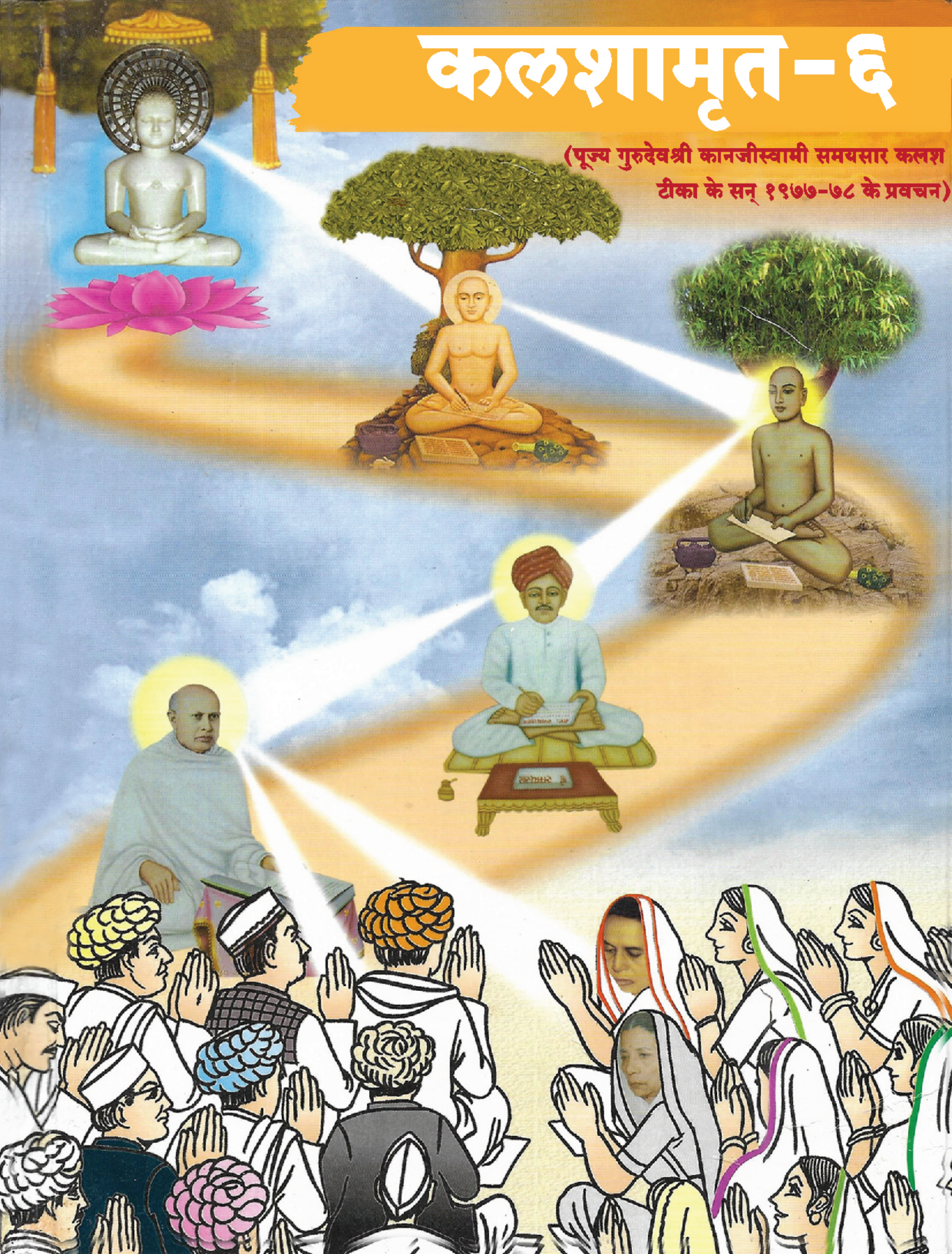

ॐ

परमात्मने नमः

कलशामृत

(समयसार कलशटीका प्रवचन)

भाग-6

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **परमागम समयसार** की **श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव** रचित **आत्मख्याति टीका** में समागत **समयसार कलश** की **पाण्डे राजमलजी** कृत टीका पर **परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के स्वानुभव मुद्रित आध्यात्मिक शब्दशः प्रवचन

कलश 186 से 219 तक, प्रवचन नं. 205 से 244 तक

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2080	2550	2023

—: प्रकाशन :—

तीर्थधाम स्वर्णपुरी-सोनगढ़ में आयोजित

श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

के अवसर पर दिनांक **19 जनवरी से 25 जनवरी 2024**

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

वर्तमान तीर्थ के नायक चरम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान से प्रगट हुई दिव्यध्वनि की परम्परा में द्वितीय श्रुतस्कन्ध की रचना हुई। लगभग 2000 वर्ष पूर्व श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव हुए, जिनका स्थान जैन परम्परा में सर्वोत्कृष्ट है। उन्होंने सदेह विदेहक्षेत्र की यात्रा की, श्री सीमन्धर भगवान के साक्षात् दर्शन की, उनकी वाणी सुनी। वहाँ से वापस आकर वर्तमान में उपलब्ध शास्त्रों में सर्वोत्कृष्ट शास्त्र श्री समयसारजी रचना की।

भगवान 1000 वर्ष पूर्व श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य नामक प्रखर आचार्य हुए। उन्होंने श्री समयसारजी शास्त्र की टीका की तथा मन्दिर पर शोभित कलश की भाँति टीका पर कलशरूपी श्लोकों की रचना की।

कालक्रम से जैसे-जैसे जीवों का क्षयोपशम घटता गया, वैसे-वैसे आचार्य भगवन्तों के भाव जीवों को समझना कठिन लगने से, श्री पण्डित राजमलजी पाण्डेय ने अमृतचन्द्राचार्य के कलशों पर सादी-देशभाषा में टीका की। इस टीका में उन्होंने श्लोक के शब्दों के सीधे अर्थ करते हुए उनके अनुभवगर्भित साररूप भावार्थसहित टीका की रचना की।

श्री समयसारजी शास्त्र पर बहुत आचार्यों तथा ज्ञानी विद्वानों ने टीका लिखी है। परन्तु पण्डित श्री राजमलजी की टीका पूज्य गुरुदेवश्री को इतनी पसन्द आयी कि उन्होंने इसका अनुवाद करने की प्रेरणा की, उस पर सादी भाषा में भाववाही प्रवचन प्रदान किये।

इन प्रवचनों के क्रम में कलशामृत भाग ६ प्रकाशित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। इस छठवें भाग में गुरुदेवश्री के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचन प्रकाशित किये गये हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कलश नं. 186 से 219 तक के प्रवचन संग्रहीत हैं, इस अधिकार में उस-उस तत्त्व का स्वरूप भलीभाँति स्पष्ट करके, उस प्रत्येक श्वान से रहित अपना त्रिकाली शुद्धात्मा बतलाने का ही आचार्य भगवन्तों से लेकर पूज्य गुरुदेवश्री के तक के प्रत्येक धर्मात्मा का आशय है। उस आशय को समझकर हम भी शुद्धात्मद्रव्य की दृष्टि प्रगट करे, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की स्वानुभवमयी वाणी जीवों को पंचम काल के अन्त तक स्वानुभव में निमित्त होनेवाली है, इस परम्परा में ही यह प्रकाशन एक कड़ी है। इन प्रवचनों के अर्थों का जीव जब इनका अध्ययन / श्रवण करेंगे तभी ख्याल में आयेगा। इसलिए इस सम्बन्धी विशेष विस्तार न करते हुए मुमुक्षु इसका गहराई से अभ्यास करें, ऐसी अपेक्षा रखते हैं।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर आत्महित साधे, इस उद्देश्य से प्रस्तुत कलशामृत भाग – 6 का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। हम सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में परिपूर्ण परमात्मा का स्वरूप समझकर, संवररूप धर्म प्रगट करके आत्मिक आनन्द को आस्वादकर सभी जीव तृप्त बनें, ऐसी भावनापूर्वक....

प्रस्तुत ग्रन्थ www.vitragvani.com एवं vitragvani App पर उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग

करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया।

गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त

दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो

कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	कलश	दिनांक	पृष्ठ सं.
२०५	१८६	१५-०१-१९७८	००१
२०६	१८६	१६-०१-१९७८	००६
२०७	१८६, १८७	१७-०१-१९७८	०१८
२०८	१८८	१८-०१-१९७८	०३२
२०९	१८९	१९-०१-१९७८	०४३
२१०	१८९, १९०	२०-०१-१९७८	०५४
२११	१९०	२१-०१-१९७८	०६५
२१२	१९१	२२-०१-१९७८	०७७
२१३	१९२	२४-०१-१९७८	०९०
२१४	१९३	२५-०१-१९७८	१०४
२१५	१९३, १९४	२६-०१-१९७८	११५
२१६	१९४	२७-०१-१९७८	१२७
२१७	१९५	२८-०१-१९७८	१४१
२१८	१९६	२९-०१-१९७८	१५३
२१९	१९६, १९७	३०-०१-१९७८	१६८
२२०	१९७	३१-०१-१९७८	१८१
२२१	१९८	०२-०२-१९७८	१९८
२२२	१९८, १९९	०३-०२-१९७८	२०७
२२३	२००, २०१	०३-०२-१९७८	२२१
२२४	२०१	०५-०२-१९७८	२३६
२२५	२०१, २०२	०६-०२-१९७८	२५०
२२६	२०२	०८-०२-१९७८	२६५

২২৬	২০৩	০৯-০২-১৯৭৮	২৬৬
২২৮	২০৩, ২০৪	১০-০২-১৯৭৮	২৯৫
২২৯	২০৫, ২০৬	১১-০২-১৯৭৮	৩০৮
২৩০	২০৬	১২-০২-১৯৭৮	৩১৬
২৩১	২০৬	১৩-০২-১৯৭৮	৩৩৩
২৩২	২০৮	১৪-০২-১৯৭৮	৩৫১
২৩৩	২০৯	১৬-০২-১৯৭৮	৩৬৯
২৩৪	২১০	১৬-০২-১৯৭৮	৩৮৫
২৩৫	২১১	১৮-০২-১৯৭৮	৪০২
২৩৬	২১২	১৯-০২-১৯৭৮	৪২২
২৩৬	২১৩	২০-০২-১৯৭৮	৪৪১
২৩৮	২১৪, ২১৫	২১-০২-১৯৭৮	৪৫৮
২৩৯	২১৫	২৩-০২-১৯৭৮	৪৬৯
২৪০	২১৬	২৪-০২-১৯৭৮	৪৯৬
২৪১	২১৬, ২১৬	২৫-০২-১৯৭৮	৫১৫
২৪২	২১৬, ২১৮	২৬-০২-১৯৭৮	৫৩৮
২৪৩	২১৮	২৬-০২-১৯৭৮	৫৫৮
২৪৪	২১৮, ২১৯	২৮-০২-১৯৭৮	৫৬৪

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

कलशामृत

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
श्री समयसार कलश पर प्रवचन)
(भाग - ६)

— ९ —
मोक्ष अधिकार

कलश - १८६

(अनुष्टुप्)

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान्
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः।।७-१८६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अपराधवान् बध्येत एव' [अपराधवान्] शुद्ध चिद्रूप अनुभवस्वरूप से भ्रष्ट है जो जीव, वह [बध्येत] ज्ञानावरणादि कर्मों के द्वारा बाँध जाता है। कैसा है? 'परद्रव्यग्रहं कुर्वन्' [परद्रव्य] शरीर, मन, वचन, रागादि अशुद्धपरिणाम, उनका [ग्रहं] आत्मबुद्धिरूप स्वामित्व को [कुर्वन्] करता हुआ। 'अनपराधः मुनिः न बध्येत' [अनपराधः] कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जानकर, नहीं अनुभवता है- ऐसा है जो [मुनिः] परद्रव्य से विरक्त सम्यग्दृष्टि जीव, [न बध्येत] ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड के द्वारा नहीं बाँधा जाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार कोई चोर, परद्रव्य को चुराता है, गुनहगार होता है, गुनहगार होने से बाँधा जाता है; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव, परद्रव्यरूप हैं जो द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म, उनको आपा जान, अनुभवता है,

शुद्धस्वरूप अनुभव से भ्रष्ट है; परमार्थबुद्धि से विचार करनेपर, गुनहगार है, ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध करता है। सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसे भाव से रहित है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'स्वद्रव्ये संवृतः' अपने आत्मद्रव्य में संवररूप है अर्थात् आत्मा में मग्न है।।७-१८६।।

पौष शुक्ल ७, रविवार, दिनांक-१५-०१-१९७८, कलश-१८६, प्रवचन-२०५

१८६, १८६ कलश।

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान्
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः।।७-१८६।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - 'अपराधवान् बध्येत एव' शुद्ध चिद्रूप अनुभवस्वरूप से भ्रष्ट है... भगवान आत्मा... आहाहा! शुद्ध चैतन्य निर्मल स्वरूप से भ्रष्ट है, वह जीव राग को अपना मानता है, इस कारण से '**बध्येत'—ज्ञानावरणादि कर्मों के द्वारा बाँधा जाता है?** आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? जो कोई शुद्ध चिद्रूप ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा के अनुभव से भ्रष्ट है। किस प्रकार? वह कहेंगे। वह ज्ञानावरणदि कर्मों से बन्धन होता है।

कैसा है? 'परद्रव्यग्रहं कुर्वन्' 'परद्रव्य' शरीर, मन, वचन, रागादि अशुद्धपरिणाम... वे परद्रव्य हैं। आहाहा! शरीर तो मिट्टी है, धूल है, वह तो पुद्गल है, वह कहीं आत्मा नहीं, आत्मा तो भिन्न है, शरीर से भिन्न है, फिर मन से भिन्न है। यह जो मन है, मन... आठ पंखुड़ी का यहाँ मन है, विचार करने में निमित्त है, वह जड़ है और यह वचन बोलते हैं, वह भी जड़ है। आवाज उत्पन्न होती है, वह जड़ है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! **शरीर, मन, वचन,...** उससे भिन्न और **रागादि अशुद्धपरिणाम...** और पुण्य-पाप के मलिन परिणाम, **उनका आत्मबुद्धिरूप स्वामित्व को...** वह मेरी चीज़ है, ऐसा माननेवाले को। राग मेरा है, पुण्य मेरा है, व्रत के परिणाम मेरे हैं, शरीर मेरा है, मन मेरा है, वचन मेरे हैं—ऐसा माननेवाले को। है?

आत्मबुद्धिरूप स्वामित्व को करता हुआ। आहाहा! '**बध्येत**' उसे अपना मानता हुआ अज्ञानी कर्म से बँधता है, वह अपराधी है। आहाहा! गुनहगार है। दृष्टान्त देंगे।

जैसे चोर पर की चीज़ चोरता है तो गुनहगार है; उसी प्रकार भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप को छोड़कर शरीर, वचन, मन और पुण्य-पाप के भाव को अपना मानता है, आत्मबुद्धि करता है, वह भी आत्मा के हैं और उनसे मुझे लाभ होगा, (ऐसा जो मानता है) वह गुनहगार-अपराधी है। आहाहा! है या नहीं? आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

शुद्ध चिद्रूप अनुभवस्वरूप से भ्रष्ट है... किस कारण से? **कैसा है? 'परद्रव्यग्रहं कुर्वन्'** वह परद्रव्य को अपना मानता है। आहाहा! जैसे चोर दूसरे की चीज़ ले लेता है, तो वह चोर है, गुनहगार है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपना चैतन्य अनन्त शान्ति का सागर भगवान, अपने स्वरूप को छोड़कर मन, वचन, काया और पुण्य-पाप के भाव को अपना मानता है, वह गुनहगार अपराधवान चोर है। यह अन्तर का चोर है, वह बाहर का चोर है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग है।

आत्मबुद्धिरूप स्वामित्व... कहा न? **'ग्रहं'** कहा न? राग को ग्रहण करता है। यह महाव्रत के परिणाम मेरे हैं। दया, दान का भाव आया, परन्तु वह राग मेरा है— (ऐसा मानकर) उसका स्वामी होता है। उसे आत्मबुद्धि में अपना मानता है, वह गुनहगार है और नये आठ कर्मों से बँधता है। आहाहा! है या नहीं? पण्डितजी! संस्कृत के प्रोफेसर हैं। जयपुर में संस्कृत के बड़े प्रोफेसर हैं। अभी वहाँ रहते हैं। प्रोफेसर-ब्रोफेसर सब शून्य है। आहाहा!

यहाँ तो चैतन्यमूर्ति प्रभु अन्दर भिन्न, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप की मूर्ति अर्थात् स्वरूप, उससे भ्रष्ट होकर मन, वचन और काया और अशुद्ध विकारी भाव में अपनेपन की बुद्धि करता है (अर्थात्) वह आत्मा है, आत्मा को लाभ का कारण है, (वह) आत्मा की चीज़ है (ऐसा माननेवाला) गुनहगार है, वह अपराधी प्राणी है, चार गति में भटकनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? है? **आत्मबुद्धिरूप स्वामित्व को करता हुआ।** गुनहगार है।

अब दूसरी बात। **'अनपराधः मुनिः न बध्येत' 'अनपराधः' कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जानकर नहीं अनुभवता है...** आहाहा! जो कोई प्राणी कर्म के

निमित्त से उत्पन्न हुए पुण्य के, पाप के भाव, कर्म के निमित्त से प्राप्त शरीर, वाणी, मन को अपने स्वरूप अनुभव नहीं करता, उसे अपना नहीं मानता, वह निरपराधी-अनपराधी जीव है। आहाहा! समझ में आया? है?

'अनपराधः मुनिः न बध्येत' 'अनपराधः' कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जानकर नहीं अनुभवता है, ऐसा है जो परद्रव्य से विरक्त... परद्रव्य से विरक्त। रागादि भाव, परद्रव्य से विरक्त और अपने चैतन्यस्वभाव में रक्त है, वह अनपराधी है, वह अपराध करता नहीं। (जो) अपने चैतन्यस्वरूप से विरक्त और पुण्य-पाप के भाव में रक्त है, वह अपराधी-गुनहगार आठ कर्म का बन्धन करके भटकता है। आहाहा! भाषा तो समझ में आती है न? सेठ! भाषा तो सादी है, भाव तो बहुत गम्भीर है। मार्ग तो ऐसा है, भगवान! अरे! सुनने को मिलता नहीं, समझण में आता नहीं। आहाहा! अनन्त काल से परिभ्रमण करते-करते चौरासी लाख योनि में एक-एक योनि में अनन्त बार जन्म धारण किये। आहाहा! इस सम्यग्दर्शन बिना। मिथ्यादर्शन-मिथ्याश्रद्धा अपराध—राग मेरा, वाणी मेरी, वचन मेरे, शरीर मेरा, पुण्य मेरा, पाप मेरा, पुण्य का फल यह धूल (—संयोग) मिले (वे मेरे), लक्ष्मी मेरी—ऐसा माननेवाला गुनहगार अपराधी है। आहाहा! वह अपराधी गुनाह से आठ कर्म को बाँधता है।

निरपराधी जीव अपने आनन्दस्वरूप में अपनी चीज़ मानता है और रागादि भाव कि जिसमें पुण्यबन्ध होता है, वह राग भी मेरा नहीं, ऐसा (माननेवाला) निरपराधी प्राणी नये कर्म से बँधता नहीं और कर्म से छूटता है। समझ में आया? बात तो बहुत बड़ी है, भगवान! निवृत्ति नहीं, निवृत्ति नहीं। पूरे दिन धन्धा। पैसा कमाना, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धे में बाईस घण्टे पाप में रचे-पचे रहे, एकाध-दो घण्टे मिले, (उसमें) देवदर्शन करे और थोड़ा-बहुत पुण्य बाँधकर चला जाये। (आत्मा) क्या चीज़ है? और किस प्रकार वह चीज़ प्राप्त हो? और किस चीज़ को अपनी मानने से संसार में भटकना पड़ता है, उसका निर्णय करने का अवकाश नहीं। समझ में आया? यह कहते हैं।

अनपराधी मुनि। मुनि का अर्थ किया—**परद्रव्य से विरक्त सम्यग्दृष्टि जीव...**

आहाहा! अन्दर अपनी चैतन्य चमत्कारी वस्तु भगवान विराजता है, वह मेरी चीज़ है और जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव उत्पन्न होते हैं, वे मेरे नहीं, वे पर हैं, ऐसा (माननेवाला) अनपराधी जीव कर्म से बँधता नहीं, वह गुनहगार नहीं है। आहाहा! दुनिया में पर की चोरी करे वह गुनहगार कहने में आता है। यहाँ भी रागादि पर है, उन्हें अपना मानता है, वह भी गुनहगार है, ऐसा कहते हैं। परमात्मा के घर में वह गुनहगार है। आहाहा! समझ में आया? **कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जानकर नहीं अनुभवता है, ऐसा है जो परद्रव्य से विरक्त सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड के द्वारा नहीं बाँधा जाता है।** आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार कोई चोर परद्रव्य को चुराता है, गुनहगार है, गुनहगार होने से बाँधा जाता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव परद्रव्यरूप है जो द्रव्यकर्म... जड़कर्म और **भावकर्म...** पुण्य-पाप के भाव और **नोकर्म...** शरीर, मन, वाणी को आत्मा जानकर **उनको आपा जान...** आत्मा जानकर **अनुभव करता है...** मेरे हैं, ऐसा मानता है। आहाहा! वह स्वरूप अनुभव से भ्रष्ट है। आहाहा! वह अपने चैतन्यस्वरूप से भ्रष्ट है और राग में रुक गया है, अपनी चीज़ को जानता नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ८, सोमवार, दिनांक-१६-०१-१९७८, कलश-१८६, प्रवचन-२०६

कलशटीका १८६ कलश। इस ओर अन्तिम लाईन है न? परद्रव्यस्वरूप है। अन्तिम लाईन। क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है, यह आत्मा जो है, वह तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह स्व-चीज़ है, स्वचीज़ है और उससे यह शरीर, वाणी, मन और शुभ-अशुभराग, वह शुभ-अशुभकर्म कहते हैं न? सत्कर्म... सत्कर्म... वह सब राग है। उसमें आया है। १८९ देखो! १८९ श्लोक है न? उसमें है। ऊपर से दूसरी लाईन, १८९। दूसरी लाईन से। पठन-पाठन। बाद में प्रतिक्रमण की व्याख्या है। नहीं। अन्तर है? यह पृष्ठ में अन्तर है। १८९ भी पीछे है। प्रतिक्रमण... पीछे, पीछे प्रतिक्रमण की व्याख्या है। है? क्या है? प्रतिक्रमण अर्थात् शास्त्रपठन... है? भाई! शास्त्रपठन। जरा सूक्ष्म बात है। पठन-पाठन। दूसरे को शास्त्र पढ़ाना, वह सब राग है, विष-जहर है। है इसमें? सेठ!

पठन-पाठन, स्मरण... परमात्मा का स्मरण। विकल्प है न? राग है, परद्रव्य है न? यह कहते हैं, यहाँ परद्रव्य लेना। परद्रव्यस्वरूप। वह परद्रव्य है। यह **पठन-पाठन, स्मरण, चिन्तन...** चाहे तो परमात्मा का, देव-गुरु-शास्त्र का या दया-दान का चिन्तन करना। **स्तुति...** करना। परमात्मा की स्तुति करना। **वन्दना...** करना **इत्यादि (अनेक) क्रियारूप विकल्प...** वह सब क्रियारूप राग के विकल्प हैं, राग है। आज तो सूक्ष्म बात है। कभी कहीं सुनी नहीं। अन्दर है? क्या कहते हैं?

पठन-पाठन, स्मरण, चिन्तन, स्तुति, वन्दन इत्यादि... प्रतिमा का आश्रय करना, पूजा करना, भक्ति करना इत्यादि। **इत्यादि क्रियारूप विकल्प...** विकल्प अर्थात् वह राग है। उसे **विष के समान कहा है...** जहर समान कहा है। सेठ! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! अन्दर आत्मा चैतन्यस्वरूप, ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज प्रभु! उससे यह विकल्प उठता है—राग, यह राग, हों! शुभराग—पठन-पाठन, स्तुति, वन्दन, विद्या, स्मरण करना, वन्दन करना, देव-गुरु-शास्त्र को वन्दन करना, (वह सब शुभराग है)।

मुमुक्षु : पूरी चीज़ को छोड़ देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले दृष्टि में से छोड़ना। अपनी चीज़ नहीं है। दृष्टि वहाँ नहीं रखना, दृष्टि अन्तर में रखना। (राग) आता है, परन्तु उसमें दृष्टि नहीं रखना। वह आदरणीय है, हितकर है, (ऐसा नहीं मानना)। रात्रि में प्रश्न किया था न कि सत्कर्म को तो कुछ छिलके छूटे। डॉक्टर ने पूछा था।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सुन, भाई! आहाहा! यह तो शान्ति से सुनने की चीज़ है, भगवान! पूरे जगत से भिन्न है। यह पठन-पाठन... यह प्रतिक्रमण आठ बोल आये न? भाई! लालचन्दभाई! प्रतिक्रमण, परिहार (इत्यादि) सब आठ बोल। यहाँ आठ बोल यह लिये हैं। प्रतिक्रमण करना, पाप का मिच्छामि दुक्कडम् (करना), वह भी शुभराग है, विष है—जहर है।

मुमुक्षु : आत्मा का अनुभव होने पर वे भी छूट जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूट जाते हैं। जो आत्मा अन्दर है, उसकी दृष्टि करने से यह बात छूट जाती है। नहीं तो यह बात जहर है। उसमें धर्म मानना, कल्याण मानना, वह महामिथ्यात्व, पाखण्ड, महापाप है। सूक्ष्म बात है, भगवान! क्या करे? अधिकार तो यह आया है। आहाहा! लिया न? कितने बोल लिये हैं? एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह इत्यादि। वन्दना करना, स्तुति करना, शास्त्र वाँचन करना, शास्त्र पढ़ाना। पठन-पाठन, यह विकल्प है। वह होता है, परन्तु है दुःख। धर्मी की दृष्टि, वह विकल्प आता है परन्तु उस पर दृष्टि नहीं है। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा उससे भिन्न है, उसके ऊपर धर्मी की दृष्टि और उसका स्वीकार है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! अशुभभाव की तो बात क्या करना! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ तो पाप है, वह तो जहर है ही... आहाहा! परन्तु पठन-पाठन, स्मरण, प्रतिक्रमण, प्रतिमा का पूजन करना, प्रतिमा की स्थापना (करना), शास्त्र श्रवण करना, शास्त्र पढ़ाना, वन्दन करना, स्तुति करना, वे सब विकल्प राग है, वृत्ति है। तो धर्मी को पहले से उस वृत्ति को जहर समान जानना चाहिए और आत्मा उससे भिन्न अमृतस्वरूप है, (ऐसा) जानना चाहिए।

मुमुक्षु : आत्मा में पहुँचने के लिये यह सब करना चाहिए या नहीं? बाद में छोड़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह बात करते हैं। पहले से यह दृष्टि छोड़ना। वह आत्मा को हितकर है ही नहीं। आहाहा! यह विष-जहर कहा न? है?

विष समान कहा है,... 'विषं एव प्रणीतं' सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ उसे जहर कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! पहले अपनी दृष्टि करने के लिये उन्हें जहर समान जानकर भिन्न रखना, अपने में मिलाना नहीं। होते हैं, परन्तु आत्मा आनन्द, भगवान आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, अतीन्द्रिय सच्चिदानन्द प्रभु वह आत्मा है, उससे यह सब चीज़ परद्रव्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्दर अपना निज स्वरूप तो परमात्मा शुद्ध आनन्दकन्द, अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु है, वह तो अमृत का सागर आत्मा है। उसमें ऐसे जो परिणाम हुए—पठन-पाठन, श्रवण, स्मरण आदि आते हैं, परन्तु है जहर के समान है, दुःख है। आहाहा! जगत को चैतन्यतत्त्व क्या है, यह सुनने को मिलता नहीं। और सुने बिना उसका विचार कहाँ से आवे? और विचार बिना राग से हटकर अपने स्वरूप-सन्मुख झुकाव करना, उन्मुख होना, शुद्ध चैतन्य सन्मुख होना और रागादि से विमुख होना, (वह कहाँ से हो)? (राग) आता है, परन्तु उसकी सन्मुखता छोड़ देना, दृष्टि में उसका आश्रय नहीं लेना। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अपने यहाँ यह चला न? १८६ चलता है न? **परद्रव्यरूप...** वह परद्रव्यरूप है। पहले अपने चला वह। वह परद्रव्यरूप है। आहाहा! परवस्तु है, अपनी चीज़ नहीं। अपनी हो तो अपने से भिन्न होती नहीं। यदि अपनी चीज़ हो तो सदा ही राग रहे, सदा ही दुःखी रहे, सदा ही संसार में परिभ्रमण करना पड़े। वह अपनी नहीं, परद्रव्यरूप है। क्या? यह द्रव्यकर्म—जड़कर्म, ज्ञानावरण आदि आठ कर्म हैं। पुण्य-पाप के भाव से कर्म बँधते हैं, वे आठ कर्म हैं, वे परद्रव्य हैं; स्वद्रव्य-स्वस्वरूप नहीं। और भावकर्म—यह ऊपर कहे वे। पठन-पाठन, स्मरण, वन्दन, स्तुति, वे सब भावकर्म हैं, विकारभाव है, शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : पठन-पाठन में हेतु तो आत्म-अनुभव का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, लक्ष्य भले हो परन्तु है विकल्प, राग।

मुमुक्षु : वह असल चीज़ नहीं, फिर छोड़ देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से ही दृष्टि में से छोड़ना। आते हैं, होते तो हैं परन्तु दृष्टि के जोर में उनके ऊपर दृष्टि नहीं रखना। सूक्ष्म बात है, भगवान! अभी चलते प्रवाह से दूसरी चीज़ है।

यह द्रव्यकर्म, भावकर्म। भावकर्म (अर्थात् पहले) जो कहे वे—पठन-पाठन, स्मरण, वन्दन, स्तुति, वह पुण्यभाव है, वह भी जहर है। भगवान आत्मा अनीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का रूप है, उससे यह रागादि का विकाररूप अपने स्वरूप से भिन्न है। भगवानस्वरूप अमृत आनन्द है, तो वह राग स्वरूप जहर है। आहाहा! पहले दृष्टि में—श्रद्धान में पलटा खाना। पलटा समझे? पलटना। दृष्टि में-श्रद्धा में पलटना कि राग है, आता है, परन्तु वह जहर है, दुःख है, अपनी दृष्टि का विषय तो त्रिकाली आनन्दकन्द है। उसे दृष्टि का विषय / ध्येय बनाना, तब उसे धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! समझ में आया? यह बाहर की क्रिया पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, (देखकर) चलना और देखना, वह सब राग की क्रिया है।

वह परद्रव्यस्वरूप द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म। नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी, मन, **उनका आपा जान...** उन्हें अपनेरूप माननेवाला। अपना माननेवाला। **जान अनुभवता है, शुद्धस्वरूप अनुभव से भ्रष्ट है...** है? आहाहा! उस राग को अपना मानकर, जानकर अनुभवता है, वह अपने शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म पड़े। अभी यह बात ही चलती है, यह करो, यह शुभकर्म करो, सत्कर्म करो। परन्तु सत्कर्म ही नहीं, वह तो असत्कर्म है। सत्कर्म तो आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा आनन्द का दल है, उसमें एकाग्र होना, लीन होना, वह सत्कर्म है। आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है। सेठ नहीं आये? ठीक नहीं, उन्हें ठीक नहीं।

वह अनुभव से भ्रष्ट है। क्या कहा? जो कोई आत्मा अपने आनन्द और ज्ञानस्वरूप को छोड़कर ऐसे जड़कर्म और पुण्य, दया, दान, व्रत के विकल्प को अपना मानकर—आपा मानकर अनुभव करता है, अपना जानकर अनुभव करता है, मानता है, वह

स्वरूप से भ्रष्ट है। है ? सेठ! सेठ कहते थे कि कॉलेज में पढ़े थे, परन्तु यह चीज़ दूसरी है। आहाहा! अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु नित्य ध्रुव, ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव अर्थात् नित्य। नित्यानन्द प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! वह तो अमृत और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड—कन्द है। उससे यह जो शुभराग है, वह तो विकार है, दुःख है, अपने से भिन्न है। उसे अपना मानकर अनुभव करना, उससे लाभ होगा, उससे मुझे लाभ होगा—ऐसा अनुभव करना, वह स्वरूप से भ्रष्ट है। कभी सुनी नहीं ऐसी बात है, डॉक्टर! वहाँ डॉक्टरी में तो आवे नहीं। आहाहा! है ?

परमार्थबुद्धि से विचार करने पर... क्या कहा ? है ? **परमार्थबुद्धि से विचार करने पर गुनहगार है,...** है ? वह गुनहगार है। आहाहा! कौन गुनहगार है ? अपने ज्ञान, चैतन्य और आनन्द अनाकुल शान्ततत्त्व, उससे विरुद्ध जो यह भाव है—पठन-पाठन, श्रवण, मनन, चिन्तवन, शुभराग है, उसे अपना मानकर, अपने हैं और अपने को लाभ करेंगे—ऐसा मानकर अनुभव करता है, वह गुनहगार है, गुनाह करता है, चोर है। आहाहा! यह तो हजारों वर्ष पहले के पाठ हैं। दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य के पाठ हैं। यह टीका है, वह एक हजार वर्ष पहले की है। अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि जंगल में बसते थे। आहाहा!

कहते हैं कि जो कोई अपनी चीज़ आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, ज्ञानघन है, उससे विपरीत भाव—शुभभाव जहर है, उसे अपना मानकर अनुभव करता है, वह मैं करूँ तो मुझे लाभ होगा—ऐसा माननेवाले स्वरूप से भ्रष्ट हैं, परमार्थ से चोर—गुनहगार हैं। भाषा तो समझ में आती है न ? आहाहा! समझ में आया ? ऐस मार्ग है, प्रभु! आहाहा!

परमार्थबुद्धि से विचार करने पर... परमार्थ क्या ? वास्तव में तत्त्वदृष्टि से विचार करने पर। अपना स्वरूप परमपदार्थ। परमार्थ अर्थात् परमपदार्थ। परमार्थ (अर्थात्) यह दुनिया की सेवा और दया-फया, वह परमार्थ-फरमार्थ नहीं है। परमार्थ, परमार्थ, परम-अर्थ, परम-अर्थ—पदार्थ। परमपदार्थ भगवान आत्मा की दृष्टि से विचार करने पर वे सब भाव गुनहगार के हैं। समझ में आया ? कहाँ गये ? जेठाभाई! वहाँ बैठे हैं, ठीक! सेठ को याद किया और तुम याद आये। हैदराबाद! आहाहा! प्रभु! मार्ग तो कोई अपूर्व है।

परिभ्रमण करते... करते... करते... अनन्त-अनन्त काल गया। चौरासी लाख योनि में एक-एक योनि में अनन्त बार जन्म-मरण किये, भाई! आहाहा! शास्त्र में तो ऐसे लेख आते हैं, भाई! तेरी युवा अवस्था में तू मर गया, मृत्यु को प्राप्त हुआ (तो) तेरी माता को आँसू आये, माता को इतने आँसू आये और इतनी बार तू युवा अवस्था में मर गया कि उन आँसू के पूरे समुद्र भर जायें। इतनी बार तू मर गया और तेरी माता तेरे लिये रोई। इतने भव किये हैं, प्रभु! तुझे खबर नहीं, तू भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था, ऐसा कौन कहे? यहाँ जन्म होने के बाद छह महीने में क्या था, वह खबर है? क्या कहा? डॉक्टर! यहाँ जन्म हुआ न? उसमें छह महीने क्या था, यह खबर है? खबर नहीं, इसलिए नहीं था? खबर नहीं है, इसलिए नहीं था? लॉजिक से (समझ में आवे, ऐसा है)। जन्मने के बाद छह महीने माता ने क्या किया? किस प्रकार दूध पिलाया? छह महीने की उम्र की खबर नहीं। तो खबर नहीं, इसलिए नहीं? नहीं था? इसी पूर्वभव अनन्त किये, वह खबर नहीं, इसलिए नहीं थे? लॉजिक से (तो कहते हैं)। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इस भव के पहले, प्रभु! अनन्त-अनन्त भव किये हैं, प्रभु! तू भूल गया। परन्तु भूल गया, इसलिए नहीं है? तब तो इस भव में भी भूल गया तो उस समय नहीं था? आहाहा! यह अनन्त-अनन्त अवतार आत्मा का ज्ञान किये बिना, सम्यग्दर्शन बिना स्वरूप से भ्रष्ट होकर, यह पुण्य और पाप के भाव को अपना मानकर चार गति में भटकता है। नरक और कीड़े, कौवे, कुत्ते के अवतार करता है। सब अनन्त बार किया है। यह कहीं पहला-बहला अवतार नहीं है। ऐसे मनुष्य अवतार तो अनन्त बार आ गये हैं। आहाहा! और मनुष्य से भी नरकयोनि के अवतार... नरकयोनि है। माँस खाता है, शराब पीता है, अण्डे अभक्ष्य खाता है, परस्त्री का बहुत लम्पटी हो तो वह मरकर नीचे नरक में जाता है। लोहा होता है ऐसा लोहा, लोहे का गोला पानी पर रखो तो नीचे चला जाता है। उसी प्रकार बहुत पाप किये तो वह पाप के कारण से नीचे नरक में चला जाता है। ऐसी नरकयोनि में भी यह आत्मा अनन्त बार अवतरित हुआ है। नरक का दुःख तो इतना है, लोगों ने सुना नहीं। ओहोहो!

एक क्षण का नरक का दुःख... नीचे सात पाताल हैं। सात पाताल हैं। जघन्य

अवस्था को क्या कहते हैं? छोटी। छोटी में छोटी अवस्था दस हजार वर्ष की है और बड़ी में बड़ी अवस्था असंख्य अरब वर्ष की है। उसका एक क्षण का दुःख, सिद्धान्त कहता है कि करोड़ों भव में करोड़ो जीभ से कहो तो एक क्षण का दुःख कह नहीं सकते। इतने दुःख, प्रभु! तूने भोगे हैं। अनन्त-अनन्त भव में इतनी बार नरक में गया। अभी अखबार में आया है न? गुजराती में भाई ने डाला है। करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से एक क्षण का दुःख (कहा नहीं जा सकता)। पच्चीस वर्ष का राजकुमार हो और अरबों की आमदनी हो और विवाह में दो-चार-पाँच करोड़ खर्च कर दिये हों... लग्न समझ में आता है न? शादी। शादी का प्रथम दिन हो, पहली ही रात्रि हो, उस समय कोई उस राजकुमार को सीधे टाटा की भट्टी में डाल दे और जो पीड़ा हो, उससे अनन्तगुणी पीड़ा नरक में होती है। प्रभु! तू कहाँ रहा, इसकी खबर नहीं। यह मिथ्यात्व की भ्रमणा के कारण रहा है। सत्कर्म भी अनन्त बार किये। वहाँ से स्वर्ग गया और वहाँ से पटका पशु में और पशु में से नरकयोनि में गया। आहाहा! समझ में आया? इतने दुःख वहाँ है कि एक क्षण का दुःख, दो घड़ी के दुःख करोड़ों जीभ और करोड़ों भव में नहीं कहे जा सकते, इतनी पीड़ा वहाँ है। उस अरबोंपति राजकुमार को विवाह की पहली रात्रि में टाटा की भट्टी में डाले और जो दुःख उसे हो, उससे अनन्तगुना दुःख नीचे (-नरक में) है। आहाहा! सब बातें परमसत्य है, प्रभु! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कही है। आहाहा! तुझे खबर नहीं। खबर नहीं, इसलिए नहीं है, ऐसा कैसे माना जाये? प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसे पाप के भाव करने से तो नरक में गया परन्तु ऐसे कोई पुण्यभाव किये, पठन-पाठन आदि (किये) तो भी स्वर्ग में गया, परन्तु वहाँ भी दुःख है, राग का दुःख है। आहाहा! उस दुःख में अनन्त-अनन्त भव किये। वह परिभ्रमण मिटाने का सत्कर्म वह काम-कार्य नहीं। वह सत्कर्म दया, दान, व्रत, पठन-पाठन, वह भव के अन्त लाने का कारण नहीं है। आहाहा!

परमार्थबुद्धि से विचार करने पर गुनहगार है... आहाहा! है? गुनाह है। वह शुभभाव भी आत्मा के स्वरूप से भिन्न जाति के हैं, उन्हें अपना मानना, वह गुनाह है,

चोर है। आहाहा! ऐसी बात कभी सुनने को मिलती नहीं। बाहर में प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! तुमने बहुत किया, सेवा की, तुमने दान बहुत दिया। पैसे दिये, मन्दिर बनाये, बहुत धर्म (किया)। मर गया उसमें, अभिमान में। राग की क्रिया अपनी मानकर स्वरूप से भ्रष्ट होकर गुनहगार हुआ है। आहाहा! है? गुनहगार है।

ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध करता है। वह तो अनन्त कर्म का बन्धन करता है। शुभभाव से भी अनन्त कर्म का बन्ध होता है। आहाहा! यह राग है न! विकल्प-वृत्ति का उत्थान है। ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ। दया, व्रत, भक्ति, पठन-पाठन। वह चैतन्य ज्ञानस्वरूप भगवान है, उसमें वृत्ति का उत्थान है। उत्थान अर्थात् वृत्ति उठती है। वृत्ति उठती है, वह गुनाह है। उसे अपना मानना, वह गुनाह है। आहाहा! समझ में आया? **बन्ध करता है।**

सम्यग्दृष्टि जीव... अब सुलटी बात लेते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव—धर्मी जीव... आहाहा! **ऐसे भाव से रहित है।** सम्यग्दृष्टि जीव (राग) भाव से अपना स्वरूप रहित है, उसे अपना स्वरूप मानता है। राग होता है, परन्तु वह मेरा स्वरूप नहीं, गुनाह है, दोष है, (ऐसा मानता है)। आहाहा! सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टिवन्त, सत्य स्वरूप जो राग के गुनाह से रहित है, उसे अपना माननेवाला सम्यग्दृष्टि जीव **ऐसे भाव से रहित है।** वह गुनाह के भाव को अपने में नहीं मानता, (उसको) भिन्न मानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म है। वाद-विवाद करे तो पार न आवे। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा बोलने से तो कोई मन्दिर बनाने के लिये पैसा ही नहीं देगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दे सकता ही नहीं। आनेवाले आते हैं। हमने किसी को कभी कहा नहीं। यहाँ तो करोड़ों रुपये आ गये। छब्बीस लाख का मकान (परमागममन्दिर) बन गया। हमने किसी को कहा नहीं कि पैसा दो या यहाँ (मन्दिर) बनाओ। हमने किसी को कहा नहीं। बननेवाली चीज़ है तो बने बिना रहती नहीं। डॉक्टरजी! यह बात है। बाहर की चीज़ बननेवाली हो न, तो बनती है। इनकार करे तो भी उसे भाव आये बिना रहता नहीं। भाव आवे परन्तु कर सकता नहीं। बनती है, उसके कारण से। यह तो परमाणु मिट्टी है। परमाणु रजकण है, उसका पिण्ड है, स्कन्ध... स्कन्ध, पिण्ड, उसकी

यह सब रचना है। आत्मा यह जड़ की रचना कर नहीं सकता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म है, भगवान!

मुमुक्षु : आत्मा को पंगु बना दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा अनन्त शक्तिवन्त अपने स्वभाव में है। पर का करने में वह शक्तिवान है? स्वयं ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु, महा अनन्त पुरुषार्थ से अपने में रहता है, पर का क्या करे? सूक्ष्म बात है, भगवान!

मुमुक्षु : पर का करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर सकता नहीं, फिर करना क्या? वकील है न, इसलिए प्रश्न करता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! बहुत सूक्ष्म लेते हैं।

मुमुक्षु : यह डॉक्टर नाड़ी देखते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नाड़ी देखते हैं, वह आत्मा का कार्य नहीं। विकल्प उठता है, इतनी बात है, बाकी वह सब जड़ का कार्य है।

मुमुक्षु : हाथ छुआवे तो हाथ की तो आवश्यकता पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखे न, जड़ देखे अँगुली। बहुत सूक्ष्म है, भगवान! शान्ति से सुनो! यह अँगुली है, वह शरीर को स्पर्श नहीं करती। क्योंकि यह तत्त्व भिन्न है, यह तत्त्व भिन्न है। एक-दूसरे में अभाव है। अभाव है तो अपना भाव अपने से रखता है, पर के भाव के साथ सम्बन्ध नहीं है। तो अँगुली उसे स्पर्श भी नहीं करती। कठिन है। दुनिया से अलग प्रकार है।

यह लकड़ी है, देखो! इस पुस्तक पर लकड़ी रही नहीं। सुनो! लॉजिक—न्याय सुनो! यह लकड़ी उसके आधार से रही नहीं। क्यों? कि लकड़ी में परमाणु हैं। यह तो परमाणु है, बहुत परमाणुओं का पिण्ड है। टुकड़े करते-करते अन्तिम छोटा परमाणु रहे, उसे परमाणु कहते हैं। एक परमाणु में छह शक्तियाँ हैं। अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें छह शक्तियाँ हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। स्कूल में विभक्ति आती थी। छह विभक्ति—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। उस

रजकण में अपने में कर्ता होकर अधिकरण अर्थात् अपने आधार से रहा है, ऐसा गुण उसमें है। तो एक परमाणु दूसरे के आधार से रहा है, ऐसी चीज़ नहीं है। थोड़ी-थोड़ी सूक्ष्म बात करते हैं, हों! बहुत सूक्ष्म लेवें तब तो... आहाहा!

यह जमीन है। सुनो तो सही एक बार, क्या है? पैर है, पैर जमीन को स्पर्श नहीं करता। जमीन के आधार से पैर चलता नहीं, क्योंकि पैर के रजकण भिन्न चीज़ है और एक-एक रजकण अपनी करण—साधनशक्ति से अपने आधार से चलता है, पर के आधार से नहीं। पर को स्पर्श भी नहीं करते। बहुत सूक्ष्म हो जाये, भाई! यहाँ तो बहुत बार कहा है। यह तो डॉक्टर जरा नये हैं इसलिए... समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान!

तत्त्व कहो, जड़ तत्त्व कहो तो वह तत्त्व अपनी शक्ति से जहाँ रहा है, वहाँ अपने आधार से रहा है। पर के आधार से रहे, ऐसे पर को स्पर्श ही नहीं करता। ऐसी वस्तु तत्त्व की पृथक्ता का पृथक् लक्षण पृथक् रहने का स्वभाव है। आहाहा! सेठ! कभी सुना नहीं। सेठ तो सीखे हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य (का) अभ्यास किया था। आहाहा! उसमें वे कहते हैं, कर्ता, कर्म छह शक्तियाँ आती हैं? विभक्ति आती है न? विद्यालय में आती है। कर्ता—करे, वह कर्ता; कर्म—कार्य, कर्ता का इष्ट वह कर्म। करण—कर्ता का साधन, वह करण। सम्प्रदान—कर्ता होकर अपने में रखे, वह सम्प्रदान। अपादान—अपने से होता है, वह अपादान। अधिकरण—अपने आधार से रहता है, वह अधिकरण। यह छह शक्तियाँ प्रत्येक तत्त्व में है, तो कोई शक्ति, कोई तत्त्व किसी के आधार से रहा है, ऐसा तीन काल में है नहीं।

मुमुक्षु : पेट्रोल से तो मोटर चलती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल चलती नहीं। यह तो और आगे की बात है। पेट्रोल से मोटर चलती नहीं। मनुष्य उसे स्पर्श नहीं कर सकता। चलाता नहीं, चलती है उसके कारण से। तब उस चीज़ को निमित्त कहा जाता है। निमित्त पर में कुछ करता नहीं, तो निमित्त कहने में आता है। यह तो विज्ञान का विज्ञान है। सरकार का विज्ञान है न? अभी वह विज्ञान नहीं चलता? विज्ञान। ऊपर ले जाते हैं और अमुक ले जाते हैं, विमान ऐसे

ले जाते हैं और... उस सब विज्ञान की भी खबर है। यह तो विज्ञान का विज्ञान है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : वह सब राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है। आहाहा! यह वकालत की बुद्धि, यह डॉक्टर की बुद्धि सब कुज्ञान है। सेठ! रामजीभाई तो बड़े वकील थे। ३५ वर्ष पहले पाँच घण्टे कोर्ट में जाते थे। दो सौ रुपये लेते थे, दो सौ। बड़े वकील थे। सब छोड़ दिया। अभी तो ९५ वर्ष हुए हैं। सौ में पाँच कम। ३५ वर्ष से सब छोड़ दिया है। उस समय तो पाँच घण्टे के दो सौ रुपये लेते थे। और इनकी सलाह लेने आवे तो एक घण्टे के सौ रुपये लेते थे। उसमें क्या? वह धूल है, उसमें क्या? वह ज्ञान, ज्ञान नहीं; वह ज्ञान, कुज्ञान है।

ज्ञान उसे कहते हैं, भगवान आनन्दकन्द प्रभु है, उस ज्ञान का ज्ञान हो, राग का भिन्न ज्ञान हो, उसका नाम ज्ञान कहा जाता है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ऐसा फरमाते हैं। भगवान तो महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, उनकी यह वाणी है, भाई! आहाहा! अभी तो बहुत फेरफार हो गया है, परन्तु यह किसे (पड़ी है)? जन्मे तो बालक... 'बचपन खेल में खोया, जवानी स्त्री मोह्या, वृद्धपन देखकर रोया।' जहाँ वृद्ध हुआ, वहाँ आहाहा! मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? यह क्या चीज़ है? कैसे होता है? इसकी खबर बिना... आहाहा!

यहाँ (कहते हैं), परमार्थबुद्धि से देखो तो सम्यग्दृष्टि उस भाव से रहित है। पर को मैं स्पर्शता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? स्त्री के शरीर का जो भोग है, तो यह शरीर (दूसरे) शरीर को स्पर्शता नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि जानता है। राग आता है, वह क्रिया होती है, परन्तु ज्ञानी धर्मात्मा जानता है कि उस मैं नहीं करता। आहाहा! मैं तो मेरे ज्ञानस्वरूप में हूँ। वह मेरी चीज़ है। मैं कभी पर को स्पर्शा ही नहीं और परचीज़ कभी मुझे स्पर्शी नहीं। आहाहा! ऐसी बात कौन माने? पागल जैसी लगे। पागल जैसी लगे। यह पृष्ठ अँगुली बिना ऐसे ऊँचे होते हैं। कौन माने?

मुमुक्षु : आत्मज्ञान होने के पहले तो यह भाव आवे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा?

मुमुक्षु : आत्मज्ञान होने के पहले तो यह भाव आवे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव आयेगा, परन्तु वह है अज्ञान। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

मुमुक्षु : डॉक्टर और वकील का ज्ञान तो आत्मा का है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कुज्ञान है, भटकने का ज्ञान है। आत्मा का ज्ञान नहीं, वह जड़ का ज्ञान है। भैया!

मुमुक्षु : होता है तो आत्मा की पर्याय में न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है, वह दूसरी बात है। वह तो राग है, राग भी उसकी पर्याय में होता है, तो है उसका? वह ज्ञान की पर्याय होती है, अपनी दशा में, परन्तु वह पर्याय अज्ञान है, कुज्ञान है। अपने चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का अन्तर ज्ञान हुए बिना अपनी पर्याय में ज्ञान में, वर्तमान में त्रिकाली ज्ञेय, आत्मा को ज्ञेय बनाये बिना कभी ज्ञान होता नहीं। पर को ज्ञेय बनाकर जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान ही नहीं है। समझ में आया? कितनी बात कहें? बहुत सूक्ष्म है। बहुत सूक्ष्म झेल नहीं सके, ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! साढ़े नौ हो गये? हो गये, लो, तुम्हारा पौन घण्टा हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ९, मंगलवार, दिनांक-१७-०१-१९७८, कलश-१८६, १८७, प्रवचन-२०७

कलशटीका, मोक्ष अधिकार चलता है। १८६ (कलश)। बात यह आयी कि मिथ्यादृष्टि जीव अनादि से पुण्य-पाप के भाव जो अशुद्ध विकार हैं, उन्हें अपना मानकर अनुभव करता है। वह मिथ्यादृष्टि नये संसार के बन्धन के कर्म को बाँधता है। कर्म को बाँधता है। अपना स्वरूप चैतन्य शुद्ध आनन्द को भूलकर, (उससे) भ्रष्ट होकर, है न अन्त में? अनुभव से भ्रष्ट है। पहली लाईन है। पुण्य और पाप और कर्म और शरीर, उसे अपना मानता है, वह अनुभव से भ्रष्ट है। वह अपनी चीज़ से भ्रष्ट हुआ है। आहाहा! वह नये कर्म (बाँधता है), वह गुनहगार है। सेठ! गुनहगार कहा था न? है? **परमार्थबुद्धि से विचार करने पर गुनहगार है,...** आहाहा! अभी तो लोगों को भारी पड़ता है। उस सब शुभक्रिया को आगम में साधन कहा है, ऐसा कहते हैं। ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया।

वस्तुस्वरूप चैतन्य अनन्त आनन्द आदि शक्तियों का भण्डार शुद्ध चैतन्य वस्तु है। उसका अनुभव, (उसके) सन्मुख होकर उसका अनुभव नहीं करके, पुण्य-पाप के भाव और कर्म, शरीर और वाणी मेरे हैं, ऐसा मानकर अनुभव करता है, वह अपने स्वरूप से भ्रष्ट है। सूक्ष्म बात है, भाई! कल तो पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य, यहाँ तक लिया था। मिथ्यात्व पूर्व पर्याय कारण है। पश्चात् समकित कार्य है? मिथ्यात्व कारण है? वह तो पूर्वपर्याय का व्यय होकर नयी पर्याय उत्पन्न होती है, उसे कारण-कार्य कहा है। आहाहा! क्या कहा? अपने स्वरूप में अनुभव की दृष्टि नहीं होने से राग और दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव को अपने मानता है, वह अपनी पर्याय में विकार की उत्पत्ति करता है, और निर्विकारी अपने स्वभाव का उदास भाव प्रगट नहीं करता। समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! थोड़ी बात परन्तु बहुत सूक्ष्म और दुर्लभ है।

भगवान आत्मा! अब यहाँ कहते हैं, देखो! **सम्यग्दृष्टि जीव...** दूसरी लाईन। सम्यग्दृष्टि जीव। सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं? कि निज आनन्दस्वरूप और ज्ञान शुद्ध स्वरूप की दृष्टि हुई है और निज चैतन्यस्वभाव जो त्रिकाली शुद्ध चैतन्य है, उसका

अनुभव होकर प्रतीति हुई है, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। धर्म की पहली सीढ़ी, मोक्षमहल की पहली सीढ़ी, यह सम्यग्दर्शन, चौथा गुणस्थान। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे भाव से रहित है। ऐसे भाव अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, द्रव्यकर्म जड़, नोकर्म शरीर, वचन, मन और भावकर्म पुण्य-पाप, उनसे सम्यग्दृष्टि रहित है। (उन्हें) अपना मानता नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! अपनी चीज़ जो ज्ञान और आनन्द त्रिकाली शक्ति—स्वभाव पड़ा है न? आत्मा त्रिकाली चीज़ है न? और त्रिकाली में स्वभाव त्रिकाल पड़ा है या नहीं? त्रिकाल स्वभाव तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त शक्तियों का पिण्ड तो आत्मद्रव्य है। उसकी जिसे दृष्टि और अनुभव होता है। अनुभव अर्थात् उस वस्तु स्वरूप को अनुसरकर सम्यग्ज्ञान, शान्ति की प्राप्ति हो। अनादि से पुण्य और पाप के भाव (होते हैं, उनमें) अशान्ति है, कषाय है, दुःख है, जहर है। ऐसा अनुभव करनेवाला मिथ्या—झूठी असत्य दृष्टिवन्त है। जिससे असत्यदृष्टि के कारण से चौरासी लाख (योनि में) अनन्त काल से परिभ्रमण करता है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव अपना शुद्धस्वरूप पवित्र है, उसका अन्तर भान हुआ है, अनुभव हुआ है, प्रतीति हुई है, वह जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित है। अपनी चीज़ में उसकी खतौनी करता नहीं। खतौनी समझ में आता है? (अपने) खाते में नहीं डालता। समझ में आया? निज स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द है, उसकी दृष्टि करनेवाला सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला है। आहाहा! वह अपने में ज्ञान, आनन्द, शान्ति का मिलान करता है, खताता है। क्या कहा? अपने खाते में डालता है, परन्तु पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव को अपने खाते में नहीं डालता। आहाहा! यह लड़के और दवाखाना कहाँ रहे? बाहर रह गये? आहाहा!

अन्दर चीज़—वस्तु है न? और है तो अनादि से है। अनन्त काल रहनेवाली है। और जैसे त्रिकाल चीज़ है, स्वभाव, वैसे ज्ञान, आनन्द, शान्ति भी उसका त्रिकाली स्वभाव है। उस त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि करनेवाला अपने में, अपने खाते में पवित्रता और शुद्धि है, उसे खताता है। परन्तु अपवित्र भाव है, परन्तु अपने ज्ञान में परज्ञेयरूप से

जानता है, परन्तु अपने में मिलाना नहीं। आहाहा! इसका नाम भेदज्ञान, इसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं—धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा! समझ में आया? है?

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे भाव से रहित है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? धर्मी। '**स्वद्रव्ये संवृतः**' '**स्वद्रव्ये संवृतः**' निज आनन्द और ज्ञानस्वरूप में रहता है। '**संवृतः**' है, उसमें रहता है। पुण्य-पाप और राग में वह रहता नहीं। उसे भिन्न जानकर, उसे जानता है परन्तु उसमें रहता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। है? '**स्वद्रव्ये संवृतः**' **अपने आत्मद्रव्य में संवररूप है...** यह पुण्य और पाप के भाव तो आस्रव है, मलिन है, अशुद्ध है। उससे रहित सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव अपने स्वरूप में संवृत्त है। वह आस्रव से रहित है। आहाहा! अपने स्वरूप में रहनेवाला है। बाह्य चीज़ हो, सबको देखता-जानता है, अपने में खतौनी नहीं करता। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे भाव से रहित है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'स्वद्रव्ये संवृतः' आहाहा! स्वद्रव्य उसे कहते हैं कि जो पुण्य-पाप के भाव से रहित है। १८६ (कलश में) अन्त-अन्त में (आ गया)। समझ में आया? आहाहा! बहुत थोड़ी परन्तु सूक्ष्म किन्तु परमसत्य बात है। आहाहा! उसकी कभी दृष्टि की नहीं और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि भाव, वे तो शुभभाव हैं। उनसे मेरा कल्याण होगा, वे साधन हैं और निश्चय साध्य है, यह तो भ्रमणा, मिथ्याशल्य है। यहाँ तो धर्मी जीव स्वद्रव्य में संवृत्त है। मिथ्यादृष्टि जीव परद्रव्य में प्रवृत्त है। बस! संक्षिप्त बात है। अज्ञानी जीव परद्रव्य अर्थात् पुण्य और पाप, वे परद्रव्य हैं, उनमें प्रवृत्त है। सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य में संवृत्त है। निज ज्ञान, दर्शन, आनन्द में अन्दर अपनापन मानकर अनुभव करता है। आहाहा!

अपने आत्मद्रव्य में संवररूप है अर्थात् आत्मा में मग्न है। आहाहा! उसे राग होता है, परन्तु धर्मी उसमें मग्न नहीं है, लीनता नहीं है। उसका ज्ञान करके, उसका ज्ञाता होकर, उसे ज्ञेय बनाकर जानता है, और रहता है अपने ज्ञान में। राग को जानता है, राग का ज्ञान और अपने ज्ञान में रहता है। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य का शास्त्र है, सेठ! सेठ ने तो अभ्यास किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत प्रमोद बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रमोद... प्रमोद बताते हैं। नरम जीव हैं न! बात तो बापू! बहुत मुश्किल है। लोग विरोध करते हैं। कल आया है न भाई का—जगन्मोहनलालजी का, कि आत्मा में अध्यात्म से तो पुण्य-पाप बन्ध का कारण है, परन्तु आगमदृष्टि से वह पुण्य परिणाम साधक है और धर्म साध्य है। उससे धर्म होगा, ऐसा आया है। अरर्र! प्रभु! प्रभु! और यहाँ तक आया है कि पूर्वपर्याय कारण है और उत्तरपर्याय कार्य है, ऐसा शास्त्र में आता है। न्यायशास्त्र में और स्वामी कार्तिकेय में (आता है)। परन्तु क्या कहते हैं? मात्र पूर्वपर्याय जो है, वह कारण है और बाद की पर्याय कार्य है। क्यों?-कि पूर्वपर्याय का व्यय होता है और बाद की पर्याय का उत्पाद होता है। इस अपेक्षा से कारण-कार्य कहा। परन्तु उसमें ऐसा लगा दे कि पूर्व का शुभभाव कारण है और बाद में शुद्धभाव कार्य है। ऐसा लगा दिया है। आहाहा!

शास्त्र में ऐसा आता है कि पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय (कार्य)। पूर्वपर्याय क्या? अपने आत्मा में जो प्रथम वर्तमान अवस्था होती है, उसे पूर्व (पर्याय) कहते हैं और उसे कारण बनाकर बाद की पर्याय होती है, उसे कार्य कहते हैं। तो शुभराग कारण और शुद्ध (पर्याय) कार्य, ऐसा लगाया है। परन्तु ऐसा है नहीं। यदि ऐसा लगाओ तो शास्त्र में ऐसा भी कहा है कि पूर्वपर्याय (में) मिथ्यात्व है, वह कारण है और सम्यग्दर्शन कार्य है, ऐसा पाठ है। पूर्वपर्याय युक्तं द्रव्य कारणं। यह स्वामी कार्तिकेय में (आता है)। उत्तरपर्याय युक्तं द्रव्यं कार्य। तो यहाँ तो पूर्व पर्याय (में) मिथ्यात्व भी है। मिथ्यात्व कारण और सम्यग्दर्शन कार्य (ऐसा है?) परन्तु पूर्वपर्याय का व्यय कारण और उत्तरपर्याय कार्य। मिथ्यात्व का व्यय होकर सम्यग्दर्शन का कार्य होता है। इसी प्रकार शुभभाव का व्यय होकर शुद्धभाव होता है, वहाँ तो ऐसा लिया है कि पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य। तो पूर्वपर्याय अशुभ भी है। क्या कहते हैं? पूर्वपर्याय कारण (हो) तो अशुभभाव कारण और फिर शुभभाव कार्य। ऐसा लिया है। पण्डितजी! वह तो पूर्वपर्याय...

मुमुक्षु : वह तो क्षणिक है न, इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक सिद्ध करना है, इतनी बात है। वह तो सिद्ध करना

है कि पूर्वपर्याय व्यय होती है और नयी पर्याय उत्पन्न होती है, इतनी बात सिद्ध करनी है। तो वहाँ तो यहाँ तक लिया है, स्वामी कार्तिकेय में भी है और न्यायशास्त्र में (लिया है), पूर्व अशुभभाव कारण है और बाद की पर्याय कार्य है—तो इसका अर्थ क्या? अशुभभाव-मिथ्यात्व कारण है और शुभभाव कार्य है? उस अशुभभाव का व्यय कारण है। भाई ने डाला है, फूलचन्दजी ने, सेठ! जैनतत्त्व मीमांसा आयी है? फूलचन्दजी की है, जैनतत्त्व मीमांसा। जेठाभाई! सेठ... सेठ के पास आयी है? जैनतत्त्व मीमांसा। नहीं आयी होगी। अपने है? अधिक है? जैनतत्त्व मीमांसा, एक सेठ को देना। जैनतत्त्व मीमांसा।

पण्डित फूलचन्दजी हैं न? उन्होंने जैनतत्त्व मीमांसा बनायी है। उसमें यह अर्थ लिया है कि पूर्वपर्याय कारण। और जगनमोहलालजी का आज ही आया है, उन्होंने तो ऐसा ही लगाया है, पूर्वपर्याय अशुभ कारण और शुभ कार्य। शुभपर्याय कारण और शुद्धकार्य।

मुमुक्षु : तब तो पूर्वपर्याय अशुभ कारण और शुभकार्य हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिया है न कि शुद्धपर्याय कारण और शुभपर्याय कार्य। थोड़ी सूक्ष्म बात है। न्यायशास्त्र में ऐसा आता है कि पूर्वपर्याय कारण, उत्तरपर्याय कार्य। तो ऐसा भी आया कि शुद्धभाव जो आया और शुद्धभाव का व्यय होकर शुभ हुआ, शुभ। तो शुद्धभाव कारण और शुभ कार्य हुआ, ऐसा आता है। परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं है। शुद्ध उपयोग का व्यय कारण और शुभ उपयोग का उत्पाद कार्य है। ऐसा अर्थ है। कल आया है, बहुत विपरीत डाला है। क्या हो? सन्मति सन्देश में जगनमोहनलालजी का बहुत लेख आया है। अरेरे! एक अध्यात्म, एक आगम और एक न्याय, तीन की बात ली है।

मुमुक्षु : ऐसा कोई परस्पर विरोध होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परस्पर अविरुद्ध (को) तो जैनवाणी कहते हैं। (वे ऐसा कहते हैं कि) अध्यात्म में शुद्ध उपयोग ही मोक्ष का मार्ग है और आगम में शुभ उपयोग भी मोक्ष का मार्ग, परम्परा से है। और न्याय में, न्यायशास्त्र में आता है न? वहाँ पूर्वपर्याय

शुभ कारण है, बाद की उत्तरपर्याय कार्य है, ऐसा आया है। तीन बोल की व्याख्या आयी है। परन्तु ऐसा नहीं है। आहाहा! तब तो कहा न, शास्त्र में ऐसा कहा कि पूर्वपर्याय कारण है। तो मिथ्यात्व कारण है। पूर्व में मिथ्यात्व है, पश्चात् समकित हुआ। एक समय में (हुआ)। मिथ्यात्व कारण और समकित कार्य? शास्त्र में पाठ तो ऐसा है, पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य। इसका अर्थ ऐसा है कि पूर्वपर्याय का व्यय कारण और बाद की पर्याय का उत्पाद कार्य। समझ में आया? देवीलालजी! बड़ी गड़बड़ है। अरेरे! जगनमोहनलालजी ने ऐसा डाला!

मुमुक्षु : वहाँ तो इतना ही बतलाना है कि प्रायोग्यलब्धि का अभाव कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो कुछ नहीं। यह तो दूसरी बात करते हैं, सब आगम की बात करते हैं। आगम में शुभभाव को साधन कहा है, निश्चय साध्य है, ऐसा कहते हैं। आया है न, कल आया है। सन्मति सन्देश है न? दिल्ली, दिल्ली... दिल्ली... आहाहा! बड़ा लेख आया है। कल पढ़ा था। भाई! यहाँ तो कहते हैं कि उस पूर्व पर्याय को शास्त्र में कारण कहा है, परन्तु उस पर्याय का उत्पाद कारण है और बाद की पर्याय उत्पाद (हुई), वह कार्य है, ऐसा नहीं। व्यय कारण है, पूर्व की पर्याय का व्यय कारण है और बाद की पर्याय का उत्पाद कार्य है।

यहाँ यह कहते हैं, देखो! सम्यग्दृष्टि जीव **अपने आत्मद्रव्य में संवररूप है...** शुभ आदि पूर्वपर्याय थी, उसका तो नाश करके अपने स्वरूप में संवृत्त है, अपने स्वरूप में एकाग्र है। समझ में आया? पूर्वपर्याय शुभ थी, अन्त में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के काल में पूर्व में शुभ होता ही है, परन्तु उस शुभ से शुद्धता नहीं होती। शुभ का व्यय होकर शुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है। ऐसा अर्थ नहीं करके शुभ कारण है और शुद्ध कार्य है, (ऐसा कहते हैं)। विपरीत है, भाई! मानो, न मानो दुनिया। आहाहा! पण्डित लोग भी ऐसा करते हैं। सन्मति सन्देश, दिल्ली से आता है न? शान्तिसागर। 'हितैषी' उसमें कल आया है और एक कोई देवेन्द्र शास्त्री है। पहले यहाँ का विरोध था। उन्होंने बहुत लिखा है, बहुत अच्छा लिखा है कि शुद्धभाव, वह मोक्ष का कारण है। शुभ को (कारण कहते हैं), वह झूठ है। सब लोग विचार करो। सोनगढ़ की बात का विचार करो।

उसका तुम एकदम बहिष्कार करते हो और ऐसा करते हो तो ऐसा करते-करते बहिष्कार तुम्हारा हो जायेगा। साधु-बाधु ऐसा कहे तो द्वेष है वह। बहुत लिखा है। पूर्वपर्याय को कारण बनाकर, शुभ को कारण बनाकर, शुद्ध को कार्य कहना है, वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। देवेन्द्र शास्त्री है, पहले विरोध था। अब अनुकूल हो गये हैं। पत्र आया था कि मुझे आपके पास आना है। आहाहा! भाई! यह तो शान्ति से सुनने की (समझने की) चीज़ है। यह कोई विद्वत्ता की चीज़ नहीं। आहाहा!

यहाँ कहा, **सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे भाव से रहित है।** ऐसे भाव कौन? द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित है। अपने अस्तित्व में उनका रहितपना है। है परन्तु उन्हें परज्ञेयरूप से जानता है और **कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'स्वद्रव्ये संवृतः' अपने आत्मद्रव्य में संवररूप है अर्थात् आत्मा में मग्न है।** आहाहा! हो, विकल्प आता है, है, राग है, शरीर है, हो। परन्तु अपनी दृष्टि तो अन्तर आत्मा में है। वह दृष्टि कोई राग के ऊपर है और राग में लीन है, ऐसा नहीं है। देवीलालजी! ऐसी बात है। यह १८६ (कलश पूरा) हुआ।

कलश - १८७

(मालिनी)

अनवरतमनन्तैर्वध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी।।८-१८७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'सापराधः अनवरतं अनन्तैः बध्यते' [सापराधः] परद्रव्यरूप है पुद्गलकर्म, उसको आपरूप जानता है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव, [अनवरतं] अखण्ड धाराप्रवाहरूप [अनन्तैः] गुणना से अतीत, ज्ञानावरणादिरूप बँधी है पुद्गलवर्गणा, उनके द्वारा [बध्यते] बाँधा जाता है। 'निरपराधः जातु बन्धनं न एव स्पृशति' [निरपराधः] शुद्धस्वरूप को अनुभवता है-ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, [जातु] किसी भी काल में [बन्धनं] पूर्वोक्त कर्मबन्ध को [न स्पृशति] नहीं छूता है, [एव] निश्चय से। आगे सापराध निरपराध का लक्षण कहते हैं — 'अयं अशुद्धं स्वं नियतं भजन् सापराधः भवति' [अयं] मिथ्यादृष्टि जीव, [अशुद्धं] रागादि अशुद्धपरिणामरूप परिणमा है, ऐसे [स्वं] आप सम्बन्धी जीवद्रव्य को [नियतं भजन्] ऐसा ही निरन्तर अनुभवता हुआ, [सापराधः भवति] अपराधसहित होता है। 'साधु शुद्धातमसेवी निरपराधः भवति' [साधु] जैसा है, वैसा [शुद्धात्म] सकल रागादि अशुद्धपना से भिन्न, शुद्धचिद्रूपमात्र-ऐसे जीवद्रव्य के [सेवी] अनुभव से विराजमान है जो सम्यग्दृष्टि जीव, वह [निरपराधः] सर्व अपराध से रहित है; इसलिए कर्म का बन्धक नहीं होता।।८-१८७।।

कलश - १८७ पर प्रवचन

१८७, १८७ कलश।

अनवरतमनन्तैर्वध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी।।८-१८७।।

क्या कहते हैं? देखो! **'सापराधः अनवरतं अनन्तैः बध्यते' परद्रव्यरूप है पुद्गलकर्म, उसको आपरूप जानता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव...** पुद्गलकर्म को, पुण्य-पाप के भाव को और शरीर, वाणी, कर्म को अपना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि स्वरूप से भ्रष्ट है। है? **जानता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव 'अनवरतं' अखण्ड धाराप्रवाहरूप 'अनन्तै' गणना से अतीत ज्ञानावरणादिरूप बँधी हैं...** आहाहा! अज्ञानी अगणित अनन्त कर्म से बँधता है। अपने स्वरूप को शुद्ध चैतन्य है, उसे नहीं जानता, नहीं मानता, पुण्य-पाप, कर्म, नोकर्म को अपना जानता है, अनुभव करता है, वह धाराप्रवाहवाही अनन्त कर्म की वर्गणा से बँधता है। आहाहा! भाषा तो सादी है, भाव तो है, वह है। क्या कहा?

फिर से। मिथ्यादृष्टि जीव अखण्ड धाराप्रवाह गणना रहित। कर्म के परमाणु की गणना क्या? वे अनन्त परमाणु हैं। ज्ञानावरणादि अनन्त परमाणु हैं। अनन्त-अनन्त परमाणु गणना रहित अनन्त, ऐसे अनन्त ज्ञानावरणादिरूप बँधते हैं। **पुद्गलवर्गणा, उनके द्वारा बाँधा जाता है।** आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो स्वयं के अनन्त आनन्द आदि स्वरूप को नहीं मानकर मिथ्यादृष्टि राग, पुण्य और कर्म को अपना मानता है, वह धाराप्रवाहवाही अनन्त परमाणुओं से बँधता है। आहाहा! समझ में आया? अखण्ड धाराप्रवाहरूप अनन्त। समय-समय में आते हैं और आते हैं तो अनन्त परमाणु आते हैं। मिथ्यादृष्टि को जो बन्धन होता है, वह पुण्य-पाप और कर्म, नोकर्म को अपने मानकर जो मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व को सेवन करता है, उसे गणना रहित ज्ञानावरणादि अनन्त परमाणु बँधते हैं। आहाहा! यह समझ में आये ऐसी बात है। **उनके द्वारा बाँधा जाता है।**

'निरपराधः जातु बन्धनं न एव स्पृशति' परन्तु निरपराधी जीव (अर्थात्) आहाहा! **शुद्धस्वरूप को अनुभवता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि...** आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव से भिन्न अपनी चीज़ शुद्ध चैतन्य, उसे जो जानता है, अनुभव करता है, मानता है, वेदता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव है। आहाहा! है? **'निरपराधः'** इसकी व्याख्या (की)। **शुद्धस्वरूप को अनुभवता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव...** निरपराधी है। क्योंकि राग और पुण्य को अपना मानता नहीं। अपना मानता है, वह गुनहगार, चोर है। वह गणनारहित अनन्त कर्म से बँधता है और सम्यग्दृष्टि जीव, **शुद्धस्वरूप को अनुभवता है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव**

किसी भी काल में... 'जातु' अर्थात् **पूर्वोक्त कर्मबन्ध को नहीं छूता है,... 'जातु'** का अर्थ सब जगह यह होता है। कोई काल, किसी काल में। आहाहा! पूर्वोक्त कर्मबन्धन को नहीं स्पर्शता, नहीं छूता। आहाहा!

उसमें भी उन्होंने लिया है कि उत्कृष्ट अनुभूति तो सातवें (गुणस्थान में) होती है। चौथे में तो जघन्य है। परन्तु जघन्य है न? ऐसा गिनने में आया है। बन्धन नहीं है। अज्ञानी को बन्धन है, ज्ञानी को बन्धन नहीं। वह राग है तो भी बन्धन नहीं। अस्थिरता है। अपना मानता नहीं, इस अपेक्षा से। राग है, उतना बन्धन है, परन्तु सम्यग्दर्शन के जोर से, सम्यग्दृष्टि से बन्ध नहीं होता, इस अपेक्षा से बन्ध नहीं होता, ऐसा अर्थ लिया है। वैसे तो सम्यग्दृष्टि को जितना राग है, उतना बन्धन तो है, परन्तु वह अपने स्वरूप में मानता नहीं। वह राग और बन्धन अपने स्वरूप में मानता नहीं। पृथक् किया है। अपने में नहीं है।

शुद्धस्वरूप को अनुभवता है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी काल में पूर्वोक्त कर्मबन्ध को नहीं छूता है, निश्चय से। आहाहा! आता है। यहाँ यह बतलाना है, राग आता है परन्तु ज्ञान में ज्ञेयरूप से जानता है। राग तो है न? अभी चौथे, पाँचवें, छठवें में राग तो आता है, परन्तु उसे अपने ज्ञान में परज्ञेयरूप से जानता है, निजज्ञेयरूप से मानता नहीं। आहाहा! स्वज्ञेय और परज्ञेय में भिन्नता है। इस अपेक्षा से बँधता नहीं, ऐसा कहा है। निश्चय से तो बन्ध अधिकार में तो ऐसा लिया है कि निश्चय से तो वह अबन्ध ही है। क्योंकि वस्तु अबन्ध है, वस्तु अबन्ध / मुक्त है, उसकी दृष्टि हुई, अनुभव हुआ तो निश्चय से तो उसे भी अबन्ध कहा गया है। ऐसा बन्ध अधिकार में लिखा है। पण्डित जयचन्द्रजी (ने लिखा है)। आहाहा! सूक्ष्म बात है। (राग) आता है, (उतना) बन्धन है। जब तक यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक मुनि को भी बन्धन है, परन्तु उसे यहाँ गिनती में (लिया नहीं जाता)। यहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान के जोर में अल्प स्थिति-रसवाला बन्धन है, उसे गौण करके, बँधता नहीं—ऐसा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? बिल्कुल बन्धन है ही नहीं, ऐसा नहीं है। बिल्कुल बन्धन तो केवली भगवान को नहीं है। परन्तु यहाँ मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जो बन्धन है, वह बन्धन गिनने

में आया है तो वह बन्धन नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का भाव नहीं है। पर को अपना मानना और पर में एकाग्र होना, वह भाव नहीं है। इस अपेक्षा से उसे विपरीत भाव से जो बन्धन था, वह बन्धन नहीं है। आहाहा!

निश्चय से। आगे सापराध—निरपराध का लक्षण कहते हैं—अब देखो! लक्षण कहते हैं। '**अयं अशुद्धं स्वं नियतं भजन् सापराधः भवति**' यह व्याख्या। अपराधी की व्याख्या क्या? कि **मिथ्यादृष्टि जीव, रागादि अशुद्ध परिणामरूप परिणमा है, ऐसे आपसम्बन्धी जीवद्रव्य को ऐसा ही निरन्तर अनुभवता हुआ...** वह अपराधी है। आहाहा! यहाँ वह अपराधी गिनने में आया है। आता है, परन्तु अपना मानकर अनुभव नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? है?

अपराधी का और निरपराधी का दोनों का लक्षण कहते हैं। **मिथ्यादृष्टि जीव, राग...** अर्थात् पुण्य-पाप आदि **अशुद्ध परिणामरूप परिणमा है, ऐसे आपसम्बन्धी जीवद्रव्य को....** वह मेरा है, ऐसा मानकर अनुभव करता है। **ऐसा ही निरन्तर अनुभवता हुआ अपराध सहित होता है।** जो रागादि है, वह परचीज़ है, उसे अपना मानकर अनुभव करता है, वह अपराधी है। ज्ञानी, राग आता है परन्तु अपना मानकर अनुभव नहीं करता, इस अपेक्षा से निरपराधी है। समझ में आया? आहाहा! बहुत अन्तर, भाई! है?

'**नियतम् भजन्**' निश्चय से अनुभवता हुआ। अज्ञानी पुण्य-पाप को वास्तव में अपने मानकर अनुभवता हुआ। निश्चय से। आहाहा! और धर्मी जीव—'**साधु**'। '**साधु**' अर्थात् भला। यहाँ साधु अर्थात् उन साधु की बात नहीं। साधु का अर्थ जैसा है, वैसा वस्तु का स्वरूप। '**साधु**' का अर्थ ऐसा है न? देखो! **जैसा है वैसा...** कौन? आत्मा। **सकल रागादि अशुद्धपना से भिन्न...** साधु की यह व्याख्या की—भला। जैसी वस्तु की स्थिति है, राग से, पुण्य-पाप से रहित... क्योंकि नौ तत्त्व हैं, उनमें पुण्यतत्त्व भिन्न है। दया, दान, व्रत, वह पुण्यतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, वह पापतत्त्व है। ये दोनों मिलकर आस्रवतत्त्व है। भगवान आत्मा इन तीनों तत्त्वों से भिन्न है। (यदि भिन्न न होता तो) नौ तत्त्व नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? वह धर्मी जीव पुण्य-पाप को परतत्त्वरूप से जानकर, अपने मानकर अनुभवता नहीं। आहाहा! अज्ञानी पुण्य, दया, दान के भाव से

मुझे लाभ होगा, ऐसे अपने मानकर अनुभव करता है। वह अपराधी है, वह गुनहगार है। आहाहा! ऐसी व्याख्या है। सूक्ष्म बात है। बाकी तो शास्त्र में तो जब तक यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक जितना थोड़ा राग है, उसका बन्ध तो समकिती, मुनि को भी होता है। यह बात यहाँ गौण करके (कहा है)। पर को अपना मानता है, ऐसे अपराध से जो बन्ध होता था, वह बन्ध नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

आस्रव अधिकार में तो ऐसा लिया है, पहले ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि को आस्रव-बन्ध नहीं। फिर कहा कि, जब तक यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक जघन्य हीन परिणमन ज्ञानी को है तो उतना बन्धन भी है। जितना राग है, उतना बन्धन भी है। परन्तु यहाँ पर को अपना मानकर अपराध करता है, वह अपराध नहीं है, इतना (कहना है)। उस अपराध से जो बन्धन होता है, वह बन्धन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अनन्त संसार का कारण नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त संसार का कारण नहीं है। अल्प स्थिति का बन्ध पड़ता है। वास्तव में तो ऐसी बात है, सम्यग्दृष्टि मनुष्य हो या तिर्यंच हो, उसे भी अशुभभाव तो आता है, परन्तु अपना मानता नहीं। दूसरी बात, जब तक अशुभभाव है, तब तक परभव का आयुष्य नहीं बँधता। सम्यग्दृष्टि जीव धर्मदृष्टि हुई है, उसे अशुभभाव होता है, परन्तु अशुभभाव के काल में भविष्य का बन्ध—आयुष्य का बन्ध नहीं पड़ता। जब शुभभाव आता है, तब भविष्य का बन्ध पड़ता है, इतना जोर है। क्योंकि उसे स्वर्ग में जाना है, तो अशुभभाव के समय भविष्य के भव का बन्ध नहीं होता। शुभभाव आवे, तब ही भविष्य के भव का बन्ध होता है। आहाहा! थोड़ी भी सत्य बात अन्दर बैठनी चाहिए, अन्दर में बैठनी चाहिए। आहाहा! बाहर से (ऐसा कहे कि) इस आगम में ऐसा कहा है और इसमें ऐसा कहा है। तो पूर्वापर विरोधी वीतराग की वाणी होती है? एक ओर भगवान पुण्य को अधर्म कहे तथा दूसरी ओर अधर्म से धर्म होगा, ऐसा कहे? वीतराग की वाणी ऐसी नहीं होती। आहाहा!

साधु अर्थात् जैसा है वैसा, कौन? आत्मा। शुद्धात्म **सकल रागादि अशुद्धपना**

से भिन्न शुद्धचिद्रूप मात्र... शुद्ध ज्ञानस्वरूप मात्र। मैं तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप पवित्र हूँ, ऐसी दृष्टि होने से, **ऐसे जीवद्रव्य को...** है ? **अनुभव से विराजमान है... शुद्धचिद्रूपमात्र ऐसे जीवद्रव्य के अनुभव से विराजमान है...** अज्ञानी अपने जीवद्रव्य में—पदार्थ में पुण्य-पाप, कर्म, शरीर अपने मानकर जानता है। ज्ञानी अपने जीवद्रव्य में पुण्य-पाप के भाव अपने नहीं, ऐसा अनुभव करता है। आहाहा! है ?

साधु अर्थात् जैसा है वस्तु का स्वरूप वैसा। **सकल रागादि अशुद्धपना से भिन्न शुद्धचिद्रूपमात्र...** चिद्—ज्ञान... ज्ञान... जानन... जानन... जानन... जानन ध्रुवस्वभाव मेरा है, दूसरा कोई मेरा स्वभाव नहीं। ऐसा अनुभव करता हुआ। **ऐसे जीवद्रव्य को... शुद्धचिद्रूपमात्र ऐसे जीवद्रव्य के....** मैं जीवद्रव्य जो हूँ, वस्तु हूँ, वह शुद्ध चिन्मात्र हूँ। शुद्ध पवित्र ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा मेरा जीवद्रव्य है। अज्ञानी जीवद्रव्य को पुण्य-पापवाला मानता है, कर्मवाला और शरीरवाला मानता है, वह बड़ी अपराधी दशा है। आहाहा! समझ में आया ?

अनुभव से विराजमान है... 'सेवी' कहा है न ? **जो सम्यग्दृष्टि जीव वह 'निरपराध' सर्व अपराध से रहित है;...** क्यों ? **सकल रागादि अशुद्धपना से भिन्न शुद्धचिद्रूपमात्र ऐसे जीवद्रव्य के सेवे है....** आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यह तो मोक्ष अधिकार है न! जितना अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्वरूप, पुण्य-पाप के परिणाम से रहित, वह मेरा जीवद्रव्य है, ऐसा अनुभव करता है, वह निरपराधी है। निरपराधी को बन्धन नहीं होता। रागादि का बन्धन है, उसे यहाँ गौण करके, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी से अनन्त संसार का बन्धन था, वह बन्धन नहीं है, ऐसा लेना है। समझ में आया ? आहाहा!

अज्ञानी त्यागी हो, बाहर से साधु (हुआ) हो, हजारों स्त्रियों का, रानियों का त्याग (किया हो), पंच महाव्रत पालता हो, परन्तु पँच महाव्रत राग है, उसे अपना माने और उससे मुझे लाभ होता है, ऐसा मानता है तो जीवद्रव्य को अशुद्ध अनुभव करता है। इस कारण से उसे अनन्त संसार का बन्धन होता है और धर्मी जीवद्रव्य को शुद्ध चिन्मात्र अनुभव करता है। राग होता है, परन्तु उसे भिन्न रखकर अपने शुद्ध ज्ञानमात्र आत्मा को जानता है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

सर्व अपराध से रहित है; इसलिए कर्म का बन्धक नहीं होता। आहाहा! इस कारण से सम्यग्दृष्टि को कर्म का बन्धन नहीं होता। आहाहा! यह अपराध की अपेक्षा से, हों! शुभ-अशुभभाव, कर्म; शुभ-अशुभभाव, वह भावकर्म है, जड़कर्म (अर्थात्) रजकण, शरीर, वाणी, मन, वह नोकर्म। तीनों को अपने शुद्धजीवद्रव्य में अपने नहीं मानता, इस कारण वह निरपराधी है और अज्ञानी अपने जीवद्रव्य में पुण्य-पाप कर्म, शरीर, वाणी, मन अपने हैं, ऐसा मानता है; इसलिए वह अपराधी है। उस अपराध से अनन्त संसार का बन्धन है। ज्ञानी को अनन्त संसार का बन्धन नहीं। थोड़ा राग, अस्थिरता रही है, उतना बन्धन है। इस प्रकार दोनों का स्पष्टीकरण किया है। लो, आधा घण्टा हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १८८

(मालिनी)

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां
प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालंबनम्।
आत्मन्येवालानितं च चित्त-
मासंपूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः।।९-१८८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अतः प्रमादिनः हताः' [अतः प्रमादिनः] शुद्धस्वरूप की प्राप्ति से भ्रष्ट हैं जो जीव, वे [हताः] मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं हैं; ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों का धिक्कार किया है। कैसे हैं? 'सुखासीनतां गताः' कर्म के उदय से प्राप्त जो भोगसामग्री, उसमें सुख की वांछा करते हैं। 'चापलं प्रलीनं' [चापलं] रागादि अशुद्धपरिणामों से होती है सर्व प्रदेशों में आकुलता, [प्रलीनं] वह भी हेय की। 'आलम्बनं उन्मूलितं' [आलम्बनं] बुद्धिपूर्वक ज्ञान करते हुए जितना पढ़ना-विचारना-चिन्तवन करना-स्मरण करना इत्यादि है, वह [उन्मूलितं] मोक्ष का कारण नहीं है-ऐसा जानकर, हेय ठहराया है। 'आत्मनि एव चित्तं आलानितं' [आत्मनि एव] शुद्धस्वरूप में एकाग्र होकर [चित्तं आलानितं] मन को बाँधा है। ऐसा कार्य जिस प्रकार हुआ, उस प्रकार कहते हैं — 'आसम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः' [आसम्पूर्णविज्ञान] निरावरण केवलज्ञान, उसका [घन] समूह जो आत्मद्रव्य, उसकी [उपलब्धेः] प्रत्यक्ष प्राप्ति होने से।।९-१८८।।

पौष शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक-१८-०१-१९७८, कलश-१८८, प्रवचन-२०८

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां
प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालंबनम्।
आत्मन्येवालानितं च चित्त-
मासंपूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः।।९-१८८।।

हिन्दी है। 'अतः प्रमादिनः हताः' शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति से भ्रष्ट हैं जो जीव,...

मोक्ष अधिकार है न? शुद्ध स्वरूप जो अन्दर है। पर्याय, एक समय की पर्याय के पीछे अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त ईश्वरता आदि शुद्धस्वरूप ध्रुव है। वर्तमान एक समय की पर्याय के पीछे, समीप में अनन्त शुद्ध चैतन्य आनन्द है, उसकी दृष्टि से जो भ्रष्ट है। आहाहा! है? **शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति से भ्रष्ट हैं...** अपनी बुद्धि राग में अथवा एक समय की पर्याय में जिसने अपनी बुद्धि को रोका है, वह शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट है। पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति और पूर्ण स्वच्छता—ऐसा जो अपना शुद्ध त्रिकाली स्वभाव, उससे जो भ्रष्ट है। है?

वे मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं हैं;... वह दु:ख से छूटने का अधिकारी नहीं। मोक्षमार्ग का, दु:ख से छूटने का वह अधिकारी नहीं है। वह अनन्त आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि से तो भ्रष्ट है। आहाहा! और पुण्य आदि, राग आदि, विकल्प या पर्याय के प्रेम में फँसा है, वह शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट है। आहाहा! वह मोक्ष का अधिकारी नहीं। है? **मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं हैं;...** मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं, यह तो ठीक, मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं। क्योंकि मोक्षमार्ग, आगम में और अध्यात्म में भले चाहे जो बात कही हो, परन्तु वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में तो लिया है न? भाई! जीव अधिकार, जीव-अजीव, सात तत्त्व में जीव-अजीव अधिकार। आगम से छह द्रव्य आदि भले जाने परन्तु अध्यात्म से वीतरागविज्ञान का कारण... भाई! जहाँ जीव-अजीव की भूल बतायी है न? सातवें अध्याय में। आगम का अभ्यास भले हो परन्तु वीतरागविज्ञान का कारण ऐसा अध्यात्म स्वभाव भेदज्ञान का कारण, उसका अभ्यास नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आगम में छह द्रव्य की बात आती है। अनेक प्रकार हो परन्तु अध्यात्म में वीतरागविज्ञान का कारण अपना जो शुद्ध स्वरूप, जो राग से भिन्न भेदज्ञान नहीं करता तो उसे जीव-अजीव का ज्ञान सच्चा नहीं है। समझ में आया?

दोपहर में भी यह चलता था न? अव्यक्त में। कि वास्तव में तो एक ओर जीव है और एक ओर अजीव है। अजीव अधिकार है न वह? सूक्ष्म बात है। भगवान अनन्त-अनन्त अनन्त आनन्द और शुद्धस्वरूप का पिण्ड प्रभु, वह जीव है, वह अव्यक्त है। पर अपेक्षा से परव्यक्त है तो यह अव्यक्त है। इसकी अपेक्षा से तो, एक जीव की अपेक्षा से

तो दूसरे सब अजीव कहने में आये हैं। अजीव अधिकार है न? आहाहा! यह जीव नहीं। समझ में आया?

जो यह शुद्धस्वरूप आनन्दकन्द प्रभु, पूर्ण शुद्धस्वरूप से भरपूर ऐसा भगवान आत्मा, उसे ही जीव कहा और वही सम्यगदर्शन का विषय है। भले सम्यग्दर्शन है पर्याय, वह अव्यक्त में आती नहीं, परन्तु अव्यक्त जो शुद्धस्वरूप, उसका निर्णय और ज्ञान तो पर्याय करती है। आहाहा! उस पर्याय का विषय जो शुद्धस्वरूप है, वह जीव और उससे भिन्न सब अजीव। अजीव का अर्थ—यह जीव नहीं। भले सिद्ध भगवान हो, पंच परमेष्ठी हो, परन्तु यह जीव जो शुद्ध अनन्त आनन्दकन्द प्रभु, पूर्ण शुद्धस्वरूप जीव, यह वह नहीं। इस अपेक्षा से सबको व्यक्त कहकर, अन्य कहकर जीव से भिन्न बताया है। आहाहा! ऐसे जीव को आगमज्ञान का वाँचन हो परन्तु ऐसा भेदज्ञान नहीं होता, जीव-अजीव में लिया है। है?

जीव-अजीव तत्त्व के श्रद्धान की अयथार्थता। यह तो विचार क्यों आया? कि आगम में ऐसा कहा, अध्यात्म में ऐसा कहा, न्याय में ऐसा कहा, सब में कहा। **जैन शास्त्रों में कथित जीव के त्रस-स्थावरादिरूप तथा गुणस्थान-मार्गणादिरूप भेदों को जानता है। अजीव के पुद्गलादिभेदों को तथा उनके वर्णादिभेदों (गुण) को जानता है, परन्तु अध्यात्मशास्त्रों में भेदज्ञान के कारणभूत...** आहाहा! यह चीज़ है।

मुमुक्षु : आगम में भेदज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : आगम में व्यवहार की प्रधानता का बहुत कथन है। आगम छह द्रव्य का कथन करता है न? और अध्यात्म में आत्मा का कथन है। ऐसा थोड़ा अन्तर है। आगम में भी अधिकार तो यह ही है परन्तु कथनशैली जरा विशेष व्यवहार से है। समझ में आया? अन्त में तो उसने भी व्यवहार छुड़ाया है। परन्तु बहुत अधिकार व्यवहार के हैं और उसमें ऐसा भी आता है, चरणानुयोग आदि में (ऐसा भी आता है कि) व्यवहार आदेय है—उपादेय है, ऐसा भी आता है। परन्तु उन सबका सार उसे छोड़कर वीतरागविज्ञान जिसे हो (वह है)। है? देखो!

अध्यात्मशास्त्रों में भेदविज्ञान के कारणभूत वा वीतरागदशा होने को कारणभूत

जैसा निरूपण किया है, वैसा नहीं जानता। आगम को जानता है परन्तु यह नहीं जानता। आहाहा! जीव-अजीव की भूल बतायी है न, वहाँ (यह आया है)। रात्रि में विचार आया कि यह सब आगम... आगम सब बातें करते हैं, सब हो परन्तु वीतरागविज्ञान और भेदज्ञान.... आहाहा! **जैसा निरूपण किया है, वैसा जानता नहीं।** मूल प्रयोजन है, वह तो जानता नहीं और दूसरे आगम आदि की अनेक बातें कर-करके वहाँ रुक जाता है। वास्तव में तो चारों अनुयोगों का सार वीतरागविज्ञानता है। उसमें लिया न? वीतरागविज्ञान। है? वीतरागदशा होने का कारण भेदज्ञान। चारों अनुयोगों में सार तो (वीतरागता है)। यह आया है न?

पंचास्तिकाय १७२ गाथा। चारों अनुयोगों का सार तो वीतरागता है। कहीं उसका सार राग है और राग से लाभ है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? सूत्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। वीतरागता कब होती है? किसी पराश्रय से या राग के आश्रय से वीतरागता नहीं होती। सर्व शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है, उसका अर्थ कि सर्व शास्त्र का तात्पर्य वीतरागस्वभाव का आश्रय लेना, तब वीतरागता होती है। यह तात्पर्य आया। समझ में आया? सर्व शास्त्र का सार वीतरागता है तो वीतरागता उत्पन्न कैसे हो? इसका अर्थ सब शास्त्र में स्वद्रव्य का आश्रय लेना, उससे वीतरागता उत्पन्न होती है, ऐसा निकलता है। आहाहा! समझ में आया?

किसी शास्त्र में अनेक प्रकार के कथन हो, परन्तु उसका तात्पर्य तो वीतरागता बतलाना है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, वीतराग जिस विधि से हुए, वह विधि बतलाना है। उस विधि में वीतरागता का सार आना चाहिए। तो वीतरागता कब होगी? कि वीतराग जिनस्वरूप प्रभु आत्मा, जिनस्वरूप अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त-अनन्त शुद्ध शक्ति और शुद्ध पवित्रता का पिण्ड, वह आत्मा, उसका आश्रय लेना, वह सर्व (शास्त्रों का) सार है। जघन्य लेने से सम्यग्दर्शन (होता) है, विशेष आश्रय लेने से चारित्र है, विशेष आश्रय लेने से केवलज्ञान (होता है)। परन्तु सर्व शास्त्रों का तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ भी यह कहा, ऐसा जानता नहीं। **तथा किसी प्रसंगवश उसी प्रकार जानना**

हो जाये, तब शास्त्रानुसार जान तो लेता है, परन्तु स्व को स्व-रूप जानकर... है? उसमें **पर का अंश भी अपने में न मिलाना...** शुद्ध चिदानन्दघन प्रभु को अपनेरूप जानकर (उसमें) पर का अंश भी न मिलाना। और पर में अपना अंश न मिलाना। है न? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! निज शुद्ध चैतन्यस्वरूप में पर रागादि का अंश भी न मिलाना और रागादि में अपना अंश न मिलाना कि शुद्धस्वरूप है, उसमें राग है, ऐसी मिलावट नहीं करना, इसका नाम जीव-अजीव का भेदज्ञान / भिन्नता है। वरना तो जीव-अजीव दोनों तत्त्व में भूल है, जीव-अजीव दोनों तत्त्व में भूल है। वहाँ यह कहा। सातवें (अधिकार में) है। २२९ पृष्ठ। नौ तत्त्व की विपरीत श्रद्धा का स्वरूप लिया है, वहाँ है।

यहाँ यह कहना है, देखो! जो प्राणी शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट है। यह वही बात हुई। वीतरागशास्त्र में तो शुद्धस्वरूप का आदर करना, वेदन करना—अनुभव करना, यह कथन है। समझ में आया? भगवान आत्मा! भगवान ने कैसा अपना आश्रय लेकर परमात्मपद प्रगट किया! आहाहा! शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट है, इसका अर्थ क्या हुआ? कि निज शुद्धस्वरूप का आश्रय नहीं लेता। अन्दर भगवान परम आनन्द, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता (से भरपूर है)। ये तो अव्यक्त के ऊपर से सब विचार (आया)। यह वस्तु है, वह अव्यक्त—बाह्य प्रगट नहीं। ऐसी चीज़ की अन्दर में दृष्टि करके अनुभव करना, वह सब शास्त्र का तात्पर्य है। उससे जो भ्रष्ट है, तो उसने शास्त्र का तात्पर्य जाना ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? है?

स्वरूप से भ्रष्ट है, वह **मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं...** आहाहा! इसका अर्थ क्या हुआ? कि शुद्धस्वरूप है, उसका आश्रय लेना, वह मोक्षमार्ग का अधिकारी है और उससे भ्रष्ट होकर शुभ-अशुभराग का आश्रय लेना, वह मोक्षमार्ग का अधिकारी नहीं। वह संसारमार्ग के अधिकारी है। रमणीकभाई! यह मार्ग ऐसा है। आहाहा! वीतराग जिनेन्द्रदेव परमात्मा ऐसे इन्द्रों और गणधरों के बीच में यह बात फरमाते हैं। आहाहा! मार्ग यह है। शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट है जो जीव, **वे मोक्षमार्ग के अधिकारी नहीं हैं;... 'हताः'** (कहकर) उसको धिक्कार किया है। आहाहा! है? **मोक्षमार्ग के अधिकारी**

नहीं हैं; ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों का धिक्कार किया है। '**हताः**' हना है। तुच्छता की है। तेरी चीज़ क्या है? राग और पुण्यादि में धर्म मानता है। '**हताः**' (ऐसा कहकर) धिक्कार किया है। आहाहा! द्वेष है? धिक्कार किया है और द्वेष नहीं? करुणा है।

प्रभु! तू कहाँ है? तेरी चीज़ अन्दर महान प्रभु विराजती है, भगवत्स्वरूप, उस ओर तेरा झुकाव नहीं और तेरी चीज़ में वह चीज़ है नहीं और पुण्यादि परिणाम नुकसानकर्ता हैं, उस ओर तेरा झुकाव है। धिक्कार है। तेरे आत्मा को धिक्कार तू करता है, ऐसा कहते हैं। तेरे आत्मा का तू धिक्कार करता है तो हम धिक्कार करते हैं, ऐसा बतलाते हैं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बापू, भगवान! जिनेन्द्र परमात्मा की अलौकिक बातें हैं। लोगों को बाहर से मिली नहीं, सुनी नहीं। आहाहा! जीवन चला जाता है। अमूल्य जीवन। दुनिया चाहे जो मानो, न मानो। सत्य तो यह है। वरना तो यहाँ तो धिक्कार किया है। आहाहा!

जो कोई प्राणी व्यवहाररत्नत्रय आदि राग से आत्मा को लाभ (होता है, ऐसा) मानता है, वह शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट है। '**हताः**' अपने आत्मा को धिक्कारते हैं और राग का आदर करते हैं तो हम (शास्त्र) कहते हैं कि तुझे धिक्कार है। आहाहा! तेरा आनन्द का नाथ अन्दर भगवान... आहाहा! शुद्धस्वरूप का पिण्ड पड़ा है, उसका तू अनादर करता है और राग का आदर करता है तो तेरे स्वरूप में तेरा धिक्कार होता है तो हम भी '**हताः**' कहते हैं। आहाहा! सन्त ऐसा कहते हैं कि धिक्कार है, प्रभु! तुझे यह क्या हुआ? आहाहा! तेरी रुचि नहीं, परमात्मा के प्रति तुझे प्रेम नहीं और पामर के प्रति तेरा प्रेम है, आहाहा! वह रागादि भाव, वे तो पामर हैं, रंक हैं, भिखारी हैं। आहाहा! जहर के प्रति तुझे प्रेम है और अमृत के प्रति तुझे धिक्कार है। आहाहा! समझ में आया?

धिक्कार किया है। कैसे हैं? 'सुखासीनतां गताः' कर्म के उदय से प्राप्त जो भोगसामग्री उसमें सुख की वांछा करते हैं। कर्म के उदय से प्राप्त सामग्री में वांछा करता है। यह शुभराग भी कर्म की सामग्री है। आहाहा! उसमें सुखबुद्धि रखता है। राग, शुभराग आता है, उसमें सुखबुद्धि रखता है तो उस कर्म की सामग्री में उसे सुखबुद्धि की वांछा है। भगवान आनन्द की सामग्री अन्दर पड़ी है, उसका प्रेम नहीं।

आहाहा! ऐसी बात सुनना कठिन पड़े, ऐसी वस्तु है। वस्तु तो परन्तु यह है। अरे! जन्म-मरण करते-करते दुःखी होकर दुःख के समुद्र में इसने डुबकी मारी है। आनन्द का सागर पड़ा है, उसमें डुबकी नहीं मारता। क्या कहा? आनन्दसागर भगवान... आहाहा! उसमें तो दृष्टि करता नहीं और दुःख का सागर जो रागादि, उसमें प्रेम करता है। आहाहा! तो कहते हैं कि तू तेरे आत्मा का अनादर करता है तो हम कहते हैं कि अरे रे! तुझे धिक्कार है, भाई! और रागादि सामग्री में, वांछा में सुख में पड़े हैं।

'चापलं प्रलीनं' 'चापलं' रागादि अशुद्ध परिणामों से होती है सर्व प्रदेशों में आकुलता वह भी हेय की। हमने तो उसे हेय किया है। जिसमें तुझे प्रेम है, उसे तो हम हेय कहते हैं। आहाहा! थोड़ी बात, परन्तु बात मूल की बात है। आहाहा! क्या कहा? **'सुखासीनतां गताः'** पर में सुख की वांछा करता है, उसका धिक्कार किया है। **'चापलं प्रलीनं' 'चापलं' रागादि अशुद्ध परिणामों से होती है सर्व प्रदेशों में आकुलता वह भी हेय की।** और वह मानता है कि आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? सत्य तो सत्य होता है न! उसे असत्य के अंश की सहायता नहीं है। आहाहा! चपलता, विकल्प उठते हैं, वह सब चपलता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न?

'चापलम्' वस्तु का स्वरूप ज्ञान और आनन्द है, उसमें जो विकल्प उठते हैं, वह चापल्य है, चपलता है। आहाहा! उसे तो हेय कहा है। उससे निश्चय होता है, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? चापल्य शब्द प्रयोग किया है, देखो! चपलता। अन्दर स्थिरता आनी चाहिए। आहाहा! विकल्प में चपलता आती है। चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, उसे तो हेय किया है। आहाहा!

'आलम्बनं उन्मूलितं' बुद्धिपूर्वक ज्ञान करते हुए जितना... आहाहा! बुद्धिपूर्वक। कहते हैं कि अज्ञानी **बुद्धिपूर्वक ज्ञान करते हुए जितना पढ़ना...** आहाहा! सूक्ष्म बात पड़े, प्रभु! परन्तु सत्य तो यह है। यह वस्तु ज्ञानमूर्ति है, उसे बाहर का पढ़ना, वह तो विकल्प है, कहते हैं। पद्मनन्दि पंचविंशति में ऐसा कहा है कि शास्त्र में बुद्धि जाती है, वह व्यभिचारिणी है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें तो झगड़ा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ा हो तो क्या करे? प्रभु! भाई को तब कहा था। उज्जैन से आये थे वे, कैसे? सत्येन्द्र। पण्डित सत्येन्द्र। उन्हें कहा था कि भाई शान्ति से सुनो तो यह बात है। पद्मनन्दि में तो ऐसा कहा है कि अपनी बुद्धि, शास्त्र परवस्तु है उसमें जाती है, उस बुद्धि को व्यभिचारी कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान प्रभु अन्दर विराजता है आनन्द का नाथ (विराजता है)। आहाहा! वह तो ज्ञान का सागर है, उसे पढ़ने से ज्ञान होता है, वह चीज़ नहीं है। ज्ञानस्वरूपी है। समझ में आया? आहाहा! पढ़ना, वह एक विकल्प है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : वर्तमान में तो अभ्यास करना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास करे, वह विकल्प है। आता है। अभ्यास पहले आता है परन्तु है विकल्प, वह कोई वास्तविक ज्ञान नहीं है। आहाहा! दो जगह आयेगा। कल एक आया था न? १८९। यह तो पहले १८८ में आता है। १८९ में आयेगा। आहाहा!

जितना पढ़ना... है? **विचारना...** परद्रव्य के जितने विचार करना, वह सब विकल्प-राग है। आहाहा! **चिन्तवन करना...** निज शुद्धस्वरूप से हटकर परद्रव्य का चिन्तवन करना। आहाहा! **स्मरण करना इत्यादि है, वह मोक्ष का कारण नहीं है...** आता है। हो, परन्तु मोक्ष का कारण नहीं है। चिन्तवन का विकल्प। चिन्तवन के दो अर्थ हैं। यहाँ विकल्प के अर्थ में चिन्तवन है और नियमसार में आत्मा की एकाग्रता की अपेक्षा से चिन्तवन है। चिन्तवन के दो अर्थ होते हैं। वह निश्चय चिन्तवन—अन्तर की एकाग्रता। यह व्यवहार विकल्प चिन्तवन कहा। नियमसार में है। आहाहा! अपना चिन्तन करना। उस चिन्तन का अर्थ क्या? वस्तु में एकाग्रता। चैतन्यस्वरूप की सन्मुखता का नाम चिन्तवन। यह चिन्तवन तो विकल्प है। समझ में आया? 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही' ऐसा समझना। शब्द तो वह के वह होते हैं परन्तु उनका प्रयोजन, अर्थ क्या है? उस समय में किसकी बात चलती है? किस अपेक्षा से चलती है? तत्प्रमाण उसका अर्थ होना चाहिए।

यहाँ चपलता विकल्प की बात है। चिन्तवन करना, भगवान का स्मरण करना। पंच परमेष्ठी का स्मरण करना। **इत्यादि...** इत्यादि-इत्यादि बहुत असंख्य प्रकार के विकल्प।

शुभ-अशुभ असंख्य लोकप्रमाण। आहाहा! **वह... 'उन्मूलितम्' 'उन्मूलितम्'** उन्मूल। मूल में से उखाड़ डाला है। **'उन्मूलितम्'** मूल में से उखाड़ डाला है। बिल्कुल मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? **'उन्मूलितम्'** जैसे गधा घास मूल में से खींचकर खाता है और अंकुर नहीं रहता, फिर उगती नहीं। उसी प्रकार यह धर्मात्मा ने **'उन्मूलितम्'** विकल्प को, चापल्य को मूल में से उखाड़ दिया है। आहाहा! समझ में आया?

'उन्मूलितम्' मूल शब्द तो इतना है। **'उन्मूलितम्'** मूल में से निकाल दिया है। फिर साधारण अर्थ किया। **मोक्ष का कारण नहीं है, ऐसा जानकर हेय ठहराया है। 'उन्मूलितम्'** का अर्थ **हेय ठहराया है।** आहाहा! ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को कठिन पड़े। प्रभु! मार्ग तो यह है। पहले इसकी हाँ तो कर, मार्ग तो यह है। हाँ करे तो आगे बढ़ेगा, न करेगा तो नरक और निगोद पड़े हैं। आहाहा!

स्मरण, चिन्तवन, आहाहा! पढ़ना, विचारना वह **'उन्मूलितम्'** विकल्प है न विकल्प? विचार का अर्थ यहाँ विकल्प लेना। विचार का अर्थ अकेला ज्ञान, ऐसा नहीं। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा भी कहा है कि विचार छूट जाये, तब तो आत्मा जड़ हो जाये, ऐसा कहा है। वहाँ विचार तो निर्विकल्प के अर्थ में है। राग नहीं परन्तु विचार, ज्ञान की पर्याय चलती है, उसे विचार कहते हैं। ज्ञान की पर्याय चलती है, उसे विचार कहा है। और यहाँ विचार कहा है, वह विकल्प को विचार कहा है। एक के एक शब्द का जहाँ-तहाँ जिस जगह लागू पड़े, उस प्रमाण अर्थ करना चाहिए। समझ में आया?

मुमुक्षु : नियमसार में दूसरा अर्थ किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार का एक ही अर्थ—आत्मा का ध्यान करना, वह विचार। नियमसार में कहा न, चिन्तवन? यह पहले कह दिया। इस चिन्तवन का अर्थ वहाँ ध्यान, एकाग्रता है। इस चिन्तवन का अर्थ विकल्प है। कहा था न पहले? कहा था पहले।

मुमुक्षु : वहाँ से ही विषय शुरु किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरु किया है। ख्याल है न। किसी समय बाहर आवे, न आवे। बाकी ख्याल तो सब वर्तता है। आहाहा!

आकुलता, वह भी हेय की है। आहाहा! हुआ? **मोक्ष का कारण नहीं है, ऐसा जानकर हेय ठहराया है।** आहाहा! '**आत्मनि एव चित्तं आलानितं**' '**आत्मनि एव**' **शुद्धस्वरूप में एकाग्र होकर...** '**आत्मनि एव**' (अर्थात्) आत्मा में ही, ऐसा। '**आत्मनि एव**' अर्थात् आत्मा में ही। शुद्ध आत्मा। '**एव**' है न? '**आत्मनि एव**' आत्मा में ही। **शुद्धस्वरूप में एकाग्र होकर...** ऐसा अर्थ किया है। '**आत्मनि एव**' शब्द पड़ा है न? तो आत्मा में ही, ऐसा। अर्थात् शुद्धस्वरूप में ही। **एकाग्र होकर...** आहाहा! समझ में आया?

'**चित्तं आलानितं**' **मन को बाँधा है।** शुद्धस्वरूप में एकाग्र होकर ज्ञान की पर्याय को वहाँ ले गये हैं। मन को बाँधा। 'मन' शब्द से ज्ञान की पर्याय वहाँ ले गये हैं। ज्ञान की पर्याय को ज्ञायक में लगा दिया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्धस्वरूप की एकाग्रता में मन का अवलम्बन नहीं रहता?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यमन का नहीं, भावमन में विकल्प है, वह भी नहीं। निर्विकल्प भावमन कहा जाता है। एक अपेक्षा से कहा जाता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिया है कि मन से होता है, ऐसा भी कहा जाता है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। क्योंकि मन ऐसे था और ऐसे आया, इस अपेक्षा से (कहा)। जो मन राग की ओर था, उस मन को इस ओर लिया तो इस अपेक्षा से मन से भी कहा जाता है। परन्तु मन का अर्थ वहाँ विकल्प नहीं लेना। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मन के अवलम्बन में विकल्प तो होगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। विकल्प छूटा है तो भी मन से हुआ, ऐसा कहने में आता है। मन अर्थात् मनन। ज्ञान का मनन हुआ न? मनन। इस अपेक्षा से मन से हुआ, ऐसा भी कहा जाता है, परन्तु वह निर्मल निर्विकल्प मन। वहाँ है—मोक्षमार्गप्रकाशक, रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा है।

मन को बाँधा (लगाया) है। आत्मा के स्वरूप में अपनी पर्याय को जोड़ दिया है। कहा नहीं था? मोक्षार्थी, मोक्षार्थी की व्याख्या कही थी। मोक्षार्थी मुमुक्षु, मोक्षार्थी योगी। निज शुद्धस्वरूप में जुड़ान होना, वह मोक्षार्थी, वह योगी। समझ में आया? कहा था न? तीन। मोक्षार्थी मुमुक्षु अपने में लीन होता है, उसे योगी कहते हैं। आहाहा! जो

मन-वचन-काया के कम्पन में जुड़ना होता है, वह अयोगी है, भोगी है। आहाहा! निज स्वरूप में एकाग्रता होना, वहाँ मन से हुई, ऐसा निर्विकल्प से कहने में आया है। विकल्प नहीं।

एकाग्र होकर... 'चित्तं आलानितं' आत्मा को आत्मा में लगा दिया है। ऐसा कहते हैं। आत्मा को आत्मा में लगा दिया है। राग से, विचार कल्पना से छुड़ाकर आत्मा को, मन अर्थात् आत्मा में लगा दिया है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा कार्य जिस प्रकार हुआ उस प्रकार कहते हैं—**ऐसा कार्य जिस प्रकार से हुआ, उस प्रकार कहते हैं। **'आसम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः'** आहाहा! **'आसम्पूर्णविज्ञान' निरावरण केवलज्ञान उसका समूह जो आत्मद्रव्य,...** आहाहा! अब आत्मद्रव्य की व्याख्या की। जिसमें लीन होता है, वह क्या है? आत्मद्रव्य क्या है? पूर्ण केवलज्ञान पिण्ड है। वह तो अकेला ज्ञानस्वरूपी है। केवलज्ञान पर्याय की बात नहीं। समझ में आया?

निरावरण केवलज्ञान उसका समूह... आहाहा! भगवान द्रव्य के ज्ञान में आवरण नहीं। आहाहा! बहिन के शब्द में एक (बोल) आया है न? स्वर्ण को जंग नहीं, अग्नि को दीमक नहीं, भगवान आत्मा में आवरण, अशुद्धता और न्यूनता नहीं। ऐसे वचनामृत में तीन शब्द आये हैं। भगवान आत्मस्वरूप में आवरण नहीं, अशुद्धता नहीं और न्यूनता अर्थात् कमी नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें धर्म की। वह तो सीधा (था)। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय की दया पालो और यह करो, सीधा था, लो। भटकने का था। आहाहा! मार्ग तो यह है, भाई!

'आसम्पूर्णविज्ञान' निरावरण केवलज्ञान... ऐसा है न? **'आसम्पूर्ण'** पूर्ण विज्ञानघन आत्मा। उसका समूह जो आत्मद्रव्य। आहाहा! **उसकी प्रत्यक्ष प्राप्ति होने से।** राग से भिन्न पड़ा तो आत्मा अपनी ज्ञान की पर्याय से, पर की अपेक्षा बिना विज्ञानघन आत्मा को प्राप्त करता है। प्रत्यक्ष प्राप्त करता है। जिसे प्राप्त करने में पर की कोई अपेक्षा नहीं। है? **प्रत्यक्ष प्राप्ति होने से।** जहाँ राग और विकल्प और स्मरण का विकल्प भी रहा नहीं, वहाँ अन्दर में आत्मा सीधा आत्मा ज्ञान से अपनी प्राप्ति करता है। इसका नाम सम्यग्दर्शन और मोक्षमार्ग कहा जाता है। (विशेष लेंगे....) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १८९

(वसन्ततिलका)

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ।।१०-१८९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् जनः किं प्रमाद्यति' [तत्] तिस कारण से [जनः] समस्त संसारी जीवराशि [किं प्रमाद्यति] क्यों प्रमाद करती है। भावार्थ इस प्रकार है कि — कृपासागर हैं सूत्र के कर्ता आचार्य, वे ऐसा कहते हैं कि नाना प्रकार के विकल्प करने से साध्यसिद्धि तो नहीं है। कैसा है नाना प्रकार के विकल्प करनेवाला जन? 'अधः अधः प्रपतन्' जैसे-जैसे अधिक क्रिया करता है, अधिक-अधिक विकल्प करता है, वैसे-वैसे अनुभव से, भ्रष्ट से भ्रष्ट होता है। तिस कारण से 'जनः ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं किं न अधिरोहति' [जनः] समस्त संसारी जीवराशि, [ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं] निर्विकल्प से निर्विकल्प अनुभव [किं न अधिरोहति] क्यों नहीं परिणमती है? कैसा है जन? 'निःप्रमादः' निर्विकल्प है। कैसा है निर्विकल्प अनुभव? 'यत्र प्रतिक्रमणं विषं एव प्रणीतं' [यत्र] जिसमें [प्रतिक्रमणं] पठन, पाठन, स्मरण, चिन्तवन, स्तुति, वन्दना इत्यादि अनेक क्रियारूप विकल्प, [विषं एव प्रणीतं] विष के समान कहा है। 'तत्र अप्रतिक्रमणं सुधा कुटः एव स्यात्' [तत्र] उस निर्विकल्प अनुभव में [अप्रतिक्रमणं] न पढ़ना, न पढ़ाना; न वन्दना, न निन्दना—ऐसा भाव, [सुधा कुटः एव स्यात्] अमृत के निधान के समान है। भावार्थ ऐसा है कि निर्विकल्प अनुभव, सुखरूप है; इसलिए उपादेय है; नाना प्रकार के विकल्प, आकुलतारूप है; इसलिए हेय हैं।।१०-१८९।।

पौष शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक-१९-०१-१९७८, कलश-१८९, प्रवचन-२०९

कलशटीका, १८९ कलश। मोक्ष अधिकार है न? मोक्ष अधिकार है।

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।

तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ।।१०-१८९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ :— '**तत् जनः किं प्रमाद्यति**' क्या कहते हैं ? आत्मा में आत्मा अप्रतिक्रमणस्वरूप है। जो अज्ञानी का अप्रतिक्रमण—पाप है, उसकी तो यहाँ बात है नहीं, परन्तु ज्ञानी का जो प्रतिक्रमण है, प्रतिक्रमण इत्यादि आठ बोल हैं, वे भी विषकुम्भ हैं। क्योंकि भगवान आत्मा अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, अनन्त आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप, आनन्दस्वरूप का वेदन क्यों नहीं करता ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! शुभभाव जो प्रतिक्रमण आदि का है, उसे तो जहर कहा। अमृत तो आत्मा का अनुभव है। क्योंकि आत्मा जो है, वह अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप जीवत्वशक्ति का भण्डार है। क्या कहा ?

आत्मा जो है, वह तो अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप अनन्त जीवत्वशक्ति; पहली शक्ति है न ? अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप अनन्त जीवत्वशक्ति। जीवत्वशक्ति में अनन्तता। आहाहा ! ऐसी-ऐसी अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दरूप अनन्त शक्ति जिसका रूप है, ऐसे भगवान आत्मा का अनुभव क्यों नहीं करते ? ऐसा कहते हैं। हमने जब शुभभाव को विष कहा तो उसे छोड़कर, अज्ञानी के अप्रतिक्रमण अशुभभाव की तो बात ही नहीं है, अप्रतिक्रमण जो अज्ञानी के हैं, मिथ्यादर्शन, अज्ञान आदि की बात तो हमने छोड़ दी है, मात्र शुभभाव जो है, उस विकल्प में विकल्प करते... करते... करते... करते... करते... तो सब जहर है। आहाहा ! उसे जब जहर कहा तो नीचे उतरने के लिये नहीं कहा। है ? आहाहा !

अन्तर भगवान आत्मा एक-एक शक्ति अनन्त अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप और वह एक शक्ति अनन्त शक्तिरूप, ऐसे अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप, अनन्त शक्तियाँ, एक-एक शक्ति भी अनन्तरूप, उसका धरनेवाला भगवान आत्मा, उस अमृत का अनुभव क्यों नहीं करता ? ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है।

'**तत् जनः किं प्रमाद्यति**' जब हमने शुभभाव को जहर कहा तो उससे नीचे उतरकर अशुभभाव करने को कहा नहीं है। ऐसा प्रमाद क्यों करता है ? अर्थात् **तिस**

कारण से जन अर्थात् समस्त संसारी जीवराशि... क्यों प्रमाद करते हैं? आहाहा! उस शुभभाव में क्यों रमता है? शुभभाव प्रमाद है। आहाहा! अभी तो सब जोर उसका चलता है, शुभभाव से शुद्ध होता है। यहाँ तो शुभभाव को जहर कहा तो कृपासागर,... **भावार्थ इस प्रकार है कि कृपासागर हैं सूत्र के कर्ता आचार्य, वे ऐसा कहते हैं कि नाना प्रकार के विकल्प करने से साध्यसिद्धि तो नहीं है।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! चाहे तो असंख्य प्रकार के शुभ विकल्प हों, उनसे कोई आत्मा का साध्य अर्थात् मुक्ति की सिद्धि नहीं। आहाहा! साध्य तो भगवान परमात्मा अनन्त आनन्द सिद्धदशा प्रगट करना, साध्य तो वह है। उपेय कहा न? उपाय-उपेय कहा, वहाँ साध्य को उपेय कहा है। परमानन्द अनन्त अतीन्द्रिय शक्तियाँ, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दरूप, उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप सर्व शक्ति की व्यक्तता—प्रगटता (हो), वह साध्य है। समझ में आया? तो वह साध्य, प्रमाद—शुभभाव से तो साध्य की सिद्धि होती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आचार्य कृपासागर कहते हैं, **नाना प्रकार के विकल्प करने से साध्यसिद्धि तो नहीं है।** आहाहा! विकल्प है वह तो... यहाँ तो विशेष कहेंगे। **कैसा है नाना प्रकार के विकल्प करनेवाला जन? 'अधः अधः प्रतपन्'** आहाहा! भाषा (देखो)! यहाँ **'अधः अधः'** भाषा में तो शुभ से उतरकर अशुभ में जाना, ऐसा लिया था। यहाँ दूसरी बात ली है। वहाँ ऐसा लिया कि हम जब आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव को जब अमृत और अप्रतिक्रमण कहते हैं तो विषपरिणत शुभभाव को छोड़कर अशुभ में जाना, ऐसा तो हमने कहा नहीं।

यहाँ तो और इससे अलग अर्थ करते हैं। **'अधः अधः प्रतपन्' जैसे-जैसे अधिक क्रिया करता है,...** देखो! बहुत क्रिया करने में तत्पर है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वाँचन, श्रवण, चिन्तवन और मनन... आहाहा! क्या कहते हैं? **जैसे-जैसे अधिक क्रिया करता है, अधिक-अधिक विकल्प करता है,....** आहाहा! जैसे-जैसे बहुत विकल्प करे, शास्त्र पढ़ना, वाँचन और पठन और पाठन, ऐसे तो अधः अधः, वह तो शुभभाव में विशेष उतरता है, वह तो विकल्प में उतरता है। आहाहा! भगवान कृपासागर! इसमें आया न? संसारी जीव में नहीं आया? 'संसारी जीवों के भावमरण टालने करुणा

करी' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने करुणा की है। करुणा का विकल्प आया और दुनिया को कहा, अरे! प्रभु! हम कहते हैं कि प्रभु आत्मा महा अनन्त आनन्दकन्द, एक-एक शक्ति अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द से भरी है। एक-एक शक्ति, ऐसी अनन्त शक्ति अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द से भरी है और वह शक्ति भी वापस अनन्त है। एक-एक शक्ति में अनन्त रूप है। ऐसी अनन्त शक्ति में अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप अनन्त शक्ति, अनन्त रूप पड़ा है, ऐसे भगवान आत्मा में क्यों नहीं जाता? आहाहा! ऐसी बात है।

पंचम काल है तो ऐसा नहीं कहा कि पंचम काल में तो अभी शुभभाव ही बस है। कितने ही साधु यह कहते हैं, अभी तो शुभभाव, वह बस है, मोक्ष नहीं। अरे.. भगवान! आत्मा मुक्तस्वरूप ही है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। वह मुक्तस्वरूप ही है। वस्तुरूप से अभी मुक्तस्वरूप है। तो पर्याय में मुक्ति की बात चलती है तो पहले मुक्तस्वरूप की दृष्टि तो कर, ऐसा कहते हैं। क्रियाकाण्ड करते... करते... करते... अधः... अधः... अधः... अधः, शुभभाव के विकल्प करते-करते अधोः अधोः आगे कहाँ जाता है? आहाहा!

श्रीमद् में तो एक वाक्य ऐसा है कि बहुत वाँचन करे उसकी बुद्धि मन्द हो जाती है। क्या कुछ भाषा दूसरी है। मननशक्ति... ? बहुत वाँचन, वाँचन, वाँचन पूरे दिन पृष्ठ के पृष्ठ देखा ही करे। आहाहा! मननशक्ति अन्दर की जो अन्तर में ढलने की शक्ति, वह तो विपरीत हो जाती है। आहाहा!

यहाँ क्या कहा? अधः... अधः, अधिक-अधिक विकल्प करता है। वाँचन का, दया का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का, भगवान की भक्ति में बैठे, बस! आठ-आठ घण्टे, दस घण्टे (बैठे)।

मुमुक्षु : पाँच छह घण्टे ध्यान करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान तो अन्तर का ध्यान है या बाहर का ध्यान है? अन्तर निर्विकल्प (स्वरूप में) जाना, वह ध्यान है। भगवान का ध्यान आठ घण्टे करे तो वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा!

अनन्त शक्तियाँ और अनन्त शक्ति में भी एक-एक शक्ति का अनन्तरूप और एक-एक शक्ति भी अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दरूप, अनन्त जिसका रूप—ऐसी अनन्त

शक्तियों का प्रभु द्रव्य भगवान, उसकी ओर क्यों नहीं जाता? कहते हैं। आहाहा! और विकल्प की परम्परा हाँकता ही रहता है, किया ही करता है, ऐसा कहते हैं। तू एक के बाद एक विकल्प किया ही करता है। अन्तर में जाने का तो जरा भी प्रयत्न भी करता नहीं। जो करने का है, वह तो करता नहीं। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की ऐसी वाणी है। पाँचवें काल को देखते नहीं कि यह पाँचवाँ काल है न! काल-फाल आत्मा में कुछ है ही नहीं। आत्मा में राग नहीं, त्रिकाल आत्मा में तो पर्याय नहीं तो फिर काल कहाँ से आया? आहाहा! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, '**अधः अधः प्रतपन्**' **जैसे-जैसे अधिक क्रिया....** बहुत क्रिया (करे)। अपवास और ऊनोदरी और रसपरित्याग, कायोत्सर्ग और कायक्लेश और भगवान को क्षमापना देना... आहाहा! **जैसे-जैसे अधिक क्रिया करता है, अधिक अधिक विकल्प करता है,...** कठिन पड़े, ऐसा है। वस्तुस्थिति पहली अनुभव कराते हैं। दृष्टि से अनुभव बिना धर्म की शुरुआत नहीं होती। दूसरे में विशेष काल देते हैं, अधः अधः विकल्प में जाता है, उसकी अपेक्षा इस ओर तो जा। आहाहा! धनपालजी! यह धन है। इस धन को पाल न, ऐसा कहते हैं। रागादि विकल्प में क्यों उतरता है? आहाहा!

एक तो भगवान ने दृष्टि का विषय बताया और उसमें लीन होने की आज्ञा की। आहाहा! समझ में आया? अरे! **जैसे-जैसे अधिक क्रिया करता है, अधिक अधिक विकल्प करता है, वैसे-वैसे अनुभव से भ्रष्ट से भ्रष्ट होता है।** आहाहा! कठिन वाणी है। जैसे-जैसे शुभ... शुभ विकल्प, हों! आहाहा! जैसे-जैसे शुभ विकल्प करता जाता है, वैसे-वैसे अधिक विकल्प उत्पन्न होते हैं और वैसे-वैसे अनुभव से भ्रष्ट से भ्रष्ट होता है। आहाहा! गजब वाणी है न! यह वस्तु का स्वरूप। आहाहा! समझ में आया?

जैसे-जैसे विकल्प करता है, विकल्प तो राग है न, प्रभु! जहर है न! आहाहा! तो जैसे-जैसे विकल्प में बहुत क्रियाकाण्ड में जुड़ता है, वैसे-वैसे अनुभव से भ्रष्ट से भ्रष्ट होता है। अभी तो श्रद्धा का ठिकाना नहीं कि स्वरूप-सन्मुखता की एकाग्रता हो, वही धर्म की शुरुआत है। समझ में आया? कल कहा था न? पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में ऐसा कहा, शास्त्र का तात्पर्य, सूत्र तात्पर्य तो प्रत्येक गाथा में कहा गया है। शास्त्र तात्पर्य, सबका तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा! और वीतरागता तो तब होती

है कि जब भगवान पूर्ण अनन्त शक्ति का सागर का आश्रय लेता है तो वीतरागता उत्पन्न होती है। तो सर्व शास्त्र का सार तो स्व का आश्रय लेना, वह है। हें ? पहले से ठेठ आगे तक, शुरुआत सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान पर्यन्त स्व का आश्रय बढ़ाना और स्व का आश्रय लेना। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि पर के आश्रय से अधो... अधो..., आगे-आगे क्यों जाता है ? जैसे-जैसे क्रियाकाण्ड करता जाता है, वैसे-वैसे अन्तर स्वरूप से भ्रष्ट से भ्रष्ट होता है। अकेला भ्रष्ट नहीं कहा। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! दुनिया के साथ तो मिलान खाये ऐसा नहीं है। क्या हो ? मार्ग तो यह है। आहाहा! कहते हैं कि तू कौन है ? तू तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है न, नाथ! जैसे-जैसे क्रियाकाण्ड में विकल्प करते-करते जायेगा तो अनुभव से भ्रष्ट होगा। आहाहा! यह क्रियाकाण्ड के विकल्प छोड़कर अशुभ में जाना, यह बात तो है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! उस ओर का जैसे-जैसे विशेष विकल्प है, वैसा वह तो विशेष-विशेष प्रमाद है। आहाहा! पंच महाव्रत आदि पाँच समिति, साधु के अट्ठाईस मूलगुण (पालने का) विकल्प, वह तो प्रमाद है। छठे गुणस्थान में (विकल्प) उत्पन्न होता है, वह तो प्रमाद है। आहाहा!

कहते हैं कि इतने-इतने क्रियाकाण्ड में एक अपवास, दो अपवास और तीन अपवास, चार अपवास और पाँच अपवास (करना, ऐसा) चढ़ते-चढ़ते क्रियाकाण्ड में चढ़ता जाता है, वह तो अधो-अधो जाते हुए, भगवान आत्मा का जो निर्विकल्प अनुभव, उससे तो भ्रष्ट से भ्रष्ट होता है। आहाहा! ऐसा सुनना भी कठिन पड़े। हें ? यह सुनने को मिले नहीं। आहाहा!

प्रभु! तू तो निर्विकल्प अमृतकुण्ड है न, नाथ! आहाहा! वहाँ से हटकर अधः अधः आगे-आगे क्यों जाता है ? नजदीक क्यों नहीं आता ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाषा कैसी ली है ? कि **कृपासागर हैं सूत्र के कर्ता आचार्य, वे ऐसा कहते हैं...** आहाहा! कृपा के सागर हैं। विकल्प-करुणा उत्पन्न हुई है। आहाहा! क्रियाकाण्ड में विकल्प बहुत करता है, पंच महाव्रत और दया, दान ऐसा खाना और ऐसा पीना और ऐसा नहीं लेना... वह तो सब विकल्प की जाल, राग की जाल है। जिसे भगवान ने तो विषकुम्भ—

जहर का घड़ा कहा है। कुम्भ... कुम्भ... कुम्भ... कुम्भ तो पानी से भरा हो। यह तो जहर से भरा है, ऐसा कहते हैं। कुम्भ शब्द है न? कुम्भ। कुम्भ—पानी है न? कुम्भ! कुम्भ का अर्थ पानी होता है। भ (अर्थात्) भरा हुआ। पानी से भरा हुआ उसे कुम्भ कहते हैं। यहाँ कहते हैं, विष से भरा हुआ ऐसा विषकुंभ है। आहाहा! वाणी तो वाणी है! दिगम्बर सन्तों की वाणी कहीं है नहीं। आहाहा! उसे एक बार ऊँचा खड़ा करते हैं। जाग रे जाग, नाथ! विकल्प में रहना, वह तेरे लिये ठीक नहीं। आहाहा! दुनिया के मान और सन्मान। हमको कोई माने और हम दिखने में बाहर प्रसिद्ध हों... क्या है? कहाँ जाना है तुझे? यह सब बहिरात्मबुद्धि में क्यों चला जाता है? आहाहा!

भगवान कृपासागर कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य सब कहते हैं न? यह गाथा तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव की है। यह तो फिर कलश टीका (हुई)। आहाहा! **तिस कारण से 'जनः ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं किं न अधिरोहति'** आहाहा! अरे, ऐसा क्यों कहा कि शुभभाव जहर है, तो उसे छोड़कर नीचे-नीचे क्यों उतरता है? अथवा यह विकल्प में और विकल्प में क्यों चला जाता है? शुभ में और शुभ में। समझ में आया? किसी स्थल में उसे साधन कहा हो तो वह तो निमित्त का ज्ञान कराना है। यहाँ जहर कहे और वहाँ साधन कहे तो यह तो विरुद्ध है। भगवान की वाणी विरुद्ध नहीं होती। आहाहा! अरे! दिगम्बर सन्तों की वाणी विरुद्ध नहीं होती। आहाहा! महा अमृत का वेदन करनेवाले, प्रचुर अतीन्द्रिय अमृत, अतीन्द्रिय अमृत, भाई! वह क्या चीज़ है? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द क्या है? आहाहा! जहाँ इन्द्रिय के विषय, इन्द्रासन के और इन्द्राणियों के (विषय) अशुभभावरूप जहर है। आहाहा! यहाँ तो शुभभाव को जहर कहा। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारा स्मरण करो, हमारे ऊपर लक्ष्य रखो, हमारे कहे हुए शास्त्र का वांचन करो, विचार करे, वह सब तो विकल्प है न, भगवान! आहाहा! कहो, शशीभाई! आहाहा! और तू कहाँ है? प्रभु! तुझे ऊँचे चढ़ाने की बात करते हैं और तू विकल्प का जाल (किया करे), बहुत क्रियाकाण्ड शास्त्र में चला है, व्यवहारनय का निमित्त अवलम्बन देखकर बहुत कहा है। नहीं आया शास्त्र में? (समयसार की) ग्यारहवीं गाथा। हें? आहाहा! निमित्त हस्तावलम्बन देखकर व्यवहार का कथन तो किया है। आहाहा! (भावार्थ में) पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं। भगवान ने

वह व्यवहार का कथन कहा है, वह सब संसार है। आहाहा! एक समय का संसार है, बाकी पूरा आत्मा भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु! अरे! आत्मा! ऐसा मनुष्यभव मिला, जैनदर्शन की वाणी मिली। आहाहा! तू शुभ में आगे-आगे उसकी क्रिया, प्रवृत्ति करता जाता है और करता है... आहाहा!

'जनः ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं किं न अधिरोहति' अरे, जन! संसारी समस्त प्राणी **जीवराशि... 'ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं' निर्विकल्प से निर्विकल्प अनुभवरूप 'किं न अधिरोहति'** आहाहा! उस विकल्प से रहित निर्विकल्प भगवानस्वरूप निर्विकल्प। अरे! एक-एक शक्ति अनन्त-अनन्त आनन्दस्वरूप निर्विकल्प। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति के सागर—समुद्र से भरपूर प्रभु में आरूढ़ क्यों नहीं होता? आहाहा! उसे कहे कि निश्चयाभास हो गया। साधन-फाधन उसे कहते नहीं। भाई! साधन-फाधन नहीं, सुन तो सही। प्रज्ञाछैनी साधन कहा। कहा नहीं? प्रज्ञाछैनी का अर्थ अनुभव है। प्रज्ञाछैनी शब्द का अर्थ ही अनुभव है। आहाहा!

राग से भिन्न अपना अनुभव निर्विकल्प आनन्द का स्वाद (आना)... आहाहा! समझ में आया? उसे वहाँ भेदज्ञान और प्रज्ञा कहा है। प्रज्ञा अर्थात् अकेली ज्ञान की पर्याय का विकास, ऐसा नहीं। आहाहा! प्र-ज्ञा है। प्र—विशेष ज्ञ अर्थात् स्वरूप-सन्मुख का भेदज्ञान करना, वह साधन है। आहाहा! अरे! प्रभु! नीचे-नीचे क्यों जाता है? तू ऊपर क्यों नहीं आता? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नीचे... नीचे... की व्याख्या भी यहाँ तो यह की है, शुभ को ही नीचे-नीचे की व्याख्या कही है। शुभ से नीचे उतरकर अशुभ में जाना, वह बात तो है ही नहीं। आहाहा! व्यवहार के कथन शास्त्र में बहुत आते हैं, तो ऐसे विकल्प और विकल्प के जाल में तू कैसे उलझ जाता है? आहाहा! आहाहा! क्योंकि हमारे सर्व शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता बतलाना है। तुझे वीतरागता हो, यह कहना है। क्योंकि वस्तु वीतरागस्वरूप है।

जिनस्वरूप आत्मा... आहाहा! तुम्हारी लड़की बोलती थी। नरेन्द्र की। पाँच वर्ष की है न? धनपालभाई के भाई की, उसे लड़की ही कहा जाता है न? तुम्हारे भाई की लड़की-पुत्री। 'घट घट अन्तर जिन बसे' ऐसा कहती थी। ठीक! कहा बहिन। छोटी उम्र में ऐसे शब्द तो (बोलती है)। 'घट घट अन्तर जिन बसे' अन्दर विकल्प से पार

परमातमा, पूर्ण परमात्मस्वरूप बसता है, प्रभु! उसे हम आत्मा और उसे परमात्मा कहते हैं। आहाहा!

ऐसे निर्विकल्प, निर्विकल्प में क्यों नहीं जाता? '**ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं**' देखा? उसमें दो (बार) '**अधः अधः**' शब्द थे। '**अधः अधः**' था। यहाँ '**ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं**' है। आहाहा! गजब टीका! सन्तों की वाणी, दिगम्बर मुनियों की वाणी, वह वाणी कहलाती है। कहीं है नहीं। आहाहा! अरे! प्रभु! तू शुभ-अशुभ अधः... अधः में कहाँ चला जाता है? वहाँ '**ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं**' दो (बार) लिया। थोड़ा हो परन्तु सत्य हो, प्रभु! यहाँ तो यह बात है। समझ में आया? मुनि भी यह तो कोई अलौकिक बातें हैं, भगवान! आहाहा!

कल कोई लेख आया था न? जयन्तीभाई कुण्डलावाले (कहते थे), यहाँ बावन जिनालय बनाओ। अरे भगवान! कहाँ करे? यह तो हो गया वह हो गया। एक व्यक्ति कहे कि बाहुबली की प्रतिमा बनाओ। कौन बनावे? भगवान! आहाहा! यह तो हो गया, वह हो गया। अब तो पहले शास्त्र को सस्ता बनाओ और शास्त्र में से निकलकर फिर अन्तर में जाओ। क्या कहा? यह जो शास्त्र है, उन्हें सस्ता—सस्ता बनाओ जिससे लोगों तक पहुँचे और फिर सस्ता तुम्हारा आत्मा है, वहाँ जाओ। जिसमें राग की आवश्यकता नहीं है। सरूपता शरीर की आवश्यकता नहीं कि शरीर निरोग हो तो हम अनुभव कर सकते हैं, आहाहा! पैसा हो तो अनुभव कर सकते, हमारा निभाव करनेवाले पुत्र-पुत्री रास्ते चढ़ गये हों तो फिर हम अनुभव कर सकते हैं। पण्डितजी! तुम्हारे कुछ है नहीं? कुछ नहीं? एक लड़का है। आहाहा! ऐसा कि एकाध-दो लड़के ठीक से (लाईन) चढ़ जाये तो फिर अनुभव (हो), प्रभु! तुझे खबर नहीं, यह समय तुझे कहाँ मिलेगा?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **निर्विकल्प से निर्विकल्प अनुभवरूप क्यों नहीं परिणमता है?** आहाहा! देखा? '**अधिरोहति**' की व्याख्या की है। आहाहा! वीतरागरूप से क्यों परिणमता नहीं? इस शुभराग जहररूप (है), क्यों वहाँ अटक जाता है? समझ में आया? **क्यों नहीं परिणमता है?** '**अधिरोहति**' व्याख्या की। आहाहा! **कैसा है जन?** '**निःप्रमादः**' **निर्विकल्प है।** विकल्प से भिन्न होकर अनुभव हो, वह तो निर्विकल्प अनुभव है। उसमें कोई विकल्प की सहायता नहीं है, ऐसा कहते हैं। इतने-इतने विकल्प करे, फिर (अनुभव हो)।

एक बार कहा था, उन छोटालालजी ने। छोटालालजी का आया था कि व्यवहार पहले करे फिर विश्राम मिले, फिर अन्दर में जाये। वापस बेचारे बदल गये, फिर बदल गये। पहले ठीक था, बीच में फेरफार हो गया, फिर (कहे), अरे! मेरी भूल हो गयी। छोटालाल ब्रह्मचारी थे। इन्दौर। अरे! भगवान मार्ग तो यह है। पहली स्वीकृति में भी नकार है, वह अन्दर में किस प्रकार जायेगा? हें? आहाहा!

शास्त्र का बोध देने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है। लो! ऐसा आता है। शास्त्र बाँटना, बसाना, वह सब बातें विकल्प की हैं, भगवान! पाठ ऐसे आवे। शास्त्र बाँटो, पढ़ो, पढ़ाओ तो ज्ञानावरणीय का क्षय होता है। वह शुभराग हो तो क्षयोपशम है, परन्तु वह क्षयोपशम कहीं यथार्थ नहीं है। शास्त्रदान आदि में राग मन्द हुआ है तो क्षयोपशम होता है, परन्तु वह तो परलक्ष्यी क्षयोपशम है, भगवान! आहाहा! यहाँ तो निर्विकल्प में कोई विकल्प की अपेक्षा ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! है?

कैसा है जन? 'निःप्रमादः' 'निःप्रमादः' ऐसा है न? **निर्विकल्प है...** उसमें प्रमाद नहीं। प्रमाद अर्थात् विकल्प जिसमें नहीं। जितने विकल्प हैं, वे सब प्रमाद हैं। आहाहा! **कैसा है...** निर्विकल्प अनुभव है। वह निःप्रमाद और निर्विकल्प अनुभव है। आहाहा! राग का सहारा छोड़कर जो अनुभव है, वह तो निर्विकल्प है। निष्प्रमाद है, वही निर्विकल्प अनुभव है। आहाहा! समझ में आया?

'यत्र प्रतिक्रमणं विषं एव प्रणीतं' जिसमें पठन, पाठन,... आहाहा! लोग ऐसा कहते हैं कि अपने शास्त्र बहुत पढ़ो, पढ़ाओ, उपदेश दो, उसमें से कर्म का क्षय होगा। भगवान! यह बात (रहने दे)। यह सब विकल्प है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : क्षय न हो परन्तु पतला तो पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पतला-पतला जरा भी नहीं होता। पतला कब कहलाये? मिथ्यात्व का अभाव हो, तब पतला कहलाये ऐसा है। यहाँ तो बात ही अलग है, भाई! आहाहा! लोगों को कठिन लगे। शास्त्र में भाषा भी ऐसी आवे। दस प्रकार के धर्म में आता है, त्यागधर्म में। दूसरे को पुस्तक दे तो त्यागधर्म। परन्तु इसका अर्थ दूसरा है,

भाई! उसमें राग घटाता है और पुस्तक की दरकार करता नहीं, और अपने स्वभावसन्मुख जाता है उसे यथार्थ त्यागधर्म होता है। आहाहा! समझ में आया? एक कथन का भावार्थ न समझे तो क्या (हो)? शास्त्र में तो बहुत कठिन हैं, प्रभु! जिसमें आत्मा का आश्रय न हो, वह कोई चीज़ नहीं है।

भगवान आत्मा जहाँ परिपूर्ण परमात्मा का नाथ, परमात्मस्वरूप का रक्षण है, परमात्मस्वरूप का रक्षक आत्मा है। आहाहा! उसका रक्षक निर्विकल्प बने, तब वीतरागता होती है। आहाहा! वह निर्विकल्प अनुभव है।

'**यत्र प्रतिक्रमणं**' **पठन, पाठन,...** है? यह आया था, दो दिन पहले कहा था। वे सेठ थे न? **पठन-पाठन, स्मरण, चिन्तन...** भगवान की **स्तुति...** देव-गुरु-शास्त्र की स्तुति। आहाहा! **वन्दना...** देव-गुरु-शास्त्र की वन्दना, यात्रा। सम्मेदशिखर की यात्रा, गिरनार की यात्रा। **इत्यादि अनेक क्रियारूप विकल्प विष समान कहे हैं...** भगवान ने तो उन्हें जहर कहा है। आहाहा! लोग सुन सकते नहीं। जहर कहा है। वाँचन, श्रवण आदि में विकल्प उठते हैं, वे होते हैं परन्तु वह है विकल्प, राग। आहाहा! यहाँ तो पठन-पाठन, मनन, स्तुति, वन्दना को जहर कहा है। है?

विष के समान कहा है। ऐसा कहा न? '**विषं एव प्रणीतं**' जहर ही कहा है। ऐसा। '**एव**' है न? आहाहा! **विष के समान कहा है।** अप्रतिक्रमण आत्मा का जो अनुभव, वह क्या है, यह बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक-२०-०१-१९७८, कलश-१८९, १९०, प्रवचन-२१०

कलशटीका, १८९ कलश चलता है, यहाँ तक आया है। **अनेक क्रियारूप विकल्प विष के समान कहा है।** यहाँ तक आया है न? हें? क्या कहा? कि, आत्मा वस्तुरूप से तो शुद्ध आनन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द शुद्ध अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, शुद्ध अनन्त दर्शन, शुद्ध अनन्त आनन्द, ज्ञानस्वरूप ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु, वस्तु स्वभाव, उसमें जो यह प्रतिक्रमण और शास्त्र पढ़ना और पढ़ाना, स्तुति, भगवान की स्तुति और वन्दन, वह सब राग है, विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना वह तो तीव्र जहर है ही, परन्तु यहाँ जो राग की मन्दता में शास्त्र पढ़ना, पढ़ाना, वन्दन, स्तुति आदि स्मरण, परमात्मा का स्मरण, भक्ति, पूजा आदि का भाव, सब शुभराग है, जहर है। गजब बात है, प्रभु! वह तेरी चीज़ में नहीं है।

यह तो फिर आगे आयेगा कि भावश्रुत ज्ञान की चैतन्य परिणति से चेतनास्वरूप चेतन अनुभव में आवे, ऐसी वह चीज़ है। यह आगे कहेंगे। क्या कहा? कि यह विकल्प आदि जितने भक्ति, पूजा के भाव, भगवत् नाम स्मरण, सब राग है, वह आत्मा के आनन्दस्वरूप से विपरीत विषकुंभी है, जहर का घड़ा है। आहाहा! तब भगवान आत्मा चेतनास्वरूप चेतन ऐसा क्यों लिया? नीचे लेंगे। चेतना में सब जानने में आता है, वह चेतना। राग जानने में आवे, उस विकार को विषकुंभ कहा, वह भी जानने की भूमिका में जानने में आता है। जानने की चेतनाभूमि में चेतना की परिणति में, पर्याय में वह राग जानने में आता है कि यह राग भिन्न है। तो उस राग से आत्मा में लाभ होता है, भगवान की भक्ति और पूजा, दया और दान से आत्मा को धर्म और लाभ होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन बात है।

यह कहते हैं, देखो! **'प्रणीतं' विष के समान कहा है। 'तत्र अप्रतिक्रमणं सुधा कुटः'** समयसार में ऐसा अर्थ लिया है कि पठन, पाठन, प्रतिक्रमण, वन्दन, स्तुति को जब जहर कहा तो पाप जो अप्रतिक्रमण है, अनादि का पाप, उसे सुधा कैसे (कहें)? वह अमृत कैसे होगा? वह ठीक कैसे होगा? ऐसा। समझ में आया? जब शुभभाव

(को) विष (कहा), जिसे दुनिया सदाचार कहकर धर्म मानती है। भगवान की भक्ति, पूजा, स्मरण, दान—ऐसा जो विकल्प है, वह भी जहाँ जहर कहा तो फिर पाप परिणाम को क्या कहना? वह तो अमृत नहीं, वह तो जहर ही है। ऐसा अर्थ समयसार में पहले किया है। यहाँ दूसरा अर्थ कहेंगे। समयसार में अर्थ में ऐसा लिया है, यहाँ दूसरा कहेंगे। क्या?

प्रतिक्रमण आदि शुभभाव... आहाहा! आत्मा की प्राप्ति में वे कारण नहीं हैं। तब प्राप्ति का कारण कौन? कि अप्रतिक्रमण **'सुधा कुटः एव स्यात्' उस निर्विकल्प अनुभव में...** अन्तर में ज्ञान की भाव परिणति द्वारा, भावश्रुतज्ञान की पर्याय द्वारा चेतनास्वरूप चेतन का अनुभव (होना), वह अमृत है, वह धर्म है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! अनन्त-अनन्त काल हुआ परन्तु कभी इसने चेतना, चेतना, चेतना जिसमें जानना-देखना स्वभाव है। परवस्तु भी है, उसकी स्वीकृति कौन करता है? वह तो चेतना है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, राग या परमात्मा आदि है, वह है वह किस भूमिका में जानने में आता है? कि चेतना की वर्तमान परिणति की भूमिका में जानने में आता है। चेतना त्रिकाली गुण है और चेतनास्वरूप, वह चेतन द्रव्य है। आहाहा! जिसमें, जिस भूमिका में जानने में आता है कि, यह है, यह है, यह है, वह यह है, वह उसे जानने में आता नहीं परन्तु यह ज्ञान की पर्याय में यह है, ऐसा जानने में आता है। आहाहा! तो वास्तव में तो वहाँ ज्ञान की पर्याय प्रसिद्धि पाती है। आहाहा! वह परवस्तु प्रसिद्धि नहीं पाती। समझ में आया?

चेतन भगवान, यह चेतन भगवान आत्मा, इसकी चेतना शक्ति-गुण-स्वभाव है, उसकी चैतन्य परिणति-भावश्रुत। उस भावश्रुत परिणति में यह है... यह है... राग है, व्यवहार है, यह है उसकी प्रसिद्धि चैतन्य की पर्याय में, चैतन्य की पर्याय की प्रसिद्धि होती है। हें? आहाहा! यह है... है... उसकी प्रसिद्ध उसमें नहीं। यह है, उसकी प्रसिद्धि चैतन्य परिणति में है। चैतन्य की परिणति जो पर्याय है, उसकी प्रसिद्धि है। यहाँ आत्मख्याति कहा न? यह आत्मख्याति है। टीका का नाम 'आत्मख्याति' है न? आहाहा! चैतन्य की वर्तमान दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के राग से भिन्न चैतन्य की परिणति में ही यह है, ऐसी प्रसिद्धि चैतन्य परिणति करती है तो वह चैतन्य परिणति की

ही प्रसिद्धि है। उस परिणति द्वारा चेतनास्वरूप चेतन को अनुभव करना, वह अमृत है। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! अभी तो दुनिया में बाहर में धर्म के नाम से कुछ का कुछ चला है, परन्तु प्रभु! उसमें हित नहीं है। जिसमें जन्म-मरण मिटे नहीं, वह हित कहाँ से आया? आहाहा!

शुभभाव तो जन्म-मरण संसाररूप है। शुभभाव जहर, संसाररूप है। भगवान आत्मा उस जहर के काल में भी चेतन परिणति जहर को अपने में अपने कारण से जानती है, जो जानती है, वह ज्ञानपर्याय, चेतनागुण उसका धारक चेतन, उसका अनुभव, वह अमृत है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! तेरी चीज़ की क्या महिमा! आहाहा! सर्वोत्कृष्ट भगवान अन्दर विराजमान है। सर्वज्ञ परमात्मा की तो वह पर्याय है और यह तो द्रव्यस्वभाव है। भगवान आत्मा वस्तु है और वस्तु का स्वभाव है। आगे कहेंगे। '**स्वरसनिर्भर**' आहाहा! बाद के श्लोक में—१९० में कहेंगे। अन्तिम पद है। वह तो स्वरस से परिपूर्ण भरा है। आहाहा! आत्म भगवान अन्दर आत्मा जो है, वह निज स्वभाव चेतना, आनन्द से भरपूर भरा है। आहाहा! उसका अनुभव, वह यहाँ कहा, वह अप्रतिक्रमण।

अप्रतिक्रमण का अर्थ क्या किया? **न पढ़ना,...** पढ़ाना नहीं। पर को पढ़ाना वह तो विकल्प, राग है। आहाहा! **न पढ़ना,...** आहाहा! **न पढ़ाना...** है न? जिसे स्वयं को पढ़ना नहीं और नहीं पढ़ाना, वह अप्रतिक्रमण है। वह विकल्परहित निर्विकल्पता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। इसके हित के लिये (बात है)।

मुमुक्षु : निश्चयनय का पक्ष तो करना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पक्ष क्या करना? यह तो पहला पक्ष विकल्प से आवे कि मार्ग यह है। निर्मल शुद्ध परिणति से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा पहले विकल्प में आता है, परन्तु वह कहीं सत्य निर्णय नहीं है। वह निर्णय सत्य नहीं है। पक्ष करने के लिये भूमिका में पहले आता है कि मेरी चीज़ शुद्ध चैतन्य अमृतस्वरूप, चेतनास्वरूप में उसका पक्ष, वह मेरी चीज़ है और विकल्प जो दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादि के विकल्प हैं, वह मैं नहीं। ऐसे विकल्पसहित वीर्य में शुभभाव में ऐसा निर्णय करने की

योग्यता प्रथम आती है, परन्तु वह आया, इसलिए वहाँ अनुभव होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अनुभव तो चेतनस्वरूप को अनुसरकर होना, वह अनुभव है। राग को अनुसरकर होना, उसे तो यहाँ जहर कहा। कठिन काम है, भाई! बड़े पण्डित पढ़कर-पढ़कर बड़ी बातें करे और ऐसी बात को उड़ा दे। यह सत्य बात है, उसे उड़ा दे (और कहे), सत्य बात नहीं, ऐसा करो,... ऐसा करो,... ऐसा करो। अब यह तो अनन्त बार किया है, सुन तो सही। भगवान भक्ति का नाम स्मरण, जप अनन्त बार किये हैं और प्रतिक्रमण, परिहार, धारणा, निन्दा, गर्हा ऐसा भाव—शुभभाव अनन्त बार हुए हैं। यहाँ तो जिससे जन्म-मरण मिटे और भव का फन्द टले और आनन्द—भव के अभावरूप आनन्द का स्वाद आवे, वह बात कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि पढ़ना-पढ़ाना, उसे जहर कहा। नहीं पढ़ना, वह अमृत है। आहाहा! अर्थात् पढ़ना, वह तो एक विकल्प, राग है। शास्त्र पढ़ना, वह भी एक राग, विकल्प है। आहाहा! वैसे तो आगम का अभ्यास करना, ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत आता है। पहले अध्याय में ही आया है। अभ्यास करने की बात तो करे, परन्तु वह विकल्प है, उससे अन्तर में आत्मज्ञान होगा, ऐसा नहीं है। शास्त्र में बुद्धि जाना, वह भी एक व्यभिचार है। क्योंकि निज स्वभाव का साथ छोड़कर राग के साथ जुड़ान किया, इसका नाम व्यभिचार है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान!

न पढ़ाना... पढ़ना नहीं, पढ़ाना नहीं। वह विकल्प रहित दशा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कि बहुत लाखों लोगों में वाँचन करना, उपदेश देना, वह धर्म है, ऐसा है नहीं। वह तो विकल्प है, भगवान! आहाहा! **न पढ़ना, न पढ़ाना, न वन्दना,....** वन्दना नहीं करना। आहाहा! वन्दना करना, वह विकल्प-राग है। वन्दना न करना अर्थात् स्वरूप सन्मुख की एकाग्रता करना। वह न वन्दना है। आहाहा!

न निन्दना... पापभाव किये, उसकी निन्दा करना, वह शुभभाव है। और **न निन्दना...** वह भी नहीं करना। सेठ! ऐसी बात है, भगवान! तू तो भगवान है न, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु—सत्-शाश्वत् ज्ञानमूर्ति प्रभु और आनन्द का सागर

आत्मा, उसकी वन्दना, स्तुति, वह तो सब वृत्ति का उत्थान है। विकल्प की उत्पत्ति है। आहाहा! न वन्दना, तो अनादर करना? न वन्दना का अर्थ यह नहीं है। वन्दन का भाव है, विकल्प है तो नहीं वन्दना, वह निर्विकल्प है, ऐसा। नहीं वन्दना का अर्थ देव-गुरु-शास्त्र की वन्दना नहीं, आदर करना नहीं। अर्थात् अनादर करना, ऐसा है? यहाँ तो आदर करना, वह विकल्प है, उसे छोड़ना। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, लक्ष्मीचन्दभाई! दुनिया से अलग है। आहाहा! ओहोहो!

प्रभु! तू तो चेतना परिणति से अनुभव में आवे, ऐसा है न! चेतन का चेतना स्वरूप, वह तो चेतन की परिणति से अनुभव में आवे, ऐसा है न! अपनी चैतन्य परिणति से वह अनुभव में आवे ऐसा है, वह राग से अनुभव में आवे, ऐसी वह चीज़ ही नहीं। समझ में आया? कठिन पड़े, परन्तु पहले उसका निर्णय तो करो। विकल्प सहित निर्णय में भी पहले ऐसा आना चाहिए। आहाहा! मैं तो चेतन परिणति से, निज चेतनस्वरूप, चेतनास्वरूप चेतन को अनुभव कर सकता हूँ। मेरा पता चैतन्य परिणति से, चेतनास्वरूप चेतन का पता लगता है। आहाहा! मेरा भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, वह मेरी चैतन्य परिणति विकल्परहित, उस परिणति से उसका पता और अनुभव हो जाता है। पता लगना कहो या अनुभव कहो। आहाहा!

न वन्दना,... न वन्दना का अर्थ वन्दना का विकल्प नहीं करना, ऐसा। आहाहा! निज भगवान स्व के अतिरिक्त कोई भी चीज़ परवस्तु—तीन लोक के नाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर हो और निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्त आनन्द की लहर में झूलनेवाले, उनकी वन्दना और आदर, वह भी एक विकल्प है। आहाहा! अनुभव उस विकल्प से नहीं होता। आहाहा! न वन्दना, इत्यादि। है न?

न निन्दना ऐसा भाव... 'सुधाकुटः एव स्यात्' उसमें ऐसा लिया है कि वह अमृत कैसे होगा? वह तो अप्रतिक्रमण-पाप। जबकि पुण्य को, शुभभाव को जहर कहा तो अशुभ अमृत कैसे होगा? यहाँ ऐसा कहते हैं कि, न वन्दना, न स्तुति करना, वह अमृत का घड़ा है। है? अमृत **'सुधाकुटः एव स्यात्' अमृत के निधान के समान है।** आहाहा! अभी पहली स्वीकृति करने में पसीना उतर जाये। यहाँ तो भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु का अनुभव करने में... क्या कहा?

अमृत के निधान के समान है... प्रभु तो। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो अमृत का निधान है। अतीन्द्रिय अनन्त सुख का सागर है, अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान का तो भण्डार है। आहाहा! वह इन्द्रिय से, मन से, राग से जानने में नहीं आता। आहाहा! अरे! '**सुधाकुटः एव स्यात्**' **अमृत के निधान के समान है।** 'कूट' का अर्थ निधान किया। सुधा का अर्थ अमृत किया। कूट... कूट। पर्वत के ऊपर बड़े कूट होते हैं। उसी प्रकार यह कूट—निधान है। वह पर्वत पर बड़े कूट नहीं होते? अपने शास्त्र में भी आता है न? चार सौ कूट का, पाँच सौ कूट का। पर्वत पर शिखर, शिखर होते हैं। उसी प्रकार यह आत्मा तो अमृत का शिखर है। आहाहा! अमृत का कुण्ड है, अमृत का कूट है, अमृत का निधान है। आहाहा! यहाँ दो बीड़ी, सिगरेट जहाँ पीवे, वहाँ मौज लगे, मजा लगे। सवेरे उकाला पीवे। उठे तो पाव सेर, डेढ़ सेर चाय पीवे, तब दिमाग ठीक (चले)। आहाहा! उसे ऐसा कहना कि प्रभु! तेरा आत्मा अतीन्द्रिय का निधान है न! यह तेरे पीने का भाव है, वह तो जहर है न! आहाहा! समझ में आया?

अमृतकूट! आहाहा! यह निषिध पर्वत और निलय पर्वत नहीं? पर्वत पर कूट होते हैं। ऊँचे... ऊँचे। शाश्वत, शाश्वत्। उसे कूट कहते हैं। यहाँ भगवान अमृत का कूट है। आहाहा! वे पत्थर के कूट हैं। निषिध, निलय पर्वत आदि हैं। यह परमात्मा भगवान अन्दर है, भाई! इसे क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। बहुत लम्बा क्षेत्र हो तो ऐसा हो, ऐसा कुछ है नहीं। शरीरप्रमाण भगवान अन्दर में अनन्त आनन्द का कूट भण्डार भरा है। आत्मा जब भगवान परमात्मा होता है, तब उसे अनन्त आनन्द आता है। वह अनन्त आनन्द प्रत्येक क्षण में भिन्न-भिन्न आता है। भिन्न-भिन्न अनन्त आनन्द का सागर तो अन्दर है। यह तो एक समय की आनन्द की पर्याय है।

परमात्मा जिनेन्द्रदेव अरिहन्त होते हैं। णमो अरिहंताणें कहते हैं, वह कोई पक्ष का शब्द नहीं है। भगवान आनन्द से भरपूर पड़ा है, उससे विरुद्ध भ्रमणा, श्रद्धा और राग-द्वेष को अरि कहते हैं। अरि, जिसने हंता अर्थात् नाश किया है, अरि को जिसने हन्ता—नाश किये, वे णमो अरिहंताणं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। यह आता है। यह कोई पक्ष का शब्द नहीं है। आहाहा! णमो अरिहंताणं। जिसने भगवान आनन्द के नाथ

का अनुभव करके भ्रमणा मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी वैरी को हंता अर्थात् नाश किया और पूर्ण आनन्द की पर्याय का उत्पाद किया और ध्रुव स्वरूप तो अनादि का है ही। आहाहा! उत्पाद-व्यय-ध्रुव। उसे णमो अरिहंताणं ऐसे अरिहन्त। अरि अर्थात् विकार-दुश्मन को हनकर जिसने निज अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय-दशा प्रगअ की, जिसे क्षुधा-तृषा नहीं, जिसे अकेला आनन्द... आनन्द... आनन्द... है, ऐसे परमात्मा को अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! उन परमात्मा को जो अनन्त आनन्द आता है, वह भी एक समय की पर्याय है। आहाहा! यह तो निधान है। ऐसे अनन्त-अनन्त आनन्द का तो निधान भगवान है। यहाँ 'अमृत' शब्द कहा। आहाहा! ऐसी व्याख्या और उपदेश! मुश्किल से पकड़ में आये। कठिन पड़ता है, भाई! मार्ग तो यह है, बापू! दुनिया ने कुछ का कुछ चढ़ा दिया है। आहाहा! वहाँ से विमुख हो, प्रभु! और जहाँ स्वरूप निधान है, वहाँ आ न! आहाहा! है?

वह **अमृत के निधान के समान है।** सुधा का अर्थ किया अमृत। कूट का अर्थ किया निधान। '**एव स्यात्**' अमृत का निधान '**एव**' (अर्थात्) निश्चय '**स्यात्**' होता है, ऐसा। समझ में आया? इन चार शब्दों में ऐसा पड़ा है। अमृत-सुधा, कूट-निधान '**एव स्यात्**' यह ही है। वह तो अमृत का निधान है। आहाहा! भगवान अन्दर में तो अनन्त आनन्द का नाथ है, परन्तु उसकी दशा में खबर नहीं, चार गति में चौरासी लाख योनि में भटकता है। आहाहा! जिसे आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो तो वह जहर के विकल्प से भिन्न करके अमृत के निधान का अनुभव करना। आहाहा! ऐसा मार्ग। ऐसा जैनधर्म होगा? आत्मधर्म। यह तो कहे दया पालो और छह काय की दया पालो और व्रत पालो और अपवास करो और रात्रि में नहीं खाना, छह परबी ऐसा करना और अमुक करना। बापू! वह तो सब विकल्प की, राग की बातें हैं। आहाहा!

यह तो राग से, विकल्प से पार प्रभु अन्दर है। उसका निधान, सुधा निधान। '**एव स्यात्**' आहाहा! अमृत का निधान ही है। '**स्यात्**' अर्थात् होता है, है। '**सुधाकुटः**' '**एव**' वही '**स्यात्**' होता है। उसके समान है, ऐसा। आहाहा! समझ में आता है न? मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! आहाहा! यह तो कहे, एकेन्द्रिय की दया पालना, दो इन्द्रिय की दया

पालना, त्रीन्द्रिय की दया पालना। यहाँ कहते हैं कि तीन काल में दया पाल ही नहीं सकता। पर की क्रिया कौन कर सकता है ? आहाहा! और तुझे दया का भाव आया, वह भाव भी राग है। आहाहा! '**सुधाकुटः एव स्यात्**' अमृत का निधान '**एव**' (अर्थात्) वही, उसके समान। आहाहा! '**एव स्यात्**' वही है। आत्मा तो अमृत का निधान वही है। आहाहा!

भावार्थ ऐसा है कि निर्विकल्प अनुभव सुखरूप है,... अमृत कहा न ? रागभाव जो है विषपरिणत, यह तो जहर है, और यह भगवान आत्मा का अनुभव है, वह तो आनन्द-सुख है। आहाहा! **निर्विकल्प अनुभव सुखरूप है, इसलिए उपादेय है;...** आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु, वही आदरणीय और सत्कार, स्वीकार करनेयोग्य है। आहाहा! **नाना प्रकार के विकल्प आकुलतारूप हैं,...** नाना अर्थात् अनेक प्रकार के जो विकल्प, राग उठते हैं... आहाहा! वे सब दुःखरूप हैं, इसलिए वे सब हेय हैं। दो बातें ले ली। निर्विकल्प अनुभव सुखरूप है, इसलिए उपादेय है। अनेक प्रकार के विकल्प दुःखरूप हैं, आकुलतारूप है, इसलिए हेय है। संक्षेप में कह दिया। आहाहा! १८९ (कलश पूरा हुआ)।

कलश - १९०

(पृथ्वी)

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावो भवन्
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाऽचिरात्।।११-१९०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अलसः प्रमादकलितः शुद्धभावः कथं भवति' [अलसः] अनुभव में शिथिल है-ऐसा जीव; और कैसा है? [प्रमादकलितः] नाना प्रकार के विकल्पों से संयुक्त है-ऐसा जीव, [शुद्धभावः कथं भवति] शुद्धोपयोगी कैसे होता है? अपितु नहीं होता। 'यतः अलसता प्रमादः कषायभरगौरवात्' [यतः] जिस कारण से [अलसता] अनुभव में शिथिलता, [प्रमादः] नाना प्रकार का विकल्प है। किस कारण से होता है? [कषाय] रागादि अशुद्धपरिणति के [भर] उदय के [गौरवात्] तीव्रपना से होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो जीव, शिथिल है, विकल्प करता है, वह जीव, शुद्ध नहीं है; कारण कि शिथिलपना, विकल्पपना, अशुद्धपना का मूल है। 'अतः मुनिः परमशुद्धतां ब्रजति च अचिरात् मुच्यते' [अतः] इस कारण से [मुनिः] सम्यग्दृष्टि जीव, [परमशुद्धतां ब्रजति] शुद्धोपयोगपरिणतिरूप परिणमता है, [च] ऐसा होता हुआ [अचिरात् मुच्यते] उसी काल, कर्मबन्ध से मुक्त होता है। कैसा है मुनि? 'स्वभावे नियमितः भवन्' [स्वभावे] शुद्धस्वरूप में [नियमितः भवन्] एकाग्ररूप से मग्न होता हुआ। कैसा है स्वभाव? 'स्वरसनिर्भरे' [स्वरस] चेतनागुण से [निर्भरे] परिपूर्ण है।।११-१९०।।

कलश - १९० पर प्रवचन

१९०।

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावो भवन्
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाऽचिरात्।।११-१९०।।

आहाहा! '**अलसः प्रमादकलितः शुद्धभावः कथं भवति' अनुभव में शिथिल है...** आहाहा! यह प्रतिक्रमण, परिहार, वन्दन और स्तुति, ये सब भाव तो प्रभु! आलस्यभाव—प्रमादभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा का आनन्द जहाँ न आवे, वह सब प्रमादभाव है। आहाहा! भगवान तो अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! प्रमाद। है? **अनुभव में शिथिल...** प्रमाद की व्याख्या आलस, आलस। आलस कहो या प्रमाद कहो, प्रमाद कहो या सब विकल्प कहो। आहाहा! राग की वृत्ति उठती है, वह एक आलस है, वह प्रमाद है।

ऐसा जीव, और कैसा है? नाना प्रकार के विकल्पों से संयुक्त है... अनेक प्रकार के राग की आकुलता से सहित है। **ऐसा जीव,... 'शुद्धभावः कथं भवति'** ऐसा जीव शुद्ध कैसे होता है? और शुद्धभाव बिना धर्म होता नहीं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि का शुभभाव, वह अशुद्ध है। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाते हैं न। है? **नाना प्रकार के विकल्पों से संयुक्त है ऐसा जीव, शुद्धोपयोगी कैसे होता है?** देखो! आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, काम, क्रोध भाव पाप। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवत् स्मरण वह पुण्य। दोनों भाव आलस और प्रमाद है, वे अशुद्धभाव हैं। उनमें शुद्धभाव कहाँ से आया? उनसे शुद्धभाव कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! है?

'शुद्धभावः कथं भवति' शुद्धोपयोगी कैसे होता है? अपितु नहीं होता। क्या कहा? कि विकल्प जो राग उठता है, वह तो आलसभाव, प्रमादभाव है न! तो आलस और प्रमाद और विकल्प से शुद्धभाव कैसे होता है? आहाहा! शुद्धभाव तो उस विकल्प से रहित भगवान चेतनास्वरूप का, चेतन का अनुभव करना, वह शुद्धभाव है। वह शुद्धभाव धर्म है। आहाहा! है या नहीं अन्दर? **शुद्धोपयोगी कैसे होता है? अपितु नहीं होता।**

'यतः अलसता प्रमादः कषायभरगौरवात्' जिस कारण से अनुभव में शिथिलता.... आहाहा! अन्तर आनन्द के अनुभव में शिथिलता। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसके अनुभव में जो शिथिल है, प्रमादी है—आलसी है। ऐसा कहा न? **शिथिलता नाना प्रकार का विकल्प है। किस कारण से होता है?** आहाहा! '**कषायभरगौरवात्**' वह तो कषाय **रागादि अशुद्ध परिणति के उदय के**

तीव्रपना से होता है। आहाहा! वह विकल्प होता है, पढ़ना, पढ़ाना, आहाहा! प्रभु! समाधिशतक में तो ऐसा कहा है कि हम दूसरे को उपदेश देते हैं, ऐसा विकल्प उन्माद है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा तो उस विकल्प, राग से भिन्न अन्दर है। तो दूसरे को समझाने में जो विकल्प उठता है, वह तो शुभभाव है। उसे भी वहाँ... आहाहा! उन्माद कहा। आहाहा! और तेरे विकल्प से क्या वह समझ जाता है? समझ सकता है? आहाहा! उसकी योग्यता से वह समझता है। उसे समझाऊँ, ऐसा विकल्प उठता है तो वह उन्माद है, समाधि नहीं। समाधितन्त्र का अधिकार है। आहाहा! समझ में आया?

रागादि अशुद्ध परिणति के उदय के तीव्रपना से... आहाहा! यहाँ तो तीव्र लिया, देखा? कैसे? कि छठवें गुणस्थान में भी जो पंच महाव्रत का प्रमाद है न, वह संज्वलन का तीव्र भाव है। मन्द हो जाये, तब तो सप्तम हो जाता है। आहाहा! क्या कहा? सच्चे मुनि हों, आत्म आनन्द के ज्ञानी, अनुभवी, उन्हें भी कोई पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, तो वहाँ संज्वलन का तीव्र भाव कहा गया है। कषाय का तीव्र भाव है। आहाहा! उसे यहाँ लिया है। फिर सातवें (गुणस्थान में) आनन्द में जाते हैं। पश्चात् अबुद्धिपूर्वक का मन्द राग रहता है। आहाहा! इस कारण से शुभभाव को भी तीव्र कषाय कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? है न?

अशुद्ध परिणति के उदय के तीव्रपना से... यहाँ कहीं अशुभभाव की अकेली बात नहीं है। वास्तव में तो शुभभाव की ही बात चलती है। है? उसे यहाँ तीव्रपना कहा है। आहाहा! मन्दपना तो अप्रमत्तदशा में अबुद्धिपूर्वक राग रह जाये, उसे मन्द कषाय कहते हैं। आहाहा! छठवीं भूमिका में मुनि को पंच महाव्रत, वन्दन, स्तुति का भाव आवे, वह भी कषाय तीव्र है। आहाहा! तो उसमें शुद्ध उपयोग कहाँ से आवे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जो जीव शिथिल है, विकल्प करता है, वह जीव शुद्ध नहीं है;... आहाहा! **कारण कि शिथिलपना, विकल्पपना अशुद्धपना का मूल है।** लो! शिथिलपना अर्थात् विकल्प, रागपना, वह अशुद्धपने का मूल है, इसलिए शुद्धता होती नहीं। शुद्धता तो स्वभाव का आश्रय लेने पर शुद्धता होती है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक-२१-०१-१९७८, कलश-१९०, प्रवचन-२११

१९० कलश है, थोड़ा चला है, फिर से (लेते हैं)। '**अलसः प्रमादकलितः शुद्धभावः कथं भवति**' है? दरबार को बताओ। क्या कहते हैं? १९०। सूक्ष्म बात है। १९० कलश। यहाँ कहते हैं कि यह आत्मा जो देह से भिन्न है न, यह देह है वह तो जड़ है, अचेतन, अजीव है और भगवान अन्दर चैतन्यस्वरूप जो सच्चिदानन्द प्रभु, वह आत्मा तो देह से भिन्न है। उससे तो भिन्न है, परन्तु अन्दर में जो शुभ-अशुभराग होता है; हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, उस पाप वासना से भी आत्मा अन्दर वस्तु भिन्न है और दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि के भाव होते हैं, वे भी एक पुण्यकर्म, पुण्यभाव है। उससे भी अन्तर आत्मा भिन्न है। सूक्ष्म बात है, भगवान! आत्मधर्म की बात है, आत्मज्ञान की बात है, जो अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी कभी भी आत्मज्ञान किया नहीं। अनन्त काल में चौरासी लाख योनियों में एक-एक योनि में अनन्त अवतार धारण करके परिभ्रमण करता है। उसे आत्मज्ञान होता है तो जन्म-मरण मिटते हैं, नहीं तो यह जन्म-मरण मिटेंगे नहीं। आहाहा!

कहते हैं, '**अलसः**' है? '**अलसः' अनुभव में शिथिल है ऐसा जीव,...** दूसरी लाईन। अनुभव में शिथिल है, ऐसा जीव। क्या कहते हैं? आत्मा आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसकी वर्तमान दशा में-हालत में भूल है तो अनादि से भटकता है परन्तु अन्दर उसका स्वरूप सच्चिदानन्द—सत्-शाश्वत चिद्-ज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप है। वह सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा अन्दर घट घट में भिन्न-भिन्न विराजता है। परन्तु उसकी चीज़ की उसे खबर नहीं। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' अपनी चीज़ को भूलकर चौरासी (लाख योनियों में) अवतार करता है।

कहते हैं, **अनुभव में शिथिल है ऐसा जीव,...** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव का अनुभव। जो चिदानन्द पवित्र प्रभु आत्मा भगवान स्वरूप उसका है, उसका जो अनुभव है, वह शुद्धभाव है। पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव से भिन्न अन्दर शुद्धभाव (प्रगट होता है)। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! आत्मा का अनुभव, वह शुद्धभाव है। वह शुद्धभाव पुण्य-पाप के

भाव में रहनेवाले को ऐसा शुद्धभाव कैसे होता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल में पुण्य और पाप के भाव, दो प्रकार के भाव से यह भटका है, रहा है। यहाँ कहते हैं कि यदि अब तुझे धर्म करना हो, आत्मज्ञान करना हो तो आत्मा का अनुभव तो पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव से भिन्न अनुभव होगा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह देह तो जड़, मिट्टी, धूल है। यह तो श्मशान की राख है। श्मशान में राख होगी।

भगवान अन्दर नित्य अविनाशी प्रभु है, परन्तु इसकी उसे खबर नहीं। तो कहते हैं कि खबर कैसे हो? कि अन्दर में जो पुण्य और पाप के भाव होते हैं, उनसे भी अन्दर भिन्न पड़कर, अपने आनन्दस्वरूप का अनुभव करना, और अतीन्द्रिय ज्ञान का ज्ञान में स्वसंवेदन करना, स्व अर्थात् अपने से अपना वेदन करना, उसे यहाँ शुद्धभाव, अनुभव और धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **अनुभव में शिथिल है ऐसा जीव, नाना प्रकार के विकल्पों से संयुक्त है...** विकल्प की वृत्तियाँ, राग। शुभ-अशुभराग की वृत्ति में जो रुक गया है, आहाहा! उसे यहाँ अन्तर का अनुभव, शुद्धभाव किस प्रकार होगा? ऐसा कहते हैं। भगवान अन्दर पवित्र है, सच्चिदानन्द निर्मल है। उस पवित्रता का अनुभव शुभभाव और अशुभभाव में रुकने से वह अनुभव नहीं होता। आहाहा! कठिन बात है। समझ में आया? यह कहते हैं। अनुभव में शिथिल, विकल्प से सहित ऐसा जीव शुद्ध उपयोगी किस प्रकार होता है? बहुत संक्षिप्त शब्दों में है। अध्यात्म की बात है न, भाई! अध्यात्म की, आत्मा की बात है।

कहते हैं कि, जिसे आत्मा में प्रमाद अर्थात् आलस, आलस अर्थात् शुभ और अशुभभाव (होता है) वे दोनों प्रमाद आलस और अशुद्ध हैं। आहाहा! उनसे भगवान आत्मा का स्वरूप जो अन्दर है, वह अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? उस भिन्न का अनुभव, पुण्य-पाप के भाव में रुकने से उसे उस शुद्धभाव का अनुभव कैसे होता है? सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त बार ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति, तप भी अनन्त बार किये हैं परन्तु वे सब विकल्प, वृत्तियाँ, राग है। उनसे अन्दर भिन्न चैतन्यस्वरूप आनन्द प्रभु, सच्चिदानन्दस्वरूप उसका है, उसका अनुभव, उसकी सन्मुखता, उसके आनन्द का

स्वाद वह पुण्य-पाप के भाव में रुकने से कैसे होता है ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है। दरबार ! समझ में आता है ? तुम्हारी हिन्दी भाषा अलग है। कुरावली से आये हैं। अम्बालालभाई लाये हैं। कुरावली का निश्चित करने के लिये। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ प्रभु अन्दर चैतन्य आनन्द, सच्चिदानन्द प्रभु है न ! आहाहा ! सत् शाश्वत्, आत्मा सत् शाश्वत् अविनाशी है, और उसका स्वभाव भी अतीन्द्रिय आनन्द है। यह पुण्य और पाप, राग और द्वेष, सुख-दुःख की कल्पना, वह उसका स्वभाव नहीं है, वह तो विकार है। आहाहा ! उस विकार से रहित अपने आत्मा का अनुभव, वह प्रमाद में रहनेवाले जीव को (किस प्रकार होगा ?) प्रमाद शब्द से शुभ-अशुभभाव... आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! उसे आत्मा के शुद्धभाव का अनुभव कैसे होता है ? है ? **अपितु नहीं होता।**

'यतः अलसता प्रमादः कषायभरगौरवात्' जिस कारण से अनुभव में शिथिलता नाना प्रकार का विकल्प है। आहाहा ! राग की वृत्तियाँ उठती है, शुभ या अशुभ, वह सब विकार है, इस चैतन्यस्वरूप के अनुभव में वह बात बेकार है। उससे अनुभव नहीं होता। आहाहा ! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु अन्दर है। दृष्टान्त तो हर बार देते हैं। यह शक्करकन्द का दृष्टान्त देते हैं। शक्करकन्द होता है न यह ? दरबार ! यह शक्करिया, शक्करकन्द खाते हैं न ? ऊपर की जो लाल छाल है, लाल छाल, उसके अतिरिक्त मिठास का शक्कर का कन्द। शक्करकन्द नाम क्यों पड़ा ? कि शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का वह पिण्ड है। लाला छाल थोड़ी है, उससे भिन्न देखो तो वह शक्करकन्द अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर शुभ और अशुभ विकल्प जो राग है, वह लाल छाल है। उस लाल दाल के पीछे अन्दर देखो तो जैसे शक्करकन्द वह शक्कर की मिठास का पिण्ड है, उसी प्रकार यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

अपने को अपनी खबर नहीं और बाहर की सब लगायी है। अन्दर की चीज़ क्या है ? मैं कौन हूँ ? अनादि-अनन्त अविनाशी हूँ और मैं जैसे अनादि अविनाशी हूँ, वैसा मेरा स्वभाव, स्व-भाव, अपना कायम रहनेवाला अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय प्रभुता, ईश्वरता, वह भी अविनाशी स्वभाव कायम है। वर्तमान दशा में पुण्य

और पाप के भाव विकृतरूप से होत हैं, वे तो दोष हैं। आहाहा! समझ में आया? उससे मेरी चीज़ शुद्ध भिन्न है।

किस कारण से होता है? रागादि अशुद्ध परिणति के उदय के तीव्रपना से होता है। आहाहा! जरा कठोर शब्द है। मुनि होते हैं न, सच्चे मुनि, आत्मज्ञानी आनन्द का अनुभव करनेवाले। जैसे समुद्र में किनारे बाढ़ आती है, समुद्र के किनारे बाढ़ आती है न? अपनी गुजराती भाषा में भरती कहते हैं, वे लोग बाढ़ कहते हैं। बाढ़। उसी प्रकार आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर है। उसकी वर्तमान दशा में, जैसे किनारे बाढ़ आती है, उसी प्रकार वर्तमान हालत-दशा में अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करनेवाले को यहाँ धर्मी और मुनि कहा जाता है। ऐसी बात है। उस अनुभव में, कहते हैं कि अशुद्ध परिणति के उदय का तीव्रपना है। जिसे अन्दर राग होता है। भाव—शुभराग या अशुभराग। वह तो राग की तीव्रता है। बुद्धिपूर्वक राग होता है न? शुभ-अशुभ को यहाँ तीव्र कहने में आया है। ऐसा तीव्र राग जिसे है, वह उससे रहित चैतन्यस्वरूप का अनुभव कैसे कर सकता है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप प्रभु, भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी आत्मा, उसकी बात है। भग-वान। भग अर्थात् यह धूल की (लक्ष्मी) नहीं। यह पाँच-पच्चीस करोड़ धूल (-पैसा) मिलता है, वह मिट्टी, धूल है। वह लक्ष्मी नहीं। लक्ष्मीचन्दभाई! यह सब पैसेवाले बैठे, लो! ठीक, यह मलूकचन्दभाई देरी से कैसे आये आज? आज देरी से आये थे। कोई लड़का-बड़का आया था न? देरी से आये न आज? इसलिए मन में ऐसा विकल्प आ गया। वह आनेवाला है न? पाँच करोड़ रुपये हैं न एक लड़के के पास तो? हें? मैंने कहा, यह आज देरी से क्यों आये? कोई लड़का आया होगा?

मुमुक्षु : ऐसा ही होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आया नहीं। दोनों लड़के आनेवाले थे। एक मुम्बई रहता है (उसके पास) पाँच करोड़ है, एक स्वीट्जरलैण्ड में रहता है (उसके पास) चार

करोड़ है। दोनों लड़कों के पास नौ करोड़ रुपये हैं। धूल... धूल। ऐसा विकल्प आया था, भाई! मैंने कहा, देरी से क्या? खाली देखा न, खाली। देरी से आये थे आज। आहाहा! अरे रे! धूल में क्या? वह तो मिट्टी है, भाई! यह (शरीर) मिट्टी है तो पैसा तो मिट्टी दूर रही। यह (शरीर) भी मिट्टी है न? कोई कील या नोंक... नोंक लगती है न? नोंक होती है न लोहे की लगती है न? तो कहता है कि मेरी मिट्टी पकाऊ है। पानी छूने देना नहीं। वहाँ ऐसा कहे कि मेरी मिट्टी पकाऊ है। यह मिट्टी है। ऐ... अम्बालालभाई! वहाँ मिट्टी कहे कि मेरी मिट्टी पकाऊ है, इसलिए पानी छूने देना नहीं। यह तो मिट्टी, धूल है।

अन्दर भगवान जाननेवाला, जिसकी सत्ता में यह जानने में आता है, जिसकी सत्ता में यह शरीर, वाणी, मन, यह... यह... यह जिसकी सत्ता में जानने में आता है, वह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा! उस आत्मा का अनुभव, जिसे तीव्र राग है, यहाँ तो कषाय की मन्दता को भी तीव्र राग कहा है। आहाहा! छठवें गुणस्थान की बात कल कही थी न? पंच महाव्रत, अहिंसा, सत्य, अचौय, वह वृत्ति भी राग है। आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप है। जिसे तीव्र राग है, वह ऐसे आत्मा में कैसे जा सकेगा? भाई! ऐसे अन्तरगढ़ में, आनन्दकन्द में जाना। आहाहा! और उस आनन्द का अनुभव कैसे कर सकता है?

भावार्थ इस प्रकार है कि जो जीव शिथिल है,... अपने आनन्द स्वरूप में जाना जाता नहीं। है अन्दर? शिथिल। **जो जीव शिथिल है, विकल्प करता है,...** राग करता है। पुण्य और पाप की वृत्तियाँ उठती हैं, वह शुद्ध नहीं। **वह जीव शुद्ध नहीं है;...** आहाहा! है दरबार वहाँ? समझ में आया? आहाहा! क्या कहा? जो जीव अपना स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य आनन्द की ओर जाता नहीं और पुण्य-पाप में रुकता है, वह जीव शुद्ध कैसे होगा? उसकी पवित्रता किस प्रकार प्रगट होगी? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्दर पवित्रता का तो धाम है। 'स्वयं ज्योति सुखधाम'। चैतन्य अन्दर स्वयं ज्योति, आनन्दकन्द प्रभु, सुख का स्थान और आनन्द का धाम वह है। आहाहा! जिसे पुण्य और पाप के भाव प्रमाद हैं, आलस है, वह तीव्र राग है। आहाहा! उसकी रुचि में और उस भाव में जो रुक गया, उसे अन्तर में शुद्धभाव कैसे होगा? आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म

बातें हैं। अनन्त काल से किया नहीं। चौरासी लाख के अवतार करते... करते... करते... अनन्त भव हो गये। यह पहला भव नहीं है। आत्मा तो अनादि का है, है, और है। यह तो शरीर का संयोग नया आया है। आत्मा नया होता है? आत्मा तो अनादि का है, है और है और अविनाशी है। उसमें ऐसे शरीर का संयोग और वियोग (हो) ऐसे भव तो अनन्त किये। अनादिकाल से अनन्त भव करते... करते... करते... कीड़ा, कौआ, कुत्ता, नारकी, अरबोंपति सेठिया हुआ, भिखारी अनन्त बार हुआ, ऐसे अवतार अनन्त किये परन्तु अपनी चीज़ क्या है, उसकी दृष्टि और अनुभव किया नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान किया नहीं। आत्मज्ञान बिना की जो कोई क्रियाकाण्ड है, वह सब भटकने की चीज़ है। आहाहा! उसमें तो भवभ्रमण है। सूक्ष्म बात है। आहाहा! है?

वह जीव शुद्ध नहीं है; कारण कि शिथिलपना, विकल्पपना अशुद्धपना का मूल है। कल यहाँ तक आया था। आत्मा आनन्दस्वरूप में नहीं आकर पुण्य-पाप में रुकता है, वह शिथिल है। वह अशुद्धपने का मूल है। वह तो अशुद्धपने में रहा। गजब बात है, प्रभु! ओहो! आहाहा! दया, दान, अनुकम्पा, भक्ति आदि भाव होते हैं, परन्तु है सब राग। वह प्रभु चैतन्य का स्वरूप नहीं है। आहाहा! उसका स्वरूप तो शुद्ध चैतन्यघन है। चैतन्य आनन्दकन्द है। जो प्रमाद में रुक गया, शुभ-अशुभभाव में जो रुक गया है, उसे शुद्धपना कैसे होगा? उसे **अशुद्धपना का मूल है।** आहाहा! शुभ और अशुभभाव अशुद्धपने का मूल है। वह शुद्ध नहीं। समझ में आया? है?

कारण कि शिथिलपना, विकल्पपना अशुद्धपना का मूल है। 'अतः मुनिः' मुनि अर्थात् सम्यग्दृष्टि लेना है। **'परमशुद्धतां ब्रजति च अचिरात् मुच्यते' इस कारण से मुनि अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव...** देखा? ऐसा अर्थ किया। मुनि का अर्थ यह किया। आहाहा! मनन करते इति मुनि। अपने आनन्दस्वरूप का मनन करते हैं—अनुभव करते हैं, उन्हें सम्यग्दृष्टि कहते हैं। सम्यक् अर्थात् सत्य दृष्टि। सत्य स्वरूप जो भगवान आत्मा। ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की सम्यक् दृष्टि, सत्य दृष्टि हुई और उसका अनुभव करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया? बाकी जितने पाप और पुण्यभाव करते हैं, भले अरबोंपति, करोड़पति हो, वे सब पाप और पुण्य अशुद्ध और मलिन और दुःख है। आहाहा! है?

सम्यग्दृष्टि जीव... 'परमशुद्धतां ब्रजति' आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जो शुद्ध उपयोग को ग्रहण करता है। आहाहा! है? **शुद्धोपयोग परिणतिरूप परिणमता है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? सत्य दृष्टि पूर्ण आनन्दस्वरूप की जिसे प्रतीति हुई, मैं तो पूर्ण आनन्द अविनाशी अनादि-अनन्त प्रभु चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसी जिसे अनुभव करके प्रतीति हुई है, उसे यहाँ सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि कहा जाता है। उसे धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा!

मुनि का अर्थ भी यह किया है—मुनवुं। मुनवुं अर्थात् जानना। जानना अर्थात् आत्मा का जैसा स्वरूप है, उसे जानना, वह मुनि। आत्मा का ज्ञान नहीं और आत्मा का भान नहीं, वे सब बाबा, जोगी, मुनि घूमते हैं, वे मुनि नहीं हैं। समझ में आया? घरबार छोड़कर बाबा हो गया, जंगल में चला गया, उसमें क्या हुआ? निज चीज़ जो अन्दर है, आत्मा और उसका आत्मज्ञान, उसका ज्ञान नहीं और बाह्य का ज्ञान, शास्त्र आदि का ज्ञान, वह कहीं ज्ञान नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुनि अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव... 'परमशुद्धतां ब्रजति' परमशुद्धता ग्रहण करता है। '**व्रजति**' अर्थात् परिणमता है। **शुद्धोपयोग परिणतिरूप परिणमता है,...** आहाहा! जो कुछ पुण्य और पापरूपी भाव करता है, वह अशुद्ध है, और वह संसार में परिभ्रमण का कारण है और उससे भिन्न अपने आत्मा का, शुद्धपने का अनुभव करता है, वह शुद्धउपयोगी—शुद्ध व्यापार आत्मा पवित्र है, उसका व्यापार शुद्ध उपयोग है। आहाहा! है अन्दर? यहाँ नहीं, वहाँ है। **शुद्धोपयोग परिणतिरूप परिणमता है,...** आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

आत्मा तो अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध है, उसका शुद्ध उपयोग पवित्र परिणाम से उपलब्ध करता है, शुद्धपरिणमन की परिणति करता है, आहाहा! वह मोक्ष को प्राप्त करता है। दूसरे को मोक्ष नहीं होता। भले बाबा हो, जोगी हो जाये, घरबार छोड़कर जंगल में जाये परन्तु आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका आत्मज्ञान और अनुभव नहीं, वे सब चार गति में भटकनेवाले हैं। समझ में आया? और गृहस्थाश्रम में भी (जिसने) आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन किया तो वह भी एकाध, दो भव में मोक्ष जायेगा। समझ में आया? यह कहा न?

शुद्धोपयोग परिणतिरूप... परिणति, शुद्धरूपीदशा। जो पुण्य और पापरूप अवस्था, दशा करता है, उसकी दृष्टि, रुचि छोड़कर, त्रिकाली भगवान की रुचि की शुद्ध उपयोगरूपी दशा होती है, वह शुद्ध उपयोग दशा। **ऐसा होता हुआ,... 'अचिरात् मुच्यते'** है? **'अचिरात्' उसी काल कर्मबन्ध से मुक्त होता है। 'अचिरात्'** अर्थात् चिरकाल नहीं। तत्काल आत्मा के आनन्द का अनुभव करते-करते मुक्ति हो जाती है। आहाहा! समझ में आया? **'अचिरात्'** शब्द पड़ा है न? (अर्थात्) चिर काल नहीं, उसी काल में, ऐसा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! मार्ग अलग है, भाई! मुक्ति का पंथ अलौकिक मार्ग है, भाई! कभी मुक्ति हुई नहीं। अनन्त काल से संसार में बन्धन में पड़ा है।

शुद्ध उपयोग निज आत्मा, अपने स्वरूप की ओर सन्मुख होकर शुद्ध परिणति, शुद्ध दशा, पवित्र दशा को प्रगट करता है, वह अल्प काल में पूर्ण पवित्रतारूपी मुक्ति को प्राप्त करता है। दूज उगे, वह पूनम को प्राप्त होती ही है। दूज... दूज। दुई... दुई। दूज है वह तेरहवें दिन में पूनम होती ही है। उसी प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन, मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा अनुभव, प्रतीति हुई और शुद्ध परिणमन हुआ, उसकी अल्प काल में मुक्ति होगी। उसके चौरासी अवतार बन्द होंगे। आहाहा! कितना पैसा खर्च करे तो धर्म होगा? नहीं? सेठ! सेठ तो बहुत पैसा खर्च करता है। करोड़ोंपति है। सेठ बहुत खर्च करता है। तीन लाख की धर्मशाला बनायी है। वहाँ सागर में। बड़ा बीड़ी का व्यापारी है। इन्हें बुन्देलखण्ड का बादशाह कहते हैं। बुन्देलखण्ड के बादशाह। दो भाई हैं। यह छोटे हैं। बड़े भाई का नाम भगवानभाई, वे तो बहुत खर्च करते हैं न! लक्ष्मी भी बहुत खर्च करते हैं, दान में भी बहुत खर्च करते हैं। क्या वह धर्म है?

मुमुक्षु : आप ना कहते हो दुनिया तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया गहल, पागल कहे। राग की मन्दता हो तो पुण्य बँधता है। पुण्य सोने की बेड़ी। पाप लोहे की बेड़ी है, पुण्य सोने की बेड़ी है। दरबार! दोनों बेड़ियाँ हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनिराज के पास एक भी पैसा नहीं होता, परन्तु धर्म बहुत होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे बिना धर्म होता है तो स्वयं से होता है। एक तो यहाँ प्रतापगढ़

का (व्यक्ति) आया था। पागल जैसा। बुद्धि तो वैसे ठीक थी परन्तु दिमाग (अस्थिर)। (वह कहे), मैं तीर्थंकर हूँ, मैं केवलज्ञानी हूँ। ओ..ई..! मुझे यहाँ सुविधा दो। पैसा नहीं है। क्यों? कि भगवान सर्वज्ञ परमात्मा थे, उनके पास भी पैसे नहीं थे। मेरे पास पैसे नहीं और मैं केवलज्ञानी हूँ। प्रतापगढ़ का एक आया था। अम्बालालजी! प्रतापगढ़ का एक दिगम्बर था, परन्तु मस्तिष्क फेर। ऐसे पागल नहीं था परन्तु ऐसा अभिमान, पावर चढ़ गया था। मैं तीर्थंकर हूँ, मैं केवली हूँ। अच्छे-अच्छे उत्तम जीव मेरी लिये पक गये हैं। मुझे सुविधा दो। अभी तो कपड़ा पहने तो साधु भी नहीं होता, समकित की खबर नहीं। तू मिथ्यादृष्टि है, कहा। यह क्या कहता है? तीर्थंकर केवली किसे कहते हैं? जिन्हें तीन काल—तीन लोक का ज्ञान (होता है)। जिन्हें आनन्द आनन्द अतीन्द्रिय (होता है), जिन्हें एक नग्न शरीर ही होता है, वह छूट जाये फिर परमात्मा हो जाते हैं। मैंने कहा, मिथ्यादृष्टि है, तेरी दृष्टि झूठी है। प्रतापगढ़ का था। अभी आया था, चार-छह महीने हो गये। प्रतापगढ़ का, खबर है? पागल नहीं, परन्तु दिमाग का पागल था।

मुमुक्षु : अभी पागल हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी हो गया? यहाँ कहा था। आहाहा! है दिगम्बर। नाम क्या कहा?

मुमुक्षु : चांदमल डोडी।

पूज्य गुरुदेवश्री : चांदमल डोडी। हाँ, वह। आया था, यहाँ आया था। यहाँ तो नाम प्रसिद्ध (है इसलिए) चारों ओर से बहुत लोग आते हैं। कहा, भाई! मार्ग दूसरा है। गृहस्थाश्रम में रहकर (कहे) केवली हो गया और तीर्थंकर हो गया। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन भी दूसरी चीज़ है। वह यहाँ कहा, देखो न!

सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धोपयोग परिणतिरूप परिणमता है, ऐसा होता हुआ, उसी काल कर्मबन्ध से मुक्त होता है। पूर्ण शुद्धता जहाँ प्रगट हो, (वहाँ) अशुद्धता का नाश होकर परमात्मा—सिद्ध परमात्मा हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ आकर वह कहता था। आने से पहले हमारे प्रति पत्र आया था। पालीताणा एक महीने था। मैं केवली हूँ, तीर्थंकर हूँ। चार घातिकर्म का नाश किया है और अभी मैं निर्धन हूँ। भगवान

भी निर्धनता थी। भगवान के पास कहाँ पैसे थे? तो मेरे पास भी पैसे नहीं है। सुना था भाई तुमने? नहीं थे? हें? सुना था? यहाँ आया था। सामने आकर बैठा, व्याख्यान सुनने बैठा। व्याख्यान सुनकर फिर अन्दर आया। अरे! बापू! अभी सम्यग्दर्शन किसे कहा जाता है और आत्मानुभव की खबर नहीं और हो गये केवली परमात्मा?

यहाँ कहते हैं कि जिसे अन्दर में शुद्ध आत्मा पवित्र का उपयोग हुआ तो अल्पकाल में मुक्ति होगी। **कैसा है मुनि? 'स्वभावे नियमितः भवन्' स्वभाव में अर्थात् शुद्ध स्वरूप में एकाग्ररूप से मग्न होता हुआ।** आहाहा! भगवान आत्मा का जो पवित्र त्रिकाली स्वभाव है, उसमें मग्न रहता है, अन्दर में लीन रहता है। आहाहा! उसे मुक्ति और उसे धर्म होता है। आहाहा! समझ में आया? पाठ ऐसा लिया है, इसका स्पष्टीकरण करेंगे। '**स्वभावे नियमितः भवन्**' स्वभाव का अर्थ किया—शुद्धस्वरूप। शुद्धस्वरूप पुण्य-पाप से रहित, उसकी चीज़ में अन्तर में दृष्टि से लीन होता है, वह अल्प काल में मुक्त होता है और उसका मोक्ष होता है। यहाँ स्वभाव में शुद्धस्वरूप लिया। '**नियमितः भवन्**' '**नियमितः**' अर्थात् एकाग्रतारूप कहा। '**नियमितः**' की व्याख्या यह की है। **एकाग्ररूप से मग्न होता हुआ।** आहाहा!

अपना शुद्ध स्वरूप चैतन्यघन आनन्दकन्द नाथ में लीन—एकाग्र होते-होते मुक्ति को प्राप्त होता है। अपना स्वभाव में, शुद्ध स्वरूप में पुण्य-पाप के भाव से भिन्न अपनी चीज़ में लीन होते-होते, **एकाग्ररूप से मग्न होता हुआ।** अब वहाँ स्वभाव कहा था न? स्वभाव से शुद्धस्वरूप, ऐसा कहा था न? अब अर्थ करते हैं।

कैसा है स्वभाव? उस स्वभाव में लीन है, ऐसा कहा। तो कैसा है स्वभाव? आहाहा! '**स्वरसनिर्भरे**' **चेतनागुण से परिपूर्ण (भगवान तो भरा) है।** कहते हैं। आहाहा! यह स्वभाव की व्याख्या। आत्मा स्वभाववान और उसका स्वभाव चेतना। जानना-देखना, ज्ञाता-दृष्टा, ऐसे जानने-देखने के स्वभाव से परिपूर्ण भरा है, उसे यहाँ स्वभाव कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन बात। है? पहले ऐसा कहा था कि '**स्वभावे**' शुद्धस्वरूप में '**नियमितः भवन्**'। अपने शुद्धस्वरूप में एकाग्र-मग्न होता हुआ। अब कहते हैं कि वह स्वभाव कैसा है? मग्न होता हुआ—ऐसा कहा, परन्तु वह स्वभाव कैसा है? अपना त्रिकाली स्वभाव। आहाहा! '**स्वरसनिर्भरे**' स्व-रस, स्व-रस। चेतना... चेतना... चेतना...

जानना-देखना, ऐसा स्व-रस, वह उसका स्वभाव है। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है; पुण्य-पापभाव मलिन है, उनसे (भिन्न) भगवान चेतना स्वरस है। आहाहा! सूक्ष्म बातें पड़े।

पहले स्वभाव का अर्थ कहा था। '**स्वभावे**' (अर्थात्) शुद्धस्वरूप में **मग्न होता हुआ।** परन्तु अब शुद्धस्वरूप कहा, वह स्वभाव है कौन? शुद्धस्वरूप (कहा तो) आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है कैसा? '**स्वरसनिर्भरे**' वह तो स्वरस में स्वरस से परिपूर्ण है। वह स्वरस से परिपूर्ण है। स्वरस का अर्थ चेतना से परिपूर्ण है। वह जानने-देखने के स्वभाव से भगवान परिपूर्ण आत्मा अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? '**स्वरसनिर्भरे**' इतने शब्द पड़े हैं। '**स्वरसनिर्भरे**' स्वरस—ज्ञानचेतना गुण, देखना गुण—ऐसा त्रिकाली स्वभाव (उससे) '**निर्भरे**' पूर्ण भरा है। '**निर्भरे**' है न? आहाहा! '**निर्भरे**' भरे, भर... भर। '**निर्भरे।** आहाहा! यह गाडा में घास भरते हैं न तो भर कहते हैं न? भर कहते हैं। गाडा में बहुत भर भरा है। भर कहते हैं न? दरबार! घास भरते हैं। यह तो '**निर्भरे**' (कहा)। '**नि**' उपसर्ग है तो (इसका अर्थ) विशेष भर। चेतनारस से भरा भगवान अन्दर ज्ञान, दर्शन, आनन्द का कन्द है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : भरचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भरचक है। वस्तु अन्दर है। यह तो अन्दर में भान नहीं और बाहर में भटकता है। यह पुण्य किया और यह पाप किया। बहुत पुण्य किया हो तो उससे पाँच, पच्चीस करोड़ रुपये धूल आदि मिले। उसमें क्या मिला? आत्मा को नुकसान हुआ, दुःखी है। पैसा जड़ है, उन्हें अपना मानना, वह तो भ्रमणा है। और निर्धनपना है, ऐसा मानना, वह भी भ्रमणा है। आत्मा निर्धन कैसा? आत्मा तो स्वरस से निर्भर है। आहाहा! अपने आनन्दरस से निर्भर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'चेतना' शब्द लिया है। वह स्वभाव का अर्थ लिया है। पहले स्वभाव का अर्थ ऐसा किया कि, शुद्धस्वभाव। ऐसा लिया था न? शुद्धस्वरूप, लिया था न? '**स्वभावे**'। '**स्वभावे**' (कहा) वहाँ शुद्धस्वरूप लिया था। परन्तु वह शुद्धस्वरूप है कौन? कि निजरस, आनन्दरस। चैतन्य का कायमी अनादि अविनाशी ज्ञानरस, दर्शनरस, चेतनारस। आहाहा! उसे स्वभाव कहते हैं, उसे शुद्धस्वरूप कहते हैं, उसे निजरस कहते हैं, उसे

चेतना का स्वभाव कहते हैं। उस चेतना के स्वभाव से भगवान परिपूर्ण भरा है। आहाहा! अरे! कहाँ देखना? बाहर देखा करता है। आहाहा! देखनेवाले को देखा नहीं और पर में सिरपच्ची की। देखनेवाले को देखा नहीं। मैं कौन हूँ अन्दर? पर में देखा। धूल... धूल बाह्य आदि। समझ में आया? देखनेवाला-जाननेवाला। रस, निर्भर। रस शब्द कहने से एकाग्रता भी बताते हैं और उसका स्वभाव भी बताते हैं। आहाहा!

वस्तु है न? आत्मा पदार्थ है न? मौजूद चीज़ है न? है तो उसका कोई स्वभाव मौजूद है न? तो उसका त्रिकाली स्वभाव क्या है? वह तो ज्ञानरस, चेतनारस के त्रिकाली स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! उसके सन्मुख होकर उसका शुद्ध उपयोग करना। वह शुद्ध उपयोगरूपी धर्म, उससे उसे मुक्ति होती है। बाकी पुण्य-पाप से स्वर्ग और नरक (मिले)। पुण्य करे तो स्वर्ग आदि (मिले)। पुण्य बहुत हो तो यह धूल के सेठिया कहते हैं न? धूल के सेठिया सब। सेठ... सेठ! यह तो श्रेष्ठ। शुद्ध चैतन्यलक्ष्मी का स्वामी हो, वह श्रेष्ठ और वह सेठ है। समझ में आया?

'**निर्भरे**' भाषा देखी? गजब काम किया है। रस से निर्भर। रसवान आत्मा, उसका रस चेतना, जानना-देखना उसका रस। भाव—स्वभाव निर्भर। उससे परिपूर्ण है। आहाहा! उसका अनुभव करना और दृष्टि करना और उपयोग करने का नाम धर्म है। सूक्ष्म बात है, बापू! जगत से अलग है। जगत को तो जानते हैं न हम तो! समझ में आया? उसे यहाँ अल्प काल में मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १९१

(शार्दूलविक्रीडित)

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं
स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः।
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते।।१२-१९१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'सः मुच्यते' [सः] सम्यग्दृष्टि जीव, [मुच्यते] सकल कर्मों का क्षयकर, अतीन्द्रिय सुखलक्षण मोक्ष को प्राप्त होता है। कैसा है? 'शुद्धो भवन्' राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणति से भिन्न होता हुआ। और कैसा है? 'स्वज्योतिरच्छोच्छ-लच्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा' [स्वज्योतिः] द्रव्य के स्वभावगुणरूप [अच्छ] निर्मल, [उच्छलत्] धाराप्रवाहरूप परिणमनशील-ऐसा जो [चैतन्य] चेतनागुण, उसरूप जो [अमृत] अतीन्द्रिय सुख, उसके [पूर] प्रवाह से [पूर्ण] तन्मय है [महिमा] माहात्म्य जिसका, ऐसा है। और कैसा है? 'नित्यमुदितः' सर्व काल अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। और कैसा है? 'नियतं सर्वापराधच्युतः' [नियतं] अवश्य कर [सर्वापराध] जितने सूक्ष्म-स्थूलरूप राग-द्वेष-मोह परिणाम, उनसे [च्युतः] सर्व प्रकार रहित है। क्या करता हुआ ऐसा होता है? 'बन्धध्वंसं उपेत्य' [बन्ध] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म की बन्धरूप पर्याय के [ध्वंसं] सत्ता के नाशरूप [उपेत्य] अवस्था को प्राप्त कर। और क्या करता हुआ ऐसा होता है? 'तत् समग्रं परद्रव्यं स्वयं त्यक्त्वा' द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसामग्री के मूल से, ममत्व को स्वयं छोड़कर। कैसा है परद्रव्य? 'अशुद्धिविधायि' अशुद्धपरिणति को बाह्यरूप निमित्तमात्र है। 'किल' निश्चय से। 'यः स्वद्रव्ये रतिं एति' [यः] जो सम्यग्दृष्टि जीव, [स्वद्रव्ये] शुद्धचैतन्य में [रति एति] निर्विकल्प अनुभव से उत्पन्न हुए सुख में मग्नपना को प्राप्त हुआ है। भावार्थ इस प्रकार है — सर्व अशुद्धपना के मिटने से, शुद्धपना होता है। उसके सहारा का है शुद्धचिद्रूप का अनुभव, ऐसा मोक्षमार्ग है।।१२-१९१।।

पौष शुक्ल १४, रविवार, दिनांक-२२-०१-१९७८, कलश-१९१, प्रवचन-२१२

टीका चलती है, कलशटीका। मोक्ष अधिकार १९१ श्लोक।

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं
स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः।
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते।।१२-१९१।।

मोक्ष (अधिकार) की अन्तिम गाथा (श्लोक) है, एक कलश बाकी है। यह सब अन्तिम कलश है न? '**सः मुच्यते**' यहाँ से लिया है। वह जीव बन्धन से मुक्त होता है। कौन? सम्यग्दृष्टि। पहली शुरुआत यह ली है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि में प्रथम बन्धन रहित अबन्धस्वरूप चैतन्य का प्रथम उसे सम्यग्दृष्टि में अनुभव होता है। मुक्तस्वरूप आत्मा है। अबन्धस्वरूप कहो या मुक्तस्वरूप कहो। वह मुक्तस्वरूप द्रव्यस्वरूप अत्यन्त राग और कर्म के सम्बन्ध से भिन्न मुक्त है। उस मुक्तपने का जिसे प्रथम सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्दर्शन, उसमें वह मुक्तस्वरूप है—ऐसा उसकी प्रतीति में आता है। और उस सम्यग्दृष्टि में सत् स्वरूप जो पूर्ण उसका ज्ञान होने से उसे अतीन्द्रिय आनन्द का थोड़ा स्वाद भी आता है। आहाहा! इसे सम्यग्दृष्टि, शुरुआत कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव '<u>मुच्यते</u>' यह शब्द है न? यहाँ पूर्ण बतलाना है, परन्तु प्रथम '**मुच्यते**' राग और कर्म के सम्बन्ध से मेरी चीज़ पूर्ण शुद्ध आनन्द है, ऐसा अन्तर में भान होने पर यह राग और कर्म से मुक्त हूँ, ऐसी मुक्ति तो दृष्टि में हो गयी। आहाहा! दृष्टि में तो मुक्तस्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि हुई। तब वह बन्धन से मुक्त होने के उपाय में चढ़ा। यहाँ तो अनादि काल से राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव कर-करके बन्धन में दुःखी होकर भटकता है। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन की भी खबर नहीं होती, मुक्ति—मोक्ष तो बाद में। समझ में आया?

यहाँ तो पहले से उठाया, '**सः**' **सम्यग्दृष्टि...** '**सः**' अर्थात् वह। वह अर्थात् सम्यग्दृष्टि अर्थात् सत् दर्शन जिसे हुआ है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यवस्तु निर्मल आनन्द का

जिसे वर्तमान पर्याय में भान हुआ है, प्रतीति हुई है और आंशिक मुक्तस्वरूप पर्याय में प्रगट हुआ है। वस्तु मुक्त है, पर्याय में आंशिक मुक्त शुरुआत हुई है। आहाहा! समझ में आया? वह **सम्यग्दृष्टि जीव सकल कर्मों का क्षयकर...** अब पूर्ण मुक्त की बात करते हैं। पूर्ण अबन्धस्वभाव जो आत्मा का, उसे प्रगट करने के लिये, पूर्ण अशुद्धता का निमित्तकारण जो कर्म, उस कर्म का नाश करता है। आहाहा! है? **सकल कर्मों का क्षयकर अतीन्द्रिय सुखलक्षण मोक्ष को प्राप्त होता है।** मोक्ष की व्याख्या की।

मोक्ष अर्थात् क्या? ऐसे तो मोक्ष अर्थात् छूटना होता है, इसलिए पहला अर्थ यह किया—कर्म का क्षय करके। मोक्ष का अर्थ—व्याख्या पहली छूटना, ऐसा होता है न? अर्थात् कि राग और द्वेष और कर्म से सर्वथा मुक्त हुआ। यह मोक्ष की व्याख्या नास्ति से हुई। अस्ति से कहो तो वह अनन्त है। **अतीन्द्रियसुखलक्षण मोक्ष...** यह अस्ति से हुआ। जिसे अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है, उसे यहाँ मोक्ष कहा जाता है। आहाहा! यह इन्द्रियों के सुखों में अज्ञानी की जो कल्पना है, वह तो मिथ्या भ्रम है। पैसे में, स्त्री में, इज्जत में, कीर्ति में मुझे ठीक पड़ता है, वह तो महा बड़ा पाखण्ड पाप है। नरक और निगोद की गति में ले जाने के ये सब पाप हैं। आहाहा! सामने लेना है न? एक ओर मोक्ष तथा एक ओर निगोद। बीच में गति मिलती है नरक की या स्वर्ग की, वह तो शुभाशुभ परिणाम का फल है। परन्तु वास्तविक तत्त्व का अनाराधक अर्थात् तत्त्व का विराधक, उसका फल उसे निगोद होता है। आहाहा!

जिसे आत्मा राग से भिन्न है, ऐसा नहीं मानकर, राग वह मैं, पुण्य वह मैं और पुण्य के फल जो यह मिले—लक्ष्मी, धूल, संयोग वह मैं—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव वह तत्त्व का विराधकभाव, तत्त्व का अनाराधकभाव है, उसके फलरूप से निगोद है। एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव को अनन्त दुःख, ऐसे निगोद में या लहसुन में या प्याज में वह अवतरित होनेवाले हैं। आहाहा! वह अनन्त निगोद तत्त्व की विराधना का फल है और अनन्त सुखरूपी मोक्ष, वह शुद्ध चैतन्य की आराधना का फल है। समझ में आया? आहाहा! बीच में शुभ-अशुभभाव आवे, उनकी गति होती है। वह कहीं मूल चीज़ नहीं है, वह गति कहीं लम्बे काल नहीं रहती। स्वर्ग की गति रहे तो

थोड़ा काल और नरक की गति रहे तो थोड़ा काल। इसमें (निगोद में) तो अनन्त काल (जाता है)। जिसने आत्मा भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप का, जिसने विराधन किया... आहाहा! अर्थात् कि राग और द्वेष, पुण्य और पाप तथा उनके फल, वे सब मुझे हैं, मेरे हैं—ऐसा जिसने तत्त्व का विरोध किया, उसके फलरूप से परमात्मा निगोद कहते हैं। आहाहा!

उसके सामने अब यहाँ तो बात है। तत्त्व का आराधक। अब तत्त्व जो ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा, उसकी सेवा करनेवाला अर्थात् आराधक। पर्याय में है न वह तो? आहाहा! उसके फलरूप से **अतीन्द्रियसुखलक्षण...** मोक्ष का लक्षण कहा। मोक्ष अर्थात् क्या? कि अतीन्द्रिय आनन्द। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त है, वह जिसका लक्षण है—ऐसा मोक्ष। वह सम्यग्दृष्टि राग और कर्म के सर्वथा नाश से वह अनन्त सुख के लक्षणवाले मोक्ष को पाता है। आहाहा! और (तत्त्व का विराधक) अनन्त दुःख के लक्षणवाली निगोद आदि गति को प्राप्त करता है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है? 'शुद्धः भवन्' अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दलक्षण मोक्ष को (पाता है)। सम्यग्दृष्टि—स्वरूप का आराधक, शुद्ध चैतन्यस्वरूप की सेवा करनेवाला... आहाहा! वह कैसा है? **'शुद्धः भवन्'** वह शुद्ध होता हुआ। इसकी व्याख्या जरा की है कि **राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति से भिन्न होता हुआ।** ऐसा। पुण्य और पाप के भाव वे सब राग, द्वेष और दुःख है। आहाहा! चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, यह कमाना, कमाना वह अकेला पाप है, तीव्र दुःख है और दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, भक्ति, वह राग मन्द है, वह भी दुःख है। आहाहा! दोनों दुःख है। दोनों दुःख की यहाँ राग-द्वेषरूपी व्याख्या की। उस सुख के सामने लेना है न?

राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध... दशा से **भिन्न...** आहाहा! जिसे राग, द्वेष और मोह का एक अंश रहा नहीं, उनसे भिन्न होता हुआ। **'शुद्धः भवन्'** (अर्थात्) शुद्ध होता हुआ, ऐसा शब्द लिया है। अर्थात् कि पर्याय में—अवस्था में अशुद्ध था। इससे उसे राग-द्वेष-मोह रहित इसका अर्थ करना पड़ा। **राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति...** उसकी थी। पर्याय में यह दशा थी। उससे भिन्न हुआ। समझ में आया? आहाहा! वस्तु

तो आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चिदानन्द आत्मा है, परन्तु उसकी पर्याय में अशुद्धता, पुण्य-पाप आदि अशुद्ध राग-द्वेष के भाव हैं और वह मैं हूँ, ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह दुःखरूप है, उससे भिन्न हुआ है। सम्यग्दृष्टि इस प्रकार भिन्न हुआ तब उसे मुक्ति होती है। आहाहा! समझ में आया?

अशुद्ध परिणति... परिणति अर्थात् अवस्था। यह राग-द्वेष-मोह की मलिन—अशुद्धदशा। अशुद्ध में दोनों आते हैं, पुण्य और पाप दोनों। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध, आमदनी, कमाना, पैसे का ब्याज उपजाना, दुकान की व्यवस्था करना, वह सब अकेला पाप।

मुमुक्षु : पैसे का ब्याज न उपजावे परन्तु बैंक में रखे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : बैंक में रखे तो भी पाप। वह ब्याज उपजाने के लिये वहाँ रखता है। आहाहा! और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव वह पुण्य। परन्तु दोनों अशुद्ध और मलिन हैं। आहाहा! मुक्ति कहनी है न यहाँ तो?

उस **अशुद्ध परिणति से भिन्न होता हुआ।** भिन्न होता हुआ। '**शुद्धः भवन्**' है न? '**शुद्धः भवन्**' शुद्ध हुआ, ऐसा। '**शुद्धः भवन्**' इसका अर्थ यह हुआ कि अनादि से पर्याय में—अवस्था में अशुद्ध भवन—अशुद्ध था। वस्तु तो शुद्ध चिदानन्द पूर्ण है, परन्तु पर्याय में अशुद्ध था, वह '**शुद्धः भवन्**' उस अशुद्धता का नाश करके शुद्धदशा प्रगट की। जैसा उसका स्वभाव था, वैसी दशा प्रगट की। आहाहा!

और कैसा है? यहाँ होता हुआ, ऐसा कहा न? भिन्न होता हुआ। '**शुद्धः भवन्**' है न? इसका अर्थ ऐसा भी हुआ कि कर्म उसे छूटे, इसलिए शुद्ध हुआ, (ऐसा नहीं है)। वह स्वयं शुद्ध पुरुषार्थ से शुद्ध हुआ है। '**शुद्धः भवन्**' स्वयं पुरुषार्थ से पूर्ण शुद्ध निर्मल, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति की दशा को स्वयं ने प्राप्त की है। कर्म नाश हुए, इसलिए यह हुआ है, यह तो नास्ति से एक व्याख्या की है। समझ में आया? आहाहा! निश्चय से तो यह राग-द्वेष की अशुद्धता का नाश हुआ, इसलिए शुद्ध हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उस समय में शुद्ध की अवस्था षट्कारकरूप से परिणति मुक्ति हुई है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में, हों! द्रव्य-गुण के कारण नहीं। आहाहा!

पर्याय निर्मल शुद्ध मुक्ति की अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान (हुए), वह एक-एक पर्याय परिपूर्ण आनन्द और ज्ञान, दर्शन आदि स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता, वह एक-एक पर्याय षट्कारक से परिणति होकर शुद्ध हुई है। आहाहा! अनन्त केवलज्ञान प्राप्त हुए परमात्मस्वरूप आत्मा, वह भी केवलज्ञान की पर्याय षट्कारक से परिणति होकर पाये हैं। अनन्त आनन्द पाये, वह आनन्द भी षट्कारक—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण से आनन्द की एक-एक पर्याय पाये हैं। ज्ञान की पर्याय से आनन्द की पर्याय पाये हैं, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म वस्तु है। कुछ खबर नहीं होती। अनादि से भटकता... आहाहा! इसलिए '**शुद्धः भवन्**' शब्द प्रयोग किया। शुद्ध होता हुआ। एक-एक पर्याय जो वर्तमान दुःखरूप है, उससे मुक्त हुआ है, इसलिए यह शुद्ध हुआ है, वह भी एक व्यवहार है। आहाहा! परमार्थ से तो भगवान स्वयं ही अपनी षट्कारक की पवित्रता से शुद्धदशारूप परिणमता है, इसलिए वह शुद्ध हुआ है। आहाहा! कठिन बातें, ऐसा है।

और कैसा है? 'स्वज्योतिरच्छोच्छलच्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा' आहाहा! क्या कहते हैं? '**स्वज्योतिरच्छोच्छलच्चैत**' '**उछलत**' है। चैतन्य अमृतपूर परिपूर्ण महिमा। आहाहा! **द्रव्य के स्वभावगुणरूप...** द्रव्य के स्वभावगुणरूप। अब वर्तमान की बात लेनी है। द्रव्य का स्वभावगुणरूप तो परिपूर्ण निर्मल है, परन्तु उस स्वभावगुणरूप निर्मल वर्तमान धारा हुई। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् स्वरूप में रमणता, आनन्द की लीनता करते-करते केवलज्ञान अर्थात् मुक्तदशा हो, वह कैसी है? कि वह स्वभावगुणरूप निर्मल परिणति है। आहाहा! वह उसका स्वभाव जो शुद्ध गुण था, उस गुण की जो परिणति है। आहाहा! मोक्ष अर्थात् ऐसी कोई चीज़ नहीं कि मानो ऊपर लटकना है। मुक्तिशिला के ऊपर जाना, वह तो क्षेत्र की व्यवहार की बातें हैं। अपनी दशा में मलिनता अर्थात् दुःख का जो अनादि से वेदन है, उसका भी व्यय करके शुद्ध उत्पत्ति करना, वह भी व्यवहार। परन्तु परमार्थ से अपने से शुद्ध उत्पत्ति होती है, वह उसका निश्चय है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा समय मिले कहाँ?

शान्तिभाई! जवाहरात के कारण और यह पत्थर के कारण। पोपटभाई को पत्थर थे। वे पोपटभाई गये। अभी तो यहाँ बैठे थे। आज रविवार है, गुरुवार को गये और

शनिवार रात्रि को समाप्त। भाई आनेवाले हैं, कहते हैं, हों! हसमुख, हें? आनेवाला है। दो-तीन करोड़ रुपये, चार करोड़ हैं, कितने ही करोड़ थे, ऐसा कहते हैं। अभी यहाँ बैठे थे। दीवाली से पहले। शनिवार की रात्रि में (कहा), मैं जाता हूँ। आहाहा! हो गया। बापूजी! कैसे हैं? छह लड़के हैं। पाँच-पाँच लाख का एक-एक को... क्या कहलाता है? ब्लॉक। पाँच-पाँच लाख का एक ब्लॉक, ऐसे सात ब्लॉक। छह लड़के और एक स्वयं। मुझे दुःखता है। ऊपर से लड़के को बुलाया। प्रायः हसमुख आयेगा। आज आनेवाला है। बड़ा लड़का है न? आया, कहे, बापूजी! कैसे हैं? (तो कहा), जाता हूँ। बस! इतना (बोले)। करोड़ों रुपये। बहुत कहते हैं, कोई तो कहता था, छह-सात-आठ करोड़ रुपये हैं। परन्तु धूल भी कहीं साथ आयी नहीं। और दुःखी। दुःखता है। बुलाओ, हसमुख को। हसमुख ऊपर से नीचे उतरे, वहाँ तो, बापूजी! कैसे हैं? तो कहा, जाता हूँ। अब शरीर नहीं रहेगा। आहाहा! ऐसे दुःख, इससे तो अनन्तगुणे दुःख नरक में है, बापू! वे दुःख तूने सहन किये, तुझे खबर नहीं। आहाहा! उन दुःखों से मुक्त होना, यह भी व्यवहार और अनन्त आनन्द और सुख की वर्तमान प्राप्ति होना, वह परमार्थ। आहाहा! क्योंकि मोक्ष की पर्याय भी सत् है और सत् है, उसे कोई हेतु नहीं हो सकता। आहाहा! व्यय हुआ, इसलिए हुआ, यह भी नहीं। उत्पाद, उत्पाद के कारण से; व्यय, व्यय के कारण से; ध्रुव, ध्रुव के कारण से। आहाहा! १०१ गाथा, प्रवचनसार १०१ गाथा। भाई आया है न?

केवलज्ञान का उत्पाद हुआ, वह उत्पाद, उत्पाद के कारण से (हुआ है)। अशुद्धता टली, इसलिए उसे कर्म टला, इसलिए, यह भी नहीं है। आहाहा! और अशुद्धता का व्यय हुआ, नाश हुआ वह भी उत्पाद हुआ इसलिए नाश हुआ, ऐसा भी नहीं है। व्यय, व्यय के कारण से; उत्पाद, उत्पाद के कारण से; ध्रुव, ध्रुव के कारण से। क्या होगा यह उत्पाद? यह बाहर में उत्पाद करे, ऐसा उत्पाद होगा? यह लोग उत्पाद करते हैं न, घनघनाहट! पूरे दिन यह धन्धा। वह उत्पाद होगा? वह तो उत्पात है और यह तो उत्पत्ति है। आहाहा!

अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... सागर

उछला। आहाहा! पर्याय में अनन्त आनन्द और शान्ति (प्रगट हुए), इसका नाम मुक्ति, इसका नाम मोक्ष। यह '**शुद्धः भवन्**'। आहाहा! **द्रव्य के स्वभावगुणरूप निर्मल,...** है? '**उच्छलत्**' उछला। उछला, कहते हैं। परिणमन हुआ, ऐसा। '**उच्छलत्**' अर्थात् **धाराप्रवाहरूप परिणमनशील...** आहाहा! संसार में अनादि से एक समय के विरह बिना अनन्त धारावाही दुःख को भोगता था। आहाहा! वह यहाँ आत्मज्ञानी प्राणी अपने स्वरूप का आराधन करके अनन्त धारावाही पर्याय, प्रवाह, जिसकी पर्याय टूटे नहीं, धाराप्रवाह... आहाहा! धाराप्रवाह, समझ में आया? यह उस उसरूप गये थे। नहीं वह बड़ा क्या कहलाता है? 'जोगफॉल' जोधपुर में ऊपर से सदा पानी का बड़ा प्रपात बहता है। परन्तु वह तो अपने यहाँ एक पानी बहता था, यहाँ बगसरा। बगसरा है न वहाँ तीन नदियाँ हैं। बगसरा गाँव के नीचे नदी है, ऐसे नदी है और ऐसे नदी है (ऐसे) तीन नदियाँ हैं। हम एक बार (संवत्) १९८४ में गये हुए हैं। तब नदी में इतना पानी ऐसे एक प्रवाह से (था) कि वहाँ एक मशीन लगायी हुई थी। गाँधी! राजकोट के एक गाँधी थे। यह गुलाबचन्द गाँधी के कोई परिवारी थे। नाम भूल गया। मैं दिशा को गया था, वहाँ वे खड़े थे, कहा, यह (क्या)? (उन्होंने कहा) इस मशीन को चलाना नहीं पड़ता। पानी का प्रपात मशीन पर पड़े तो (चलने लगता है)। गाँधी थे, गाँधी। नाम भूल गया। १९८४ की बात है। ऐसा प्रापत, नदी के पानी का प्रपात, हों! पानी इतना कि मशीन को चलाना न पड़े, वह मशीन चला करे।

इसी प्रकार यहाँ आत्मा में से आनन्द का धोध-प्रवाह बहता है। आहाहा! जैसे टूटक बिना अनादि निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक अनन्त दुःख के धाराप्रवाही को वेदता है, आहाहा! इसी प्रकार मोक्ष में अनन्त धाराप्रवाही, प्रवाह शब्द है न? प्रवाह रखा है न? प्रवाह। आहाहा! अनन्त धाराप्रवाहरूप परिणमन। जिसकी अवस्थाशील जिसका स्वभाव हो गया। आहाहा! **परिणमनशील...** जिसकी पर्याय का स्वभाव अनन्त आनन्द हो गया। आहाहा! उसका नाम मुक्ति। वह मुक्ति सम्यग्दृष्टि पाता है, अज्ञानी को निगोद मिलता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

परिणमन और 'शील' शब्द प्रयोग किया है। परिणमन—अनन्त आनन्द की धारा

प्रवाहरूप जिसका स्वभाव है, ऐसा। अनन्त आनन्द की धारा प्रवाहरूप जिसका स्वभाव है। आहाहा! **ऐसा जो चेतनागुण,...** अर्थात् वर्तमान दशा की बात है, हों! **उसरूप जो... 'अमृत'** आहाहा! पर्याय में अमृतधारा बही, कहते हैं। आहाहा! धर्म की पहली दृष्टि सम्यग्दर्शन होने पर सम्यग्दृष्टि अभी चौथा गुणस्थान, हों! यह बारह व्रत धारण करे, वह श्रावक तो बाद में आवे। अभी तो जो श्रावक है, वे सब समझने जैसे हैं। सच्चा श्रावक तो उसे कहते हैं, जिसे यह पहला सम्यग्दर्शन में अमृत का स्वाद आया हो, नमूना आया हो। आहाहा! आत्मा तो अतीन्द्रिय अमृत का सागर है। सेठ! तुम्हारा सागर!

मुमुक्षु : वह तो संसार सागर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है, बात तो सच्ची है। आहाहा!

यह तो अनन्त आनन्द का सागर। प्रवाह कहते हैं कि अन्दर से बहता है। आहाहा! कैसा? **जो अतीन्द्रिय सुख, उसके 'पूर'....** आहाहा! जैसे पानी का पूर आता है न? उसी प्रकार पर्याय में मोक्ष में अनन्त आनन्द का पूर बहता है। आहाहा! संसार में मिथ्यादृष्टि को अनन्त दुःख का पूर बहता है। यह सब पैसेवाले सेठिया सुखी नहीं, हों! ये सब बेचारे दुःखी हैं, भिखारी, रंक हैं, सब रंक हैं। आत्मा के भान बिना के, लक्ष्मी बिना के को शास्त्र में वरांका कहा है। भिखारी है, भिखारी है, याचक है, याचक। यह लाओ, यह लाओ, यह लाओ (किया करते हैं)। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव अपने आनन्द के स्वभाव का नमूना तो मिला था, उसमें तो लीन होने पर उसे धाराप्रवाहरूपी मोक्ष की दशा अतीन्द्रिय सुख का प्रवाह। उसका प्रवाह। आहाहा! हमारे उमराला में बड़ी नदी है। कालुभार (नदी है)। छोटी उम्र में हम लड़के दस-दस वर्ष के थे तो नदी में खेलते थे। वहाँ बुजुर्ग-वृद्ध खड़े हों, वे चिल्लाहट मचाये, एकदम शोर मचाये, ऐ... लड़कों! निकल जाओ। यहाँ कोरी नदी, कंकर, ऊपर वर्षा का पानी नहीं, बूँद नहीं परन्तु ऊपर से बीस-बीस कोस से वर्षा का पानी आवे— घोडापूर। घोड़ा जैसे ऊँचा आता है न, वैसे उतना नदी का प्रवाह आवे। पानी का दल ऊपर से चला आवे। उसे घोड़ापूर कहते हैं। घोड़ा जितना ऊँचा और घोड़ा की गति। एकदम गति। इसलिए आगे खड़े हों, उन लड़कों को शोर मचाये, निकलो रे निकलो।

परन्तु क्या है ? वह पानी घोड़ा आया, अभी चला आयेगा घोड़ापूर। घोड़ा जितना ऊँचा और एकदम गति। क्योंकि चारों ओर नदी के वर्षा का पानी इकट्ठा होकर (आवे)। इतना-इतना दल पानी का और यहाँ कंकर हों, चला आता है। यहाँ कहते हैं, अन्दर ऐसा आनन्द का पूर बहता है। आहाहा! यह मोक्ष की व्याख्या है। संसार अज्ञानी को आनन्द के पूर के बदले दुःख के पूर बहते हैं। दुःखी हैं, बेचारे दुःख में डूबना हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अतीन्द्रिय सुख, उसका पूर—उसका प्रवाह है। उसका पूर। पूर्ण शब्द है। ऐसा कि तन्मय है, पूर्ण दशा है। आहाहा! जिसकी पर्याय में अतीन्द्रिय सुख के पूर का प्रवाह तन्मयरूप से वर्तता है। आहाहा! उसे मोक्ष कहते हैं और उसके मार्ग को मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! वह 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' अभी तो सम्यग्दर्शन अर्थात् कुछ नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा। अब व्रत और तप ले तो श्रावक और साधु हो जाये। कुछ भान नहीं होता। अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सम्यग्दर्शन में तो अनन्त गुणों का अंकुर फूटता है, और यह है, वह अब पूरे बड़े फल फले। आहाहा! मोक्ष की पर्याय में तो, जो अंकुर फूटे थे (उसके फल पके हैं)। आहाहा! अनन्त गुण का समुद्र भगवान आत्मा, उसके सन्मुख और आश्रय होने पर जितने गुण हैं, उनके थोड़े अंकुर फूटे। आहाहा! सर्व गुणांश, वह समकित—कहा है न? सर्व गुणांश समकित—सर्व गुण का अंश प्रगट होता है, वह समकित। आहाहा! उसमें से जिसे पूर्ण गुण की पर्याय के पूर बहे। आहाहा! मोक्ष। पूर जिसका, वह भी पूर्ण। '**पूर्ण**' का अर्थ तन्मय किया। पूर्ण तन्मय। वस्तु एक समय की पर्याय में। आहाहा!

अभी कहा नहीं कि, नारकी के एक क्षण के दुःख को करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कहा जा सकता, भाई! ऐसे दुःख में तू अनन्त बार गया तो आनन्द की क्या बात करनी? ऐसा कहते हैं। दुःख तो विकार है और विकार परिपूर्ण तो कहीं हो सकता नहीं। भाई! विकार है, वह परिपूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि द्रव्य है तो पूर्ण विकारी हो ही नहीं सकता। आहाहा! इतनी उसकी योग्यता रहती ही है। आहाहा! जैसे शुभभाव में

शुद्ध का अंश कहा है न? आहाहा! जिसे अनन्त में पूर्ण दशा प्रगट हुई... आहाहा! उसकी पूर्णता की बातें क्या कहना? कहते हैं। आहाहा!

ऐसे पूर्ण तन्मय की **'महिमा' माहात्म्य जिसका...** है, ऐसा मोक्ष है। आहाहा! है तो यह सब पर्याय, हों! हें? यह तो पर्याय है। सम्यग्दर्शन, वह पर्याय है; सम्यग्ज्ञान, वह पर्याय है; चारित्र, वह पर्याय है; केवलज्ञान, वह पर्याय है। आहाहा! पर्याय का भी इतना जोर है। एक समय की अवधि है, तथापि वह परिपूर्ण अनन्त सुख के स्वभाव के पूर से जिसकी महिमा / माहात्म्य है। आहाहा! महिमा है, **ऐसा है।**

और कैसा है? 'नित्यमुदितः' सर्व काल अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। मोक्ष... मोक्ष। आहाहा! आत्मा की जहाँ आनन्ददशा प्रगट हुई, वह तो सर्वकाल उसरूप रहनेवाली है अब। आहाहा! **सर्व काल... 'नित्यमुदितः'** सदा प्रगट है। **सर्व काल अतीन्द्रिय सुखस्वरूप...** इतना कहा। प्रश्न तो इतना है, नित्य उदय है, ऐसा। वह पूर्ण आनन्द और पूर्ण प्रवाह जो प्रगट हुआ, वह कायम नित्य रहनेवाला है। है तो पर्याय, परन्तु पर्याय ऐसी की ऐसी, ऐसी की ऐसी, ऐसी की ऐसी रहेगी, ऐसा। है तो एक समय की परन्तु ऐसी की ऐसी कायम रहेगी। आहाहा!

'नियतं सर्वापराधच्युतः' अब यह अतीन्द्रिय सुख पाया किस प्रकार? जरा अस्ति-नास्ति करते हैं। निश्चय से **'नियतं'** अर्थात् जरूर। **अवश्य कर 'सर्वापराध' जितने सूक्ष्मस्थूलरूप राग-द्वेष-मोह परिणाम,...** सूक्ष्म या स्थूल राग-द्वेष-मोहरूपी पर्याय। **उनसे 'च्युतः' सर्व प्रकार रहित है।** आहाहा! सर्व प्रकार से रहित है, वहाँ कोई दुःख का अंश नहीं है। आहाहा! आनन्द... आनन्द... आनन्द... वह अतीन्द्रिय आनन्द। यह इन्द्रिय आनन्द में दुःख है, यह तो दुःख है, यह तो दुःखी प्राणी है। इन्द्रिय के आनन्द में आनन्द नहीं, वह तो मानता है कि मुझे ठीक है। वह तो दुःख है। आहाहा! यह तो आनन्द का पूर बहता है। नित्य रहनेवाला है। आहाहा!

क्या करता हुआ ऐसा होता है? 'बन्धध्वंसं उपेत्य' ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म की बन्धरूप पर्याय के सत्ता के नाशरूप... सत्ता नाश कर डालता है। नहीं कहते कि यह सत्यानाश हो गया। वह सत्यानाश नहीं, सत्ता नाश। वे इन्दौर के पण्डित कहते,

बंसीधरजी। सत्तानाश, सत्यानाश। अशुद्धता का तो सत्यानाश कर दिया और सत्य ऐसा यह आनन्द और ज्ञान जिसे सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के फलरूप से जिसे दशा प्रगट हुई... आहाहा! वह तो कायम रहनेवाली है, ऐसा।

सत्ता के नाशरूप अवस्था को प्राप्त कर। देखा? अवस्था ली। अशुद्ध अवस्था के नाश को पाकर शुद्ध अवस्था पाकर। ज्ञान तो कराते हैं न! **और क्या करता हुआ ऐसा होता है? 'तत् समग्रं परद्रव्यं स्वयं त्यक्त्वा'** आहाहा! यह **द्रव्यकर्म...** अर्थात् जड़कर्म ज्ञानावरणादि। **भावकर्म...** अर्थात् पुण्य-पाप के भाव। **नोकर्म...** अर्थात् शरीर, वाणी, मन। इन सब **सामग्री के मूल से ममत्व को स्वयं छोड़कर।** आहाहा! सम्यग्दर्शन में यह मूल से सब चीज़ के ममत्व से रहित होकर। एक राग का कण—दया, दान, मेरे हैं, इससे रहित समकिती है। आहाहा! और उसकी तो अब अत्यन्त पूर्ण दशा हो गयी है। आहाहा!

'तत् समग्रं परद्रव्यं स्वयं त्यक्त्वा' भाषा है न? **'स्वयं त्यक्त्वा' स्वयं छोड़कर।** स्वयं स्वतः पुरुषार्थ से अशुद्धता को छोड़कर, ऐसा कहते हैं। कर्म छूटे, इसलिए छूटा —ऐसा भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अशुद्धता को स्वयं छोड़कर। स्वयं छोड़कर, स्वयं मोक्ष की उत्पत्ति की है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **ममत्व को स्वयं छोड़कर।**

कैसा है परद्रव्य? अब वह परद्रव्य कैसा है? **'अशुद्धिविधायि' अशुद्ध परिणति को बाह्यरूप निमित्त मात्र है।** बाह्य कर्म जो हैं, जड़कर्म आदि वे सब अन्दर विकारी परिणाम को बाह्य निमित्त हैं। विकारी परिणाम तो स्वयं ही करते हैं, वह कहीं कर्म से हुए नहीं। आहाहा! है? **द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसामग्री के मूल से ममत्व को स्वयं छोड़कर। कैसा है परद्रव्य?** कि भावकर्म जो **अशुद्ध परिणति को बाह्यरूप निमित्त मात्र है।** आहाहा! कर्म कहीं उसे विकार कराता नहीं। स्वयं उल्टा पड़कर करता है, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है। आहाहा!

'अशुद्धिविधायि' अशुद्धि का निमित्त, ऐसा। **'किल' निश्चय से। 'यः स्वद्रव्ये रतिं एति'** आहाहा! परद्रव्य के भाव को छोड़कर और स्वद्रव्य में रति। आत्मा आनन्द

स्वरूप भगवान है, उसमें **सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध चैतन्य में रत हुआ है...** आहाहा! रति, रति का अर्थ किया। लीन हुआ है, **रत हुआ है अर्थात् निर्विकल्प अनुभव से उत्पन्न हुए सुख में मग्नपना को प्राप्त हुआ है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव को मुक्ति होती है। जिसे राग और पुण्य, दया, दान मेरे—ऐसी मान्यता है, उसे मिथ्यादृष्टि को संसार-निगोद फल है। आहाहा! उसे यह मोक्ष का फल कैसा है? कि नित्य रहनेवाला है। आहाहा! उसमें लीन हुआ है।

भावार्थ इस प्रकार है—सर्व अशुद्धपना के मिटने से शुद्धपना... ऐसा। सब पूर्ण अशुद्ध नाश होने पर शुद्धपना प्रगट होता है। **उसके सहारा का है शुद्ध चिद्रूप का अनुभव,...** आहाहा! उसे सहारा है शुद्ध अनुभव। शुद्ध परिणति को सहारा शुद्ध का अनुभव, **ऐसा मोक्षमार्ग है।** आहाहा! शुद्धपरिणति को सहारा है अपना पुरुषार्थ, ऐसा कहते हैं। **शुद्ध चिद्रूप का अनुभव,...** आनन्द का नाथ भगवान का अनुभव, वह मोक्ष का मार्ग है। बीच में दया, दान, व्रत, परिणाम आवें, वे तो बन्ध के कारण हैं, मोक्ष का मार्ग नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १९२

(मन्दाक्रान्ता)

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि।।१३-१९२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'एतत् पूर्णं ज्ञानं ज्वलितं' [एतत्] जिस प्रकार कहा है कि [पूर्णं ज्ञानं] समस्त कर्ममलकलंक का विनाश होने से, जीवद्रव्य जैसा था, अनन्त गुण विराजमान, वैसा [ज्वलितं] प्रगट हुआ। कैसा प्रगट हुआ? 'मोक्षं कलयत्' [मोक्षं] जीव की जो नि:कर्मरूप अवस्था, उस [कलयत्] अवस्थारूप परिणमता हुआ। कैसा है मोक्ष? 'अक्षय्यं' आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर है, [अतुलं] उपमारहित है। किस कारण से? 'बन्धच्छेदात्' [बन्ध] ज्ञानावरणादि आठ कर्म के [छेदात्] मूल सत्ता से नाश द्वारा। कैसा शुद्धज्ञान? 'नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थं' [नित्योद्योत] शाश्वत प्रकाश से [स्फुटित] प्रगट हुआ है [सहजावस्थं] अनन्त गुण विराजमान शुद्धजीवद्रव्य किसको, ऐसा है। और कैसा है? 'एकान्तशुद्धं' सर्वथा प्रकार शुद्ध है। और कैसा है? 'अत्यन्त-गम्भीरधीरं' [अत्यन्तगम्भीर] अनन्त गुण विराजमान-ऐसा है, [धीरं] सर्व काल शाश्वत है। किस कारण से? 'एकाकारस्वरसभरत:' [एकाकार] एकरूप हुए [स्वरस] अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य के [भरत:] अतिशय के कारण। और कैसा है? 'स्वस्य अचले महिम्नि लीनं' [स्वस्य अचले महिम्नि] अपने निष्कम्प प्रताप से [लीनं] मग्नरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्ष में, आत्मद्रव्य स्वाधीन है; अन्यत्र चतुर्गति में जीव, पराधीन है। मोक्ष का स्वरूप कहा।।१३-१९२।।

पौष कृष्ण १, मंगलवार, दिनांक-२४-०१-१९७८, कलश-१९२, प्रवचन-२१३

यह कलशटीका चलती है। मोक्ष अधिकार का अन्तिम कलश है। मोक्ष... मोक्ष। मोक्ष की व्याख्या करेंगे।

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत–
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि।।१३–१९२।।

'एतत् पूर्णं ज्ञानं ज्वलितं' क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा जो है आत्मा अन्दर, वह तो ज्ञानानन्द, सहजानन्दस्वरूप है। उसका मूल असली स्वरूप ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है। यह उसकी प्रगट दशा में पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है और चार गति परिभ्रमण से रहित हो, उसका नाम मोक्ष कहते हैं। मोक्ष, वह आत्मा का अतीन्द्रिय शुद्ध परिणाम है तो उसका कारण भी अतीन्द्रिय शुद्ध परिणाम होना चाहिए। समझ में आया ?

मोक्ष क्या है ? है न ? यह आया न ? **'एतत् पूर्णं ज्ञानं ज्वलितं' जिस प्रकार कहा है कि समस्त कर्ममलकलंक का विनाश होने से, जीवद्रव्य जैसा था...** है ? सूक्ष्म बात इसमें कही है। जीव जो अन्दर आत्मा है, वह तो जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। था कैसा ? कि अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त अतीन्द्रिय शान्ति, स्वच्छता का पिण्ड / पुंज आत्मा है। यह आत्मा जैसा था, जैसे छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट थी, तो घोंटने से बाहर प्रगट आती है। वह प्राप्त की प्राप्ति है; इसी प्रकार जैसा था, चौंसठ पहरी चरपराहट उसमें—छोटी पीपर में थी तो घोंटने से (बाहर आयी)। चौंसठ पहरी या रुपया कहो या सोलह आना कहो, (वह) प्रगट होती है। इसी प्रकार जीवद्रव्य जैसा था... आहाहा! है ? यह मोक्ष की व्याख्या करते हैं।

यह भगवान आत्मा देह से, यह तो मिट्टी, जड़, धूल है। इसे जाननेवाला। निश्चय से तो ऐसा है, जरा सूक्ष्म पड़ेगा, अपनी वर्तमान ज्ञान की जो पर्याय है, ज्ञान की पर्याय पर को जानती है, वह तो असद्भूतनय से कहा गया है। वास्तव में तो अपनी ज्ञान की पर्याय में पर जानने में आता है, यह व्यवहार है, परन्तु उस पर्याय में अपना ज्ञान होता है, वह निश्चय है। यह जिसकी सत्ता में जानने में आता है, सत्ता अर्थात् जिसकी पर्याय—अवस्था—हालत वर्तमान। यह तो जीवद्रव्य की व्याख्या है, परन्तु वर्तमान में

जो ज्ञान की पर्याय—अवस्था है, उसमें यह जानने में आता है, यह वास्तव में वह (पर) जानने में नहीं आता। जानने में तो अपनी ज्ञान की वर्तमान अवस्था की ताकत जानने में आती है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! धर्म बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने बाहर से मान लिया है, यह दया, दान, व्रत, भक्ति और तप, वह धर्म-बर्म नहीं। धर्म अन्तर की कोई अपूर्व चीज़ है।

कहते हैं कि एक समय की अपनी जो वर्तमान दशा प्रगट है, उस दशा में यह... यह... यह... जानने में आता है, यह कहना व्यवहार है। निश्चय से तो अपनी ज्ञान की पर्याय अपने से जानने की प्रगट होती है, उसे ही जानता है। आहाहा! क्योंकि जिसमें तन्मय होकर जाने, उसे जानना कहा जाता है। तो पर को जानना (होता है, वह) पर को ज्ञान में तन्मय होकर तो जानता नहीं। हसमुखभाई! सब सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा!

यह तो अन्दर आत्मद्रव्य जैसा था, वैसा प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं न? तो यहाँ कहना है कि उसकी वर्तमान पर्याय में ज्ञान की दशा पर को जानती थी, वह वास्तव में (जानती) नहीं थी। क्योंकि पर में तन्मय नहीं, इसलिए वास्तव में पर को नहीं जानती। पर सम्बन्धी का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने से होता है, उसे जानती है। आहाहा! है? ऐसा सूक्ष्म है।

मुझे तो दूसरा कहना है कि जो एक समय की ज्ञान की वर्तमान दशा पर को जानती है, ऐसा तो नहीं। क्योंकि उसमें तन्मय, एकमेक तो है नहीं। एकमेक हुए बिना उसे जानती है, ऐसा कैसे कहा जाता है? भाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यहाँ तो भगवान रूप से बुलाते हैं। आत्मा अन्दर भगवानस्वरूप ही है, उसे खबर नहीं। यहाँ तो एक समय की वर्तमान यह जानन है न? जानन दशा, प्रगट, वह वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय ज्ञान की पर्याय को ही जानती है। आहाहा! यह भी अभी पर्यायबुद्धि हुई। सूक्ष्म बात है, भाई!

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ हुए, वे कहाँ से हुए? वे अन्दर में है, उसमें से हुए। जैसा था, ऐसा कहा न? अन्दर में उसकी शक्ति अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति आदि का सागर भगवान अन्दर है। **जैसा था...** प्रथम अपनी पर्याय में पर को

जानता नहीं परन्तु अपने को जानता है, परन्तु वह तो एक समय की पर्यायबुद्धि है। वह एक समय की अवस्था जैसा था, उसे जाने। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो धर्म की बात है। जो एक समय की वर्तमान दशा चलती है, वह पर को जानती नहीं। वास्तव में तो अपनी पर्याय में तन्मय है तो उसे जानती है, पर में तन्मय नहीं। अब वह एक समय की पर्याय अपने को जानती है पर्याय, वहाँ तक उसकी पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि, वर्तमानबुद्धि हुई। आहाहा! अब इतना जाने तब (ऐसा कहा जाता है)। पर को जानती है, यह बात तो कहीं रह गयी। आहाहा! समझ में आया? धर्म ऐसी चीज़ है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव वीतराग परमेश्वर ने जो धर्म कहा, वह अलौकिक चीज़ है और इसके बिना जन्म-मरण का अन्त कभी आया नहीं। जन्म-मरण करते... करते... करते... अनन्त काल से भटकता हुआ परिभ्रमण करता है। आहाहा! क्या कहना था?

यहाँ मोक्ष की बात चलती है। परन्तु पहले यहाँ वर्तमान पर्याय, मुक्तस्वरूप जीवद्रव्य जैसा था, वैसा वर्तमान पर्याय में जब जानने में आता है, तब तो उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। हसमुखभाई! वहाँ कहीं पैसा-बैसा में कुछ मिले, ऐसा नहीं है—करोड़-फरोड़ और धूल में। सब धूल है, पैसा पाँच करोड़ और दस करोड़ और अरब रुपये। वह तो मिट्टी है, धूल है। यह भी धूल मिट्टी है। यह चीज़ कहाँ है? राख है, यह तो श्मशान की राख होगी। अन्दर भगवान आत्मा जो है, वह तो आनन्द प्रभु, सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार था, है, वह पहले पर्याय में जानने में आया। आहाहा! क्या कहना है?

मोक्ष है, वह पूर्ण एकान्त शुद्ध है, ऐसा आगे कहेंगे। एकान्त शुद्ध। है न एकान्त शुद्ध? '**एकान्तशुद्धं**' 'सर्वथा प्रकार से शुद्ध' जो मोक्ष है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, शान्ति आदि से पूर्ण शुद्ध है। मोक्ष! और संसार है, वह विकारदशा से परिपूर्ण विकार है। वह प्राणी दुःखी है। चाहे तो राजा हो या चाहे तो अरबोंपति (हो) परन्तु वह पैसे के स्वामी-मालिक होते हैं तो वे दुःखी हैं, अज्ञानी है, मूर्ख है। आहाहा! जैसा आत्मा था, वैसा मोक्ष में प्रगट हुआ, इसका अर्थ यह हुआ कि वर्तमान पर्याय में जैसा था, वैसी अन्तर में अनुभव और प्रतीति हुई, तब तो मोक्ष जो परिपूर्ण शुद्ध

है, उसका उपाय अपूर्ण शुद्धता की पर्याय प्रगट हुई। हें? शुरुआत हुई। आहाहा! सूक्ष्म बात, भगवान! अनन्त काल से भटककर मर गया है, चौरासी के अवतार कर-करके। कीड़ा, कौआ, कुत्ता, ऐसे अनन्त भव किये। चौरासी लाख योनि! एक-एक योनि में अनन्त भव किये। प्रभु! इसे थकान लगी नहीं, और देखता नहीं कि मैं कौन हूँ अन्दर? आहाहा!

यहाँ तो एक समय की वर्तमान दशा में पर का जानना भी नहीं, वह तो अपने को जानता है। क्योंकि पर में तन्मय नहीं। केवलज्ञानी लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहना वह तो असद्भूतव्यवहारनय से है। आहाहा! क्योंकि उसमें तन्मय नहीं होता, उसरूप नहीं होता। तो पर्यायरूप—उसरूप होता है तो उसे ही जानता है। इसी प्रकार यहाँ नीचे अज्ञानी या ज्ञानी वर्तमान दशा में पर को तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने में तन्मय होकर जानता है, तो उसका नाम पर्याय को जानता है, ऐसा कहने में आया। अब यहाँ तो इससे आगे ले जाना है। देवीलालजी! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! अरे! मनुष्यपना मिला और यदि यह तत्त्व—आत्मतत्त्व, आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उसे जाना नहीं (तो) चार गति में दुःखी होकर भटकेगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। यह मोक्ष की व्याख्या की। जैसा अन्दर में था, अनन्त आनन्द मुक्त, अनन्त शान्ति, शान्ति शक्ति—वह जैसी थी, वैसी वर्तमान दशा में जैसा पूर्ण था, वैसा पूर्ण पर्याय में प्रगट हुआ। इसका नाम मोक्ष है। अब यहाँ तो मोक्ष का कारण पहले बतलाना है। आहाहा! जैसा था, जैसा है—अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द उसमें है, प्रभु! आहाहा! जैसे उस पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। तिखाश को हिन्दी में चरपराई कहते हैं, अपने तीखाश कहते हैं। अन्दर चौंसठ पहरी, रुपया-रुपया पूर्ण भरी है। तो जैसी थी वैसी चौंसठ पहरी घोंटने से पर्याय में प्रगट हुई।

इसी प्रकार जैसा (स्वरूप) था... आहाहा! कैसा था? कि पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता से भरपूर भगवान जैसा था, वैसा है। उसका वर्तमान

में, वर्तमान पर्याय में पर को जानने में जो पर्याय की ताकत मानी है, परन्तु उस पर्याय में स्व को जानने की ताकत है, ऐसा जानकर वह पर्याय स्व को—त्रिकाली को जाने, तब उसे मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न हुई। पूर्ण शुद्धपर्याय, आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा है तो शुद्ध परिणाम का कारण भी आत्मा के शुद्ध परिणाम होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! इसने कभी सुनी नहीं, कभी की नहीं। आहाहा! बालपन खेल में खोया, बालपन खेल में और क्रीड़ा में (खोया) जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देखकर रोया। वृद्धावस्था हो गयी परन्तु यह तत्त्व अन्दर भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा था, वैसा प्रगट किया, जैसा था, वैसा प्रगट हुआ, इसका नाम मोक्ष।

अब, दूसरी बात। यह आत्मा तो जैसा था वैसा पूर्ण शुद्ध दशा अर्थात् मोक्ष (प्रगट हुआ) तो उसका कारण भी आत्मा के शुद्ध परिणाम होना चाहिए। आहाहा! होना चाहिए अर्थात् है। आहाहा! शुद्ध वस्तु जैसी है... आहाहा! परिपूर्ण... परिपूर्ण वस्तु भरी है। उसकी वर्तमान पर्याय-दशा में अन्दर में जैसा था, वैसी प्रतीति अनुभवा में हुई तब तो उसे मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ। मोक्ष जो पूर्ण शुद्धपर्याय है, पूर्ण पवित्र अनन्त आनन्द की दशा है, उसके अपूर्ण शुद्ध परिणाम शुद्धस्वभाव के भान में जो प्रगट हुआ, वह पूर्ण शुद्ध परिणाम का कारण है। अब ऐसी बातें! मार्ग ऐसा, भाई! अभी सुनना मुश्किल पड़ता है। आहाहा! बाहर से धमाधम मानो ऐसे बाहर से धर्म हो जायेगा। धर्म तो अन्दर स्वभाव पड़ा है, उसमें है। आहाहा!

कहते हैं, **जैसा था...** यहाँ शब्द आया न? **समस्त कर्ममलकलंक का विनाश होने से,...** शब्द तो पूर्ण ज्ञान है, परन्तु कर्म का नाश होने पर, (ऐसा) कथन किया। क्योंकि पहले मलिन था, यह बतलाने के लिये (ऐसा कहा)। आहाहा! **समस्त कर्ममलकलंक का...** वापस समस्त, हों! मोक्ष में एक राग भी नहीं रहता कि जिससे पुनः अवतार करना पड़े। जो चना होता है, चना, वह सेंकने पर भुन जाता है न? तुम्हारे डालिया को क्या कहते हैं? हें? (भुना हुआ) चना। वह सिंका हुआ चना फिर से उगता नहीं। कच्चा हो तब तक उगे। उसी प्रकार भगवान आत्मा पक्का हो गया, अपने आत्मा में से

अज्ञान का नाश करने से और पूर्ण पर्याय—दशा को प्रगट की, वह अब फिर से संसार में अवतार धारण नहीं करता। आहाहा! यह अवतार धारण करना, वह तो कलंक है। अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का अन्दर सागर पड़ा है। कहाँ देखे? कभी देखा नहीं। उस चीज़ की वर्तमान परिणाम में, परिणामी वह वस्तु त्रिकाल जैसी है, वैसी प्रतीति में, ज्ञान में, अनुभव में आना, वह शुद्ध परिणाम है। वह शुद्ध परिणाम पूर्ण शुद्ध (परिणाम का) कारण है। समझ में आया? आहाहा! एक तो समझना कठिन पड़े। वह करे कब? आहाहा!

मुमुक्षु : आप सरल कर दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल भाषा से तो आता है। करना तो इसे है या नहीं? आहाहा! सरल में कोई कर दे? आहाहा!

मुमुक्षु : मदद करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मदद करे तो भी यह खोटी बात है।

जीवद्रव्य... है? जीवद्रव्य अर्थात् वस्तु। अन्दर भगवान आत्मतत्त्व। तत्त्व कहो, द्रव्य कहो, वस्तु कहो, पदार्थ कहो, वह आत्मद्रव्य, आत्मपदार्थ, आत्मवस्तु, आत्मतत्त्व, वस्तु त्रिकाली अविनाशी। कभी नयी उत्पन्न हुई नहीं, नाश होगा नहीं, ऐसी जो अन्दर वस्तु है... **जैसा था...** आहाहा! **जैसा था...** कैसा था? **अनन्त गुण विराजमान,...** आहाहा! वह तो अनन्त गुण से विराजमान था। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त शक्ति अन्दर में है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन ऐसे अनन्त गुण विराजमान है तो जैसा था वैसा प्रगट हुआ। है? जैसा था, वैसा परिणमन में बाहर में प्रगट हुआ। आहाहा! शक्ति में था, वह प्राप्त की प्राप्ति पर्याय में (हुई)। पहले कहा न? कि पर्याय में द्रव्य की प्रतीति, अनुभव करने से उसका मोक्ष का मार्ग शुरु होता है और जब पूर्ण आश्रय हुआ, त्रिकाल का पूर्ण आश्रय हुआ तो केवलज्ञान और मोक्षदशा होती है। उस मोक्षदशा के कारण में पहले तो यह कहा। समझ में आया? कि, कर्म का नाश करके। आहाहा! ऐसा कहा न? उस कलंक का नाश करके। **जीवद्रव्य जैसा था अनन्त गुण विराजमान, वैसा प्रगट हुआ।**

कैसा प्रगट हुआ ? 'मोक्षं कलयत्' आहाहा! मोक्ष की व्याख्या। **जीव की जो निःकर्मरूप अवस्था,...** यह मोक्ष की व्याख्या। जो रागवाली और कर्मवाली दशा है, वह तो संसार में भटकने की चीज़ है। आहाहा! कर्म और राग बिना की निष्कर्म अवस्था, पूर्ण निष्कर्म अवस्था। नास्ति से बात की है। राग और कर्म से रहित निष्कर्म अवस्था, उसका नाम मोक्ष। और कर्म तथा राग की अवस्था, उसका नाम संसार। आहाहा!

जीव की जो निःकर्मरूप अवस्था,... यह मोक्ष की व्याख्या करते हैं। **'कलयत्'** उस रूप परिणम गया, परिणम गया। आहाहा! **'कलयत्'** है न? अनुभव हो गया, परिणमन हो गया। जैसी है मोक्ष अवस्था, पूर्ण कर्मकलंकरहित, पूर्ण अशुद्धता से रहित, पूर्ण शुद्ध जैसा था, वैसी अवस्थारूप परिणमन हुआ, पर्याय में दशा हुई, उसका नाम मोक्ष कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! भाई! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

अभी तो देखो न! छोटी-छोटी उम्र के कितने ही हार्टफेल हो जाते हैं। दस-दस वर्ष की उम्र, पच्चीस-पच्चीस वर्ष की उम्र। हार्टफेल, कुछ ख्याल नहीं और एक सेकेण्ड में देह उड़ जाये, एकदम! स्थिति पूरी हो जाये अर्थात् देह छूट जाये, एकदम! देह संयोगी चीज़ है। यह संयोगी चीज़ तो उसकी स्थिति से छूटती है। यह तो अपना स्वरूप जैसा था, वैसा प्रगट हुआ तो राग और शरीर और कर्म उनके कारण से छूट गये। आहाहा! इसका नाम मोक्ष कहा जाता है। जिसमें अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द है, जिसमें अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान है। क्यों? कि **अनन्त गुण विराजमान,...** था, ऐसा कहा था न? है? वैसा ही प्रगट हुआ। आहाहा! निष्कर्म अवस्था। (अनन्त गुण से) विराजमान था, वैसा प्रगट हुआ। क्या प्रगट हुआ? कि **जीव की जो निःकर्मरूप अवस्था, उस अवस्थारूप परिणमता हुआ।** आहाहा! अरे! ऐसे शब्द हैं। पूर्ण दशा अनन्त-अनन्त आनन्द... आहाहा!

सिद्ध की दशा का वर्णन है न? बहिन का वांचन अभी आयेगा। बहिन ने सिद्ध का नहीं लिखा? उसका वर्णन किया है न? आहाहा! बहिन ने सिद्ध की व्याख्या शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्ति। आहाहा! बहिन होशियार है, बालब्रह्मचारी महिला है। अभी व्याख्यान के बाद वांचन होगा। उसका पत्र ऐसा आया है, ऐसी भाषा

है उसकी कि ऐसा... बहिन का वाँचन करके तो गहल-पागल हो जाये ऐसा है। धर्म धर्मरूप से, हों! दूसरा कुछ सूझे नहीं, ऐसा लिखा है। होशियार महिला है। वे दुनिया में पागल हो जायें, वह नहीं। इस दुनिया के पागल अर्थात् अन्दर में दूसरा कुछ सूझे नहीं। आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द...शान्ति। विभाव से भिन्न, यह शब्द लिखा है। एक संक्षिप्त शब्द है। बहिन ने लिखा है, विभाव से भिन्न तेरी चीज़ है न! विभाव अर्थात् विकार। विकार अर्थात् पुण्य और पाप के भाव, वे सब विकार और विभाव हैं। उनसे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। आहाहा!

वह जैसी शक्ति थी, वैसी निष्कर्म अवस्था का परिणमन हुआ। देखा? '**कलयत्**' का अर्थ परिणमन हुआ, अभ्यास किया, अनुभव कहो, '**कलयत्**' में। कलयत् में अभ्यास कहो, अनुभव कहो, अवस्था कहो—सब एक अर्थ में है। आहाहा! '**कलयत्**' अवस्थारूप परिणमन हुआ। क्या कहा? कि जैसे छोटीपीपर चौंसठ पहरी शक्तिरूप से अन्दर थी, वह घोंटने से बाहर आयी। चौंसठ पहरी अर्थात् पूर्ण... पूर्ण चरपराहट बाहर प्रगट हुई। उसी प्रकार भगवान आत्मा में; एक छोटी पीपर जैसी जड़ चीज़ में पूर्ण चरपराहट भरी है और बाहर प्रगट होती है तो यह तो चैतन्य का नाथ भगवान अन्दर में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान चौंसठ पहरी, चौंसठ अर्थात् रुपया-रुपया, चौंसठ पैसा, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान से भरा था, वह पर्याय में, अनुभव में, दशा में आ गया। आहाहा! वहाँ कहीं पैसे में सुनने का मिले, ऐसा नहीं है।

सब पैसेवाले दु:खी हैं बेचारे। शास्त्र तो पैसेवाले को भिखारी कहता है। भिखारी भीख माँगता है, भगवान होकर माँगता है। पैसा लाओ, पैसा लाओ, पैसा लाओ, स्त्री लाओ, पुत्र लाओ, इज्जत (लाओ)... भिखारी है। अनन्त... अनन्त अन्दर आनन्द और शान्ति पड़ी है न तुझमें! तेरी लक्ष्मी अन्दर में पड़ी है न सच्चिदानन्द प्रभु! उस लक्ष्मी का स्वामी हो न, उसका स्वामी हो न! आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! कठिन बात है। दुनिया से विरुद्ध है, परन्तु प्रभु! तेरे आत्मा के घर की बात है, नाथ! तू अन्दर कौन है देह में? यह (देह) तो मिट्टी है, हड्डियाँ हैं। यह तो श्मशान की राख

होकर उड़ जायेगी। आहाहा! तू उड़े—नाश हो, ऐसा नहीं है। तू तो अविनाशी है, अनादि-अनन्त है। है, उसकी उत्पत्ति नहीं; है उसका नाश नहीं; है, वह प्रगट है। आहाहा! है?

'कलयत' कैसा है मोक्ष? आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर है,... आहाहा! जैसी वस्तु है आत्मतत्त्व अनन्त आनन्द आदि अविनश्वर, वैसी मोक्ष अवस्था भी पर्याय हुई, दशा हुई, परन्तु अब अविनश्वर रहेगी। क्योंकि अविनश्वर आत्मा है, उसकी दशा में से अनन्त आनन्दादि प्रगट हुए, मोक्ष, तो वह अविनश्वर है, वह भी अब अनन्त काल रहेंगे। आहाहा! मोक्ष होने के बाद कोई अवतार धारण करना पड़े, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : भक्त कष्ट में आवे, तब धारण करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही सब मिथ्या, भक्तों को कष्ट और भगवान को कहाँ थी? अपने स्वरूप में जहाँ आनन्द में पूर्ण दशा हो गयी, उसका ज्ञान भी करते नहीं। वह ज्ञान तो अपनी पर्याय का करते हैं। आहाहा! हें? आहाहा! बापू! मार्ग अलग, प्रभु! आहाहा! अभी तो प्राणी देखो न दुःखी बेचारे, महँगाई साधारण गरीब व्यक्ति को मिलना मुश्किल पड़े। पैसेवाले को बहुत दिखता है। वह भी दुःखी और यह भी दुःखी। रंक दुःखी, राजा दुःखी, सेठ दुःखी और देव दुःखी। सुखी एक सन्त। जिन्हें आत्मा का भान हुआ। मैं अनन्त आनन्दकन्द हूँ, सच्चिदानन्द प्रभु का जिसे भान हुआ है, वह जगत में सुखी है। 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुःखीया' आहाहा! वे सब दुःखी हैं, शान्तिभाई! सच्ची बात होगी? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं मोक्ष अवस्था किसे कहें? आगामी अनन्त काल तक रहनेवाली और **'अतुलं' उपमारहित है।** आहाहा! जो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर है, वह जहाँ पर्याय में अनुभव करके, अन्तर में अनुभव करके दशा में पूर्ण आनन्द हुआ, उसे उपमा क्या देना? किसकी उपमा देना? कि इन्द्र के सुख से परमात्मा में-मोक्ष में अनन्तगुना सुख। इन्द्र का सुख तो जहर का सुख है। इस आत्मा का सुख तो अतीन्द्रिय सुख है। तो अतीन्द्रिय सुख को कोई उपमा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

'अतुलं' उपमारहित है। किस कारण से? 'बन्धच्छेदात्' बन्ध को मूल सत्ता से नाश द्वारा। आहाहा! जैसे यह चने के ऊपर का छिलका, छिलका नाश होता है, वैसे

चना पकता है, फिर वह उगता नहीं। मिठास देता है। वह मिठास आयी कहाँ से? कच्चे चने में मिठास नहीं थी, तुरास थी और पके में मिठास आयी वह कहाँ से आयी? बाहर से आयी? अन्दर में मिठास पड़ी थी, वह बाहर आयी। सेंकने से बाहर आती हो तो लकड़ी को सेंके, कोयले को सेंके तो बाहर आनी चाहिए। कहाँ अन्दर में है कहाँ? चने में मिठास पड़ी है तो सेंकने से डाळिया... तुम्हारे डाळिया कहते हैं न? चने (भुने हुए चने)। आहाहा! वह मिठास जैसे है, उसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास है। आहाहा! उस मिठास को भी चना तो जानते नहीं। हें? और चने की मिठास का ज्ञान हुआ, वह चने की मिठास का नहीं। आहाहा! उस समय की उस पर्याय में वैसा ज्ञान अपने कारण से उत्पन्न हुआ है। चने में मिठास है, वैसा ज्ञान, हों! उस ज्ञान में तन्मय अपना ज्ञान है। तो जिसमें—ज्ञान में मिठास का ज्ञान है, उस अनन्त ज्ञान की मिठास में जब ज्ञान लग गया... आहाहा! अनन्त आनन्द अन्दर भरा है, उसमें मिठास लग गयी अन्दर में, तो पर्याय में—दशा में पूर्ण आनन्द हो जाता है। उसका फिर आगामी काल में कभी नाश नहीं होता। है?

किस कारण से? आठ कर्म... अर्थात् कर्म है न? राग, द्वेष, पुण्य-पाप वे भावकर्म हैं और जड़कर्म आठ हैं। उन सबका नाश होता है। किस कारण से? **मूल सत्ता से नाश द्वारा। कैसा है शुद्ध ज्ञान (अर्थात् जीवद्रव्य)? 'नित्योद्योतस्फुटित-सहजावस्थं'** आहाहा! **शाश्वत् प्रकाश से प्रगट हुआ है...** जैसा आत्मा अविनाशी शाश्वत् है, उसकी अनन्त आनन्द आदि शक्तियाँ भी शाश्वत् है, ऐसा पर्याय में शाश्वत् अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो गया। आहाहा! वस्तु शाश्वत्, गुण शाश्वत्, पर्याय—अवस्था शाश्वत। आहाहा! द्रव्य-गुण शाश्वत् और संसार की राग-द्वेष की पर्याय अशाश्वत्, अस्थिर थी। तो जैसा द्रव्य शाश्वत् वस्तु है, उसकी शक्ति—गुण आनन्दादि शाश्वत् है, वैसी पर्याय शाश्वत् हो गयी। आहाहा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का होगा? वे कहते हैं, दया पालना और व्रत करना, इस देश की सेवा करना... कौन करे? भगवान! आहाहा! तेरे शरीर में रोग आता है तो तेरी मिटाने की शक्ति नहीं। वह तो जड़ है, वह तो जड़ है। आहाहा! तो पर के (रोग) तो मिटा सकता नहीं। अभिमान है, अज्ञान है। आहाहा!

यहाँ तो अपनी (संसार अवस्था) मिटा सकता है। ऐसा कहा न? '**नित्योद्योत**'

शाश्वत् प्रकाश से... 'स्फुटित' लो, यहाँ **'स्फुटित'** आया। कल आया था न? **'स्फुट' 'स्फुट'**। यह तो **'स्फुटित' प्रगट हुआ है...** जैसा अन्दर में आनन्द था, वैसा प्रगट हुआ। आहाहा! कैसा है ज्ञान? प्रगट हुआ नित्य और **'सहजावस्थम्' अनन्त गुण विराजमान शुद्ध जीव द्रव्य जिसको, ऐसा है।** आहाहा! अवस्था अर्थात् पर्याय-दशा ऐसी है। जैसा सहज शक्तिरूप त्रिकाल प्रभु है, वैसा अनुभव करके, आनन्द का वेदन करके आत्मज्ञान करते-करते, स्थिर करते-करते पूर्ण दशा प्रगट हो गयी। वह पूर्ण शाश्वत् दशा है। **अनन्त गुण विराजमान शुद्ध जीवद्रव्य जिसको, ऐसा है।** वह जीवद्रव्य ही अनन्त गुण से (विराजमान) है, वैसी पर्याय भी शुद्ध अनन्त काल रहेगी। आहाहा! संसार का नाश और मोक्ष की उत्पत्ति, आत्मद्रव्य त्रिकाली ध्रुव। आहाहा! क्या कहते हैं यह? यह तो विज्ञान का विज्ञान है, अन्तर आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान बिना कभी जन्म-मरण का अन्त आयेगा नहीं। चौरासी के अवतार में भटक-भटककर तेली की घानी की तरह पिलकर मर गया है अनन्त काल से। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, स्वयं नित्य प्रगट हुआ। सहज अनन्त गुण से **'अवस्थ'** विराजमान है। **'सहजावस्थम्'** शब्द है। **'अवस्थ'** का अर्थ अवस्था न लेना। अनन्त गुण से विराजमान **'अवस्थ'** निश्चय है। सहज निश्चय से अनन्त गुण है, बस ऐसा लेना। अवस्था नहीं। **'अवस्थ'** निश्चयरूप से है। आहाहा!

और कैसा है? 'एकान्तशुद्धं' अब आया। ओहोहो! आत्मा जहाँ अनन्त एकान्त शुद्ध अन्दर था, वैसी दशा प्रगट हुई। अन्तर अनुभव करते-करते, आत्मज्ञान में लीन होते-होते तो वह पर्याय, वह अवस्था ऐसी हुई कि एकान्त शुद्ध, सर्वथा शुद्ध (हुई)। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध, ऐसा नहीं। आहाहा! (कोई कहे) सिद्ध को भी दु:खी कहो। वे दु:खी हैं नहीं। पूर्ण आनन्दस्वरूप है। आहाहा! पूर्ण आनन्द हुआ, उसे फिर जन्म-मरण नहीं है। आहाहा!

'एकान्तशुद्धं' सर्वथा प्रकार शुद्ध है। आहाहा! परमात्मप्रकाश में तो थोड़ा कहा है। भगवान को इन्द्रिय का सुख नहीं है। परमात्मप्रकाश में लिया है। इन्द्रियों का सुख कहाँ है? यह तो इन्द्रिय की जड़ की कल्पना है। वह इन्द्रिय का सुख नहीं, इतना

वहाँ परमात्मप्रकाश में थोड़ा लिया है। यहाँ तो (कहते हैं), एकान्त परिपूर्ण शुद्ध सुखी ही है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान अन्दर, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का सागर नाथ अन्दर विराजमान है, उसका अन्तर अनुभव करते-करते, उसका अनुसरण करते-करते दशा में जहाँ पूर्ण शुद्धता प्रगट हुई... आहाहा! वह नित्य एकान्त शुद्ध है। आहाहा!

और कैसा है? 'अत्यन्तगम्भीरधीरं' आहाहा! **अनन्त गुण विराजमान...** गम्भीर। ओहोहो! क्या कहना! फोड़ा होता है न, फोड़ा? गम्भीर फोड़ा बहुत पक जाये ऐसे सड़ा, सड़ा (हो जाये)। वाट भी घुसे नहीं अन्दर। आत्मा का आनन्द जहाँ प्रगट हुआ (वह) अत्यन्त गम्भीर है। अर्थात्? उस आनन्द की इतनी गम्भीरता है कि जिसका पार नहीं। आहाहा! ऐसा आनन्द अन्दर भरा ही है, परन्तु उसकी दृष्टि और सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अनुभव करते-करते वह प्रगट होता है। आहाहा! अनन्त-अनन्त गम्भीर, जिसकी एक समय की दशा पूर्ण मोक्ष, उसका पार नहीं। अक्षय अनन्त गम्भीर है। आहाहा! अक्षय अनन्त! जहाँ चारित्र को अक्षय अनन्त कहा कारण को तो पूर्ण दशा की अक्षय-अमेय की मर्यादा क्या कहना? कहते हैं। अत्यन्त गम्भीर है, भाई! आहाहा! मोक्ष का मार्ग वह धर्म; वह धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। वह कोई बाहर से प्राप्त नहीं होती। अन्तर आत्मा में पड़ा है, अन्दर में ध्यान करने से, अन्तर के आनन्द का ध्यान करने से आनन्द और धर्म प्राप्त होता है। आहाहा! यहाँ तो थोड़ी दया पाले और पैसा थोड़ा खर्च करे तो कहे, धर्म हो गया, लो! धूल में भी धर्म नहीं। तेरे करोड़, दो करोड़, अरब खर्च कर न! वह तो धूल है, मिट्टी है। मिट्टी में तेरा धर्म कहाँ से आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अत्यन्त गम्भीर और धीर। दो अर्थ प्रयोग किये। अनन्त गुण से विराजमान ऐसा और धीर। धीर है अर्थात् सर्व काल रहनेवाला है, शाश्वत् रहनेवाला है। संसार का नाश होकर आत्मा का मोक्ष हुआ, अपना अनुभव करते-करते केवलज्ञान हुआ, परमात्मा (हुआ), वह शाश्वत् है। आहाहा! है?

किस कारण से? 'एकाकारस्वरसभरतः' आहाहा! **'एकाकार'** क्या कहा? **एकरूप हुए...** अनन्त-अनन्त आनन्द एकरूप दशा हो गयी। जैसी विकारी दशा थी तो

अनेकरूप थी। मोक्ष दशा अन्दर हुई (तो) अन्दर आत्मा एकरूप आनन्द है। दशा में एकरूप आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ। अनेकपना नाश हो गया। ऐसा एकाकार। आहाहा! **'स्वरस' अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य के अतिशय के कारण।** विशेषता के कारण से सुखी है। आहाहा!

और कैसा है? 'स्वस्य अचले महिम्नि लीनं' अपने निष्कम्प प्रताप में मग्नरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्ष में आत्मद्रव्य स्वाधीन है, अन्यत्र चतुर्गति में जीव पराधीन है। चाहे तो नरक में जाओ, पशु में, मनुष्य में या देव, सब पराधीन है। यह **मोक्ष का स्वरूप कहा।** लो! यह 'मोक्ष अधिकार' पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

— १० —

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार

कलश - १९३

(मन्दाक्रान्ता)

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुञ्जः ।।१-१९३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अयं ज्ञानपुञ्जः स्फूर्जति' [अयं] यह विद्यमान [ज्ञानपुञ्जः] शुद्ध जीवद्रव्य [स्फूर्जति] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से लेकर जीव का जैसा शुद्धस्वरूप है, उसे कहते हैं। कैसा है ज्ञानपुंज? 'टंकोत्कीर्ण-प्रकटमहिमा' [टंकोत्कीर्ण] सर्व काल एकरूप, ऐसा है; [प्रकट] स्वानुभवगोचर [महिमा] स्वभाव जिसका, ऐसा है। और कैसा है? 'स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिः' [स्वरस] शुद्ध ज्ञानचेतना के [विसर] अनन्त अंशभेद से [आपूर्ण] सम्पूर्ण, ऐसा है; [पुण्य] निरावरण ज्योतिःरूप [अचल] निश्चल [अर्चिः] प्रकाशस्वरूप जिसका, ऐसा है। और कैसा है? 'शुद्धः शुद्धः' शुद्ध-शुद्ध है, अर्थात् दो बार शुद्ध कहने से अति ही विशुद्ध है। और कैसा है? 'बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः प्रतिपदं दूरीभूतः' [बन्ध] ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड से सम्बन्धरूप एक-क्षेत्रावगाह, [मोक्ष] सकलकर्म का नाश होने पर जीव के स्वरूप का प्रगटपना, ऐसे-[प्रक्लृप्तेः] जो दो विकल्प, उनसे [प्रतिपदं] एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यायरूप जहाँ है, वहाँ [दूरीभूतः] अति ही भिन्न है। भावार्थ इस प्रकार है कि एकेन्द्रिय से लेकर, पंचेन्द्रिय तक जीवद्रव्य जहाँ तहाँ, द्रव्यस्वरूप के विचार की अपेक्षा बन्ध-ऐसे मुक्त, ऐसे विकल्प से रहित है; द्रव्य का स्वरूप जैसा है, वैसा ही है। क्या करता हुआ जीवद्रव्य ऐसा है? 'अखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान् सम्यक् प्रलयं नीत्वा' [अखिलान्] गणना करने पर अनन्त हैं, ऐसे जो [कर्तृ] 'जीव, कर्ता है'-ऐसा विकल्प; [भोक्तृ] 'जीव, भोक्ता है' ऐसा विकल्प, [आदि भावान्] इनसे लेकर अनन्त भेद, उनका [सम्यक्] मूल से [प्रलयं नीत्वा] विनाशकर। ऐसा कहते हैं।।१-१९३।।

पौष कृष्ण २, बुधवार, दिनांक-२५-०१-१९७८, कलश-१९३, प्रवचन-२१४

'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार'। वहाँ शुद्धात्मद्रव्य भी लिखा है। ... कहीं है। शुद्धात्मद्रव्य का अधिकार, ऐसा (लिखा है) और ऐसे सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार... पहला श्लोक।

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुञ्जः ।।१-१९३।।

'**अयं ज्ञानपुञ्जः स्फुर्जति**' यहाँ से—अन्तिम शब्द से लिया है। '**अयं ज्ञानपुञ्जः स्फुर्जति**' '**अयं**' **यह विद्यमान...** '**अयं**' यह बताते हैं—ज्ञानपुंज प्रभु यह शुद्ध विद्यमान है। '**अयं ज्ञानपुञ्जः**' अर्थात् कि **शुद्ध जीवद्रव्य... ज्ञानपुंज अर्थात् शुद्ध जीवद्रव्य...** '**अयं**' अर्थात् विद्यमान, यह है। **प्रगट होता है।** शुद्ध जीवद्रव्य प्रगट होता है, त्रिकाली द्रव्य जो है, वह ऐसा का ऐसा प्रगट होता है, त्रिकाल। त्रिकाल है, पर्याय में फिर प्रगट होता है, परन्तु वस्तु तो त्रिकाल ऐसी ही है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय और पहले गुणस्थान से चौदह गुणस्थान में सबमें वह वस्तु एकरूप चिद्घन आनन्दकन्द है। जिसमें गुणस्थानभेद भी नहीं, जिसमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदि भेद नहीं, ऐसी चीज़ पर के कर्ता-भोक्तापने से रहित अर्थात् उत्पाद, उत्पाद से शब्द है न? यहाँ मूल तो यह कहना है। यह आत्मा स्वयं उत्पादक कर्ता और परद्रव्य उत्पाद्य (अर्थात्) उसका कर्म है, ऐसा है नहीं। आत्मा उत्पादक—कर्ता और दूसरे द्रव्य की पर्याय उसका उत्पाद्य—कर्म—कार्य, ऐसा नहीं है। इसमें से क्रमबद्ध निकाला है। इस गाथा की टीका में से क्रमबद्ध निकाला है।

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर जिस समय में जो होनेवाली है, वही होती है, उसमें पर का कर्ता-कर्मपना नहीं आता। ओहो! आत्मा शरीर को हिलावे-चलावे, ऐसी कोई क्रिया आत्मा में नहीं है। आहाहा! परमार्थ से तो भगवान आत्मा राग के बन्धन और मोक्ष के कर्तापने से भी रहित है। आहाहा! वह तो ज्ञानपुंज, लिया न पहला? वह तो ज्ञानपुंज है। शुद्ध जीवद्रव्य इसका अर्थ लिया। वह तो शुद्ध वस्तु है। एकेन्द्रियादिपना

भी उसमें नहीं, उसे गुणस्थान भी नहीं और पर के कार्य का कर्तापन भी उसमें है नहीं। आहाहा! पूरे दिन दुनिया का काम करता है न? मानता है अज्ञानी। मैं व्यापार करता हूँ, धन्धा करता हूँ, यह दवाखाना चलाता हूँ, इंजेक्शन लगाता हूँ। वह परद्रव्य जो है, उसमें उसकी समय-समय में क्रमसर होनेवाली पर्याय होती है, उसमें दूसरा द्रव्य क्या करे? होती है, उसमें दूसरा क्या करे? आहाहा!

यह कहते हैं, ऐसा ज्ञानपुंज शुद्ध जीवद्रव्य प्रगट होता है। आहाहा! पर्याय में प्रगट (होता है), अन्दर त्रिकाल तो ऐसा है ही परन्तु त्रिकाल की महिमा त्रिकाल से कहेंगे, परन्तु ऐसी चीज़ है, 'है'—ऐसी जिसे प्रतीति आयी, उसके लिये है। जिसे उसकी प्रतीति में, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप से भान हुआ, वह जीवद्रव्य त्रिकाली कर्ता-भोक्ता रहित और रागादि के कर्ता-भोक्तापने रहित और अपनी पर्याय क्रमसर होती है, उसे भी मैं करूँ, ऐसी चीज़ उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' है न! 'शुद्धात्मद्रव्य अधिकार' कहीं लिखा है, किसी जगह लिखा है। इसमें देखा परन्तु हाथ नहीं आया। इसी जगह कहीं लिखा है—शुद्धात्मद्रव्य अधिकार।

शुद्धात्मा कैसा है? कि वह विद्यमान शुद्ध जीवद्रव्य प्रगट होता है। **भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से लेकर जीव का जैसा शुद्ध स्वरूप है, उसे कहते हैं। कैसा है ज्ञानपुंज?** कैसा है ज्ञानपुंज? ज्ञान का ढ़ेर। अकेला ज्ञानस्वभाव का पुंज। आहाहा! ऐसी जो चीज़ है, वह **'टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा' सर्व काल एकरूप ऐसा है...** आहाहा! सर्व काल एकरूप त्रिकाल ज्ञायकभाव। सर्वविशुद्ध ज्ञानस्वभाव सर्व काल एकरूप त्रिकाल है। ऐसा अनुभव हुआ तो जैसा शुद्ध त्रिकाल पर से भिन्न है, वैसा ही अनुभव में भी पर के कर्ता-भोक्ता से भिन्न है। आहाहा! यहाँ तो राग का कर्ता, राग का उत्पादक और राग उत्पाद्य—कार्य, ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, तो यह (आत्मा) तो ज्ञानपुंज है, हें? आहाहा! ज्ञानपुंज है, ज्ञान का तो गंज है। यह राग व्यवहाररत्नत्रय को क्यों करे और क्यों भोगे? आहाहा! तो यहाँ तो (अज्ञानी) कहता है कि व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय होता है। अरे! बहुत अन्तर है, भाई! आहाहा! वस्तु में कहाँ कमी है कि वह पर के आश्रय से उसमें (शुद्धता) उत्पन्न हो। आहाहा!

यहाँ 'ज्ञानपुंज' कहा, परन्तु अनन्त गुण का पुंज है। एक-एक गुण अनन्त शक्तिवन्त है, ऐसा पुंज प्रभु है, उसमें कमी कहाँ है? हीनता कहाँ है? न्यूनता कहाँ है? कि पर के कारण से उसमें कार्य हो। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानपुंज भगवान टंकोत्कीर्ण। आहाहा! **सर्व काल एकरूप ऐसा है...** ज्ञाता-दृष्टा, अतीन्द्रिय आनन्द आदि स्वभाव, सर्व काल शुद्ध जीव जैसा है, वैसा सर्व काल रहता है। किसी काल में वह एकेन्द्रिय की पर्याय में या गुणस्थान की पर्याय में आता नहीं। आहाहा! हें? आहाहा! सर्व गुणस्थान, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, जीव के चौदह भेद, पर्याप्त-अपर्याप्त आदि में वह जीवद्रव्य आता नहीं। वे जीवद्रव्य में है ही नहीं। आहाहा! अब ऐसा जीवद्रव्य जब तक इसके ज्ञान में, प्रतीति में, अनुभव में न आवे, तब तक उसे जीव की श्रद्धा ही नहीं है। ऐसा आत्मा है, ऐसा आत्मा प्रतीति में न आवे, तब तक तो उसे ऐसा आत्मा है—ऐसा है ही नहीं। आहाहा!

पर के एक रजकण को भी कर सके, ऐसी तो आत्मा में सामर्थ्य नहीं है। पर के कर्तृत्व में तो अपना आत्मा पंगु है। पंगु, पंगु है। आहाहा! अपने वीर्य—पुरुषार्थ से पूर्ण भरपूर है। आहाहा! वह टंकोत्कीर्ण जैसा है एकरूप वैसा है। **'प्रकट महिमा' स्वानुभवगोचर स्वभाव जिसका, ऐसा है।** भाषा देखो! है तो है ऐसा, परन्तु है एकरूप त्रिकाल आनन्दरूप, गुणस्थानादि का भेद जिसमें नहीं और कर्ता-भोक्ता भी नहीं, ऐसा किसे प्रतीति में आता है? आहाहा! ऐसा त्रिकाल अस्तित्व है, तादात्म्यस्वरूप मौजूदगी (धरावती) चीज़ किसे दृष्टि में आती है? कहते हैं। मौजूद है। है तो है, परन्तु किसे है? **स्वानुभवगोचर स्वभाव जिसका, ऐसा है।** आहाहा! समझ में आया? वह भगवान आत्मा तो है, वैसा है। त्रिकाल आनन्दकन्द ज्ञानपुंज, गुणपुंज, शान्त... शान्तरस का पुंज, अकषायरस का पुंज, ऐसा एक-एक शक्ति के रस का पुंज प्रभु है।—परन्तु किसे? आहाहा! चिमनभाई! यह तुम्हारा प्रश्न (था न)? कारणपरमात्मा है तो कार्य क्यों नहीं होता? भाई का प्रश्न था न? कारणपरमात्मा कहो, ऐसा (है, ऐसा कहो), आहाहा! तो कारण है तो कार्य क्यों नहीं आता? परन्तु किसे? स्वानुभवगोचर महिमा (जिसे है) उसे। जो उस ओर का, स्व का अनुभव करे, उसे ऐसा कारणपरमात्मा है। आहाहा!

समझ में आया? जिसे नजर में और प्रतीति में वह चीज़ ही आयी नहीं, उसे 'है' ऐसा कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया?

यह कहा, **स्वानुभवगोचर...** महिमा की व्याख्या की। स्वानुभवगोचर महिमा ऐसा नहीं कहकर, **स्वानुभवगोचर स्वभाव जिसका,...** (ऐसी) महिमा की व्याख्या की। समझ में आया? कहना ऐसा है कि स्वभाव ऐसा है, स्वानुभवगोचर ही स्वभाव है। स्वभाव है, परन्तु स्वानुभवगोचर होता है, उसके लिये वह स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान की बात बहुत सूक्ष्म है। लोग बाहर से (मान बैठे हैं)। आहाहा!

मुमुक्षु : केवल धारणा से काम नहीं चलेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान-बेवलज्ञान अन्दर में है नहीं, वह वस्तु तो एकरूप है। केवलज्ञान व्यवहारनय का विषय है। यहाँ तो साधकजीव की बात लेनी है न? आहाहा! केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है। यहाँ शुद्धनय का विषय एकरूप त्रिकाल बतलाना है। आहाहा! समझ में आया?

टंकोत्कीर्ण जिसकी महिमा। आहाहा! अर्थात्? सर्व काल एकरूप रहना, ऐसा स्वभाव स्वानुभवगोचर है। आहाहा! ऐसे गुलाँट मारकर बात करते हैं। क्या कहा, समझ में आया? कि सर्व काल एकरूप ऐसा है स्वभाव जिसका, ऐसा अनुभवगोचर स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग बहुत अलौकिक है। आहाहा! यहाँ तो राग को जरा ऐसा कहते हैं, राग करना, वह तो नपुंसकता है। वह जिनवाणी (कहलाये)? ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। अरे... बापू! जिनवाणी यह है, भाई! जिनवाणी राग की बात करे, परन्तु राग को जानने के लिये बात करे। राग का कर्ता और राग उसका कार्य है, यह बतलाने के लिये जिनवाणी बात नहीं करती। आहाहा! जिनवाणी अर्थात् जिसमें वीतरागता भरी हो, जिसमें से वीतरागता प्रसिद्ध हो, चार अनुयोग की जिनवाणी का सार तो वीतरागता है। आहाहा!

पहले से ही जिनवाणी में वीतरागता प्रसिद्ध हो, वह जिनवाणी है—वाचक। वाच्य में वीतरागता उत्पन्न हो वह। आहाहा! जैसे ॐकार में दो शब्द लिये हैं न? ॐ

कार—शब्द विशद् यातै एक आत्मिकभाव एक पुद्गल को। ॐ विकल्प जो उठता है, उसे पुद्गल कहा है। आहाहा! और ॐ वस्तु जो आत्मा है, वह आत्मिकरूप है। आहाहा! ॐ शब्द विशद् यातै एक आत्मिक भाव एक पुद्गल को। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि वस्तु ऐसी की ऐसी एक वाणी है और वस्तु ऐसी है, ऐसा स्वानुभव है। आहाहा! समझ में आया?

स्वानुभवगोचर स्वभाव जिसका, ऐसा है। आहाहा! उसकी महिमा ही ऐसी है कि स्वभाव से ही अनुभव में आता है; किसी व्यवहार से, राग से अनुभव में आता नहीं। स्वानुभवगोचर—स-अनुभवगम्य। गोचर अर्थात् गम्य। स—अनुभवगम्य। अपने स्वभाव को अनुसरकर होनेयोग्य भाव से गम्य है। समझ में आया? आहाहा! हें?

मुमुक्षु : स्वानुभव का क्या साधन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन, यह स्वयं साधन है। साधन क्या? प्रज्ञाछैनी कहाँ न! प्रज्ञाछैनी कहो या स्वानुभव कहो। आहाहा! वहाँ स्वानुभव लिया है, प्रज्ञाछैनी के अर्थ में वह लिया है। आहाहा! वस्तु है, आत्मा है, वह जैसा है, वैसा तीनों काल एकरूप है। जैसा है, वैसा तीनों काल एकरूप है, एकरूप है, (परन्तु) किसे? जो स्वानुभवगोचर, स्वानुभवगम्य करे उसे। आहाहा! समझ में आया? बात तो अलौकिक है, भगवान! यह बाहर के वाद-विवाद से पता खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! जहाँ लिखा हो कि व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है, भाई! आहाहा! परन्तु क्या करे? पाठ ऐसा है, इसलिए ऐसा अर्थ लगा दे। आहाहा!

निश्चय से तो अलिंगग्रहण में ऐसा कहा, द्रव्य यति के भावरहित आत्मवस्तु है। द्रव्यलिंग है, पंच महाव्रत का विकल्प और नग्नपना, उससे रहित भगवान आत्मा है। उसमें वह द्रव्यलिंग है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? है न? १७वें बोल में है। २० बोल है न २०, अलिंगग्रहण में? १८वें गुणभेद के विशेष नहीं, १९वें में पर्याय के विशेष नहीं। २० में द्रव्य का आलिंगन नहीं, पर्याय का आलिंगन है और १७ में ऐसा है, भगवान आत्मा जिसे यति के बाह्य आचार का अभाव है। आहाहा! जो स्वरूप में सर्व काल एकरूप कहा न? सर्व काल एकरूप वह स्वानुभवगोचर है। परन्तु सर्व काल

एकरूप कैसा है? कि उसमें यति के अट्ठाईस मूलगुण और नग्नपने का तो त्रिकाल उसमें अभाव है। आहाहा! समझ में आया? जिसमें अभाव है, उसके कारण से भाव होगा? द्रव्यलिंग अट्ठाईस मूलगुण का भी जिसमें अभाव है, तो वह पंच महाव्रत के भाव से आत्मा का कल्याण होगा? समझ में आया?

देह से भिन्न, राग से भिन्न, पर के कर्तृत्व-भोक्तृत्व से भिन्न, ऐसा वस्तु का स्वरूप ऐसी ज्ञान की पर्याय में प्रतीति में जब तक न आवे, वहाँ तक उसे है, ऐसा विश्वास नहीं। हसमुखभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! आहा! यह कोई बाहर के साधन से समझ में आये या प्रगट हो, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! इसमें तेरहवाँ गुणस्थान नहीं, सयोगी गुणस्थान जिसमें नहीं। आहाहा! जिसमें चौदहवाँ गुणस्थान नहीं। आहाहा! ऐसा सर्व काल एकरूप। वह तो भेदरूप हुआ न? समझ में आया? थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए, भगवान! आहाहा! ऐसी चीज़ अन्दर गुणस्थान के भेदरहित, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त, अपर्याप्त भेदरहित... आहाहा! टंकोत्कीर्ण सर्व काल एकरूप रहनेवाली चीज़। आहाहा! इसमें द्वैतपना नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ की स्वानुभवगोचर महिमा है अथवा स्वानुभवगम्य स्वभाव है। आहाहा! वह तो कोई दूसरी चीज़ है। निर्विकल्प ज्ञान से उसका भान होता है, वह चीज़ है, वह निर्विकल्प ज्ञान से 'यह है' ऐसा भान होता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है, भगवान! आहाहा! समझ में आया?

अरे! शरीर क्या, वस्त्र क्या, गहने क्या, इस शरीर में रंग-रोगन किया है। आहाहा! वह तो जड़ है, भगवान! वह तो तुझमें है ही नहीं। तू उसे स्पर्शा नहीं, और वह चीज़ तुझे स्पर्शी नहीं। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि पर का राग करना, ऐसा उसका अर्थ है और पर का कार्य, ऐसा स्वभाव उसमें नहीं है। आहाहा! वह तो सर्व काल एकरूप रहता है। एकरूप रहने में क्या आया? समझ में आया? आगे कहेंगे, आहाहा!

और कैसा है? 'स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिः' आहाहा! **'स्वरस' शुद्ध ज्ञानचेतना...** वह स्वरस। शुद्ध ज्ञानचेतना, वह अपना स्वरस आत्मा है। आहाहा! शुद्ध ज्ञानचेतना, शुद्ध आनन्द चेतना, आहाहा! शुद्ध ईश्वर चेतना—प्रभु चेतना—प्रभुत्व, शुद्ध जीवत्व चेतना... आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति की चेतना... आहाहा! उन **अनन्त अंशभेद**

से... वह शुद्ध ज्ञानचेतना '**विसर**' '**विसर**'। '**विसर**' अर्थात् अनन्त भेद से, **अनन्त अंशभेद से...** आहाहा! **सम्पूर्ण ऐसा है...** भगवान स्वरस से ज्ञानरस से, आनन्दरस से, अनन्त शक्ति के शुद्धरस से परिपूर्ण... आहाहा! ऐसा **अनन्त अंशभेद से सम्पूर्ण ऐसा है...** आहाहा! भेद अनन्त हैं, परन्तु है एकरूप। एकरूप में ऐसे अनन्त भेद हैं, ऐसा कहते हैं। पहले तो कहा कि एकरूप त्रिकाल है। हें? तथापि उसकी शक्ति में कितनी शक्ति है? कि अनन्त अंशभेद है। अनन्त स्वभाव, अनन्त स्वभाव है। '**विसर**', '**विसर**' का अर्थ यह। बहुत जगह यह अर्थ आता है। शब्द बहुत खोजा परन्तु मिलता नहीं। '**विसर**' में से अनन्त कैसे निकाला? बहुत जगह यह आता है—'**विसर**'।

सम्पूर्ण अंशभेद से ऐसा है। अर्थात् क्या कहते हैं? सर्वकाल एकरूप कहा, परन्तु उसमें जो गुण है न, गुण? वे अनन्त हैं, अनन्त। परन्तु वे अनन्त भी पूर्ण हैं। अनन्त गुण जो है, भेद है, वस्तु में अनन्त अंशभेद है परन्तु वे भी पूर्ण हैं। आहाहा! ऐसी चीज़! आहाहा! अरे! वस्तुस्थिति ही ऐसी है न! वस्तु का मौजूदगीपना, अस्तिपना, विद्यमानपना ऐसा ही है, वस्तु ऐसी ही है, परन्तु उस ओर अनुभवगम्य करे, उसे ऐसा मानने में आता है। आहाहा! रोग और रंग तो कहीं रह गये। शरीर का रंग रूपवान और यह रोग अन्दर यह धूल कहीं है नहीं, वह सब तो जड़ में है। समझ में आया? आहाहा!

'**विसर**' विशेष। अन्दर अनन्त अंशभेद हैं। '**विसर**' शब्द बहुत जगह आता है। खबर है, उसमें से खोजा नहीं। '**विसर**' विशेष अन्दर गुण सरते हैं। कोई संस्कृत शब्द है। जहाँ हो वहाँ '**विसर**' (शब्द) आता है, तब अनन्त लेते हैं, बहुत जगह '**विसर**' आता है। अनन्त अंशभेद। वह क्या कहते हैं? वस्तुरूप से सर्व काल एकरूप होने पर भी उसमें अनन्त अंश जो गुण हैं, वे भी परिपूर्ण हैं। आहाहा! द्रव्य से परिपूर्ण है, गुण से परिपूर्ण है। गुण अनन्त हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अंशभेद से भी परिपूर्ण है। आहाहा! गुणभेद से भी परिपूर्ण है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा, भाई! वीतरागमार्ग है। आहाहा! ऐसे देह छूटेगी। देह छूटेगी इस भव में तो छूटेगी या नहीं? आहाहा! किसकी ओर लक्ष्य रखकर छूटेगी? ऐसा कहते हैं, बापू! जहाँ पूर्ण है न? भले उसमें गुण अनन्त हो, परन्तु वह भी पूर्ण है। वहाँ लक्ष्य, दृष्टि लगा और देह छूटे, फिर से देह नहीं मिले और एकाध-दो देह होगी तो भी वह ज्ञान के ज्ञेयरूप से है। समझ

में आया? आहाहा! क्या शैली! दिगम्बर सन्तों के श्लोक, उनकी टीका, उनका पाठ बहुत गम्भीर है, बहुत गम्भीर। उसकी गहराई का पार नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा तो सर्व काल एकरूप है, परन्तु उसके भेद करो तो भी एक-एक गुण पूर्ण भरपूर है। आहाहा! अरे! उसमें परद्रव्य अनुकूल देखकर हर्ष का अवसर कहाँ? है? और प्रतिकूलता देखकरर उसमें शोक का अवसर कहाँ? आहाहा! जहाँ भगवान पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञानपुंज एक-एक गुण से परिपूर्ण, परिपूर्ण, परिपूर्ण भरपूर है। आहाहा! उसे जिसने अन्तर में अनुभवगम्य किया, उसे फिर बाहर में कुछ है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

'**आपूर्ण**', '**आपूर्ण**' है न? सम्पूर्ण... लो। नहीं तो पूर्ण का अर्थ आपूर्ण होता है, परन्तु '**आपूर्ण**'—समस्त प्रकार से सम्पूर्ण। आहाहा! '**आपूर्ण**'—समस्त प्रकार से पूर्ण। आहाहा! ऐसा भगवान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वह स्वानुभवगम्य है, वह स्वभाव स्वानुभवगम्य है, कोई व्यवहार और राग से और विकल्प से भी गम्य हो सके, ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं। आहाहा! उसका निर्धार-निर्णय तो करे पहले कि चीज़ ऐसी है। आहाहा!

'**पुण्य**' **निरावरण ज्योतिरूप...** यहाँ पुण्य का अर्थ पवित्रता कहनी है। पुण्य का अर्थ यह पुण्य (-विभाव) नहीं है। समझ में आया? आया न? '**स्वरसविसरापूर्ण-पुण्याचलार्चिः**' यहाँ पुण्य अर्थात् पवित्रता लेना है। यह लोग पुण्य के भाव को पवित्रता बताते हैं कि देखो! यह पुण्य है, यह पुण्य अर्थात् पवित्रता का कारण पुण्य। यह राग का पुण्य है, वह तो अपवित्र है। आहाहा! यह तो पवित्र स्वभाव है। आहाहा! वह निरावरण ज्योति है, उसे यहाँ पुण्य कहा गया है। निरावरण ज्योति है—आवरण बिना की वस्तु है। भेद बिना की वस्तु है, उसे यहाँ पुण्य कहा जाता है। आहाहा! यह एक जगह टीका में आता है कि पवित्रता को करे, वह पुण्य। वह पुण्य फिर ले जाते हैं शुभभाव में। अरे! भाई! शुभभाव तो राग है, वह जहर है, विषकुंभ कहा न? तो विषकुंभ, वह वस्तु का स्वरूप है? वस्तु के स्वरूप की प्राप्ति के लिये विषकुंभ काम करे? मदद करे? आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : पुण्य को तो पवित्रता ही कहा जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य में पवित्रता ही नहीं। यह पुण्य पवित्रता के अर्थ में है। वह शुभभाव के अर्थ में यह पुण्य नहीं है। यह पुण्य है, वह पवित्र है, इसके अर्थ में पुण्य है और शुभभाव पुण्य है, वह अपवित्र और जहर है। एक ही पुण्य के दो अर्थ हैं। जिस जगह जहाँ जो (अर्थ) चाहिए, वह चाहिए न? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कुछ दो-चार-पाँच करोड़ रुपये हो जाये या दो-चार अरब रुपये हो जाये तो ओहोहो! यह भाई पुण्यशाली है। आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : कर्मी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मी है, भाग्यशाली है। यह तो कर्मशाली है। आहाहा! पुण्य तो उसे कहते हैं कि भगवान परिपूर्ण पवित्रता है, उसे पुण्य कहते हैं। आहाहा! यह पैसेवाले को पुण्यशाली कहते हैं, गरीब मनुष्य हो न? पाँच-दस हजार मुश्किल से मिलते हों और जहाँ पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हो वहाँ तो... ओहोहो! मानो क्या हुआ और क्या मिला? जहर मिला है। आहाहा! अमृत का सागर भगवान एकरूप तीनों काल रहनेवाला, उसके गुण भी तीनों काल एकरूप परिपूर्ण रहनेवाले हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, उसे यहाँ पुण्य कहा है। समझ में आया?

'पुण्य' निरावरण ज्योतिरूप... ऐसी भाषा ली है न? आवरण बिना की ज्योति, वह स्वरूप वह पुण्य है। उसे पुण्य कहते हैं। आहाहा! पवित्रता का सागर है, पवित्रता का पिण्ड है, पवित्रता से भरपूर महासमुद्र है। आहाहा! वह स्वयंभू है। वह पवित्रता से स्वयंभू है। आहाहा! अपने से स्वयं पवित्र है। आहाहा! **'अचल' निश्चल... 'अर्चिः' प्रकाशस्वरूप जिसका,... 'अर्चिः'** अर्थात् प्रकाश। अचल जिसका प्रकाश है **ऐसा है।** आहाहा! भगवान आत्मा ध्रुवरूप नित्य द्रव्यस्वभाव ऐसा है। पहले अनुभवगोचर कह गये, परन्तु अब तो वस्तु ऐसी है, वह जैसी है, वैसी अनुभव में आना चाहिए, ऐसा। आहाहा!

निश्चल प्रकाशस्वरूप जिसका, ऐसा है। और कैसा है? शुद्ध शुद्ध है,... दो बार लिया। आहाहा! **दो बार शुद्ध कहने से अति ही विशुद्ध है।** दूसरे में (शुद्ध-शुद्ध का अर्थ) ऐसा कहा कि राग से भी रहित, पर से भी रहित। दो बार कहा न? राग से

भी रहित शुद्ध और पर से रहित; इसलिए दोनों प्रकार से शुद्ध। पर से रहित अकेला शुद्ध, ऐसा नहीं, परन्तु राग से रहित भी शुद्ध। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, उससे भी रहित शुद्ध और परद्रव्य से भी रहित, यह शुद्ध। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी तो स्पष्ट बात है, परन्तु व्यवहार की रुचिवाले को बस, वह व्यवहार क्रियाकाण्ड, वही धर्म है। दो बातें की। और कैसा है?

'**बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः प्रतिपदं दूरीभूतः**' आहाहा! **ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड से सम्बन्धरूप एक क्षेत्रावगाह,...** कर्म उससे '**दूरीभूतः**' एक ही क्षेत्र में कर्म और आत्मा है, परन्तु वह कर्म से अत्यन्त '**दूरीभूतः**'। आहाहा! आकाश के क्षेत्र में, आकाश के क्षेत्र में एक, हों! (बाकी तो) आत्मा का क्षेत्र भिन्न है, परमाणु का क्षेत्र भिन्न है। आकाश के क्षेत्र में एक अवगाह होने पर भी, अत्यन्त दूर है। आहाहा! एक-दूसरे में अत्यन्त अभाव है। समझ में आया? यह बन्ध की व्याख्या की।

अब, मोक्ष। **सकल कर्म का नाश होने पर जीव के स्वरूप का प्रगटपना, ऐसे—जो दो विकल्प,...** उससे रहित है। आहाहा! दो पर्याय के भेद भी नहीं, वह तो त्रिकाल एकरूप है। आहाहा! बन्ध एक समय की पर्याय, मोक्ष एक समय की पर्याय। आहाहा! उन दो से भिन्न है। भगवान द्रव्यस्वभाव तो दोनों से भिन्न है। आहाहा! इन दो विकल्प से रहित है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न?

जो दो विकल्प, उनसे एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यायरूप जहाँ है वहाँ... कर्म से और बन्ध-मोक्ष से **अति ही भिन्न है।** आहाहा! जहाँ हो, वहाँ बन्ध और मोक्ष दो से रहित है। आहाहा! ऐसा द्रव्यस्वभाव शुद्ध चिदानन्द अनन्त आनन्दकन्द प्रभु। आहाहा! '**प्रतिपदम्**' कहा न? **वहाँ अति ही भिन्न है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवद्रव्य जहाँ तहाँ, द्रव्यस्वरूप के विचार की अपेक्षा बन्ध ऐसे मुक्त, ऐसे विकल्प से रहित है।** आहाहा! **द्रव्य का स्वरूप जैसा है, वैसा ही है। क्या करता हुआ जीवद्रव्य (अर्थात् ज्ञानपुंज) ऐसा है?** यह वस्तु जरा सूक्ष्म है। (विशेष कहेंगे...)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ३, गुरुवार, दिनांक-२६-०१-१९७८, कलश-१९३, १९४, प्रवचन-२१५

'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार', अन्त में है। **द्रव्य का स्वरूप जैसा है, वैसा ही है।** आया नीचे? अन्तिम से तीसरी लाईन, तीसरी लाईन। नीचे से तीसरी लाईन, हिन्दी में, हों! है? **द्रव्य का स्वरूप जैसा है, वैसा ही है। क्या करता हुआ...** ऐसा कहते हैं। जीव जो जीवद्रव्य वस्तु है, वह तो जैसी है, वैसी है। क्या करती हुई जैसी है, वैसी रहती है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **द्रव्य का स्वरूप जैसा है, वैसा ही है। क्या करता हुआ जीवद्रव्य (अर्थात् ज्ञानपुंज) ऐसा है?** आहाहा!

'अखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान् सम्यक् प्रलयं नीत्वा' गणना... 'अखिल' 'अखिल' अर्थात् **गणना करने पर अनन्त हैं, ऐसे जो 'जीव कर्ता है' ऐसा विकल्प...** आहाहा! जीव तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। वह जीव राग का कर्ता है, यह विकल्प है, वह मिथ्यात्वभाव है। जीव ऐसा है नहीं। क्योंकि जीव में ऐसा कोई गुण नहीं। त्रिकाली शक्ति—गुण-स्वभाव नहीं है कि राग को करे ऐसी कोई शक्ति नहीं है। समझ में आया? द्रव्य जो आत्मद्रव्य है, वस्तु, उसमें ऐसी कोई शक्ति नहीं। अनन्त गुण है, बेशुमार गुण हैं। बेशुमार कहते हैं तुम्हारे हिन्दी में। आहाहा! जीवद्रव्य है उसमें बेशुमार अनन्त-अनन्त गुण हैं। आकाश के प्रदेश की संख्या से भी अनन्तगुणे गुण हैं परन्तु उसमें ऐसा कोई गुण नहीं कि राग करे। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का राग करे, ऐसा कोई गुण नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गुण हो तो (राग हुआ ही करे)। परन्तु है ही नहीं ऐसा कोई (गुण)।

जीवद्रव्य जैसा है, वैसा क्या करता हुआ ऐसा है? ऐसा कहते हैं न? **क्या करता हुआ जीवद्रव्य (अर्थात् ज्ञानपुंज) ऐसा है?** क्या करता हुआ जीवद्रव्य ऐसा है? आहाहा! **'अखिलान्'** अखिल अर्थात् सम्पूर्ण। जीव कर्ता है, ऐसा विकल्प, **'जीव भोक्ता है' ऐसा विकल्प,...** आहाहा! पर का कर्ता-भोक्ता तो है ही नहीं। शरीर, वाणी, पर की दया पालना, वह तो जीव कर सकता ही नहीं। यहाँ तो अन्दर में राग होता है, उसकी बात है। पुण्य, पाप के जो असंख्य प्रकार के विकल्प हैं, (उसकी बात है)। यहाँ तो गणना

करना अनन्त है, ऐसा कहा। अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल है, उसमें (लक्ष्य करके) किसी भी विकल्प का कर्ता हो तो वह विकल्प अनन्त प्रकार के हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न?

ऐसा विकल्प 'जीव भोक्ता है' ऐसा विकल्प, इनसे लेकर अनन्त भेद उनका.... ठीक! आहाहा! अनन्त प्रकार से अनन्त द्रव्य भिन्न है तो उसका अनन्त लक्ष्य करके, उसका कर्ता नहीं, परन्तु उनका लक्ष्य करके राग का कर्ता होता है और राग का भोक्ता होता है, वह जीव का स्वभाव नहीं है। जीव का स्वभाव नहीं, परन्तु उसके किसी गुण का स्वभाव नहीं है। आहाहा! है? **अनन्त भेद उनका मूल से विनाशकर। ऐसा कहते हैं।** जिसने उस विकल्प के अनन्त प्रकार का मूल से नाश कर दिया है, उसका नाम आत्मद्रव्य का ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त परद्रव्य की ओर का लक्ष्य करके किसी भी काल में अनन्त पदार्थ के प्रति जो विकल्प उठता है, उसका कर्ता तो नहीं, परन्तु उस ओर का लक्ष्य करके अनन्त प्रकार के विकल्प उठते हैं, ऐसा कहते हैं। वरना तो है तो असंख्य प्रकार। परन्तु अनन्त पदार्थ है, वे भी बेशुमार अनन्त पदार्थ है, उनका लक्ष्य करके राग का करना, विकल्प का करना... है न? **अनन्त भेद उनका मूल से विनाशकर।** आहाहा! मूल में से पर की ओर के लक्ष्य के अनन्त प्रकार के विकल्प के, राग के भेद... आहाहा! उनका मूल से विनाश करके जैसा है, वैसा अनुभव, सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जैसा है, वैसा ही है, वह क्या करता हुआ वैसा है? कि मूल में जो अनन्त प्रकार की विकल्प की जाति है, उसका मूल से विनाश करके। अन्तर में जैसा है, वैसा आत्मा का सम्यग्दर्शन में भान हो गया। आहाहा! समझ में आया? और जैसा है, वैसा प्रगट भी हो गया। पर्याय में जैसा है, वैसा प्रगट हो गया। सूक्ष्म बात है। यह बाहर की धमाल, ऐसा करना और वैसा करना, यह बात तो यहाँ है ही नहीं, परन्तु बाहर का लक्ष्य होकर विकल्प उत्पन्न होता है, उसका मूल से विनाश करके। आहाहा! आत्मा ज्ञाता-दृष्टा आनन्द की उत्पत्ति हुई, वह मूल से विकल्प का नाश करके उत्पन्न हुई। आहाहा! सूक्ष्म बहुत, भाई! आहाहा! यह पहले श्लोक का अर्थ हुआ। अब दूसरा श्लोक।

कलश - १९४

(अनुष्टुप्)

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः।।२-१९४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अस्य चितः कर्तृत्वं न स्वभावः' [अस्य चितः] चैतन्यमात्र स्वरूप जीव का, [कर्तृत्वं] ज्ञानावरणादि कर्म को करे अथवा रागादि परिणाम को करे, ऐसा [न स्वभावः] सहज का गुण नहीं है; दृष्टान्त कहते हैं — 'वेदयितृत्ववत्' जिस प्रकार जीव, कर्म का भोक्ता भी नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य, कर्म का भोक्ता हो तो कर्ता होवे, सो तो भोक्ता भी नहीं है, इससे कर्ता भी नहीं है। 'अयं कर्ता अज्ञानात् एव' [अयं] यह जीव, [कर्ता] रागादि-अशुद्धपरिणाम को करता है, ऐसा भी है सो किस कारण से? [अज्ञानात् एव] कर्मजनित भाव में आत्मबुद्धि, ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम, उसके कारण जीव, कर्ता है। भावार्थ इस प्रकार है कि — जीववस्तु, रागादिविभावपरिणाम का कर्ता है, ऐसा जीव का स्वभावगुण नहीं है, परन्तु अशुद्धरूप विभावपरिणति है। 'तद्भावात् अकारकः' [तद्भावात्] मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप विभावपरिणति मिटती है, सो उसके मिटने से [अकारकः] जीव, सर्वथा अकर्ता होता है।।२-१९४।।

कलश - १९४ पर प्रवचन

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः।।२-१९४।।

भाषा देखो! '**अस्य चितः**' **चैतन्यमात्रस्वरूप जीव का...** '**अस्य चितः**' '**अस्य चितः**' इस चेतनामात्र जीव का स्वभाव। '**अस्य चितः**' इस आत्मा का चेतनस्वभाव। '**अस्य चितः**' इस आत्मा का चेतन स्वभाव। '**कर्तृत्वं न स्वभावः**' आहाहा! **चैतन्यमात्रस्वरूप जीव का ज्ञानावरणादि कर्म को करे...** ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। वह परद्रव्य जड़ लिया।

अथवा रागादि परिणाम को करे... आहाहा! शुभराग, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का भाव होता है, वह भी शुभराग है और उस शुभराग का कर्ता आत्मा होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! क्योंकि उसमें ऐसा कोई गुण, शक्ति, स्वभाव नहीं है। आहाहा! जिसकी दृष्टि स्वभाव पर गई और निज स्वभाव का भान हुआ, उसमें मूल में से पर के कर्तापने का नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? है?

रागादि परिणाम को... दोनों लिये। जड़कर्म तो निमित्त से कथन है। वास्तव में तो अन्दर रागादि है। शुभराग है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, पंच महाव्रत के परिणाम वे सब राग हैं। आहाहा! रागादि का कर्ता आत्मा नहीं। क्योंकि विभावरूपी पर्याय की विकृत अवस्था है, उसमें (आत्मा में) कोई गुण ऐसा नहीं कि विभाव की क्रिया करे। आहाहा! द्रव्य, जीवद्रव्य के स्वभाव में ऐसी कोई एक शक्ति नहीं। अनन्त शक्तियाँ हैं। जीवद्रव्य में अनन्त शक्तियाँ है, परन्तु कोई ऐसी शक्ति नहीं कि दया, दान के विकल्प को करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं। आहाहा! इसलिए ऐसा कहा कि, आत्मा में अनन्त शक्ति है, परन्तु व्यवहाररत्नत्रय का जो शुभराग है, उसे आत्मा करे, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! सुमनभाई! यह तुम्हारा सब बाहर का करना कहाँ गया? आहाहा! यह तो शान्ति का मार्ग है, भगवान!

आत्मा में अनन्त बेशुमार शक्ति है, परन्तु कोई ऐसी शक्ति नहीं कि व्यवहाररत्नत्रय के राग को करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं। आहाहा! आता है तो उसे जानता है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! अभी तो मार्ग बहुत बदल गया है, बहुत फेरफार (हो गया)। ऐसा लगता है कि यह वह किसकी बात करते हैं? केवली की बात है यह? सिद्ध की बात है? यह तो जीवद्रव्य जैसा है, वैसे की बात है। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द त्रिकाली ऐसी अनन्त बेशुमार अनन्त अमाप अपरिमित शक्ति का भण्डार है, परन्तु कोई एक ऐसी शक्ति नहीं कि व्यवहाररत्नत्रय का राग करे, ऐसी कोई शक्ति, गुण, स्वभाव नहीं। आहाहा! तो व्यवहाररत्नत्रय से आत्मा निश्चय पाता है, (यह मान्यता) महामिथ्यात्वभाव है। आहाहा! अनन्त बार मुनिव्रत धारण किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान...'

आत्मा का स्वभाव राग का कर्ता, ऐसा कोई स्वभाव नहीं, ऐसे आत्मा का अनुभव नहीं किया। समझ में आया? पंच महाव्रत लिये, दीक्षित हुआ, नग्नपना अनन्त बार हुआ। द्रव्यलिंग अनन्त बार धारण किया और पंच महाव्रत भी अनन्त बार लिये... आहाहा! परन्तु राग से भिन्न चैतन्यस्वभाव शुद्ध अनन्त शक्ति का पिण्ड है, ऐसा आत्मज्ञान नहीं किया। ऐसा आया न उसमें? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान...' आत्मज्ञान अर्थात् यह आत्मा ऐसा है कि रागादि का कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान का स्मरण करने का राग... आहाहा! होता है, परन्तु भगवान आत्मा में स्वभाव ऐसा नहीं कि उस राग को करे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'**अस्य चितः कर्तृत्वं न स्वभावः**' भाषा ऐसी है न, देखो! **चैतन्यमात्रस्वरूप जीव...** वह तो चैतन्यमात्रस्वरूप है। ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उस ज्ञान और आनन्दस्वरूप में रागादि करे, ऐसा कोई सहज गुण तो नहीं। है? आहाहा! भगवान आत्मा में कोई भी ऐसी शक्ति, गुण या स्वभाव राग को करे, ऐसा कोई गुण, स्वभाव तो है नहीं। स्वभाव नहीं है तो स्वभाव बिना आत्मा राग करे किस प्रकार? आहाहा!

मुमुक्षु : स्वभाव हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु स्वभाव है ही नहीं। स्वभाव है, वह तो त्रिकाली शुद्ध चैतन्य है और अनन्त शक्ति बेशुमार होने पर भी कोई एक शक्ति राग को करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं है। ऐसी शक्ति हो तो सदा त्रिकाल रागरूप रहना पड़े, अपना मोक्ष और सम्यग्दर्शन तो नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : विभाविक शक्ति क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण है, त्रिकाली गुण है। विभाव करे, वह गुण का स्वरूप नहीं। विभाविक गुण है तो विभाव करे, ऐसा उसका गुण नहीं। वह तो शक्ति निमित्त के आधीन हो तो विकार करे। विभाविक शक्ति है तो विभाव करे, ऐसा गुण है—ऐसा नहीं है। विभाविक शक्ति तो चार द्रव्य में है नहीं, अपने में है, इस अपेक्षा से विभाविक शक्ति कही गयी है परन्तु विभाव, विकार करे, ऐसी शक्ति नहीं है। आहाहा! चार द्रव्य में है नहीं, जीव और पुद्गल दो (द्रव्यों में) है, इस अपेक्षा से विभाव अर्थात् विशेष भाव,

खास भाव लिया है। परन्तु विभाव का अर्थ ऐसा नहीं कि विभावशक्ति है तो विभावशक्ति विकार करे। विभाविक शक्ति सिद्ध में भी है। समझ में आया? कोई गुण ऐसा नहीं कि विकार करे। आहाहा! विभाविक शक्ति भी एक गुण है, परन्तु विकार करे, ऐसा उस गुण का स्वभाव है नहीं। आहाहा! वह तो निमित्ताधीन होकर पर्याय में विकार करे, तो वह कोई कहीं गुण नहीं है, वह तो पर्यायबुद्धि से विकार हुआ है, गुणबुद्धि से हुआ नहीं। आत्मा में विभाविक गुण है, तो उस गुण के कारण विकार उत्पन्न होता है, ऐसा तो गुण नहीं है। आहाहा! मात्र विभाविक शक्ति नाम का (गुण है)। जैसे ज्ञानगुण है, जैसा दर्शनगुण है, वैसा विभाविक शक्ति नाम का गुण है, बस! परन्तु वह गुण विकार करे, ऐसा गुण है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? चार द्रव्यों में नहीं, इसलिए विभाव—विशेष भाव, विशेष—खास भाव गिनने में आया, परन्तु वह भाव कोई विकार करे और उदय राग का करे, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ तो आत्मा जैसा है, वैसा कैसा है? ऐसा कहते हैं न? कि कोई गुण ऐसा नहीं कि राग को करे, ऐसा वह है। ऐसी दृष्टि में जब आत्मा आता है, तो सम्यग्दृष्टि राग का कर्ता होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विभाव एक समय की निमित्ताधीन पर्यायदृष्टि से विकार होता है। विकार कोई गुण से, शक्ति से, स्वभाव से नहीं होता। आहाहा! तो जब पर्यायदृष्टि निमित्त के आधीन होकर विकृत (हुई), वह दृष्टि जब छूट गयी और द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई तो द्रव्यस्वभाव में राग को करे, ऐसा कोई (स्वभाव) नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अशुद्ध परिणाम लिये न? देखो!

रागादि परिणाम को करे ऐसा सहज का गुण नहीं है;... 'न स्वभावः' 'न स्वभावः' व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प राग... आहाहा! शास्त्र पढ़ने का राग... आहाहा! शास्त्र सन्मुख बुद्धि व्यभिचारिणी जो है, वह राग... आहाहा! उस राग को रचे, ऐसा कोई स्वभाव तो नहीं। स्वभाव नहीं तो स्वभावदृष्टिवन्त राग का कर्ता है नहीं। यह सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' है न! सब अधिकार कहने के बाद अब कलश चढ़ाते हैं। मन्दिर बनने के पश्चात् कलश चढ़ाते हैं न? इसी प्रकार यह कलश चढ़ाते हैं। आहाहा! लॉजिक, न्याय

से (बात करते हैं)। प्रभु! तू शाश्वत् है और तुझमें जो स्वभाव है, वह अनन्त शाश्वत्, तो वह शाश्वत् कोई स्वभाव... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के राग को करे, ऐसा तेरे शाश्वत् स्वभाव में कोई स्वभाव तो है नहीं। समझ में आया? तो कैसे होता है, यह बात करेंगे। कैसे होता है, यह बात करेंगे। आहाहा! होता तो है न! और कर्ता है, ऐसा मानता है न! तो कैसे होता है, यह कहेंगे। अज्ञान से (होता है)।

सहज का गुण नहीं है;... आहाहा! दृष्टान्त में भी ऐसा लिया, दृष्टान्त भी बाहर का नहीं लिया। आहाहा। **'वेदयितृत्ववत्' जिस प्रकार जीव कर्म का भोक्ता भी नहीं है।** आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, वह विभाव का भोक्ता भी है नहीं। भोक्तावत् करता नहीं, ऐसा दृष्टान्त लिया है। बाहर का कोई दृष्टान्त नहीं लिया। है? क्योंकि भगवान आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह राग का भोक्ता कैसे हो? जिसमें कोई स्वभाव नहीं, शक्ति नहीं, द्रव्य नहीं तो वह राग का भोक्ता कैसे हो? समझ में आया? आहाहा! भोक्तावत्। राग का भोक्ता नहीं, इस कारण से राग का कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहा है न?

'वेदयितृत्ववत्' जिस प्रकार जीव कर्म का भोक्ता भी नहीं है। दृष्टान्त भी यह (लिया है)। दृष्टान्त में तो यह लिया। आहाहा! क्योंकि विकार का भोक्ता किस प्रकार होगा? क्योंकि उसमें कोई गुण तो ऐसा नहीं तो विकार का भोक्ता कैसे होगा? आहाहा! विकार का भोक्ता नहीं, क्योंकि निर्विकारी अनन्त गुण और शक्तियाँ हैं। (यदि) विकार का भोक्ता नहीं तो कर्ता नहीं। दृष्टान्त यह दिया है। आहाहा! समझ में आया? विकार का भोक्ता नहीं। आहाहा! पाठ यह है न? **'वेदयितृत्ववत्' जिस प्रकार जीव कर्म का भोक्ता भी नहीं है।** ऐसा है न? ऐसा करके कर्ता भी नहीं, (ऐसा कहा)। भोक्ता भी नहीं तो फिर कर्ता कहाँ से हुआ? ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसका आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव, शान्तस्वभाव वह विकार को कैसे भोगे? यदि विकार का भोक्ता नहीं तो कर्ता कैसे हो? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें! यहाँ तो धमाल... बाहर का यह किया और यह किया और यह किया... आहाहा! यह रथयात्रा निकाली और गजरथ निकाले और यह मन्दिर बनाये....

मुमुक्षु : यह तो अपने बनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनावे ? रामजीभाई ध्यान रखते थे।

मुमुक्षु : मैंने बनाया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ बनाया नहीं। ध्यान रखते थे, ऐसा मैंने कहा था। आहाहा! कठिन बात है। गजब बात है, बापू!

प्रभु! तू कौन है ? तुझमें गुण तो अनन्त—बेशुमार है परन्तु कोई गुण ऐसा नहीं कि विकार को वेदन करे। यदि विकार का वेदन नहीं तो कर्ता कहाँ से होगा ? कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! हुकमचन्दजी! ऐसी बातें हैं, लोगों को कठिन पड़े। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है। ऊपर कहा न ? जीवद्रव्य ही ऐसा है न, जीवद्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है न! जीवद्रव्य ऐसा है, वैसा उसका स्वभाव ही ऐसा है न! तो राग का कर्ता कहाँ से होगा ? क्योंकि उसके स्वभाव में कोई (ऐसा गुण) नहीं। तो कहते हैं, किसकी भाँति ?

'**वेदयितृत्ववत्**' आहाहा! दृष्टान्त में (ऐसा लिया कि) विकार को भोगे, वह आत्मा नहीं। आहाहा! विकार को भोगता नहीं, इस कारण से आत्मा विकार का कर्ता नहीं। दृष्टान्त ऐसा लिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : विकार को भोगे, यह तो व्यवहारनय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगता ही नहीं। व्यवहार से भी भोगता नहीं। बिल्कुल नहीं। वह तो ज्ञानप्रधान कथन करे, तब ऐसा कहा जाता है कि पर्याय में जितना राग है, उतना कर्ता है। वह तो ज्ञान की प्रधानता में जानने के लिये कथन किया। ४७ नय। ४७ नय में कर्तानय है न ? सम्यग्दृष्टि को है। परन्तु वह अलग बात है। वह तो यह परिणमन है, इस अपेक्षा से कर्ता कहा। परन्तु करनेयोग्य है, ऐसा कोई गुण, शक्ति नहीं है। परन्तु पर्याय में परिणमता है तो कर्ता है, ऐसा ज्ञान जानता है। पर्याय में (है, ऐसा) ज्ञान जानता है, द्रव्य में तो ऐसा है नहीं। आहाहा! क्या कहा यह ? हैं ?

फिर से। द्रव्य और उसके गुण जो स्वभाव है, इस दृष्टि से तो राग का परिणमन तो उसमें है नहीं। आहाहा! परन्तु पर्याय में राग होता है न ? कि, होता है तो ज्ञान जानता है कि इतना परिणमन मेरी कमजोरी है, मेरे कारण से है, इतना। परन्तु करनेयोग्य है,

मेरा गुण करनेयोग्य है, इसलिए कर्ता हूँ, ऐसा नहीं है। परन्तु पर्याय में मेरी निर्बलता से राग आता है और उसका परिणमन करे, वह कर्ता—ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। आहाहा!

भोक्ता भी ऐसा कहा। रंगरेज की भाँति राग का कर्ता कहा और भोक्ता। बीमार जैसे औषधि खाता है, वैसे पर्याय में जब तक पूर्ण वीतरागता नहीं हो, तब तक जरा भोक्ता है। राग का परिणमन है न, वह पर्याय की दृष्टि से, पर्याय का ज्ञान करने से उसका भोक्ता पर्याय में है।

यहाँ लेना है कि कर्ता और भोक्ता है, ऐसा कोई उसका गुण नहीं है। वह तो पर्याय में योग्यता से उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? यह क्या कहा? जो द्रव्य वस्तु है न, उसके जो अनन्त अपार गुण हैं, उनमें का कोई गुण ऐसा नहीं है कि राग को करे और भोगे। परन्तु उसकी पर्याय में... अब द्रव्य-गुण छोड़ दिये। आहाहा! परन्तु पर्याय में समकिती को भी जो राग होता है न? तो कहते हैं, परिणमन है न, तो कर्ता कहा जाता है। पर्याय, हों! द्रव्य-गुण में तो है नहीं। आहाहा! परन्तु पर्याय की योग्यता में जितना रागरूप होता है, उतना कर्ता (है, ऐसा) ज्ञान में (जानता है)। पर्याय में पर्याय को जानने का ज्ञान करता है। परन्तु वह राग, कोई गुण है, कर्ता या स्वभाव, शक्ति कोई राग का स्वभाव है, ऐसा नहीं। आहाहा! परन्तु जब तक पर्याय में पुरुषार्थ न्यून है... आहाहा! तब तक पर्याय में होता है, वह द्रव्य-गुण से नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य से पर्याय नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे नहीं। आहाहा! मात्र पर्याय में धर्मात्मा को भी राग होता है और उसका भोक्ता भी होता है, परन्तु वह तो पर्याय में पर्याय का ज्ञान कराने के लिये (कहा है)। वह पर्याय में हुआ तो द्रव्य-गुण से हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा! दो नय का ज्ञान कराना है न? है?

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण तो तीनों काल है, पर्याय में ही होता है न....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में होता है। पर्याय में होता है, परन्तु मानता है कि मेरा गुण ऐसा है कि विकार होता है, ऐसा अज्ञानी मानता है। और यहाँ तो पर्याय में निर्बलता

के कारण थोड़ा राग होता है, वह कोई गुण और द्रव्य के कारण नहीं, द्रव्य के स्वभाव के कारण नहीं, मेरी निर्बलता के कारण पर्याय में होता है। समझ में आया? आहाहा! तब कहा कि अज्ञानी को पर्याय में होता है। परन्तु वह अज्ञानपने मानता है कि मैं उसका कर्ता हूँ। ऐसा अज्ञानरूप से मानता है और ज्ञानी को होता है, वह मानता नहीं कि मेरा कोई गुण है, इसलिए हुआ है। परन्तु पर्याय में कमजोरी है तो राग हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक खूँटे बाँधो न....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक खूँटे बाँधा है। प्रमाणज्ञान। निश्चय स्वभाव और द्रव्य के ज्ञान में यह कर्ता-भोक्ता नहीं, परन्तु पर्याय की परिणति में परिणमता है, इस अपेक्षा से कर्ता-भोक्ता है। प्रमाणज्ञान कराने के लिये बात की है। आहाहा! व्यवहारनय का भी ज्ञान तो जैसा हो वैसा मानना, जानना चाहिए न? राग (रूप से) परिणमता है तो व्यवहारनय जानता है कि है। और दोनों का इकट्ठा हो तब प्रमाणज्ञान कहलाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी तो कहा कि राग को करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो स्वभाव से और द्रव्य से होता नहीं। परन्तु पर्याय में होता है न? तीन प्रकार है न? द्रव्य, गुण और पर्याय तीन है। तो द्रव्य और गुण से तो है नहीं। समकिती को भी नहीं और मिथ्यादृष्टि को भी नहीं। मिथ्यादृष्टि को भी कोई द्रव्य, गुण के कारण नहीं। वह मानता है कि इस राग को मैं करता हूँ, द्रव्य से करता हूँ, ऐसा वह मानता है। आहाहा! ऐसा मानता है। समझ में आया? और यह तो पर्याय में मेरा परिणमन कमजोरी से (होता है)। व्यवहारनय का विषय पर्याय को पर्यायरूप से जिस प्रकार से हुई है, उसे उस प्रकार से जानना। व्यवहारनय का विषय जाना हुआ प्रयोजनवान है। और अज्ञानी तो कर्ता होता है, ऐसा आगे कहेंगे।

'**अज्ञानादेव कर्तायं**' देखो! पाठ में है। है? अज्ञान से मानता है कि मैं उसका कर्ता हूँ। द्रव्य-गुण कर्ता हूँ, ऐसा वह मानता है। उसकी दृष्टि द्रव्य-गुण के ऊपर कहाँ है? द्रव्य-गुण को तो भूल गया है, परन्तु यह द्रव्य मानो उसका कर्ता है, ऐसा वह (मानता है), परन्तु धर्मी को द्रव्य-गुण का भान है कि मेरा कोई गुण और द्रव्य कोई

विकार करे, ऐसी मेरी शक्ति नहीं है। परन्तु पर्याय में मेरी कमजोरी के कारण रागादि होते हैं, उनका कर्ता और भोक्ता हूँ, वह जाननेयोग्य है, ऐसा मानता हूँ। आहाहा! ऐसी बातें है। शान्तिभाई! आहाहा! एक ओर ना तथा एक ओर हाँ। बापू! किस अपेक्षा से हाँ, ना? आहाहा! कोई द्रव्य की, गुण की ऐसी कोई शक्ति नहीं या द्रव्य, गुण का कोई स्वभाव नहीं कि उदयभाव करे। परन्तु है न? तब कहते हैं, पर्याय में द्रव्य-गुण का भान होने पर भी शुद्ध द्रव्य-गुण राग को करे नहीं, ऐसी मान्यता, अनुभव होने पर भी पर्याय में निर्बलता के कारण, पर्याय को जानने के लिये व्यवहारनय से पर्याय में कर्ता-भोक्ता है। आहाहा! अशुद्धनिश्चय से ऐसा कहा जाता है। अशुद्धनिश्चय अर्थात् व्यवहार है। आहाहा! इस प्रकार उसमें, हों! वापस द्रव्य और गुण की दृष्टि से पर्याय में विकार हुआ है, ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि को भी द्रव्य और गुण के स्वभाव के आश्रय से और दृष्टि से विकार हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वर्तमान अपनी कमजोरी के कारण, निर्बलता के कारण पर्याय में राग का, व्यवहार का परिणमन है। उसे वह जानता है। समझ में आया? वह परिणमन पर में है और पर के कारण है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

कर्म का भोक्ता भी नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य कर्म का भोक्ता हो तो कर्ता होवे;... भाषा देखो! यहाँ सिद्धान्त यह सिद्ध करना है। जिसे भोगे तो उसका कर्ता भी कहलाये, परन्तु उसका भोक्ता नहीं। शुद्ध निश्चय की दृष्टि में द्रव्यस्वभाव के अनुभव में, उसके आश्रय के लक्ष्य में वह विकार का भोक्ता नहीं तो कर्ता भी नहीं है। आहाहा! ऐसा अब बनियों को फुरसत नहीं मिलती और निर्णय करना। इसके बिना उद्धार नहीं, भाई! चौरासी के अवतार (में) भटककर दुःखी होकर मर गया है। आहाहा! यह आ गया था, नहीं? क्या कहा? मरणतुल्य। भाषा नहीं आयी? इसमें कहीं आ गयी है। इस ओर (थी)। जीव मरणतुल्य हो रहा था। कहीं है, इस ओर है, यहाँ नीचे। आहाहा! है कहीं? सब कहीं याद रहता है? भाव याद रहते हैं। किसमें था वह? हैं? २८ कलश? हाँ, जीव का अधिकार है न? २८। इसमें तो हिन्दी है, उसमें गुजराती था। २८वाँ कलश न? पहले से? इस ओर है, इसमें अन्तर है। २८? कलश... कलश। बस! यह। दूसरी लाईन है, दूसरी ओर में दूसरी लाईन। हिन्दी में है न?

जैसे ढँकी हुई निधि प्रगट की जाती है वैसे जीवद्रव्य प्रगट ही है, परन्तु कर्मसंयोग

से ढँका हुआ होने से मरण को प्राप्त हो रहा था... आहाहा! विद्यमान चीज़ है, उसका निषेध करके राग ही हूँ, ऐसे मरणतुल्य कर दिया। आत्मा को मरणतुल्य कर दिया। आहाहा! है? जीव अधिकार है न? २८वें (कलश के ३०वें पृष्ठ पर) नीचे से चौथी लाईन। गुजराती में अन्तर होगा। मरणतुल्य किया है। ऐसा है न? **मरण को प्राप्त हो रहा था...** आहाहा! अर्थात्? ऐसे विद्यमान चीज़ है, वह नहीं और यह राग वह मैं, वह मरणतुल्य (हो गया)। है उसका निषेध करता था तो मरणतुल्य हो रहा था। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ जो कहा, अपने चलता अधिकार। कितना आया? १९४। **जिस प्रकार जीव कर्म का भोक्ता भी नहीं है। जीवद्रव्य कर्म का भोक्ता हो तो कर्ता होवे; सो तो भोक्ता भी नहीं है, इससे कर्ता भी नहीं है।** आहाहा! तब कर्ता कैसे होता है, यह बात विशेष करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ४, शुक्रवार, दिनांक-२७-०१-१९७८, कलश-१९४, प्रवचन-२१६

कलशटीका। सेठ! हिन्दी समझते हो? हिन्दी? तुम तो मुम्बई रहते हो। आज हिन्दी चलेगी। यह कितने ही लोग हिन्दी हैं न? मुम्बई वाले तो समझते हैं। यहाँ आया है। देखो! १९४ श्लोक है। फिर से (लेते हैं), सेठ आये हैं न! कल आधा वाँचन हो गया है। '**अस्य चितः कर्तृत्वं न स्वभावः**' है? सेठ को बताओ। कठिन बात है भैया थोड़ी! आहाहा!

मुमुक्षु : हमको समझ में आये ऐसा है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आये ऐसा है। न समझ आये ऐसी चीज़ (नहीं है)। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समझ में आये ऐसी बात करते हैं। हम दृष्टान्त नहीं देते? पानी की प्यास लगी हो तो घर में घोड़ा और बैल हजार, दो हजार के हों तो उन्हें कहे कि पानी लाओ? बैल और हाथी घर में हो, प्यास लगी हो तो उन्हें कहे कि पानी लाओ? क्योंकि समझता है कि वे पानी नहीं समझते। आठ वर्ष की बालिका तो समझेगी (हो, उसे कहे) बेटा! सांकली... सांकली! पानी ला। तो जो समझे उसे (कहते हैं)। उसी प्रकार आचार्य (जो) समझते हैं, उनसे बात करते हैं। जिसे समझ में आये ऐसी बात है। आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है, उसे क्यों नहीं समझ में आये?

ये कहते हैं, देखो! '**अस्य चितः कर्तृत्वं न स्वभावः**' **चैतन्यमात्रस्वरूप जीव का...** बारीक सूक्ष्म बात है, भगवान! यह वस्तु जो आत्मा है, वह तो चैतन्यमात्र जीव है।

मुमुक्षु : चैतन्य ऐसा शब्द.... उसका अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी विशेष (स्पष्टीकरण) करते हैं। ऐसे नहीं जाने देंगे। चैतन्यमात्र का अर्थ जानन-देखन जिसका स्वभाव है। आत्मा वस्तु है, उसका स्वभाव क्या? जानन-देखन, ज्ञाता-दृष्टा, जानना और देखना यह भगवान आत्मा का स्वभाव है। सर्वज्ञ परमात्मा जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ हुए, वे कहाँ से हुए? बाहर से कहीं से पर्याय आती है? अन्दर में सर्वज्ञस्वभाव है, ज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसा स्वभाव है, उसमें से सर्वज्ञ और वीतराग हुए हैं।

कहते हैं कि '**अस्य चितः कर्तृत्वं न स्वभावः**' यह **चैतन्यमात्रस्वरूप जीव का...** भगवान! सूक्ष्म बात है, प्रभु! जैसे यह आँख है, वह देखने का काम करती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा जानना-देखना जिसका स्वभाव है। राग का करना या पुण्यभाव का करना, वह उसका स्वभाव नहीं है, यह सिद्ध करना है। प्रभु! आहाहा! बाकी तो अनन्त बार शुभ बहुत किया। पुण्य भी किया और पाप भी किये और चार गति में अनन्त काल से भटका। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। नयी चीज़ तो अन्दर चैतन्यमूर्ति, चैतन्य का प्रवाह (चलता है)। जैसे पानी का प्रवाह होता है, घोड़ापूर कहते हैं। पानी का घोड़ापूर समझ में आता है? सेठ! घोड़ापूर समझ में आता है? पानी का पूर जोरदार आवे न! हमारे तो उमराला में नदी है। अभी ८८ वर्ष हुए। ७० वर्ष पहले हम खेलते थे तब ऊपर से पानी आता, बीस कोस दूर से। इतना-इतना पानी का दल। पाँच-दस इंच वर्षा आयी हो। उसे घोड़ापूर कहते हैं। हम तो खेलते थे। वृद्ध ऊपर से चिल्लाहट मचाये। लड़कों जल्दी बाहर आओ, घोड़ापूर आता है। इतना-इतना ऊँचा पानी का दल चला आता है। वह प्रवाह है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य नूर का—तेज का पूर—प्रवाह है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! इसने कभी अनन्त काल में किया नहीं, बाकी धूलधाणी करके अनन्त बार भव किये। नरक के, निगोद के... अरे! अरबोंपति के और भिखारी के। सौ बार माँगे तो एक बार मिले, ऐसे भिखारी के भव अनन्त बार किये। वह कोई चीज़ नहीं है। वह तो चार गति का दुःख है।

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! तेरा स्वभाव क्या? है? **चैतन्यमात्रस्वरूप जीव का...** आहाहा! वह तो जानन-देखन उसका स्वभाव है। वह **ज्ञानावरणादि कर्म को करे अथवा रागादि परिणाम को करे, ऐसा सहज का गुण नहीं है;...** आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यहाँ तो भगवानरूप से ही बुलाते हैं। अन्दर भगवानस्वरूप है। परन्तु कहीं खबर नहीं, खबर नहीं होती। आत्मा पुण्य और पाप के भाव जो शुभ-अशुभ होते हैं, वह राग है। उस राग का ज्ञानस्वरूप प्रभु कर्ता नहीं, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! चैतन्य का पूर अन्दर नूर। चैतन्य के तेज का—नूर का पूर प्रवाह अन्दर ध्रुव है। आहाहा! वह कहाँ

होगा? ऐसी चीज़ जो है वह पुण्य और पाप... है न? **रागादि परिणाम...** राग, पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि के भाव। सूक्ष्म है, प्रभु! उनका कर्ता आत्मा नहीं। आतमा का स्वभाव ऐसा है ही नहीं। उसका यदि करने का स्वभाव हो तो स्वभाव कर्ता मिटे नहीं और कभी मोक्ष हो नहीं। आहाहा! यह कहते हैं।

चैतन्यमात्रस्वरूप जीव का, रागादि परिणाम को करे, ऐसा सहज का गुण नहीं है;... क्या कहते हैं? सूक्ष्म है, प्रभु! हम तो सबको जानते हैं न! आत्मा में कोई ऐसी शक्ति नहीं कि विकार को करे, ऐसी कोई शक्ति या गुण नहीं है। आत्मा में अनन्त गुण है। आहाहा! अनन्त बेशुमार! वस्तु एक और गुण, उसकी शक्ति, स्वभाव अनन्त है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रभुत्व इत्यादि-इत्यादि, परन्तु कोई शक्ति या स्वभाव ऐसा नहीं कि विकार को करे, ऐसा कोई उसका गुण हो, ऐसा कोई गुण नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह चैतन्यसूर्य है। जैसे इस सूर्य का प्रकाश जड़ है। वह जड़ का प्रकाश, जो चेतनासत्ता में भास होता है कि यह जड़ है। वह चेतनासत्ता प्रकाश का पूर है। चैतन्य के प्रकाश का पूर उसका स्वभाव है। उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं, परन्तु कोई शक्ति, गुण ऐसा नहीं कि राग, दया, दान को करे, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भगवान! आहाहा!

अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान,
सेये नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान।

अनन्त-अनन्त काल से (भटकता है)। बड़ा देव, नौवें ग्रैवेयक में देव अनन्त बार हुआ। पुण्य की क्रिया की, परन्तु वह राग मेरा कर्तव्य है—ऐसी मान्यता, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है। आहाहा! इस कारण से उसे चार गति में भटकना पड़ता है। समझ में आया? है?

रागादि परिणाम **सहज का गुण नहीं है;...** महा अध्यात्म है न, प्रभु! यह कोई कथा, वार्ता नहीं है। आत्मा में दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का भाव, वह राग है। राग का कर्ता (हो), ऐसा आत्मा में कोई स्वाभाविक गुण नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है,

प्रभु! क्या हो? और वर्तमान में तो गड़बड़ बहुत हो गयी है। आहाहा! अन्दर चैतन्य का तेज है, उसमें कोई ऐसी शक्ति, गुण नहीं कि राग, दया, दान, पुण्य के परिणाम का कर्ता हो, ऐसा कोई आत्मा में गुण है ही नहीं। आहाहा! वह तो अज्ञानभाव से मानता है। मिथ्याश्रद्धा से मानता है कि राग मेरा कर्तव्य है और राग मेरा कार्य है। आहाहा! तो यह शरीर और धन्धा-फन्धा के कार्य तो कहीं रह गये, धूल में। उनका कार्य आत्मा कर सके, यह तीन काल में नहीं है।

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! तुझमें ऐसी कोई शक्ति, गुण नहीं कि वह शुभभाव है, उसे करे, रचे, ऐसी कोई शक्ति नहीं। तो वह होता तो है न? भाव, शुभ-अशुभराग तो होता है। यह कहते हैं। कोई सहज गुण नहीं। किसकी भाँति? **जैसे जीव कर्म का भोक्ता भी नहीं।** आहाहा! प्रभु! चैतन्यस्वरूप तो आनन्द का ही भोक्ता है। वह राग का भोक्ता भी प्रभु आत्मा नहीं। आहाहा! दृष्टान्त भी यह लिया है। आहाहा! प्रभु! तू चैतन्यदल है न! आनन्दकन्द! आहाहा!

शकरकन्द का दृष्टान्त दिया था। तुम पहले आये थे। सेठ! शाम को दिया था। शकरकन्द, शकरकन्द। अपने (गुजराती में) उसे शक्करिया कहते हैं न? परन्तु उसका नाम शकरकन्द है। उसका अर्थ कि ऊपर की जो लाल छाल है, उसे न देखो तो अन्दर शकरकन्द—शक्कर की मिठास का वह पिण्ड है। इसलिए शकरकन्द कहते हैं परन्तु लोग शकरिया, शकरिया करे। मूल तो शकरकन्द है। वह शक्कर की मिठास का दल है। ऊपर की छाल न देखो तो वह चीज़ तो उससे भिन्न है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा... आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो भिन्न चीज़ है।

जैसे श्रीफल होता है न? श्रीफल, नारियल। नारियल के ऊपर के छाल है, वह अलग चीज़ है और उसमें काचली है, वह अलग चीज़ है और काचली की ओर की लाल छाल है, यह बहिनें, लड़कियाँ खोपरापाक बनाती हैं न घिसकर, तो वह लाल छाल निकाल डालती हैं न? ध्यान रखना। वह छाल अलग है, काचली अलग है और लाल छिलका अलग है और लाल छिलके के पीछे अन्दर सफेद मीठा श्रीफल गोला पड़ा है। सफेद, मीठा, स्वादिष्ट गोला पड़ा है, उसका नाम श्रीफल है।

उसी प्रकार इस देह में भगवान आत्मा है। यह देह है, वह ऊपर की छाल (जटा) है और पुण्य-पाप के रजकण कर्म है, उस कर्म के कारण से पैसा-बैसा धूल मिले और धूल न मिले, दरिद्र हो, ऐसे पुण्य-पाप के परमाणु कर्म हैं, वे काचली के समान कर्म जड़ है, वे भी भिन्न चीज़ है और काचली के ओर की लाल छाल, उसी प्रकार कर्म की ओर का भाव पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे लाल छाल जैसी चीज़ है। आहाहा! उसके पीछे, जैसे वह नारियल—श्रीफल गोला मीठा और सफेद है, उसी प्रकार यह राग और पुण्य-पाप के भाव के विकल्प से अन्दर भिन्न, सफेद अर्थात् शुद्ध, मीठा अर्थात् आनन्द, वह शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है, परन्तु कभी सुना नहीं। अभी आत्मा क्या है? आहाहा! समझ में आया?

अन्दर भगवान आत्मा श्वेत-सफेद जैसे श्रीफल है, उसी प्रकार सफेद अर्थात् शुद्ध, मीठा अर्थात् आनन्द। वह शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु अन्दर है। आहाहा! वह वस्तु का स्वभाव राग को करे, ऐसा कोई स्वभाव है ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या हो? सर्वत्र त्रिलोकनाथ महाविदेह में तो विराजते हैं, सीमन्धर प्रभु! वहाँ इन्द्र और नरेन्द्र जाते हैं। वर्तमान में विराजते हैं, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, समवसरण में विराजते हैं, आहाहा! और पाँच सौ धनुष का देह है, दो हजार हाथ ऊँचा। इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकलती है। वे तो वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, उन्हें इच्छा-बिच्छा नहीं होती। इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकलती है। इन्द्र, नरेन्द्र बड़े अर्द्धलोक के स्वामी शकेन्द्र आते हैं, सभा में सुनते हैं। उस सुनने में भगवान ने यह कहा था, वह यह सन्देश है। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि जैसे उस श्रीफल में, श्रीफल अर्थात् मीठा गोला। उसे श्रीफल कहते हैं। श्रीफल! उसी प्रकार यह भगवान आत्मा शरीर छाल, कर्म काचली और पुण्य-पाप के भाव छिलका, उनसे भिन्न अन्दर आनन्दगोला, चैतन्यगोला भिन्न आत्मा है। आहाहा! कठिन बात, भाई! दुनिया को सत्य बात मिलना मुश्किल है, सुनना मुश्किल है, प्राप्त करना तो महामुश्किल है। आहाहा! अनन्त बार राजा हुआ, देव हुआ, भिखारी हुआ, नारकी हुआ। प्रभु तो कहते हैं कि अनन्त बार नरक में गया। उस नरक की पीड़ा एक क्षण के दुःख करोड़ों जीभ और करोड़ों भव से न कह सके, ऐसे

दु:ख प्रभु वर्णन करते हैं। नीचे नरक, नारकी है। सात नरक हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा। नाम तो ऊँचे हैं परन्तु हैं तो नरक। समझ में आया? आहाहा! एक महिला को भान नहीं था। पहले नरक का नाम रत्नप्रभा है। है तो दु:ख का समुद्र परन्तु उसका नाम रत्नप्रभा है। एक महिला को साधु ने पूछा कि बहिन! तुम्हें रत्नप्रभा जाना है? महाराज! हमारे जैसे रत्नप्रभा जायें? आपके जैसे जाते हैं। सेठ! रत्नप्रभा अर्थात् क्या होगा मानो? उसका नाम है। सिद्धान्त में सात नरक के नाम हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा ऐसे नाम हैं। वह मानो रत्नप्रभा अर्थात् क्या होगा? यह तो उन्होंने पूछा कि माँ! तुम्हें रत्नप्रभा जाना है? महाराज! हमारे जैसे गरीब व्यक्ति कैसे जायें? आप जैसे जायें। अरे! उसे खबर नहीं कि यह रत्नप्रभा नारकी का स्थान है। जिसका दु:ख का पार नहीं। प्रभु तो करोड़ जीभ और करोड़ भव से उसके क्षण के दु:ख न कह सके, इतना दु:ख है, प्रभु! वहाँ यह अनन्त बार जन्मकर आया है। अनादि काल का है, यह कहीं नया है? है... है... और है। अनादि से है, वह कहाँ रहा? वह भटकने में रहा दु:खी होकर। आहाहा! परन्तु उसकी चीज़ वह स्वयं स्वभाव क्या है? और उसके स्वभाव का सामर्थ्य क्या है, वह कभी इसने सुना नहीं और रुचा नहीं। भगवान के समवसरण में भी अनन्तबार गया परन्तु यह बात इसने अन्दर प्रेम से सुनी नहीं। प्रेम से, हों! वैसे तो सुनी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तेरा स्वभाव... आहाहा! जैसे भोक्ता नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? शुभ-अशुभभाव है, उसका कर्ता नहीं। क्यों? कि उसका भोक्ता नहीं। आनन्दकन्द प्रभु है, वह विकार का भोक्ता कैसे होगा? आहाहा! समझ में आया? वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। श्रीफल कहो, शकरकन्द कहो। आहाहा! अन्दर पूर्णानन्द की शक्ति से भरपूर, प्रभु! आहाहा! वह शुभाशुभभाव—राग का रचनेवाला वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। क्यों? कि वस्तु आनन्दकन्द प्रभु है, वह विकार का भोक्ता भी नहीं। विकार का भोक्ता और कर्ता होता है, वह अज्ञानभाव से होता है। आहाहा! समझ में आया? ये कहते हैं, देखो!

भोक्तृत्ववत्। **जीव कर्म का भोक्ता भी नहीं है।** आहाहा! जहर—पुण्य और पाप के भाव। प्रभु! सूक्ष्म पड़े, परन्तु है तो शुभ-अशुभभाव जहर। प्रभु आत्मा अमृत का

सागर अन्दर है। उस अमृत का अतीन्द्रिय अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु से पुण्य और पाप के भाव विरुद्ध है। यह सुख है तो वे दुःख हैं; यह चैतन्य है तो वे अचेतन है; यह शान्त है तो वे अशान्ति है; यह जीवस्वभाव है तो वे जड़स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

राग का कर्ता नहीं। कैसे? कि राग का भोक्ता नहीं, (इस प्रकार)। क्योंकि भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, उस विकार को कैसे भोगे? वास्तविक स्वरूप का जिसे भान हुआ, वह विकार को कैसे भोगे? विकार का भोक्ता नहीं तो वह विकार का कर्ता भी नहीं। सुमनभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! सब खबर है न, हमने तो पूरी दुनिया देखी है और सब देखा है। परन्तु यह बात कोई दूसरी है, अनन्त काल में इसे मिली नहीं। समझ में आया? क्या बड़ा (सेठ) हो तो दो-पाँच-दस लाख दान में खर्च करे तो धर्म हो जाये, ऐसा मानता है। माने, धर्म धूल में भी नहीं है। करोड़ क्या अरबों रुपये हों तो भी जड़ है, मिट्टी है, धूल है। स्वामी होकर धूल दे तो मिथ्यात्व है। कदाचित् राग मन्द करके दे तो पुण्य है। वह भी राग है, शुभ है। वह आत्मा नहीं, आत्मा का धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? (जैसे) भोक्ता नहीं, वैसे कर्ता नहीं।

भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य कर्म का भोक्ता हो तो कर्ता होवे;... आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, चैतन्य के नूर का पूर, वह राग को भोगे कैसे? तब कहते हैं कि यदि वह राग को भोगता नहीं तो वह राग का कर्ता कैसे होगा? हें?

मुमुक्षु : केंसर हो, तब दुःख होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : केंसर का दुःख नहीं। केंसर तो जड़ की दशा है। उसमें मैं हूँ, मुझे होता है—ऐसा भाव दुःख का कारण है। यह (देह) तो जड़, मिट्टी, धूल है। केंसर हो या कहलाता है तुम्हारे? क्षय रोग, यह सब कहलाता है न? बड़े सोलह रोग आते हैं। नरक में उपजे, तब सोलह रोग होते हैं। भगवान कहते हैं, नरक में उपजे, तब पहले से सोलह रोग (होते हैं)। केंसर क्या, क्षय और दमा और श्वास ऐसे सोलह रोग अनन्त बार भोगे, प्रभु! यह आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन बिना (भोगे हैं)। बाकी तो पुण्य भी अनन्त बार किये और पाप भी अनन्त बार किये और करके चार गति में भटका।

आहाहा! भव का अन्त करनेवाली जो चीज़ अन्दर है... आहाहा! प्रभु! तूने उसका ज्ञान किया नहीं, उसकी प्रतीति हुई नहीं, उसके बिना तुझे अनुभव हुआ नहीं और उसके बिना तेरे भव के अन्त आये नहीं। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं कि **जीवद्रव्य कर्म का भोक्ता हो तो कर्ता होवे; सो तो भोक्ता भी नहीं है, इससे कर्ता भी नहीं है।** आहाहा! वस्तु है, वह राग की कर्ता नहीं। आहाहा! तब कोई कहे कि यह दिखता है न? राग करता है, शुभभाव करता है, पापभाव करता है न? यह अब कहते हैं। यहाँ तक तो पहले आया था, यहाँ तक कल सवेरे आया था। यह तो सेठ आये, इसलिए फिर से लिया। पहले क्या था, ये ख्याल में आवे इसलिए (लिया)। आहाहा!

अब यहाँ से नया। **'अयं कर्ता अज्ञानात् एव' यह जीव रागादि-अशुद्ध परिणाम को करता है, ऐसा भी है...** आहाहा! पुण्य और पाप के भाव, शुभ और अशुभभाव राग को तो अशुचि कहा है। भगवान तो निर्मलानन्द अन्दर शुद्ध है और पुण्य-पाप को तो अजीव कहा है, जड़ कहा है। भगवान चैतन्यस्वरूप आत्मा है। पुण्य-पाप को तो प्रभु ने दुःख कहा है, प्रभु आनन्दस्वरूप भिन्न है। आहाहा! ऐसा जिसे भान नहीं... यह कहते हैं, देखो! **'अयं कर्ता अज्ञानात् एव' यह जीव रागादि-अशुद्ध परिणाम को करता है, ऐसा भी है, सो किस कारण से? 'अज्ञानात् एव' कर्मजनित भाव में आत्मबुद्धि ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम,...** आहाहा! कहते हैं कि आत्मद्रव्य जो राग का भोक्ता भी नहीं और राग का कर्ता भी नहीं तो यह प्रत्यक्ष दिखता है न? तो कहते हैं कि प्रभु! तेरे स्वरूप का तुझे भान नहीं। इस अज्ञान के कारण से अर्थात् मिथ्याश्रद्धा के कारण से। है? देखो!

कर्मजनित भाव में आत्मबुद्धि... आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव कर्मजन्य है, आत्मजन्य नहीं। वस्तु का स्वरूप नहीं। यह उपाधि भाव है, मैल है। उसमें आत्मबुद्धि (अर्थात्) वह मेरा कर्तव्य है, ऐसी आत्मबुद्धि, वह अज्ञानभाव है। आहाहा! यहाँ पहुँचना, लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती। पूरी जिन्दगी व्यापार और धन्धे के कारण फँस गये हैं। उसमें अकस्मात हो जाये तो! आहाहा!

देखो न, अभी तो तीनों गुजर गये, नहीं? साहूजी, नवनीतभाई, नवनीतभाई झवेरी। यहाँ दो लाख का बँगला है। यहाँ रहते थे। दो-तीन दिन में विशेष होकर गुजर गये। और यह पोपटभाई। पोपटलाल मोहनलाल वोरा वढवाण के। हसमुखभाई आये थे, (वे) उनके पुत्र हैं। छह भाई, करोड़पति व्यक्ति। यहाँ अभी ही चार दिन रह गये। दिवाली। रवि, सोम, मंगल, बुध। यहाँ से गुरुवार को गये। शनिवार को रात्रि में बारह बजे हसमुख ने पूछा, बापूजी! कैसे है? (तो कहा), मैं जाता हूँ। आहाहा! हसमुखभाई! पाँच मकान है न वहाँ? सात... सात। छह लड़के, एक-एक को पाँच-पाँच लाख के... क्या कहलाते हैं तुम्हारे? ब्लॉक। छह लड़कों क पाँच-पाँच लाख के हैं और एक स्वयं का। पैंतीस लाख के सात (ब्लॉक) हैं। भाई ऊपर सो रहे होंगे, वे नीचे (थे)। एकदम दर्द उठा। विचार किया, सुना। वैसे तो यहाँ रहनेवाले न? यहाँ मकान है। विचार किया, थोड़ा ध्यान किया। एकदम अन्दर से दर्द (उठा)। हसमुख की माँ को बुलाया। दर्द है, बुलाओ। बस! वहाँ तो... फू... किया। यह गये। कैसे बापूजी? तो कहे, मैं जाता हूँ। शरीर की स्थिति जिस समय में छूटने की है, उस समय में बड़े इन्द्र, नरेन्द्र आवे तो फेरफार हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! यह देह छूट जाये, उससे पहले यदि आत्मा का काम नहीं किया... आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, वे **रागादि-अशुद्ध परिणाम को करता है, ऐसा भी है सो किस कारण से? कर्मजनित भाव में आत्मबुद्धि...** आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव राग है, वह तो कर्म-निमित्त से उत्पन्न हुई उपाधि है। उसमें आत्मबुद्धि—यह मेरी चीज़ है और मुझे लाभदायक है, ऐसी आत्मबुद्धि अज्ञान है, इस कारण से कर्ता—भोक्ता होता है। समझ में आया? है तो बात लॉजिक से, परन्तु अभ्यास नहीं, अन्दर में आत्मा क्या चीज़ है? क्या आत्मा है? और त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव इन्द्र की, ऊर्ध्वलोक के इन्द्र शकेन्द्र है, अभी ऊपर बत्तीस लाख विमान हैं। उनमें एक-एक विमान में असंख्य देव हैं। उनका स्वामी शकेन्द्र है, एकभवतारी है। एक भव में मोक्ष जानेवाला है। शकेन्द्र भगवान की सभा में जाता है। वहाँ महाविदेह में। (भगवान) यहाँ थे, तब यहाँ आते थे। उनकी सभा में भगवान ऐसा कहते थे। आहाहा! वह वाणी कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में यहाँ

से भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। उन कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यह बनाया। भगवान का यह सन्देश है। हमारा अनुभव भी यह है। आहाहा!

यह आत्मा वस्तु है, वह तो चिद्घन शुद्ध निर्मल है। 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे...' आहाहा! 'श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो, श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे...' यह पुण्य के, पाप के भाव कषाय हैं, विकार है, संसार का कारण है। आहाहा! उससे रहित भगवान ने 'वीर ने धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव।' यह पुण्य-पाप का भाव, कष—कष अर्थात् संसार और आय अर्थात् लाभ। कषाय कहते हैं न? कषाय। वह कसाई नहीं, कषाय। कष अर्थात् संसार और आय अर्थात् लाभ। जिसमें परिभ्रमण का लाभ मिले, ऐसे भाव को कषाय कहा जाता है। उस कषायभाव से रहित अकषायभाव आत्मा की दृष्टि और अनुभव होना, वह अकषायभाव—धर्म है। आहाहा! ऐसा भान नहीं... आहाहा! तो '**अज्ञानात्**' अज्ञान से रागादि का कर्ता है, ऐसा भी है। है न?

जो मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम,... आहाहा! मिथ्याश्रद्धा है, झूठी मान्यता है, इस कारण से वह शुभ-अशुभभाव का भोक्ता होता है और कर्ता होता है और चार गति में भटकता है। आहाहा! समझ में आया? 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया।' सन्त अर्थात् राग से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव, दृष्टि है, वह जीव समकिती जगत में सुखी है। बाकी सब प्राणी दुःखी, दुःखी दुःख के समुद्र में डूब गये हैं। यह बात यहाँ करते हैं। आहाहा! मिथ्यात्व लिया न? **आत्मबुद्धि ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप...** आहाहा! मिथ्यादर्शन शल्य, मिथ्यात्व का महा विपरीत श्रद्धा का शल्य है। क्या? कि पुण्य और पाप मेरे हैं, ऐसी आत्मबुद्धि और मेरा कर्तव्य है—ऐसा भाव, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! है? सूक्ष्म तो है, भगवान! क्या हो? मार्ग तो जैसा है, (वैसा है)। दुनिया को अभ्यास नहीं होता और ऐसी बात अभी सुनने को नहीं मिलती। यह करो, यह करो, यह करो। भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, सिद्धचक्र की पूजा करो और फलाना करो... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **कर्मजनित भाव में आत्मबुद्धि...** कर्म अर्थात् उत्पन्न हुए

पुण्य-पाप के भाव, उनमें आत्मबुद्धि। **ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम,...** आहाहा! मिथ्याश्रद्धा के कारण कर्म के संग से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के भाव को कर्मजनित कहा जाता है। भगवान आत्मा आनन्दकन्द है, उससे उत्पन्न नहीं होते। अन्दर स्वभाव में ऐसा कुछ है नहीं। पर्याय में—वर्तमानदशा में कर्म के संयोग का लक्ष्य करके उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के भाव का मिथ्यात्वभाव से कर्ता-भोक्ता होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? सेठ! आहाहा! सागर के बड़े व्यापारी हैं, बीड़ी के बड़े व्यापारी हैं। 'भगवानदास शोभालाल।' शोभालाल है न? यह छोटे सेठ हैं, और दूसरे बड़े सेठ हैं। यहाँ दो लाख का मकान है। बीड़ी के बड़े व्यापारी हैं। बहुत करोड़पति हैं। हमारे हिसाब से तो दु:खी है, सेठ! आहाहा!

यहाँ भगवान क्या कहते हैं? कि पुण्य और पाप के भाव मेरे हैं, ऐसा मानते हैं, वह अज्ञान से मिथ्यादृष्टि से मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? है? **कर्मजनित भाव में आत्मबुद्धि ऐसा है...** अज्ञान **जो मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम,...** मिथ्याश्रद्धारूपी विकारी भाव, विभावभाव, अपने स्वभावभाव से विरुद्ध भाव। आहाहा! सुनना कठिन पड़े, वह समझे और बैठावे कब? अभी बैठाना कठिन पड़े अन्दर, ऐसी बात है, प्रभु! मोक्ष का मार्ग धर्म सम्यग्दर्शन। यह मिथ्यात्व है, उसके साथ सम्यग्दर्शन। (जिसे) सम्यग्दर्शन है, वह राग का कर्ता नहीं होता। सम्यग्दृष्टि होता है तो राग होता है, परन्तु मेरा कर्तव्य है और मेरी चीज़ है—ऐसा नहीं मानता। आहाहा!

श्रेणिक राजा भगवान के समय में हुए। श्रेणिक राजा। अरबों रुपयों की दिन की राज को आमदनी। वह तो अभी भी है न एक देश, नहीं? कौन सा अरब? कौन सा देश है? एक घण्टे के डेढ़ करोड़ की आमदनी। एक घण्टे की डेढ़ करोड़! पेट्रोल निकला है। देश तो छोटा है, परन्तु पेट्रोल के कुँए निकले हैं न, तो एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की आमदनी है और इसके अतिरिक्त दूसरा देश है उसकी एक दिन की एक अरब की आमदनी है। कौन सा देश? नाम भूल गये। नाम कुछ आता नहीं? कोई कुछ कहता था क्या नाम? नाम कहते हों, अपने को बहुत याद न हो। अरबदेश! अरब देश में एक दिन में उस राजा को, देश छोटा परन्तु वे पेट्रोल के कुएँ निकले, वह एक दिन की एक अरब

की आमदनी। अभी है। परन्तु मरकर सब जाने वाले हैं नीचे। नरक, नीचे नरक है न? सात पाताल है न? यह मध्यलोक कहलाता है। नीचे सात नरक हैं, वे अधोलोक कहलाते हैं और ऊपर देव हैं, वह ऊर्ध्वलोक कहलाता है। ऊर्ध्व, मध्य और अधो— तीन लोक। भगवान ने तीन लोक-तीन काल देखे हैं। समझ में आया? क्योंकि वह तो मांस खानेवाले न! अज्ञानी हैं, मुसलमान हैं। माँस खाते हैं। मुसलमान शराब नहीं पीते। मछलियाँ, अण्डा खाते हैं। आहाहा! वे मरकर, बापू! कठिन काम है, भाई! ऐसे भव अनन्त किये हैं, भाई! तूने अनन्त किये हैं, वे कहीं नये नहीं है। अनादिकाल का... आहाहा! आत्मा है, है और है। कब नहीं था? कहाँ नहीं था? कहाँ भव बिना रहा है? भूतकाल में कहाँ भव बिना रहा है। अनन्त-अनन्त भव में प्रत्येक भव में स्वयं भटककर मरा है। उसका कारण आत्मबुद्धि—पुण्य-पाप में आत्मबुद्धि करके, आहाहा! मिथ्याश्रद्धा के कारण पुण्य-पाप की आत्मबुद्धि में यह मेरा कर्तव्य है और मैं उसका भोक्ता हूँ, ऐसी मान्यता के कारण चार गति में रुलता-भटकता है। आहाहा! है या नहीं अन्दर? है उसका अर्थ होता है। बनिये बहियाँ मिलाते नहीं? वह क्या कहलाता है? दिवाली आवे तब मिलाते हैं न? वह कहे तेरे पास दस हजार लेना, वह कहे मुझमें पाँच हजार का निकलता है। देखो! बहियाँ मिलावे। वहाँ कैरोसीन जलावे। चार पैसे का फेरफार हो तो कहे निश्चित करो। यहाँ भगवान कहते हैं तू निर्णय तो कर पहले। हम क्या कहते हैं और तेरी मान्यता क्या है, वह तेरी बहियों में मिला तो सही! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मिथ्यात्वभाव **उसके कारण जीव कर्ता है।** आहाहा! है? वह मिथ्याश्रद्धा। जैन परमेश्वर ने जैसा आत्मा कहा, वैसी श्रद्धा नहीं। आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव आत्मा नहीं। नव तत्त्व है या नहीं? तो यह पुण्य-पापतत्त्व भिन्न है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष (ऐसे) नौ हैं। तो पुण्यतत्त्व भिन्न है, पापतत्त्व भिन्न है और भगवान अन्दर भिन्न है। आहाहा! यह ज्ञायकस्वरूप चिदानन्दरूप, उसमें जो पुण्य और पापभाव उत्पन्न होते हैं, उनमें आत्मबुद्धि करके, वे मेरे हैं, ऐसा मानकर अज्ञानी कर्ता-भोक्ता होता है। आहाहा! यदि अपने न माने तो अपना आनन्दकन्द प्रभु है, वह राग होता है तो उसका ज्ञाता-दृष्टा रहता है और राग होता है, उसे जहर मानता है, दुःख मानता है। आहाहा! निज स्वरूप सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव

परमात्मा ने, ज्यों निर्मलता स्फटिक की है, वैसे भगवान आत्मा का निर्मल स्वभाव है, परन्तु वह चीज़ वर्तमान पर्याय के अतिरिक्त व्यापार-धनधा किया ही नहीं। वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था। वर्तमान-प्रगट। बस! उसमें उसकी लीनता है। अन्दर पीछे पूरा तत्त्व क्या पड़ा है? एक क्षणिक अवस्था पर उसका अनादि काल का व्यापार है। परन्तु उस पर्याय के पीछे अवस्थायी, त्रिकाल टिकनेवाला तत्त्व है, ऐसी दृष्टि हुए बिना मिथ्याबुद्धि से राग और पुण्य-पाप के भाव का कर्ता और भोक्ता होता है। आहाहा!

'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा, जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।' यह श्लोक है। आहाहा! 'करे कर्म सो ही करतारा,...' मिथ्यादृष्टि, राग और पुण्य-पाप का कर्ता होता है तो वह मिथ्यादृष्टि कर्ता होता है। आहाहा! 'जाने जाने सो जाननहारा' धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली शुरुआत, पहली सीढ़ी, वह सम्यग्दर्शन में आते ही राग का अकर्ता हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? 'जाने सो जाननहारा।' 'जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता है सो जाने नहीं कोई।' आहाहा! एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। आहाहा! अज्ञानभाव से पुण्य-पाप का कर्ता भी रहे और ज्ञानभाव से जाननेवाला रहे, ऐसा कभी नहीं हो सकता। समझ में आया? यह कहते हैं।

भावार्थ इस प्रकार है कि—जीववस्तु रागादिविभावपरिणाम का कर्ता है, ऐसा जीव का स्वभावगुण तो नहीं है,... आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण जिसमें है, परन्तु कोई गुण, शक्ति ऐसी नहीं कि विकार को करे, ऐसी कोई शक्ति ही उसमें नहीं। आहाहा! कठिन बात,, बापू! एक-एक बात में अन्तर। वे कहते हैं न? 'आनन्दा कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे ने एक त्रांबियाना तेर' ऐसा आता है न? भाई! इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं कि तेरे और मेरे श्रद्धा में बड़ा अन्तर है, प्रभु! आहाहा! जिसकी कीमत लाखों भी मिले नहीं ऐसा है। और एक त्रांबियाना तेर, पैसे के तेर। आहाहा! इसी प्रकार यह बात कहते हैं, कहीं वीतराग की श्रद्धा के साथ तेरी श्रद्धा कहीं मिलान खाये नहीं, प्रभु! वह यदि मिलान खाये और अन्दर देखा, जाना, वह छूटा। वह संसार के भटकने से छूटा। इसके अतिरिक्त छूटने का दूसरा उपाय नहीं है।

कहते हैं न? **ऐसा जीव का स्वभावगुण नहीं है, परन्तु अशुद्धरूप विभावपरिणति**

है। आहाहा! यह पुण्य-पाप के भाव अशुद्ध अर्थात् मलिन दशा है। वे कोई स्वभावभाव नहीं। आहाहा! **'तदभावात् अकारकः' मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप विभावपरिणति मिटती है,...** परन्तु मिथ्याश्रद्धा का नाश करके, मैं तो आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन होते ही अकारक है। **उसके मिटने से जीव सर्वथा अकर्ता होता है।** आहाहा! शरीर की एक क्रिया भी मुझसे होती है, ऐसा नहीं मानता। शरीर चलता है, वह तो जड़, मिट्टी है। ऐसे चलता है, वह अपनी क्रिया नहीं। वह तो सर्वथा प्रकार से, ऐसा अन्त में कहा न? **जीव सर्वथा अकर्ता होता है।** जब सम्यग्दर्शन होता है और मिथ्यात्व का नाश करके, आत्मा आनन्दस्वरूप की प्रतीति, अनुभव हुआ तो सब पर का सर्वथा प्रकार से अकर्ता है। फिर किंचित् पर का कर्ता नहीं। ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई! पूरी हो गयी। (विशेष कहेंगे...)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १९५

(शिखरिणी)

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः।।३-१९५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अयं जीवः अकर्ता इति स्वरसतः स्थितः' [अयं जीवः] विद्यमान है जो चैतन्यद्रव्य, वह [अकर्ता] ज्ञानावरणादि का अथवा रागादि-अशुद्धपरिणाम का कर्ता नहीं है [इति] -ऐसा सहज [स्वरसतः स्थितः] स्वभाव से, अनादिनिधन ऐसा ही है। कैसा है? 'विशुद्धः' द्रव्य की अपेक्षा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भिन्न है। 'स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिच्छुरितभुवनाभोगभवनः' [स्फुरत्] प्रकाशरूप, ऐसे [चिज्ज्योतिर्भिः] चेतनागुण के द्वारा [छुरित] प्रतिबिम्बित हैं [भुवनाभोगभवनः] अनन्त द्रव्य, अपनी अतीत-अनागत-वर्तमान समस्त पर्यायसहित जिसमें, ऐसा है। 'तथापि किल इह अस्य प्रकृतिभिः यत् असौ बन्धः स्यात्' [तथापि] शुद्ध है जीवद्रव्य, तो भी [किल] निश्चय से [इह] संसार अवस्था में [अस्य] जीव को, [प्रकृतिभिः] ज्ञानावरणादि कर्मरूप [यत् असौ बन्धः स्यात्] जो कुछ बन्ध होता है, 'सः खलु अज्ञानस्य कः अपि महिमा स्फुरति' [सः] जो बन्ध होता है, वह [खलु] निश्चय से [अज्ञानस्य कः अपि महिमा स्फुरति] मिथ्यात्वरूप विभावपरिणमनशक्ति का, कोई ऐसा ही स्वभाव है। कैसा है? 'गहनः' असाध्य है। भावार्थ इस प्रकार है — जीवद्रव्य, संसार अवस्था में विभावरूप मिथ्यात्व, राग-द्वेष-मोह परिणामरूप परिणमा है, इस कारण जैसा परिणमा है, वैसे भावों का कर्ता होता है; अशुद्धभावों का कर्ता होता है। अशुद्धभावों के मिटनेपर, जीव का स्वभाव अकर्ता है।।३-१९५।।

पौष कृष्ण ५, शनिवार, दिनांक-२८-०१-१९७८, कलश-१९५, प्रवचन-२१७

कलश टीका कलश १९५ है।

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः।।३-१९५।।

क्या कहते हैं? '**अयं जीवः अकर्ता इति स्वरसतः स्थितः**' यह जीव विद्यमान भगवान, द्रव्यस्वभाव, द्रव्य... द्रव्य, शुद्ध द्रव्यस्वभाव, जो कर्म-नोकर्म और भावकर्म—पुण्य-पाप के भाव से रहित '**अयं जीवः**' **विद्यमान है जो चैतन्यद्रव्य...** ध्रुव टिकता तत्त्व त्रिकाली, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव। **वह ज्ञानावरणादि का अथवा रागादि-अशुद्ध-परिणाम का कर्ता नहीं है...** वस्तु में ऐसी कोई शक्ति नहीं, वस्तु में ऐसा कोई स्वभाव नहीं कि राग को करे और राग को भोगे, वस्तु में ऐसा कोई सत्त्व का सत्त्वपना नहीं है।

सत्, ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसका सत्त्वपना अर्थात् गुणपना—भावपना, उसका ऐसा कोई भाव नहीं कि दया, दान, व्रत के विकल्प का कर्ता हो और भोक्ता हो, स्वभाव में ऐसी कोई शक्ति—गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? '**स्वरसतः स्थितः**' ऐसा चैतन्य द्रव्य अकर्ता-कर्ता नहीं, ऐसा सहज '**स्वरसतः स्थितः**' अपने स्वभाव से स्वरस से जो स्थित है। अपने आनन्दादि, ज्ञानस्वभाव से ऐसा स्थित है कि जो राग, व्यवहाररत्नत्रय का राग, उसका कर्ता-भोक्ता हो, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। सूक्ष्म बात है। आहाहा! पर का कर्ता-भोक्ता तो है ही नहीं।

श्रोता : पूरी दुनिया पर का काम करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नहीं करता। कौन करता है? सुमनभाई करते हैं यह सब? रामजीभाई ने वकालात में यह सब किया था? स्पष्ट कराते हैं। भाषा हुई थी, वह तो जड़ है। सुमनभाई क्या करे? राग करे। पर का कर सकते हैं?

यहाँ तो राग के कर्तापने का कोई गुण नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। पर्याय में राग

खड़ा होता है, वह अज्ञान के कारण से है। आहाहा! समझ में आया? भगवान वस्तु जो ध्रुव विद्यमान टिकता तत्त्व, ज्ञायकभाव... बहिन की भाषा में जागता जीव, ज्ञायकभाव खड़ा है न! वह कोई चीज़ राग को करे या भोगे, वह कोई स्वभाव में, स्वभाववान में है नहीं, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? संसार का कोई भी विकल्प, यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प (आवे), उसका भी कर्ता और भोक्ता द्रव्यस्वभाव है ही नहीं। वस्तु में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, कोई गुण नहीं है। आहाहा!

सत्, ऐसा जो स्वरूप, उसका भाव; सत्, वह भाववान, उसका भाव। अनन्त भाव है, अनन्त-अनन्त भाव है परन्तु उन भाव में कोई भाव, गुण—शक्ति ऐसी नहीं है कि राग को करे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा **सहज... 'स्वरसतः स्थितः'** वह तो अपने स्वभाव के रस से वह स्थित है। वह कोई राग को करे, ऐसी वस्तु में स्थिति ही नहीं है। आहाहा! अशुभ से बचने को शुभ आता है, ऐसा कहना, वह तो सम्यग्दृष्टि के लिये है। जिसे द्रव्य का स्वभाव, राग का कर्ता नहीं—ऐसा स्वभाव अनुभव में आया हो... आहाहा! समझ में आया? ऐसी दृष्टि जिसे अन्तर में अन्तर्मुख (होकर हुई हो), द्रव्य जैसा स्थित है, वैसा अनुभव में आया हो, उसे अशुभ से बचने को राग आता है, परन्तु उस राग का कर्ता नहीं है। आहाहा! क्योंकि वस्तु में अनन्त... अनन्त... अनन्त... बेशुमार शक्तियाँ (भरी हैं) परन्तु बेशुमार में कोई एक शक्ति ऐसी नहीं है कि जो विकार को करे। आहाहा! अब यहाँ तो (अज्ञानी) कहता है कि अशुभ से बचने को व्यवहार करते हैं तो वह शुभव्यवहार है और उस शुभ से शुद्ध होगा। फेरफार है, प्रभु! वस्तु की स्थिति ऐसी नहीं है।

यहाँ यह कहा है न? **'स्वरसतः स्थितः'** इस स्व के आनन्द और ज्ञानादि स्वभाव से स्थित है, ध्रुव है। उसमें—ध्रुव में ऐसी कोई शक्ति, स्वभाव, राग करने की शक्ति है ही नहीं। आहाहा! इस संसार के उदयभाव को खड़ा करने जैसी कोई शक्ति आत्मा में नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञायकभाव है। उसमें तो अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। शक्ति शब्द से गुण; गुण शब्द से भाव; भाव शब्द से सत् का सत्वपना, सत् का माल। आहाहा! इस अनन्त गुण के माल में ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि राग को करे। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! वस्तु स्थिति ऐसी है। देखो!

कोई भी एक शक्ति राग को करे, ऐसी होवे तो शक्ति का तो कभी नाश नहीं होता तो राग का भी कभी नाश नहीं होगा। समझ में आया? शक्ति जो गुण है, ऐसा कोई गुण राग करने का हो, परन्तु होवे कहाँ से? वस्तु है आत्मा, उसमें वस्तुत्वपना, बसे हुए, रहे हुए वस्तु में बसे हुए, रहे हुए गुण अमाप हैं, बेशुमार हैं। ऐसा होने पर भी किसी शक्ति की ऐसी शक्ति नहीं है कि संसार का भाव (करे)। राग है, वह संसार है। आहाहा! चाहे तो शुभराग हो। यह तो कहा न? जगपन्थ है। मुनि को भी राग आता है तो वह जगपन्थ है। आहाहा! परन्तु उसे करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं है। ज्ञानी को कमजोरी से उत्पन्न होता है। अज्ञानी को स्वरूप के अज्ञान से विकार का कर्तापना उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानी को कमजोरी से (होता है), पर्याय में योग्यता ऐसी है तो उत्पन्न होता है। गुण-द्रव्य में तो कोई ऐसी (शक्ति) नहीं है। आहाहा! विषय में सुखबुद्धि, उस सुखबुद्धि का विकार कोई जीव करे, ऐसा कोई आत्मा में गुण नहीं है। आहाहा! पैसे में सुख है, स्त्री में सुख है, इज्जत में सुख है—ऐसा जो सुख नाम का विकार... आहाहा! भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द के सुख से स्थित है न! ऐसे सुख के विकल्प का वह कर्ता कैसे हो? आहाहा! हसमुखभाई! सूक्ष्म बातें है, बापू! कहाँ टाईल्स का धन्धा और कहाँ यह व्यापार? आहाहा! अरे! अपना निजस्वभाव स्वयं स्वरूप, स्वयं स्वरूप जो शाश्वत्, असली, असली स्वभाव, उसमें कोई असली स्वभाव में कोई ऐसा असली भाव नहीं... आहाहा! कि वह शुभराग को उत्पन्न करे अथवा रचे—ऐसा कोई गुण असली स्वरूप में नहीं है। आहाहा! नकली (अर्थात्) स्वभाव के अभान में पर्याय में अज्ञान से विकार होता है और विकार का कर्ता हो तो यह तो अनादि का संसार है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। आया है तुम्हारे पठन में? कहीं आया नहीं। आहाहा! है?

श्रोता : उसमें तो फँसने का आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं फँसता है न! आहाहा!

जहाँ ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से अनन्त-अनन्त अविनाभावी गुण से भरपूर भगवान है यह, उस भगवान की जिसे दृष्टि हुई, जिसे निजस्वभाव की प्रतीति अनुभव में हुई,

वह राग का कर्ता होता ही नहीं। निर्बलता से राग आता है परन्तु उसका वह ज्ञाता-दृष्टा रहता है। आहाहा! धर्मी को व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है। परन्तु आता है, उसका वह कर्ता नहीं, तथा उसका वह भोक्ता, वेदन का कर्ता है, ऐसा परमार्थदृष्टि से नहीं है। यहाँ दृष्टि और दृष्टि का विषय जो है, यह बात चलती है न? पर्याय में कर्ता-भोक्ता है, यह बात ज्ञान जानता है। यह बात तो सैंतालीस नय में आयी है। आहाहा!

'**स्वरसतः स्थितः**' यह तो स्व रस से ही स्थित है। आहाहा! इसका अर्थ क्या किया? **स्वभाव से अनादिनिधन ऐसा ही है।** राग का कर्ता नहीं, ऐसा स्वभाव अनादि का ऐसा ही है। आहाहा! समझ में आया? भाषा थोड़ी परन्तु भाव तो है, वह है। आहाहा! इसमें वाद-विवाद करने से कुछ पार नहीं पड़ता। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। अशुभ से बचने को शुभ आवे तो उसे तो व्यवहार कहो। वह तत्त्वज्ञानसहित होवे तो अशुभ से बचने को व्यवहार आता है, उसे व्यवहार कहते हैं। परन्तु तत्त्वज्ञान, जहाँ तत्त्व ही ऐसा है कि राग का कर्ता नहीं, ऐसा स्वभाव है—ऐसी दृष्टि ही जहाँ नहीं, वहाँ अशुभ से बचने को शुभ (आता है, ऐसा कहाँ है)? अभी मिथ्यात्व से बचा नहीं, वहाँ अशुभ से बचने का कहाँ आया? आहाहा! समझ में आया?

ऐसा सहज स्वभाव। '**स्वरसतः**' है न? रस अर्थात् स्वभाव। **अनादिनिधन... 'स्थितः'** का अर्थ यह किया। अनादि-अनन्त ऐसा ही है। '**स्थितः**' आहाहा! अनादि-अनन्त स्वरस से स्थित। पर का कर्ता-भोक्ता नहीं, ऐसे स्वभाव से भरा है। आहाहा! समझ में आया? **कैसा है?** वह '**स्थितः**' कहा था न? '**स्वरसतः स्थितः**' **कैसा है? 'विशुद्धः'** है। **द्रव्य की अपेक्षा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भिन्न है।** आहाहा! उसे विशुद्ध कहते हैं। शुभभाव को भी विशुद्ध कहते हैं, शुद्धभाव को भी विशुद्ध कहते हैं, त्रिकाली को भी विशुद्ध कहते हैं। विशुद्ध जिस जगह लागू पड़े, तत्प्रमाण करना। विशुद्ध शब्द शुभभाव में भी आता है, विशुद्ध शब्द शुद्धभाव में भी आता है और विशुद्ध शब्द त्रिकाली में भी आता है। आहाहा! यहाँ त्रिकाली की बात है। विशुद्ध। समझ में आया? आहाहा!

यह भगवान आत्मा त्रिकाल विशुद्ध है। जड़कर्म, नोकर्म—मन, वाणी, देह और भावकर्म—दया, दान, पुण्य-पाप के भाव से अनादि-अनन्त भिन्न है। ऐसा विशुद्ध है।

आहाहा! विशुद्ध है। विशेष-खास शुद्ध है यह। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! समझ में आया? '**भूदत्थमस्सिदो**' कहा न? भूतार्थ का आश्रय लेना, ऐसा कहो, ज्ञायकभाव कहो, बहिन की गुजराती सादी भाषा में जागता (जीव) कहो और वह ध्रुव है, उसे खड़ा कहो। उसमें एक शब्द आया है कहीं? श्रीमद् के वचन में कहीं है। खड़ा है। ऊर्ध्व तो दूसरा है। खड़ा है, ऐसा शब्द कहीं है। ये दो पुस्तकें हैं न कुछ? यह ज्ञानामृत और सन्त वाणी। कहीं एक शब्द आया था। अनादि खड़ा है न! अनादि है। आहाहा!

श्रोता : अनादि का खड़ा है तो थकता नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : खड़ा है, वह चलता नहीं—ऐसा कहते हैं। चले तो थके और चले, वह तो शुद्धपरिणमन में चले तो थके नहीं। विशुद्ध / शुभ, अशुभभाव में चले तो थक जाए। थकान... दुःख... दुःख। आहाहा!

यहाँ यह कहा। **द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भिन्न है।** उसे यहाँ विशुद्ध कहा गया है। उसे यहाँ स्वरस में स्थित कहा गया है। स्वरस से उसमें स्थित है। त्रिकाली अपना स्वभाव जो शुद्ध है, उसमें वह स्थित है, उसे यहाँ विशुद्ध कहने में आता है। आहाहा! यहाँ तो अभी देह की क्रिया में भी आत्मा का निमित्तपना है नहीं और निमित्त है, इसलिए देह की क्रिया होती है, इसकी अभी लोगों को हाँ करना मुश्किल पड़ती है। अपने आप देह चले? भाषा अपने आप बोली जाती है? आहाहा! यहाँ तो स्वभाव की दृष्टिवाला जो द्रव्य-विशुद्ध, वह तो राग का भी कर्ता नहीं। यह तो राग अध्धर से कमजोरी के कारण हो, उसका ज्ञाता-दृष्टा है। आहाहा!

श्रोता : यह तो ज्ञानी की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी कहा न? तब उसे प्रतीति में आया न? द्रव्यकर्म-भावकर्म-(नोकर्म) से रहित भगवान ऐसा है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं, यहाँ तो दूसरा सिद्ध करना है कि वह ऐसा अनादि से ही है। वह राग करे, ऐसा उसमें कोई गुण नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। परन्तु इसका भान किसे हो? आहाहा! कि यह वस्तु अनादि की अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द और गुण का पिण्ड अनादि स्थित है, ऐसा स्वसन्मुख

(होकर) स्व का आश्रय करे, उसे यह वस्तु है—ऐसा प्रतीति में आवे और प्रतीति में आयी, इसलिए उसे राग का कर्तापना नहीं रहता। व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता, वह धर्मी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म।

और कैसा है वह '**स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिच्छुरितभुवनाभोगभवनः**' **प्रकाशरूप ऐसे चेतनागुण के द्वारा...** आहाहा! उसमें चेतनागुण है। जिस कारण से वह तो प्रकाश लोकालोक को जानता है और देखता है, ऐसा स्वभाव है। ध्रुव में ऐसा स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! **प्रकाशरूप ऐसे चेतनागुण के द्वारा प्रतिबिम्बित हैं...** क्या कहते हैं? शक्ति तो है, परन्तु उसका परिणमन जब होता है तो लोकालोक जिसमें प्रतिबिम्बित रहे, ऐसा परिणति-पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! लोकालोक में किसी चीज़ का कर्ता तो है नहीं, परन्तु उसकी जो शक्ति में जो अकर्तापना है, ऐसा परिणति में भान हुआ तो वह लोकालोक को जाननेवाला रहा। लोकालोक उसमें प्रतिबिम्बित (होता है)—जानता है, बस! आहाहा! लोकालोक में तो सब आ गया न? अलोक को एक ओर रखो। लोक शब्द में शरीर, वाणी, मन, धन्धा-व्यापार... यह सब आत्मा में प्रतिबिम्बित (होते हैं)। अपनी परिणति में इस दृष्टि का भान हुआ। लोकालोक प्रतिबिम्बित होता है—जानने में आता है। आहाहा! परन्तु किसी का कर्ता (नहीं है)। स्फुरित प्रगट दशा हुई, तो भी किसी का कर्ता-भोक्ता नहीं है। आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन पड़ता है। निश्चय और व्यवहार। आहाहा! बापू! उसके परिणाम, व्यवहार के परिणाम तो रागरूप है न, प्रभु! आहाहा! और उस राग को करना, ऐसा द्रव्य में कोई गुण-शक्ति तो नहीं है। आहाहा!

इसलिए उस वस्तु की दृष्टि होने पर, अन्दर परिणमन होने पर भी लोकालोक का प्रतिबिम्ब (पड़े), उसमें ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वभाव है। त्रिकाल स्वभाव तो लोकालोक को जानने का ध्रुव है, परन्तु पर्याय में स्फुरित-प्रगट होने पर... आहाहा! जो वस्तु है, राग और विकार का अकर्ता, उसका गुण है। ऐसी जहाँ उसकी परिणति हुई... आहाहा! भले मति और श्रुतज्ञान हो, तथापि वह लोकालोक को जाने, ऐसी उसकी परिणति है। आहाहा! गजब!

एक ओर चक्रवर्ती के राज में रहे और देखे; रहे (ऐसा) देखे, वह वहाँ है नहीं।

वह तो उसकी जानने की परिणति में है। आहाहा! वह तो उसके सम्बन्धी का ज्ञान अपना अपने से हुआ है, उसके जानने में वह है। उससे ज्ञान हुआ है, यह नहीं। यह तो पर्याय में अपनी सामर्थ्य ऐसी थी कि जिससे स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य स्वतः अपने से हुआ है। उसमें यह ज्ञात होता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? केवली लोकालोक को जाने—ऐसा कहना, वह भी असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने से हुआ है, उसे भी यहाँ व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! त्रिकाल को—द्रव्य को निश्चय कहें तो परिणति को व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! उस शुद्धपरिणति को, हों! आहाहा! उसमें लोकालोक प्रतिबिम्बित होता है, ऐसा कहते हैं। है न? आहाहा!

'चिज्ज्योतिर्भिः' चेतनागुण के द्वारा... 'छुरित' प्रतिबिम्बित हैं... 'भुवना-भोगभवनः' 'भुवनाभोगभवनः' भुवन अर्थात् लोक, उसका आभोग अर्थात् जानना, उसका भवन अर्थात् होना। '**भुवनाभोगभवनः**' आहाहा! बाद में इसकी व्याख्या की है। नहीं तो शब्द इतना है। भुवन अर्थात् लोकालोक, उसका आभोग अर्थात् जानना, उसका भवन। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आज आये नहीं, हिम्मतभाई?

अनन्त द्रव्य अपनी अतीत अनागत वर्तमान समस्त पर्यायसहित जिसमें,... आहाहा! अनन्त द्रव्य जो हैं, अनन्त-अनन्त द्रव्य अब लिये। अनन्त गुण उनमें हैं, उसमें कोई गुण व्यक्त, अव्यक्त... अब तो उसकी पर्याय में अनन्त द्रव्य **अपनी अतीत अनागत...** अपने द्रव्य की भूतकाल की पर्याय, वर्तमान पर्याय और भविष्य की पर्याय। आहाहा! **समस्त पर्यायसहित जिसमें, ऐसा है।** समस्त पर्याय प्रतिबिम्बित होती है, ऐसा। ज्ञान की पर्याय में समस्त द्रव्य, गुण, पर्याय अथवा एक-एक द्रव्य की भूत-भविष्य और वर्तमान पर्याय, ऐसी अनन्त (पर्यायें) ज्ञान की पर्याय में जानने में आती है। प्रतिबिम्बित शब्द तो (इसके लिये है कि) वह बिम्ब है तो यह प्रतिबिम्ब है, ऐसा। बाकी वह चीज़ कहीं यहाँ नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? नीम दिखता है तो कहीं हरा रंग यहाँ अन्दर आता है? हरे रंग सम्बन्धी का अपना ज्ञान, उसमें वह प्रतिबिम्ब है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह तो धीर का काम है। 'घर, घर' (अर्थ) किया है इसमें

से। संस्कृत टीका में है कहीं। लोक का विस्तार होना। लोक का विस्तार जानना, ऐसा। संस्कृत में एक 'घर' शब्द है।

'तथापि किल इह अस्य प्रकृतिभिः यत् असौ बन्धः स्यात्' आहाहा! स्वरूप तो ऐसा है, कहते हैं। अरेरे! ऐसी चीज़ में यह बन्ध होता है, वह क्या है? राग का सम्बन्ध होता है और कर्म का बन्ध होता है, ऐसा इस चीज़ में क्या हुआ? इस चीज़ में तो राग के कर्तापने का भी कोई गुण नहीं, वहाँ यह राग और कर्म के सम्बन्ध का बन्ध, सम्बन्ध का बन्ध, सम्बन्धरूपी बन्ध कैसे हुआ? आहाहा! समझ में आया?

'तथापि किल इह अस्य प्रकृतिभिः यत् असौ बन्धः स्यात्' शुद्ध है जीवद्रव्य... 'तथापि' है न? 'तथापि' है न? तथापि अर्थात् शुद्ध द्रव्य और गुण शुद्ध होने पर भी, ऐसा। **'तथापि'** ऐसा होने पर भी। आहाहा! **शुद्ध है जीवद्रव्य तो भी निश्चय से... 'किल'** अर्थात् निश्चय। यह **संसार अवस्था में जीव को...** संसारदशा में, आहाहा! **जीव को ज्ञानावरणादि कर्मरूप... 'यत् असौ बन्धः स्यात्' जो कुछ बन्ध होता है 'सः खलु अज्ञानस्य कः अपि महिमा स्फुरति'** आहाहा! उसमें भी **'स्फुरति'** था, **'स्फुरत'**। यह कोई अज्ञान की महिमा स्फुरित होती है, कहते हैं। आहाहा! वस्तु में कोई रागादि का कर्तापना नहीं है। प्रभु आत्मा द्रव्यस्वभाव के साथ राग और कर्म का सम्बन्धरूपी बन्ध नहीं है, तथापि सम्बन्धरूपी बन्ध (होता है), वह अज्ञान की कोई गहन **'स्फुरित'**— महिमा है। आहाहा! वस्तु के स्वरूप का अज्ञान, उसकी कोई गहन महिमा है। आहाहा! अज्ञान के कारण से राग और कर्म का सम्बन्ध होता है। आहाहा! लोगों को ऐसा बहुत सूक्ष्म पड़ता है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है। भगवान ने कहा, इसलिए कोई ऐसा ही कथन किया है, ऐसा नहीं। है, वैसा वाणी में आया है। ऐसी वस्तु है। आहाहा!

यहाँ भी प्रकृति का बन्ध होता है, वह **'सः खलु अज्ञानस्य कः अपि महिमा स्फुरति'** आहाहा! **जो बन्ध होता है, वह निश्चय से...** है? **मिथ्यात्वरूप विभाव-परिणमनशक्ति का कोई ऐसा ही...** अज्ञान का अर्थ किया, अज्ञान का अर्थ किया। उसमें पहले में भी ऐसा कहा। पहले में आया था न? वहाँ भी ऐसा कहा। **'कर्ता अज्ञानात् एव'** वहाँ भी ऐसा कहा, **कर्मजनित भाव में आत्मबुद्धि ऐसा है जो मिथ्यात्व...**

भाव। वहाँ भी 'अज्ञान' शब्द पड़ा है, वहाँ भी मिथ्यात्वभाव लिया है। १९४ (श्लोक)। १९५ में अज्ञान का अर्थ मिथ्यात्व लिया। आहाहा! सत्य वस्तु जैसी है, वैसी दृष्टि नहीं और उससे विपरीत दृष्टि है, मिथ्यात्वभाव, सत्यस्वरूप से विपरीत दृष्टि असत्य है, उस असत्य मिथ्यात्व की कोई गहन महिमा है। वस्तु में कोई बन्ध का कारण नहीं, शक्ति नहीं, गुण नहीं, तथापि बन्ध होता है, राग का सम्बन्ध (होता है), यह कोई अज्ञान की, मिथ्यात्व की गहन महिमा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान तो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी शुद्ध चैतन्यघन है। उसमें यह दुःख का सम्बन्ध कहाँ से आया? कहते हैं। आहाहा! दुःख कहो, राग कहो, उदयभाव कहो। समझ में आया? कर्म प्रकृति तो निमित्त से कथन है। वास्तव में तो अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य होने पर भी द्रव्य, गुण में राग का कर्तापना नहीं होने पर भी कोई अज्ञान-मिथ्यात्व के कारण से, स्वरूप जैसा है, उससे विपरीत दृष्टि से गहन महिमा है कि मिथ्यात्व के कारण संसार उत्पन्न होता है।

राग की उत्पत्ति का कारण मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी को (राग) होता है, वह मिथ्यात्व नहीं। पश्चात् वह तो पर्याय में निर्बलता से हुआ, उसका वह ज्ञाता-दृष्टा है। यहाँ तो मिथ्यात्व से (राग) उत्पन्न हुआ, उसका वह कर्ता-भोक्ता होता है। समझ में आया? दोनों में इतना अन्तर है। आहाहा! ऐसी बात है। साधारण दया पालो और व्रत पालो और अपवास करो... आहाहा! यह कहते हैं कि अपवास करो और विकल्प करो (और) राग (करो)—यह कोई अज्ञान की गहन महिमा है कि राग का कर्ता होता है। वस्तु का स्वरूप ऐसा होने पर भी, उसमें कोई विकल्प—गुण-गुणी के भेद का विकल्प (उठे), व्यवहाररत्नत्रय का राग, उसे रचना—ऐसा कोई गुण ही नहीं है। तो कैसे होता है? यह प्रकृति का बन्ध होता है न? ऐसा कहा है न? है न?

'**प्रकृतिभिः**' ऐसा कहा है न? पश्चात् ज्ञानावरणी कर्म लिया है, परन्तु प्रकृति का विरुद्ध भाव जो विकार है, वह जो प्रकृति है; वह स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानावरणीय कर्म तो जड़ है, वह तो उसके कारण से बँधता है। उसकी पर्याय में, परमाणु में कर्म होने की पर्याय से होता है। यह प्रकृति का जो स्वभाव है,

उससे विरुद्ध प्रकृति। आहाहा! विरुद्ध भाव— पुण्य और पाप आदि, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, इस राग की उत्पत्ति होती है, वह कोई मिथ्यात्व की गहन शक्ति है। आहाहा! जिसमें है नहीं, द्रव्य में है नहीं, गुण में है नहीं और उसके गुण का परिणमन होता है तो उसमें भी नहीं है। आहाहा! यह कोई मिथ्यात्व का भाव, झूठी दृष्टि, परम सत्य प्रभु द्रव्य-गुण से पूर्ण, पूर्ण भरपूर की दृष्टि से विरुद्ध असत्य दृष्टि, मिथ्यादृष्टि... आहाहा! इस असत्य दृष्टि की कोई गहन महिमा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस **मिथ्यात्वरूप विभावपरिणमनशक्ति का कोई ऐसा ही स्वभाव है।** वापस इसमें ऐसा नहीं लेना कि विभाव नाम का गुण है, इसलिए ऐसा होता है। विभावगुण है, वह है। वह तो विशेषरूप से विभाव (कहा है)। विकार करे, इसलिए विभाव शक्ति है, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! यहाँ तो **मिथ्यात्वरूप विभावपरिणमनशक्ति...** ऐसा लिया है। देखा? राग मेरा है और राग का कर्ता हूँ—ऐसी असत्यदृष्टि का—विभावपरिणमन शक्ति का कोई ऐसा ही स्वभाव है। आहाहा!

कैसा है? 'गहनः' असाध्य है। आहाहा! असाध्य है, असाध्य। एकदम साध्य हो सके, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। यह भाव ही असाध्य है। उसमें आत्मा असाध्य हो जाता है। आहाहा! मिथ्यात्व के कारण से राग का सम्बन्ध जो उत्पन्न करता है, (उसमें) आत्मा असाध्य हो जाता है। दृष्टि में आत्मा साध्य नहीं रहता। आहाहा! यहाँ तो असाध्य का अर्थ कि उसका नाश करना, गहन बात है, ऐसा कहते हैं। असाध्य है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है - जीव द्रव्य संसार अवस्था में विभावरूप मिथ्यात्व,... देखा? **राग-द्वेष-मोह परिणामरूप परिणमा है,...** आहाहा! अरेरे! वस्तु और वस्तु के अनन्त गुण, तथापि ऐसी वस्तु में यह मोह, राग, द्वेषरूपी परिणमन कहाँ से हुआ, यह गहन बात है, कहते हैं। आहाहा! वस्तु के स्वभाव का अज्ञानपना पर्याय में, वस्तु के स्वभाव का मिथ्यात्वपना मान्यता में, गहन बात है। आहाहा! जो द्रव्य-गुण में विकार करना, ऐसा नहीं और विकार हुआ तो वह असत्य श्रद्धा की गहन महिमा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **परिणामरूप परिणमा है,...** पर्याय में वापस परिणमा है।

वस्तु और वस्तु के गुण शुद्ध और स्फुट विशुद्ध होने पर भी, पर्याय में मिथ्याश्रद्धा के कारण से, पर्याय जितना मैं हूँ, यह राग, वह मैं-ऐसी मिथ्याश्रद्धा के कारण असाध्य ऐसा विकार उत्पन्न होता है। आहाहा! **परिणमा है,...**

इस कारण जैसा परिणमा है,... अब ऐसा कहते हैं। जैसा परिणमन हुआ, **वैसे भावों का कर्ता होता है;...** जैसा परिणमन हुआ, उसका कर्ता होता है। मिथ्याश्रद्धा से मोह-राग-द्वेषरूपी पर्याय में परिणमन हुआ तो जैसा परिणमा, उसका कर्ता होता है। आहाहा! अशुद्धरूप परिणमा तो अशुद्धपने का कर्ता अज्ञानी होता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, भाई! अभी सम्यग्दर्शन क्या है और कैसे उत्पन्न हो, उसकी खबर नहीं होती)। आहाहा! उसे बाहर चारित्र और यह सब आ जाए... भाई! कठिन काम है, बापू! और यह तो तेरी दया की बात है, भाई! हैं? आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! तू तो ऐसा है न! तथापि उसकी जिसे श्रद्धा विपरीत है अर्थात् कि इतना-इतने गुणवाला द्रव्य है, ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं है। जिसे श्रद्धा राग की और वर्तमान पर्याय पर जिसकी रुचि जम गयी है, ऐसे मिथ्यात्व के गहन भाव के कारण उसका परिणमन विकाररूप होता है और जो परिणमता है, वह उसका कर्ता होता है। भाषा तो सादी है। भाव तो है, वैसा है। आहाहा! यह पठन कभी पढ़ा नहीं। हैं? बाहर के पठन में सब समय गँवाया। आहाहा!

जैसा परिणमा है, वैसे भावों का कर्ता होता है; अशुद्धभावों का कर्ता होता है। ऐसा। **अशुद्धभावों के मिटने पर जीव का स्वभाव अकर्ता है।** आहाहा! वह तो राग का अकर्ता स्वभाव है। आहाहा! राग होता है, परन्तु अकर्ता स्वभाव है। होता है, उसका ज्ञाता-दृष्टा रहता है। अकर्तापना सिद्ध किया, कर्तापना सिद्ध किया, वस्तु सिद्ध की। कर्ता, परिणमन में अशुद्ध परिणमन है तो अशुद्ध कर्ता हुआ। जब वह मिटता है, तब कर्तापना मिट जाता है। अकर्तापने का परिणमन होता है, उसका नाम धर्म है और कर्तापन की बुद्धि से परिणमे, उसका नाम अधर्म है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १९६

(अनुष्टुप्)

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ।।४-१९६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अस्य चितः भोक्तृत्वं स्वभावः न स्मृतः' [अस्य चितः] चेतनद्रव्य का, [भोक्तृत्वं] ज्ञानावरणादि कर्म के फल का अथवा सुख-दुःखरूप कर्मफलचेतना का अथवा रागादि अशुद्धपरिणामरूप कर्मचेतना का भोक्ता जीव है — ऐसा [स्वभावः] जीवद्रव्य का सहजगुण ऐसा तो [न स्मृतः] गणधरदेव ने नहीं कहा है। जीव का भोक्ता स्वभाव नहीं है-ऐसा कहा है। दृष्टान्त कहते हैं — 'कर्तृत्ववत्' जिस प्रकार जीवद्रव्य, कर्म का कर्ता भी नहीं है। 'अयं जीवः भोक्ता' यही जीवद्रव्य, अपने सुख-दुःखरूप परिणाम को भोगता है-ऐसा भी है, सो किस कारण से? 'अज्ञानात् एव' अनादि से कर्म का संयोग है; इसलिए मिथ्यात्व-राग-द्वेष अशुद्धविभावरूप परिणमा है, इस कारण, भोक्ता है। 'तदभावात् अवेदकः' मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम का नाश होने से, जीवद्रव्य, साक्षात् अभोक्ता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य का अनन्त चतुष्टय स्वरूप है; उस प्रकार कर्म का कर्तापन-भोक्तापन स्वरूप नहीं है। कर्म की उपाधि से विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है; इसलिए विनाशीक है। उस विभावपरिणति के विनाश होनेपर, जीव अकर्ता है, अभोक्ता है। आगे मिथ्यादृष्टि जीव, द्रव्यकर्म का अथवा भावकर्म का कर्ता है; सम्यग्दृष्टि, कर्ता नहीं है-ऐसा कहते हैं।।४-१९६।।

पौष कृष्ण ६, रविवार, दिनांक-२९-०१-१९७८, कलश-१९६, प्रवचन-२१८

कलशटीका १९६।

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ।।४-१९६।।

क्या कहते हैं? '**अस्य चितः भोक्तृत्वं स्वभावः न स्मृतः**' '**अस्य चितः**' चेतनद्रव्य जो भगवान आत्मा, वह तो ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। उसका—आत्मा का मूल

असली स्वभाव चेतन, जानना-देखना और आनन्द, सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का स्वभाववान आत्मा है। वह आत्मा। **चेतनद्रव्य का...** यह चेतनद्रव्य की व्याख्या हुई। रविवार है, ठीक! क्या कहते हैं?

जो आत्मा है न अन्दर आत्मा, उसका असली मूल स्वभाव चेतन है। चेतन अर्थात् जानन-देखन उसका स्वभाव है। दूसरी दृष्टि से कहें तो यह भगवान आत्मा का स्वभाव जानना-देखना, ज्ञाता-दृष्टा है। यह **चेतनद्रव्य का भोक्तापना-ज्ञानावरणादि कर्म के फल का अथवा सुख-दुःखरूप कर्मफलचेतना का...** ज्ञानावरणीय यह जड़कर्म की बात है। सुख-दुःख जो कर्मफल चेतना। बारीक, सूक्ष्म बात है, प्रभु! सुख-दुःख की जो कल्पना होती है, उसका भी भगवान आत्मा चेतनस्वरूप है, वह उसका भोक्ता नहीं। आहाहा! चेतनद्रव्य जो ज्ञानस्वभाव से भरपूर परिपूर्ण है। आहाहा! वस्तु है न? आत्मतत्त्व है न? तत्त्व। तत्त्व है तो उसका कोई स्वभाव है या नहीं? जैसे तत्त्व त्रिकाली है, वैसे कोई स्वभाव त्रिकाली है या नहीं? वर्तमान दशा में फेरफार है, वह तो अनादि से भूल है। परन्तु वस्तुस्थिति जो आत्मा है, वह त्रिकाली है। अनुत्पत्ति और अविनाश। उसकी कभी उत्पत्ति नहीं और कभी भी नाश नहीं। ऐसा वह सत् स्वरूप भगवान आत्मा, वह चैतन्यद्रव्य, उसका असली स्वभाव, कायमी स्वभाव, उसका कायमी मौजूदगी चेतन, ज्ञान और आनन्द उसकी मौजूदगी चीज़ है। भाषा समझ में आती है? भाई! यह सब प्रकार अलग है।

वह चेतनद्रव्य सुख-दुःख, अन्दर में कल्पना में जो सुख-दुःख होते हैं, उन सुख-दुःख की कल्पना का वस्तु स्वभाव वास्तव में भोक्ता नहीं है। फिर से। सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो विज्ञान का विज्ञान है। आहाहा! चेतनद्रव्य ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, वह अनादि है। वह कोई नयी चीज़ नहीं। नयी हो, वह तो दशा पलटे, वह नयी होती है। वस्तु है, वह नयी नहीं होती और चीज़ में विचार का पलटा होता है, वह तो अवस्था-हालत है। हालत नयी होती है परन्तु वस्तु जो है त्रिकाली, वह नयी नहीं होती। वह तो अनुत्पन्न और अविनाशी है। उत्पन्न भी होती नहीं और नाश भी होता नहीं। तो वह चीज़ क्या है? कि वह तो चेतनद्रव्य है। आहाहा! जानन और देखन स्वभाव-स्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा!

यह सुख-दुःख की कल्पना **अथवा रागादि अशुद्धपरिणाम...** सूक्ष्म है, भगवान! यह पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के या काम, क्रोध के भाव, वे विकल्प हैं, विकार है, विकृत है। इस कारण वस्तु का स्वभाव रागादि का और सुख-दुःख का भोक्ता और कर्ता नहीं है। अज्ञानी ने अज्ञानरूप से अनादि से मान रखा है। आहाहा! समझ में आया? है तो यह बात लॉजिक से, परन्तु कभी सुना नहीं, किया नहीं। आहाहा! अन्दर देह से भिन्न भगवान जो शाश्वत् चीज़ वस्तु है, वह तो चेतन अर्थात् जानन, देखन, आनन्द है। वह चीज़ वस्तु है और वस्तु में जो जानन-देखन आदि शक्ति-स्वभाव है, वह कहीं रागादि दया, दान का या रागादि के फल का भोक्ता नहीं है। स्वभाव भोक्ता नहीं है। आत्मा में कोई त्रिकाली स्वभाव ऐसा नहीं कि जो राग को भोगे या इन्द्रिय के विषय के भोग में सुख-दुःख की कल्पना को भोगे, ऐसा कोई आत्मा में स्वभाव और गुण नहीं। समझ में आया? गुजराती में समझाय छे (कहा जाता है और) हिन्दी में समझ में आता है, (ऐसा कहा जाता है)। आज हिन्दी लोग (आये हैं) न, इसलिए (हिन्दी में) चलता है। आहाहा!

यह सुख-दुःख अनुकूल चीज़ को देखकर मैं सुखी हूँ—ऐसी कल्पना और प्रतिकूलता को देखकर मैं दुःखी हूँ—ऐसी कल्पना, इस कल्पना का वास्तव में भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें ऐसा कोई स्वभाव, कोई शक्ति, कोई गुण, कोई उसका सत्त्व नहीं कि उसे भोगे। आहाहा! समझ में आया? है? पुस्तक में है या नहीं? वहाँ तुम्हारे चोपड़ा-बोपड़ा में कहीं नहीं है, वहाँ तुम्हारी धूल में। वहाँ पैसा-धूल दिखती है, धूल।

मुमुक्षु : वहाँ तो पन्ना फिरे और सोना झरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल के पन्ना परन्तु वह तो उगाही। बनिया लोग बातें करे कि देखो! बही में कितनी उगाही है? सोना झरे तो उसमें आत्मा को क्या है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में आत्मा का असली स्वभाव, मूल स्वभाव तो आनन्द और ज्ञान है। ज्ञान और आनन्दस्वभाव हर्ष-शोक को भोगे, वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! और पुण्य और पाप के भाव, रागादि को करे—ऐसा कोई स्वभाव नहीं। वह तो अनादि अज्ञान से राग का कर्ता और राग का भोक्ता अज्ञान से उत्पन्न

किया, ऐसी भ्रमणा है। समझ में आया? उसका कर्ता-भोक्ता आत्मा है नहीं। यह कहते हैं, देखो!

रागादि अशुद्धपरिणाम कर्मचेतना... यह कर्मचेतना अर्थात् विकारीरूप चेतन, उसमें एकाग्र हो जाये। राग में एकाग्र हो जाये, वह कर्मचेतना और उसके सुख-दुःख की कल्पना में भोक्ता हो जाये, वह कर्मफलचेतना। कर्म अर्थात् जड़ की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो विकारी परिणाम को कर्म कहते हैं। कर्म अर्थात् कार्य। पुण्य और पाप के भाव तथा हर्ष-शोक के भाव, वह विकारी कार्य है, उसे कर्म कहते हैं। कर्म अर्थात् कार्य। उस कार्य का कर्ता-भोक्ता (हो, ऐसी) आत्मा के मूल स्वभाव में कोई एक चीज़ या शक्ति भी नहीं। आहाहा! हसमुखभाई! यह व्यापार और धन्धा सब नहीं? यह टाईल्स का, धूल का।

अभी बहुत सूक्ष्म बात तो नहीं करते, अभी तो स्थूल बात करते हैं। बहुत सूक्ष्म तो बारीक बात है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! लॉजिक, न्याय वस्तुस्थिति ऐसी है कि जो न्याय से सिद्ध करना चाहिए। न्याय में 'नि' धातु है। नि... नि धातु, न्याय। तो नि (अर्थात्) ले जाना। जैसी वस्तु की स्थिति है, उस ओर ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय। तुम्हारे सरकार के न्याय अलग। यह वकालत करते हैं न... भाई! वकील है न! रामजीभाई बड़े वकील थे। पैंतीस वर्ष पहले पाँच घण्टे जाते थे तो दो सौ रुपये लेते थे। धूल, हों! धूल! अकेला पाप किया था, दूसरा क्या किया था? कोर्ट में जाकर बोले, ऐसा है और वैसा है, और अमुक है, और अमुक... सब राग का भाव था, पाप था। भाई! यहाँ तो ऐसा है। आहाहा! भगवान! कुज्ञान, वकालत का कुज्ञान था, ऐसा भाई कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो सर्वज्ञ प्रभु ऐसा कहते हैं, आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव है। आत्मा वस्तु है न वस्तु, तत्त्व पदार्थ है न? अस्ति है न, अस्ति? मौजूदगी चीज़। उसमें सर्वज्ञस्वभाव है, शक्ति है। सर्व को-अपने को और पर को जानना-देखना ऐसी उसकी शक्ति, स्वभाव है। वह सर्वज्ञस्वभाव ऐसा नहीं कि राग को करे और राग को भोगे, ऐसा सर्वज्ञस्वभाव में ऐसा है ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! अभी तो सब गड़बड़ बहुत चलती है। सब खबर है न! आहाहा!

यह चीज़ अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु देहदेवल में भगवान ज्ञानानन्द सहज स्वरूप, सहजात्म स्वरूप, सहज आत्मा स्वाभाविक स्वरूप। वह तो ज्ञान और आनन्द उसका स्वभाव है। उस स्वाभाविक चीज़ में ऐसी कोई शक्ति और स्वभाव नहीं कि राग को करे और सुख-दुःख को भोगे। ऐसी कोई शक्ति और स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह सब टाईल्स के व्यापार और अमुक के व्यापार, वह आत्मा नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। वह तो बात ही नहीं यहाँ तो। उसकी ओर का विकल्प उठता है, उस विकल्प का भी कर्ता और भोक्ता आत्मा के कोई स्वभाव में, शक्ति में, गुण में नहीं है। अज्ञान से इसने खड़ा किया हुआ कर्तापना और भोक्तापना का भाव है। आहाहा! कहो, सेठ! आहाहा! ऐसा है। ऐसी बात सुनना कठिन पड़े। आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि **जीवद्रव्य का सहज गुण, ऐसा तो गणधरदेव ने नहीं कहा है,...** है? कर्मफलचेतना अर्थात् विकारी सुखदुःख का वेदन करना और कर्मचेतना अर्थात् राग-द्वेष का करना, ऐसा जीव है, ऐसा जीवद्रव्य का सहज गुण तो गणधरदेव ने कहा नहीं। सन्तों ने, सर्वज्ञों ने तो कहा नहीं, परन्तु सर्वज्ञ की वाणी जो आयी, उस वाणी में शास्त्र की रचना की, वह गणधर अर्थात् सन्त के गण के झुण्ड के नायक ने कोई शास्त्र में ऐसा कहा नहीं कि आत्मा राग को करे और राग को भोगे, ऐसा आत्मा का स्वभाव है। ऐसा तो कहीं कहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। अनन्त काल से परिभ्रमण करता है, भान नहीं होता। मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? क्या मेरी सामर्थ्य है? राग को करना और राग को भोगना, वह इसकी सामर्थ्य है? सामर्थ्य अर्थात् स्वभाव। समझ में आया? आहाहा! भगवान! यहाँ तो श्लोक बहुत अच्छा आया है। हमारे डॉक्टर मौके से आये हैं। श्लोक बहुत अच्छा है, भाई! यहाँ के डॉक्टर हैं, खबर है?

जीवद्रव्य का.... क्या कहते हैं? जीवद्रव्य अर्थात् वस्तु। यह आत्मद्रव्य अर्थात् द्रव्य अर्थात् द्रवना। द्रवना अर्थात् जैसे पानी है न पानी? पानी में तरंग उठती है, उसी प्रकार आत्मा द्रव्य वस्तु है, उसमें उसकी दशा की तरंग उठती है। द्रवति इति द्रव्यम्। द्रवे, द्रवे, द्रवे। पर्याय—अवस्था को द्रवे, उसका नाम द्रव्य। परन्तु वह द्रव्य है, वह

पर्याय में नहीं और वह पर्याय द्रव्य में नहीं। अरे! यह द्रव्य का स्वभाव... आहाहा! ज्ञानानन्द प्रभु, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, वह उसका स्वभाव है। अतीन्द्रिय ज्ञान! यह इन्द्रियज्ञान उसका स्वभाव नहीं। वह तो भ्रमणा से उत्पन्न किया हुआ कोई इन्द्रिय का ज्ञान है। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय अन्दर प्रभुता, वह इसका स्वभाव है। उस स्वभाव में राग को करे और राग को भोगे, ऐसा कोई स्वभाव सन्तों ने तो कहा नहीं, सर्वज्ञों ने तो कहा नहीं। समझ में आया? कहा न?

जीवद्रव्य का सहज गुण, ऐसा तो... 'न स्मृतः' 'न स्मृतः' स्मरण में आया नहीं अथवा सन्तों ने कहा नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, बापू! ऐसा है। यह ज्ञान का गोला है यह तो। श्रीफल का दृष्टान्त बहुत बार देते हैं न! यह श्रीफल—नारियल। नारियल तो वास्तव में किसे कहते हैं? श्रीफल, श्री-फल। छाल नहीं, काचली नहीं, और काचली की ओर की लाल छिलका, वह भी नहीं, उस लाल छिलके के पीछे श्वेत-सफेद गोला, वह श्रीफल-नारियल है। भाई! न्याय समझ में आता है? यह तो श्रीफल का दृष्टान्त दिया। ऊपर के छाल, काचली और लाल छाल। खोपरापाक करे, तब घिस डालते हैं न? लाल छाल। वास्तव में तो वह लाल छाल, वह श्रीफल नहीं, काचली श्रीफल नहीं, छाल श्रीफल नहीं। श्रीफल तो उस लाल छाल के पीछे सफेद मीठा गोला जो है, वह श्रीफल है।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा यह शरीररूपी छाल है, वह आत्मा नहीं। यह तो छाल है। यह पाप और पुण्य कर्म बँधे हों, उनके कारण यह पैसा मिले, हसमुखभाई! यह चतुराई करने से मिलता नहीं, हों! चतुर है, इसलिए पैसे हो गये, करोड़ों रुपये या धूल रुपये (-ऐसा नहीं)। वह तो पूर्व के पुण्य के रजकण ऐसे हों, परमाणु—मिट्टी, तो बुद्धि के बारदान भी पाँच-पाँच लाख पैदा करते हैं। बारदान समझे? खाली। बुद्धि के बारदान—खाली हों तो भी पाँच-पाँच लाख पैदा करे, अभी बहुत देखे हैं... आहाहा! और बुद्धिवन्त होने पर भी महीने में दो हजार वेतन करना हो तो पसीना उतरता हो। किसी की सेवा और चाकरी और मक्खन चोपड़े। पैसा मिलना, वह कोई वर्तमान प्रयत्न का फल नहीं है। वह तो पूर्व के पुण्य और पाप के रजकण, कर्म, मिट्टी, काचली की

भाँति होती है, वह भिन्न चीज़ है। वह काचली नहीं, छाल नहीं। काचली अर्थात् कर्म। और पुण्य, पाप के भाव जो उठते हैं, शुभ-अशुभ विकल्प, दया, दान, काम, क्रोध, वे लाल छाल। उस लाल छिलके के पीछे आत्मा जो है वह सफेद—शुद्ध आनन्द का गोला है। यह तो समझ में आये ऐसा है, भाई! आहाहा! यह तो लॉजिक से सिद्ध करते हैं। ऐसे का ऐसा मानना, ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा! अन्दर में तो जैसे वह सफेद अर्थात् शुद्ध और मीठा अर्थात् आनन्द, उसी प्रकार यह शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु अन्दर है, उसे आत्मा कहते हैं। वह पुण्य और पाप के भाव, वे आत्मा नहीं। वह तत्त्व तो विकारी तत्त्व है। और शरीर तो पर है, प्रत्यक्ष पर है। यह तो छूट जाता है, नया आता है। वह छूट जाये तब गया, आत्मा गया, ऐसा नहीं कहते? वह आत्मा छूट गया। वह भिन्न है। यह जड़ है, यह तो मिट्टी है। यह शरीर, कर्म और पुण्य-पाप के भाव। यहाँ तो पुण्य-पाप के भाव का कर्तापना, ऐसा कोई आत्मा का त्रिकाली स्वभाव नहीं है तथा हर्ष-शोक का भोगना, ऐसा कोई आत्मा में त्रिकाली सहज स्वभाव, गुण, शक्ति नहीं है। आहाहा! तब यह क्या है यह सब? खड़ा क्या हुआ यह सब तब? आहाहा! है? **स्वभाव नहीं है, ऐसा कहा है;...**

दृष्टान्त कहते हैं—जिस प्रकार जीवद्रव्य कर्म का कर्ता भी नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा वह तो ज्ञानचक्षु है। वह ज्ञानचक्षु राग का कर्ता नहीं तथा राग का भोक्ता भी नहीं। आहाहा! है? **जीवद्रव्य कर्म का कर्ता भी नहीं है। 'अयं जीवः भोक्ता' यही जीव द्रव्य अपने...** अब फिर से लेते हैं। **'अयं जीवः भोक्ता'** तब यह भोगता है न? दिखता है न यह राग को भोगता है, पुण्य को भोगता है, पाप के भाव को भोगता है, करता है। पर का करे, शरीर का करे, टाईल्स की बात यहाँ नहीं। इन्हें टाईल्स का (काम) नहीं था, तुम्हारे दूसरा था, नहीं? हें? कागज के गत्ते। पोपटलालभाई थे न? गुजर गये। उनके पुत्र हैं। (वे) गुजर गये। दीवाली के बाद यहाँ चार दिन रह गये थे। यहाँ से गये और तुरन्त दो दिन में गुजर गये। उनके पुत्र हैं।

यहाँ कहते हैं कि इस आत्मा में कर्ता, भोक्ता राग का और विकार का कर्ता-भोक्ता का कोई स्वभाव नहीं है, उसकी कोई शक्ति और उसमें कोई गुण नहीं। तब

कहते हैं, यह भोक्ता दिखता है, उसका क्या? यह राग भोगता है। यह विषय भोगता है, ऐसा कहते हैं। विषय भोगने में भी कहीं स्त्री का शरीर भोगता नहीं। शरीर तो माँस और हड्डियाँ जड़ है और आत्मा तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की अरूपी चीज़ है। निरंजन निराकार अरूपी प्रभु है। वह कहीं स्त्री के शरीर को भोगता नहीं। तब क्या है? यह ठीक है, ऐसा जो राग करके राग को भोगता है। इसे बिच्छू के काटने के समय, अठीक है—ऐसा करके द्वेष को भोगता है। बिच्छू के काटने को नहीं, स्त्री के शरीर को नहीं, बिच्छू के काटने को नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह राग का कर्ता और राग का भोक्ता किस प्रकार है तब? वस्तु के स्वभाव में नहीं, ऐसा तुमने कहा। हें? ऐसे तो दिखता है, अज्ञानी सब राग को करते हैं, राग को भोगते हैं। राग को भोगते हैं, हों! शरीर को नहीं। स्त्री का शरीर, पैसे को भोगते हैं, यह तो तीन काल में नहीं। पैसा तो मिट्टी-धूल है। आत्मा तो अरूपी—रंग, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की चीज़ है। वह रंग, गन्ध, रस बिना की चीज़ रंग, स्पर्श को कैसे भोगे? भोगे तो उसमें विकृतभाव करे, उसका कर्ता होता है और उसे भोगता है, वह अज्ञानरूप से होता है। वस्तु के भान बिना इस प्रकार से खड़ा हुआ है, ऐसा कहते हैं। देखो!

'अयं जीवः भोक्ता' यही जीवद्रव्य अपने सुख-दुःखरूप परिणाम को भोगता है ऐसा भी है... यह हर्ष-शोक भोगता है, ऐसा दिखता है न! पृष्ठ में अन्तर है?

मुमुक्षु : यह गुजराती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती, ठीक! यह हिन्दी है। ठीक, लो! यह पृष्ठ इस ओर है। समझ में आया? क्याक हते हैं?

यह आत्मा का मूल स्वभाव—असली स्वभाव, कायमी आत्मा और कायमी स्वभाव। उसमें कोई स्वभाव और कोई द्रव्य, वह राग को करे और वह राग को भोगे, वह तो उसका कोई स्वभाव तो है नहीं। तो यह होता क्या है? राग करता है, राग भोगता है। यह कहते हैं कि सुख-दुःख **ऐसा भी है...** क्या कहा? आत्मा में स्वभाव में विकार का करना और विकार का भोगना नहीं है। है अवश्य। पर्याय में भोक्ता है, ऐसा है न? वह क्या है? समझ में आया? आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था, वर्तमान हालत।

त्रिकाली में कोई ऐसा गुण, शक्ति नहीं है। यह भोगता दिखता है न? राग को भोगे, राग करे। हर्ष—प्रसन्न हो जाये, नाराज हो जाये, उस भाव को भोगता है न? प्रसन्न हो जाये। ऐसे भाव को वह भोगता है न! वह भी है, यह भी है। परन्तु किस प्रकार है? आहाहा!

सो किस कारण से? 'अज्ञानात् एव' आहाहा! अरे! उसे अज्ञान है, अनादि का भान नहीं है। आहाहा! मैं एक आत्मा आनन्द का गोला शुद्ध चैतन्यघन हूँ, ऐसा भान नहीं। वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि अर्थात् कि जिस त्रिकाली स्वभाव में राग करने का और भोगने का स्वभाव नहीं तो उससे विपरीत दृष्टि है। वह स्वभाव में नहीं, ऐसे स्वभाव की दृष्टि हो, तब तो सम्यग्दृष्टि—सत्यदृष्टि है। परन्तु स्वभाव का भान नहीं, अज्ञान के कारण से वह राग-द्वेष को करे और राग-द्वेष को भोगे अज्ञान, मिथ्यात्व के कारण से है। मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि के कारण से सम्यक् वस्तु का जो स्वभाव है, ऐसी सम्यक् सत्य दृष्टिवन्त को राग का कर्ता और भोक्तापना नहीं है। वह राग का कर्ता और भोक्तापना देखता है न? यह क्या है? आहाहा! **'अज्ञानात् एव'** अनादि से कर्म के संयोग से... आहाहा! जड़कर्म का संयोग है। जैसे श्रीफल और काँचली साथ में हैं। श्रीफल पहले आया और फिर काँचली आयी, ऐसा कुछ हुआ है उसमें? दोनों साथ ही है। हें? श्रीफल और काँचली साथ ही है न? दूध और दूध में पानी दोनों साथ ही है, फिर पानी पृथक् पड़ जाता है। छन्ना करते हैं न? छन्ना करे (उसमें) नींबू का पानी डाले। सेर दूध में, दो सेर दूध में। तुमने ही कहा था। सवेरे दूध का छन्ना करके लेना। यह डॉक्टर कहते हैं। भाई आये थे न? गांगुली, ऐसा कहते हैं कि दूध ऐसा का ऐसा नहीं लेना। दस्त हो जायेगी। इसलिए दूध में जरा नींबू डालकर पानी निकाल देना अर्थात् छैन्ना अर्थात् अकेला लोचा रह जाये वह लेना। अभी थोड़े दिन से यह शुरु किया। ८८ वर्श में पहले-बहले (लिया)। यहाँ तो कभी लिया नहीं।

यहाँ कहते हैं कि जो राग को और कर्म को, सुख-दुःख को भोगता है, वह मिथ्यात्व के कारण से है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। मिथ्यात्व अर्थात् झूठी दृष्टि। सत्य दृष्टि तो ज्ञान और आनन्दस्वभाव जिसका है, ऐसी दृष्टि हो तो वह सत्यदृष्टि है। वह तो राग का कर्ता-भोक्ता नहीं। धर्मी तो राग आता है, उसका जाननेवाला रहता है और देखनेवाला

रहता है। तो यह क्या होता है ? राग को, द्वेष को भोगता है, यह क्या है ? यह मिथ्याश्रद्धा है। वस्तु स्वरूप है, ऐसी सम्यक् श्रद्धा नहीं और राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, पाप मैं हूँ और हर्ष-शोक मैं हूँ—ऐसी मिथ्याश्रद्धावन्त उन हर्ष-शोक को करता है और भोगता है। आहाहा! भारी कठिन काम। समझ में आया ?

मूढ़ जीव, मिथ्यादृष्टि अर्थात् मूढ़ जीव, वस्तु के स्वरूप की खबर नहीं कि मेरी चीज़ क्या है और मैं असली स्वरूप से त्रिकाल क्या हूँ ? उसके ज्ञान और आनन्द स्वभाव की जिसे खबर नहीं, ऐसी मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टिवन्त, वह राग को करता है और राग को भोगता है। वह मिथ्या—झूठी दृष्टि के कारण से है। सत्य दृष्टि के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया ? वह चार गति में भटकनेवाला, परिभ्रमण करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि के कारण विकार का कर्ता और भोक्ता होता है। स्वभाव में है नहीं, पर्याय में—अवस्था में अज्ञानता के कारण से, मिथ्याश्रद्धा के कारण से, वास्तविक स्वभाव की श्रद्धा के अभाव के कारण से (राग को करता है और भोगता है)। आहाहा! समझ में आया ? यह राग दया, दान या काम, क्रोध के भाव, वे तो विकल्प हैं, वह विकल्प मेरा कार्य है और विकल्प को मैं भोगता हूँ, वह मिथ्यादृष्टि स्वभाव की स्थिति को नहीं जाननेवाला मिथ्या—झूठी दृष्टिवन्त कर्ता-भोक्ता होता है। आहाहा! कठिन काम है, बापू! लक्ष्मीचन्दभाई! अफ्रीका से आये हैं। अफ्रीका में यहाँ का मण्डल है। नैरोबी में। स्वयं प्रोफेसर है। गुजराती समाज के चालीस घर हैं। यहाँ का वाँचन वहाँ करते हैं। वहाँ प्रमुख है। पहले इनके बड़े भाई थे, प्रेमचन्दभाई (थे)। वहाँ नैरोबी में दस लाख का मकान—मन्दिर बनानेवाले हैं। दस लाख रुपये का मन्दिर नया (बनानेवाले हैं)। डेढ़-दो लाख का है न ? भाई! डेढ़-दो लाख का पहले का है। यह दस लाख का नया बनानेवाले हैं। एकत्रित होकर यहाँ के वाँचन, मनन के लिये (बनानेवाले हैं)।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। आहाहा! अनादि काल से तेरी चीज़ अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का सागर का भण्डार भरा हुआ तेरा प्रभु है। आहाहा! यह दृष्टान्त भी दिया था न ? सेठ आये थे, तब भी कहा था। नहीं ? सुमनभाई के सेठ आये थे न ? रामजीभाई का पुत्र है न ? सुमनभाई, उसमें नौकर है, उसके बड़े सेठ आये

थे। तीन-साढ़े तीन करोड़ रुपये की वर्ष की आमदनी है। उनके पुत्र की बहू यहाँ व्याख्यान में है। करोड़-सवा करोड़ तो सरकार ले जाती है। आहाहा! कल शकरकन्द का दृष्टान्त दिया था। शकरकन्द है न? शकरकन्द। अपने शकरकन्द कहते हैं न? ऊपर की लाल छाल है, उससे भिन्न वह चीज़ है और इसीलिए उसे शकरकन्द कहते हैं। शकरकन्द अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड। शकर अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड। उसका छिलका वह अलग। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास का पिण्ड है और यह पुण्य, पाप, दया, दान, काम, क्रोध के राग-द्वेष के भाव, वे ऊपर की लाल छाल है। वह लाल छाल, वह खोपरा नहीं। इसी प्रकार लाल छाल वह आत्मा नहीं। इसी प्रकार पुण्य-पाप के भाव वे आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ भोक्ता दिखता है न? कि अज्ञान (और) मिथ्यात्व के कारण से। आहाहा!

जिसकी स्वभाव की दृष्टि नहीं, अनादि काल से चैतन्य भगवान जानन-देखन और आनन्द ऐसा स्वभाव है, ऐसी जिसे खबर नहीं, दृष्टि नहीं, सम्यक्—सत्य नहीं, सम्यक् सत्य दृष्टि में लिया नहीं, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव असत्य जो विकृत भाव करता है, और भोगता है, उसका कर्ता-भोक्ता मिथ्यादृष्टि होता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात तो है, भाई! दूसरा क्या हो? वस्तु तो यह है, हों! न्याय से, लॉजिक से भी वस्तु ऐसी सिद्ध होती है, दूसरे प्रकार से सिद्ध नहीं होती।

अन्दर भगवान आत्मा कैसे भटकता है, चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करता है। आहाहा! बहुत भव करता है। अभी हजारों जातिस्मरणवाले हैं। वे आये थे न? अपने बहिन को जातिस्मरण है, उसकी जाँच करने आये थे। कहाँ का था? इंग्लैण्ड का? अमेरिका का। बहिन है न यहाँ! उन्हें जातिस्मरण—पूर्व भव का ज्ञान है। सूक्ष्म बात है। अमेरिका से इनकी रिपोर्ट लेने आये थे। मैंने उनको पूछा था, ऐसे कितनेक हैं? ऐसे हजारों हैं। पूरे हिन्दुस्तान और यूरोप में तथा अन्यत्र भी (किसी को) एक भव, किसी को दो भव ऐसे जाति अर्थात् पूर्व के भव का ज्ञान, वह कहीं धर्म नहीं परन्तु ऐसा जानपना (धारक) कितने ही हैं। उनके पास रिपोर्ट थी। अमेरिका से आदमी आया था।

मुझे दूसरा सिद्ध करना था कि भव है। इससे पहले आत्मा दूसरे भव में था। इससे पहले दूसरे, तीसरे... आत्मा तो अनादि है, वह है परन्तु भिन्न... भिन्न... भिन्न भव में भटकता है और भटकता क्यों है? कि अपना निज स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन, जिसमें विकार का कर्ता और भोक्ता का कोई गुण नहीं, ऐसे गुण को धारण करनेवाले गुणी की दृष्टि जिसे नहीं, वह कर्ता-भोक्ता होता है और चार गति में भटकता है। आहाहा! कठिन काम है। यह सब करते हैं न? यह तो नरसिंह मेहता ने यह कहा है। 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है।' 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है।' फिर क्या कहा? 'शकट का भार ज्यों श्वान ताणे' गाड़ा होता है न गाड़ा? उसके नीचे कुत्ता हो न? वह मानो कि मुझसे गाड़ा चलता है। यह सब धन्धा-व्यापार चलता है न, वह जड़ की क्रिया जड़ से होती है। मूर्ख बैठा हो, वह ऐसा मानता है कि यह मुझसे होता है। वह अन्दर राग और द्वेष का कर्ता, पुण्य और पाप के विकृत भाव का कर्ता और भोक्ता, स्वभाव—स्वरूप की दृष्टि बिना मिथ्यादृष्टिवाला कर्ता और भोक्ता होता है। परन्तु सम्यग्दृष्टि, सम्यक् अर्थात् जैसा उसका स्वभाव है, राग करने की कोई शक्ति या स्वभाव नहीं, ऐसे स्वभाव की जिसे दृष्टि है, वह राग का कर्ता-भोक्ता नहीं होता। रागादि होते हैं, परन्तु कर्ता-भोक्ता नहीं होता, जाननेवाला रहता है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। है?

'अज्ञानात्' मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप अशुद्ध विभाव परिणमा है,... देखो! अज्ञानी मिथ्याश्रद्धा रूप; (अर्थात्) जानन-देखन मैं हूँ, ऐसा नहीं मानकर, मैं तो राग और पुण्य-पाप भाव मेरे हैं, ऐसा मानकर अज्ञानी प्राणी, मिथ्या अर्थात् विपरीत मान्यता और राग-द्वेष—ऐसे मलिन विभावरूप परिणमा है। विशुद्ध विकाररूप हुआ है। **इस कारण भोक्ता है।** आहाहा! इस कारण से वह विकार का भोक्ता होता है। आहाहा! जहर का अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं। अमृतस्वरूप भगवान है, उसकी जिसे दृष्टि नहीं, वह राग का भोक्ता—जहर का भोक्ता होता है। स्व का भोक्ता, स्व की तो खबर नहीं। आहाहा! मैं कौन हूँ? अनादि-अनन्त कोई चीज़ अन्दर हूँ, और जिस चीज़ में अत्यन्त शुद्ध पवित्र स्वभाव ही भरा है। वस्तु है, उसमें अपवित्रता नहीं हो सकती। अपूर्णता नहीं हो सकती, अपवित्रता नहीं हो सकती, आवरण नहीं हो सकते। वह तो वस्तु ऐसी चीज़ भगवान आनन्दस्वरूप अनादि है। उस चीज़ की दृष्टि जिसे हुई, उसे राग और द्वेष

आते हैं, परन्तु उन्हें पृथक् रखकर उनका जाननेवाला रहता है और अज्ञानी राग-द्वेष में, अपने स्वभाव की दृष्टि नहीं होने के कारण राग-द्वेष को अपना मानकर कर्ता-भोक्ता मिथ्यादृष्टि दुःखी होकर कर्ता-भोक्ता होता है। यह बहुत सूक्ष्म बातें, भाई!

यह इंजेक्शन बहुत अलग प्रकार का है। आहाहा! यह डॉक्टर इंजेक्शन देते हैं न? उसी प्रकार यह इंजेक्शन देते-देते मर गये थे, नहीं तुम्हारे? भावनगर, हेमन्तकुमार। हेमन्तकुमार थे न वहा? 'पटणी' के रिश्तेदार थे। वे किसी का कुछ करते थे, वहाँ कहे, मुझे कुछ होता है। कुर्सी पर बैठे थे, उड़ गये। हेमन्तकुमार यहाँ दो-तीन बार अपने व्याख्यान में आये थे। एक बार दाँत के लिये बुलाया था। आये थे, तीन बार आये थे। यह तो देह की स्थिति, अवधि है, उस स्थिति से छूटती ही है। लाख उपाय करे और देव उतारे और दवा करे और वहाँ मिट जाये और शरीर रहे, यह तीन काल-तीन लोक में नहीं होता।

यहाँ तो (कहते हैं) उनका कर्ता तो नहीं, उनका—शरीर, वाणी का रक्षक तो नहीं, परन्तु अन्दर में जो राग-द्वेष और सुख-दुःख की कल्पना होती है, उसका कर्ता और भोक्ता कौन होता है? कि जिसे अपनो स्वभाव का भान नहीं और खबर नहीं, वह। मेरी चीज़ क्या है और मुझमें त्रिकाली क्या है? मैं त्रिकाली हूँ और मुझमें त्रिकाली स्वभाव क्या है? आत्मा त्रिकाली है न? त्रिकाली अविनाशी है। उसमें ज्ञान और आनन्द आदि त्रिकाली स्वभाव है। उस त्रिकाली स्वभाव की जिसे खबर नहीं, वह वर्तमान में राग और द्वेष करके राग-द्वेष का कर्ता और भोक्ता होता है। आहाहा! है? **इस कारण भोक्ता है।** आहाहा!

'तदभावात् अवेदकः' मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम का नाश होने से... आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव मैं हूँ—ऐसी दृष्टि होने से, राग और पुण्य मेरे हैं, पुण्य और पाप मेरे हैं—ऐसा मिथ्यात्व भाव का जिसने नाश किया है और सम्यक्भाव जिसने उत्पन्न किया है, मैं तो आनन्द, ज्ञाता-दृष्टा शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा जीव **मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम का नाश होने से...** उसे मिथ्याश्रद्धा का नाश हो गया। राग मेरी चीज़ है और राग को भोगता हूँ, यह दृष्टि रही नहीं। आहाहा! धर्मी की पहली श्रेणी की चीज़ कहते हैं कि

उसे आत्मज्ञान हुआ, आत्मज्ञान हुआ (कि) वह तो आनन्द और शान्ति का सागर भगवान है—ऐसी दृष्टि हुई, तब से वह अवेदक है। तब से राग का भोक्ता और राग का कर्ता नहीं होता। आहाहा! बहुत बात... हाँ और ना में दो बातें आ गयी।

शुद्ध स्वभाव की दृष्टिवन्त को राग होता है, परन्तु (उसका) कर्ता-भोक्ता नहीं, उसे ज्ञातारूप से जानता है। अज्ञानी को अपने स्वभाव की दृष्टि की खबर नहीं, मैं कौन पवित्र आनन्द हूँ, वह राग का कर्ता और भोक्ता होता है। इस मिथ्यात्व में कर्ता-भोक्ता होता है और '**तद्भावात्**' मिथ्यात्व का नाश करके जिसने आत्मा के स्वभाव का सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वह अवेदक है। आहाहा! वह विकारभाव का भोक्ता नहीं। यह बहुत सूक्ष्म बात, बापू! इसका अभ्यास चाहिए। आहाहा! डॉक्टर और एल.एल.बी. या एम.ए. सीखता हो तो चाहिए है न कितने ही वर्ष? यह वकालत और एल.एल.बी. सीखे। परन्तु समय तो चाहिए न? यह अनादिकाल की भूल रह गयी है और किस प्रकार से है, उसे (निकालने के लिये) थोड़े समय अभ्यास चाहिए, तो इसे समझ में आयेगा। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहा न? अनादि से भूल, ऐसा कहा था न? **अनादि से कर्म का संयोग है, इसलिए मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप अशुद्ध विभाव परिणमा है, इस कारण भोक्ता है।** अज्ञानी। '**तदभावात् अवेदकः**' मैं राग नहीं, पुण्य नहीं, मैं तो ज्ञातादृष्टा आनन्दकन्द प्रभु हूँ, ऐसी दृष्टि होने से सम्यग्दृष्टि और धर्मी हुआ, तब से वह विकार का भोक्ता नहीं होता। विकारभाव आता है, उसका जाननेवाला-देखनेवाला रहता है। आहाहा! वह मेरी चीज़ है, ऐसा मानता नहीं। अज्ञानी, मेरी चीज़ है—ऐसा मानता है। है न?

जीव द्रव्य साक्षात् अभोक्ता है। यह क्या कहा? कि वस्तु तो अभोक्ता है ही। वस्तु है, वह तो आनन्द और ज्ञान और शान्तरस से भरपूर चीज़ तो राग की भोक्ता है ही नहीं, परन्तु पर्याय में जो अज्ञानरूप से भोक्ता था, वह सम्यग्दर्शन हुआ, स्वरूप की दृष्टि का भान हुआ तो पर्याय में साक्षात् अकर्ता हुआ। आहाहा! पर्याय में अभोक्ता हुआ। द्रव्य में तो था ही, कहते हैं। आहाहा! ऐसा उपदेश अब किस प्रकार का? आहाहा! दुनिया में चले कुछ और (यह) बात ऐसी। बापू! मार्ग ऐसा, भाई! हें? आहाहा!

वस्तुस्थिति ऐसी है, बापू! यहाँ तो शरीर को ८८ वर्ष हुए, शरीर को ८८ (हुए)। यह वैशाख शुक्ल २, ८९वाँ लगेगा। यहाँ तो ७०-७१ वर्ष से यह सब है। दुकान घर की पिताजी की थी तो मैं तो वहाँ शास्त्र पढ़ता था। पालेज। पालेज है न? भरुच-बड़ोदरा के बीच पालेज में दुकान है। हमारी दुकान के पास पारसी का बड़ा जीन था। सब हमारे परिचित थे। मैं वहाँ पालेज में नौ वर्ष रहा। (संवत्) १९६८ के वर्ष में छोड़ दिया।....

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य का अनन्त चतुष्टय स्वरूप है,...** अब जरा बात ऐसी की है कि जीव का स्वरूप तो अनन्त चतुष्टय (स्वरूप है)। अर्थात्? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य वह उसका त्रिकाली स्वभाव है। यह जीव जिसे कहते हैं, उसका त्रिकाली स्वभाव अनन्त चतुष्टय (स्वरूप) है। अर्थात् अन्दर बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, बेहद आनन्द, बेहद वीर्य—पुरुषार्थ अर्थात् बल, यह चतुष्टयस्वरूप है। **उस प्रकार कर्म का कर्तापन-भोक्तापन स्वरूप नहीं है।** जैसा अनन्त चतुष्टय, स्वरूप है, वैसा राग का कर्ता-भोक्ता उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! अज्ञानपने से माना है। है न?

कर्म की उपाधि से विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है, इसलिए विनाशीक है। यह राग तो विनाशीक है। विनाशीक का कर्ता-भोक्ता होता है, वह तो अज्ञान है। **उस विभावपरिणति के विनाश होने पर जीव अकर्ता है, अभोक्ता है।** बस! मिथ्याश्रद्धा का नाश होकर आत्मा जैसा है, वैसी प्रतीति अनुभव में हुई, तब से राग का अकर्ता और अभोक्ता है, अकर्ता और अभोक्ता है। अज्ञानरूप से कर्ता और भोक्ता था, तब चार गति में भटकता था। परन्तु जब अपने स्वभाव का आत्मज्ञान हुआ, तब से अकर्ता और अभोक्ता हुआ, उसका परिभ्रमण रहता नहीं। वह चार गति में से छूटकर उसका मोक्ष हो जाता है। (विशेष कहेंगे...)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ७, सोमवार, दिनांक-३०-०१-१९७८, कलश-१९६, १९७ प्रवचन-२१९

कलशटीका, १९६, भावार्थ है न? **भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीव द्रव्य का अनन्त चतुष्टय स्वरूप है,** क्या कहते हैं? यहाँ तो अनन्त चतुष्टय की मुख्यता की है। बाकी तो आत्मा में अनन्त शक्तियाँ है, उसमें कोई शक्ति ऐसी नहीं कि जो विकार करे। आत्मा में अनन्त चतुष्टय मुख्यरूप से लिये। अनन्त ज्ञान, अपरिमित अनन्त ज्ञान, अपरिमित अनन्त दर्शन, अपरिमित अनन्त सुख, अपरिमित अनन्त वीर्य, उसकी मुख्यता ली है। बाकी उसमें आकाश के प्रदेश जो अनन्त हैं, उनसे अनन्तगुणे एक जीव में गुण अर्थात् शक्तियाँ हैं। आकाश के प्रदेश हैं, लोक-अलोक सर्व, अन्त नहीं, ऐसे जो अनन्त प्रदेश, उनसे अनन्तगुणी एक जीव में शक्ति, गुण हैं। कहते हैं कि अनन्तगुण बेशुमार शक्ति है। बेशुमार कहो, अनन्त अपरिमित (कहो)। ऐसी कोई शक्ति नहीं कि विकार करे, ऐसा कोई गुण नहीं। समझ में आया?

यहाँ चतुष्टय के मुख्य नाम लिये हैं, बाकी आत्मा में, आत्मा ऐसी चीज़ है, वस्तु है तो उसमें बसी हुई शक्तियाँ हैं। वस्तु है तो उसमें बसे हुए (गुण हैं)। गोम्मटसार में वस्तु की व्याख्या ऐसी की है। जो वस्तु है, उसमें टिके रहे हुए, बसी हुई अनन्त शक्तियाँ हैं। अनन्त शक्ति कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, शक्ति कहो। अनन्त शक्ति में एक भी गुण ऐसा नहीं कि जो विकार करे। गुण का कोई स्वभाव नहीं कि विकार करे, ऐसा कोई गुण अनन्त में है ही नहीं। समझ में आया?

वस्तु जो है, वस्तु, उसमें अनन्त शक्तियाँ, गुण भरे हुए हैं। उन गुण में यहाँ नाम चतुष्टय के लिये हैं। **अनन्त चतुष्टय स्वरूप है, उस प्रकार कर्म का कर्तापन-भोक्तापन स्वरूप नहीं है।** ऐसा कहना है। जैसे अनन्त गुण, अनन्त शक्ति है, वह उसका स्वभाव है। वस्तु है, वह सत् है और शक्तियाँ हैं, वे सत्त्व हैं। वस्तु है, वह भाववान है और शक्तियाँ भाव है। परन्तु भाववान की शक्ति में कोई ऐसी शक्ति नहीं कि विकार का कर्ता हो, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प उठता है, तो उस विकल्प का उठना, वह कोई गुण का काम नहीं। वह भगवान आत्मा एक समय में वस्तु एक है, परन्तु उसकी शक्तियाँ, गुण अपरिमित अमाप हैं।

आकाश के प्रदेश का कहीं अन्त नहीं। चारों दिशाओं में अन्त नहीं, अन्त नहीं। फिर क्या? फिर क्या? फिर क्या? यह क्षेत्र भी, जहाँ अपरिमित अनन्त है, उसके प्रदेश जो संख्या में अनन्त हैं, उनसे अनन्तगुणी संख्या में तो एक जीव में गुण हैं। आहाहा! उसमें कोई ऐसी शक्ति नहीं कि विकार करे और विकार भोगे। आहाहा! समझ में आया? दृष्टि का विषय जो आत्मा है, सम्यग्दर्शन का ध्येय—विषय जो आत्मा है और उसमें जो अनन्त-अनन्त शक्तियाँ हैं, वह कोई शक्ति या द्रव्य विकार, व्यवहाररत्नत्रय का राग करे या भोगे, ऐसी कोई शक्ति नहीं है। आहाहा! वह तो पर्यायबुद्धि से उत्पन्न होता है। विकार होता है, वह पर्यायबुद्धि से (होता है)। ज्ञानी को पर्यायबुद्धि नहीं, परन्तु उसे विकार होता है, वह कमजोरी के कारण होता है। समझ में आया?

दो प्रकार हैं। वस्तु के स्वभाव में कोई गुण ऐसा नहीं कि विकार करे और भोगे। व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग या पंच महाव्रत का राग या शास्त्र की ओर झुकी हुई बुद्धि, वह भी व्यभिचारिणी बुद्धि है, विकल्प है। समझ में आया? पद्मनन्दि पंचविंशति में व्यभिचारिणी बुद्धि कहा है। शास्त्र की ओर झुकी हुई बुद्धि, वह व्यभिचारिणी है। परद्रव्य की ओर झुकती है न! यहाँ कहते हैं कि विकल्प जो व्यभिचार है, उसका रचना और भोगना ऐसा भगवान आत्मा में कोई गुण, शक्ति नहीं, तथापि होता है क्या? यह कहते हैं, देखो!

उस प्रकार कर्म का कर्तापन-भोक्तापन स्वरूप नहीं है। कर्म की उपाधि से विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है,... आहाहा! कर्म से कहा, वह तो निमित्त का कथन है। निमित्त कराता नहीं, करता नहीं। परन्तु निमित्त कहा, क्योंकि विकार का लक्ष्य पर के ऊपर जाता है तो **कर्म की उपाधि से विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है,...** इस कारण से विकार है। निमित्त के वश हुए परिणाम विकाररूप होते हैं। निमित्त से होते हैं, ऐसा नहीं तथा स्वभाव से होते हैं, ऐसा नहीं। स्वभाव में ऐसा है नहीं और निमित्त कराता नहीं। आहाहा! पर्याय में कमजोरी से और पर्यायबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि, जिसे स्वपर की एकत्वबुद्धि है, राग और भगवान त्रिकाली स्वभाव त्रिकाली ध्रुव और राग क्षणिक विकृत, उस स्व-पर की एकत्वबुद्धि है, स्व-पर एकत्व श्रद्धा है, स्व-पर एकत्व परिणति है, उसका वह कर्ता-भोक्ता होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने तो एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे—जाने, उन परमात्मा की वाणी... परमात्मा की वाणी कहना, यह तो निमित्त से कथन है। वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है। भगवान के गुण और परिणति के कारण से वाणी निकलती नहीं, परन्तु वाणी में निमित्त है। वह तो लोकालोक में केवलज्ञान निमित्त है और केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त। निमित्त का अर्थ (यह कि) वह चीज़ है। परन्तु लोकालोक है तो केवलज्ञान है और केवलज्ञान है तो लोकालोक है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ आत्मा में विकार होता है तो कोई शक्ति है, इसलिए विकार होता है और निमित्त है तो विकार होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु निमित्त पर जिसका लक्ष्य है, और पर के प्रति जिसकी एकत्वबुद्धि है, पर्यायबुद्धि में एकत्व (की) मान्यता है। स्वभावबुद्धि में तो स्व-पर की विभागबुद्धि है। सम्यग्ज्ञान में स्व-पर की विभागबुद्धि है। स्वपर की विभाग श्रद्धा है। विभाग अर्थात् विवेक, भिन्न। स्व-पर का विभाग, वि-भाग, वि-भाग। भाषा तो स्पष्ट आती है। यह संस्कृत टीका में ऐसा है। संस्कृत टीका है न? 'विभाग' शब्द पड़ा है। यहाँ तो सब देखा है न! नया नहीं कुछ। कितना चलता है? १९७ में है। फिर आयेगा, १९७ में आता है। '**स्वपरयोरेकत्वज्ञानेन**' संस्कृत है। विकृत (दशा) क्यों उत्पन्न होती है? '**स्वपरयोरेकत्वज्ञानेन, स्वपरयोरेकत्वदर्शनेन, स्वपरयोरेकत्वपरिणत्या**' अज्ञानी को विकृत (दशा) क्यों उत्पन्न होती है? कि स्व-पर की एकत्व प्रतीति, स्व-पर का एकत्व ज्ञान और स्व-पर की एकत्व परिणति है, इस कारण से विकृत अवस्था उत्पन्न होती है। तब ज्ञानी को? है अन्दर। '**स्वपरयोर्विभागज्ञानेन**' संस्कृत है। '**स्वपरयोर्विभागज्ञानेन**' स्वभाव शुद्ध है और राग विकार है। दोनों का अन्दर विभाग पड़ गया। सम्यग्दृष्टि को स्वभाव और विभाव का विभाग हो गया है, भाग पड़ गया है। आहाहा! हें? भिन्न हो गया है। '**स्वपरयोर्विभागज्ञानेन**' है? '**स्वपरयोर्विभाग-दर्शनेन, स्वपरयोर्विभागपरिणत्या**' १९७ में आयेगा। यहाँ तो अभी उसका उपोद्घात करते हैं।

आत्मा में विकृत (अवस्था) क्यों होती है? कि **कर्म की उपाधि से विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है, इसलिए विनाशीक है।** आहाहा! और भगवान आत्मा

का स्वभाव अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त की वर्गणा करो, अनन्त को अनन्त की वर्गणा करो तो भी उसकी अनन्तता इतनी है कि उस अनन्तता की परिमितता / हद नहीं। इतने आत्मा में संख्या से गुण हैं, इतनी संख्या में गुण, शक्ति है परन्तु उन शक्तियों में कोई शक्ति विकृत हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। पर्यायबुद्धि में पर की एकत्वबुद्धि में विकार उत्पन्न करता है। आहाहा! तब कोई कहे, ज्ञानी को होता है न? ज्ञानी को होता है, वह स्व-पर की एकत्वबुद्धि से नहीं होता। उसे निर्बलता से निमित्त के वश हो जाता है। निमित्त कराता नहीं, निमित्त से होता नहीं परन्तु निमित्त के वश होता है। स्वभाव के वश नहीं।

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, सच्चिदानन्दस्वरूप। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु है, वह जिसकी दृष्टि में वश नहीं, वह निमित्त के वश हो जाता है। ज्ञानी भी उतना निमित्त के वश हो जाता है। कर्तृत्वबुद्धि से नहीं, करनेयोग्य है, इसलिए नहीं परन्तु परिणति में कर्तृत्व हो जाता है। आहाहा! यह क्या कहा? ज्ञानी को स्व-पर एकत्वबुद्धि छूट गयी है। ज्ञानानन्दस्वभाव मैं हूँ, राग वह भिन्न चीज़ है। तथापि उसे राग होता है, वह स्व-पर एकत्वबुद्धि के कारण से नहीं तथा वह निमित्त से भी नहीं परन्तु पर्याय में षट्कारक की परिणति से स्वतन्त्रता की योग्यता से विकार होता है। क्या कहा यह? द्रव्य-गुण में तो है नहीं, निमित्त से होता नहीं, परद्रव्य स्पर्शता नहीं, परद्रव्य तो अपनी पर्याय को कभी छूते नहीं। कर्म का उदय है, वह परद्रव्य है और यहाँ विकार होता है, उसे तो वह तीन काल में स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! तथापि क्यों होता है? कि अपने स्वलक्ष्य में पूर्ण नहीं, आश्रय पूर्ण नहीं, इस कारण से निमित्त के वश होकर राग की परिणति हो जाती है। वह कर्तृत्वबुद्धि से नहीं, करनेयोग्य है, इस बुद्धि से नहीं परन्तु परिणति हो जाती है, इस कारण से कर्ता कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

४७ नय में लिया है। ४७ नय है न प्रवचनसार (में)। वहाँ ज्ञानी को भी कर्ता-भोक्ता कहा है। एक ज्ञाननय है। जितना परिणमे, वह कर्ता। परिणमे वह कर्ता। करनेयोग्य है, इसलिए कर्ता—ऐसा नहीं है। अज्ञानी को तो करनेयोग्य है, ऐसा मानकर करता है, वह मिथ्यात्वभाव है। ज्ञानी को करनेयोग्य है, ऐसा नहीं, परन्तु निर्बलता से रागादि होते

हैं तो एक नय से गणधर भी जानते हैं कि यह परिणति मुझमें है। समझ में आया? तो वह कर्तृत्व अर्थात् परिणमन मेरा है और उसका भाक्ता भी मैं हूँ, ऐसा पर्याय का व्यवहारनय से ज्ञान करता है। त्रिकाली दृष्टि और त्रिकाली स्वभाव में तो ऐसी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! लोगों को कठिन बहुत लगता है। एकान्त है, ऐसा करके... इसे तो खबर है न!

अरे... भगवान! क्या कहें? प्रभु! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! सम्यक् एकान्त मार्ग ही फिर अनेकान्त हो जाता है। सम्यक् स्वभाव की एकताबुद्धि हो, तब पर्याय में राग होता है, उसका ज्ञान होता है, उसका नाम अनेकान्त है। व्यवहार से निश्चय होता है और निश्चय से निश्चय होता है, यह अनेकान्त नहीं है। अपने स्वभाव के आश्रय से निश्चय होता है और व्यवहार निमित्त के आश्रय से होता है परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। धर्मी को भी व्यवहार आता है और परिणमन है तो कर्ता-भोक्ता कहने में भी आता है। पर्याय में, हों! द्रव्यस्वभाव से नहीं। समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भगवान! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। उसका विवेक हुआ तो समाप्त! संसार उड़ गया अन्दर से। संसार का भवच्छेद हो गया। बाकी थोड़ा रागादि रहा (तो) दो-चार भव होते हैं, वे ज्ञानी को तो ज्ञेयरूप से हैं। अज्ञानी को अपने रूप से हैं। समझ में आया? यह कहा।

कर्म की उपाधि से विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है, इसलिए विनाशीक है। शक्तियाँ जो त्रिकाली हैं, वे अविनाशी हैं। भगवान आत्मा में अनन्त शक्तियाँ, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक को अनन्त से गुणा और उसे वापस जो आया, उसके साथ अनन्त को गुणा करो ऐसे अनन्त बार गुणा करो तो पार न आवे इतनी संख्या है। तथापि केवलज्ञानी अनन्त को अनन्त जानते हैं। अनन्त को जानते हैं इसलिए वहाँ अन्त आ गया, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि भगवान प्रभु और उसकी शक्तियाँ तो अविनाशी है। अविनाशी है, उसमें कोई नाशवान राग को करना, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है और यह जो राग है, वह तो नाशवान है। व्यवहाररत्नत्रय का राग होता है, वह भी नाशवान है। आहाहा! वह तो निमित्त के आधीन वश होकर होता है, छोड़ने योग्य है। आहाहा!

आगे मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यकर्म का... जड़। यह तो निमित्त से कथन है। द्रव्यकर्म तो कुछ करता नहीं। द्रव्यकर्म तो स्वतन्त्र है, **अथवा भावकर्म का कर्ता है,...** मूल भावकर्म का कर्ता, पश्चात् निमित्त के कर्ता कर्म कहा जाता है। अज्ञानी पुण्य और पाप के भाव जो विकृत भाव, जो विभावभाव, जो आत्मा अमृत आनन्द स्वरूप से विरुद्ध भाव, विषभाव... आहाहा! ऐसा विभाव का कर्ता है। मिथ्यादृष्टि विभाव का कर्ता है। क्योंकि उसकी दृष्टि में आत्मस्वभाव (उसने) देखा नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय के समीप में, एक समय की पर्याय के समीप में पूरा द्रव्य पड़ा है। पर्याय के समीप में ही पड़ा है। अन्तर ऐसे देखे तो दिखे और ऐसे देखे तो पर दिखे। आहाहा! समझ में आया? अनादि काल से प्रगट पर्याय व्यक्त है, उसमें पूरी रुचि और लीनता की है परन्तु उस पर्याय के समीप में पूरा तत्त्व पड़ा है, वास्तविक तत्त्व जो है, उसके ऊपर नजर नहीं की। निधान की नजर नहीं की। हें?

मुमुक्षु : देखने में तो आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में देखने में आता है। आहाहा! परन्तु देखे उसे न? हें? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा... यह तो सन्त कहते हैं, दिगम्बर सन्त (कहते हैं वह) परमात्मा का ही कथन है। दिगम्बर सन्त हैं, वे केवली के मार्गानुसारी हैं। .... सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरों के दिगम्बर सन्त मार्गानुसारी हैं। उनकी वाणी, वह तो भगवान की ही वाणी है। समझ में आया? आहाहा! जिन्हें प्रचुर स्वसंवेदन... कहते हैं न समयसार पाँचवीं गाथा? मैं मेरे निज वैभव से समयसार कहूँगा। आहाहा! भगवान कहते हैं, इसलिए कहूँगा, ऐसा नहीं, मेरे निज वैभव से कहूँगा। श्वेताम्बर में ऐसा आता है कि भगवान ने कहा वह कहूँगा। क्योंकि वह तो फिर कल्पित बनाया है न! यह तो वस्तु की स्थिति है। आहाहा! अन्दर में निज वैभव से (कहूँगा)। वह मेरा निज वैभव क्या? कि प्रचुर स्वसंवेदन और आनन्द की जिसमें मुद्रा—छाप है। आहाहा! समयसार की पाँचवीं गाथा में (आता है)। आहाहा! हमारा निज वैभव। यह धूल नहीं, हों! पैसा-बैसा तो कहीं रह गये, सेठ! पैसा-बैसा... ऐई! यह सब करोड़पति हैं। धूलपति हैं। पैसे की बात नहीं, शरीर की बात नहीं, कर्म की बात नहीं। वह यहाँ है नहीं।

यहाँ तो पुण्य-पाप के भाव... आहाहा! विकारी भाव का मिथ्यादृष्टि कर्ता-भोक्ता होता है। करनेयोग्य है, भोगनेयोग्य है—ऐसी बुद्धि से कर्ता-भोक्ता है। ज्ञानी को रागादि आते हैं, परन्तु करनेयोग्य है, ऐसा नहीं परन्तु अपनी परिणति में है। वह विकार परिणति कहीं कर्म से नहीं हुई है। आहाहा! जब तक अपने में राग का उदय तो दसवें गुणस्थान तक है। वह तो अपनी परिणति है। वह कहीं पर से नहीं तथा द्रव्य-गुण से नहीं। आहाहा! पर्याय में षट्कारक का उस प्रकार का उस समय में परिणमन की योग्यता से होता है। उसका कर्ता-भोक्ता ज्ञानी (नहीं है)। करनेयोग्य है और भोगनेयोग्य है, इस अपेक्षा से कर्ता-भोक्ता है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ मिथ्यादृष्टि जीव... है न? भावकर्म का कर्ता है, **सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं है...** आहाहा! कर्ता नहीं का अर्थ इतना। सम्यग्दृष्टि चौथे से लो तो राग तो होता है, पाँचवें में भी राग होता है, छठवें में भी (होता है) परन्तु राग के ऊपर रुचि नहीं। दृष्टि का विषय जो भगवान पूर्णानन्द है, उसके ऊपर दृष्टि पड़ी है। ध्रुव के ऊपर से समकिती की दृष्टि कभी एक समय के लिये भी हटती नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। ध्रुव भगवान अनन्त शक्ति ध्रुव, वस्तु ध्रुव वैसे उसकी अनन्त-अनन्त... अनन्त... अनन्त... शक्ति भी ध्रुव, उसका एकरूप वह द्रव्य। उसके ऊपर दृष्टि, त्रिकाल पर जहाँ दृष्टि अन्दर जमी, वह दृष्टि एक समय भी ज्ञानी को हटती नहीं और अज्ञानी को एक समय भी राग की कर्ताबुद्धि की बुद्धि हटती नहीं। आहाहा! इतना अन्तर है, प्रभु! ऐसा मार्ग है। फिर चाहे जैसे कहे कि अशुभ से बचने को (शुभ) राग आता है। परन्तु राग किसे अशुभ से बचना? जिसे मिथ्यात्व गया है, सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, उसे शुभ होता है, उसे अशुभ से बचने के लिये कहा जाता है। परन्तु है तो वह भी जहर और दुःख। व्रत, तप और भक्ति के विकल्प हैं, वे दुःख हैं। क्योंकि प्रभु तो आनन्दस्वरूप है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु उससे विरुद्ध है तो वह दुःख है। आहाहा! उस दुःख का कर्ता-भोक्ता मिथ्यादृष्टि होता है। यह कहा न? मिथ्यादृष्टि जीव **भावकर्म का कर्ता है, सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं है ऐसा कहते हैं।**

अब यह बात १९७ में विशेष कहते हैं।

कलश - १९७

(शार्दूलविक्रीडित)

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ।।५-१९७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यतां' [निपुणैः] सम्यग्दृष्टि जीवों को [अज्ञानिता] परद्रव्य में आत्मबुद्धि, ऐसी मिथ्यात्वपरिणति [त्यज्यतां] जिस प्रकार मिटे, उस प्रकार सर्वथा मेटनेयोग्य है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव? 'महसि अचलितैः' शुद्धचिद्रूप के अनुभव में, अखण्ड धारारूप मग्न हैं। कैसा है शुद्धचिद्रूप का अनुभव? 'शुद्धैकात्ममये' [शुद्ध] समस्त उपाधि से रहित, ऐसा जो [एकात्म] अकेला जीवद्रव्य, [मये] उसके स्वरूप है। और क्या करना है? 'ज्ञानिता आसेव्यतां' शुद्धवस्तु के अनुभवरूप सम्यक्त्व-परिणतिरूप सर्व काल रहना, उपादेय है। क्या जानकर ऐसा होवे? 'इति एवं नियमं निरूप्य' [इति] जिस प्रकार कहते हैं — [एवं नियमं] ऐसे वस्तुस्वरूप परिणमन के निश्चय को [निरूप्य] अवधार करके। वह वस्तु का स्वरूप कैसा? 'अज्ञानी नित्यं वेदकः भवेत्' [अज्ञानी] मिथ्यादृष्टि जीव, [नित्यं] सर्व काल [वेदकः भवेत्] द्रव्यकर्म का, भावकर्म का भोक्ता होता है-ऐसा निश्चय है; मिथ्यात्व का परिणमन ऐसा ही है। कैसा है अज्ञानी? 'प्रकृतिस्वभावनिरतः' [प्रकृति] ज्ञानावरणादि आठ कर्म के [स्वभाव] उदय होने पर नाना प्रकार चतुर्गतिशरीर, रागादिभाव, सुख-दुःखपरिणति इत्यादि में [निरतः] आपा जान, एकत्वबुद्धिरूप परिणमा है। 'तु ज्ञानी जातु (चित्) वेदकः नो भवेत्' [तु] मिथ्यात्व के मिटने पर ऐसा भी है कि [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव, [जातु (चित्)] कदाचित् [वेदकः नो भवेत्] द्रव्यकर्म का, भावकर्म का भोक्ता नहीं होता; ऐसा वस्तु का स्वरूप है। कैसा है ज्ञानी? 'प्रकृतिस्वभावविरतः' [प्रकृति] कर्म के [स्वभाव] उदय के कार्य में, [विरतः] हेय जानकर छूट गया है स्वामित्वपना जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव के सम्यक्त्व होनेपर, अशुद्धपना मिटा है; इसलिए भोक्ता नहीं है।।५-१९७।।

कलश - १९७ पर प्रवचन

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ।।५-१९७।।

आहाहा! प्रचुर स्वसंवेदन की अनुभूति की दशा में खड़े हैं। उसमें यह विकल्प आया है और पुस्तक बन गयी है। विकल्प के भी कर्ता नहीं, यह वाणी के कर्ता तो ज्ञानी है ही नहीं। आहाहा! वाणी तो जड़ है। जड़ को स्पर्शते भी नहीं तो कहाँ से बनावे? रचे किस प्रकार? आहाहा! यह अँगुली है, (वह) इस लकड़ी को स्पर्श नहीं करती। हें?

मुमुक्षु : तो होता क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है क्या? पर्याय स्वयं से होती है। यह (लकड़ी) ऊँची हुई, वह अँगुली से नहीं। उन परमाणु में करण नाम का गुण है और अधिकरण नाम का गुण है, इस कारण से अपनी पर्याय ऊँची हुई है, अँगुली से नहीं। यह चमत्कार जड़ का है और इस चमत्कार को जाननेवाला चैतन्य का चमत्कार भिन्न है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जड़ेश्वर भी भगवान हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भगवान ही है, सब ईश्वर है। श्रीमद् ने तो कहा है, सब ईश्वर है। जड़ेश्वर है, अज्ञानी विभावेश्वर है, ज्ञानी स्वभावेश्वर है। तीन ईश्वर है। क्या कहा? परमाणु आदि दूसरे सब छह द्रव्य हैं आत्मा के अतिरिक्त, वे सब जड़ेश्वर हैं (अर्थात्) अपनी शक्ति में ईश्वर हैं, अपनी शक्ति की पर्याय करने में किसी की मदद— सहायता नहीं लेते। आहाहा! निश्चय से तो परमार्थ से तो एक-एक पर्याय, परमाणु की भी एक पर्याय उसका निज क्षण है, उसकी उत्पत्ति के काल में होती है। जिसे द्रव्य-गुण की भी आवश्यकता नहीं, जिसे निमित्त की आवश्यकता नहीं। आहाहा! ऐसी विकृत अवस्था हो या अविकृत हो, दोनों एक समय की अवस्था षट्कारक से उत्पन्न होती है।

षट्कारक अर्थात्? पर्याय कर्ता, पर्याय कार्य, पर्याय करण, पर्याय सम्प्रदान,

पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण। छहों बोल एक समय की पर्याय में स्वयं से होते हैं। भगवान! ऐसी वस्तु है। आहाहा! यह कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि को पर्यायबुद्धि है तो उसकी दृष्टि (में) राग और पुण्य-पाप का कर्ता होता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बहुत अलौकिक बात है, भाई! यह तो अन्तर स्वरूप की बात है, भगवान! आहाहा! यह कोई वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसी चीज़ नहीं है। शास्त्र में व्यवहारनय के कथन तो बहुत आते हैं और उनका फल संसार है, ऐसा कहा है। ग्यारहवीं गाथा में (कहा है)। **'ववहारोऽभूदत्थो'** पण्डित जयचन्द्रजी ने (भावार्थ में लिखा है) लोगों को भेद का, व्यवहार का पक्ष तो अनादि से है और प्ररूपणा एक-दूसरे परस्पर ऐसी करते हैं और शास्त्र में भी व्यवहार प्रधानता के कथन बहुत हैं। समयसार ग्यारहवीं गाथा में, अर्थ में है। पण्डित जयचन्द्रजी (ने लिखा है)। तीनों का फल संसार है, ऐसा लिखा है। समझ में आया? है न? समयसार में है। यह तो कलशटीका है। आहाहा!

प्राणियों को भेदरूप... है गुजराती, परन्तु प्राणियों को, ऐसा समझना। **भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...** एक बात। **और उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं...** यही करते हैं कि व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, भेद से होता है, राग से (होता है)। आहाहा! दो बातें हुई न? **और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब (सहायक) जानकर बहुत किया है;...** व्यवहारनय के कथन बहुत हैं। **परन्तु उसका फल संसार ही है।** आहाहा! सेठ! सेठ आते हैं बहुत बार, प्रेम है न! वस्तु यह है।

भेद का पक्ष अनादि का है, पर्याय का, राग का, निमित्त का। उससे होता है, ऐसा पक्ष है। परस्पर उपदेश करनेवाले जीव भी बहुत हैं। आहाहा! और जिनवाणी में भी व्यवहार निमित्त है तो निमित्त देखकर बहुत बात की है परन्तु तीनों का फल संसार है। आहाहा! है? **उसका फल संसार ही है।** आहाहा! **शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं...** बहुत लम्बी बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **'निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यतां'** १९७ (कलश)। निपुण... निपुण। आहाहा! निपुण और प्रवीण और विचिक्षण तो उसे कहते हैं... आहाहा! कि जिसने

राग का सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प, गुण-गुणी के भेदरूप विकल्प से भी भगवान को भिन्न कर दिया है... आहाहा! उसे यहाँ निपुण कहते हैं। संसार में बहुत जानपना हो तो कहे न, निपुण है, यह व्यक्ति निपुण है। यह निपुण सम्यग्दृष्टि जीव। इसकी व्याख्या सम्यग्दृष्टि जीव की है। आहाहा! '**अज्ञानिता' परद्रव्य में आत्मबुद्धि...** आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म और राग, ये सब परद्रव्य हैं। उनमें आत्मबुद्धि (अर्थात्) वे मेरे हैं और मुझे लाभ करेंगे। जिसे लाभ करेंगे, ऐसा माने, वह उसे मेरे ही माने। राग—व्यवहाररत्नत्रय से मुझे लाभ होगा, ऐसा माना तो उसने व्यवहाररत्नत्रय के राग को अपना ही माना है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या करे? भगवान का तो अभी विरह पड़ा। भगवान तो वहाँ महाविदेह में विराजते हैं। उनका विरह पड़ा, तथा केवलज्ञान की उत्पत्ति का विरह पड़ा, अवधि और मनःपर्यय की उत्पत्ति भी अभी (रही नहीं)। आहाहा! उसमें इस मार्ग को अन्तर में समझना, बापू! यह दुनिया के सब पक्ष चाहे जो हो, उन्हें छोड़कर अपने आत्मा के लिये '**निपुणैः**' आहाहा! सत् को संख्या की आवश्यकता नहीं कि बहुत माने तो वह सत् है, थोड़े माने तो असत् है, ऐसा माप उसका नहीं है, प्रभु! आहाहा! सत्य तो सत्य है।

जो त्रिकाली प्रभु आनन्द का नाथ सागर। आहाहा! उसे जिसने स्व-पर का विभाग करके... आहाहा! सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, स्व-पर का विभाग करके सम्यग्ज्ञान प्रगट किया है और आगे जाकर स्व-पर का भेद करके परिणति शुद्ध विशेष की है, वह तो चारित्र, ऐसा निपुण जीव। **परद्रव्य में आत्मबुद्धि ऐसी मिथ्यात्वपरिणति जिस प्रकार मिटे उस प्रकार सर्वथा मेटनेयोग्य है।** आहाहा! यह जरा भाषा इतनी की। पाठ में तो '**त्यज्यतां**' है। वह तो शास्त्र में तो एकदम आया था न, कल आया था, आज ही करो। प्रवचनसार के अन्तिम दो कलश आते हैं। आज करो, प्रभु! यदि तुझे यह आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु की यदि रुचि होती है तो आज ही अनुभव करो। आहाहा! वायदा न करो, फिर करूँगा, ऐसा। यहाँ तक कहा। पाँचवीं गाथा में ऐसा कहा।

कुन्दकुन्दाचार्य पाँचवीं गाथा (में कहते हैं), '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं**' मैं भगवान स्वभाव की एकता और राग की विभक्तता कहूँगा। '**तं एयत्तविहत्तं**' विभक्त। '**तं**

एयत्तविहत्तं दाएहं' दिखाऊँगा। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' मेरे वैभव से कहूँगा, मेरे अनुभव के वेदन में रहा मैं कहूँगा। आहाहा! '**जदि दाएज्ज**' यह तीसरा पद है। पहले दो पद यह हैं। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज**' प्रभु! यदि दिखाऊँ '**जदि दाएज्ज पमाणं**' अनुभव करके प्रमाण करना, हों! ऐसा कहा है। आहाहा! '**जदि दाएज्ज पमाणं**' यह तीसरा पद है। '**चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं**' मेरी भाषा में कोई फेरफार (हो), व्याकरण, विभक्ति आदि में अन्तर आवे तो उसका तुझे ज्ञान हो तो उस पर लक्ष्य रखना नहीं। मुझे जो कहने का आशय है, उस पर तेरा लक्ष्य रख। '**छलं ण घेत्तव्वं**' चौथा पद आता है न? क्योंकि बोलने में भाषा में विभक्ति, कालभेद भाषा आ जाये तो उसमें तेरा व्याकरण का विशेष ज्ञान हो और तुझे ख्याल में आवे तो उस पर ख्याल रखना नहीं। आहाहा! हम जो अन्दर अनुभव की बात करते हैं, उसे प्रमाण करना, प्रभु! आहाहा! सन्तों की करुणा तो देखो! दिगम्बर सन्त जंगल में बसते थे। आहाहा! उन्हें वस्त्र का एक धागा भी नहीं। अन्तर में राग का कण अपना नहीं। बाहर में एक रजकण अपना नहीं। पोतानो—स्वयं, अपना नहीं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, जैसे बने वैसे, प्रभु! **जिस प्रकार मिटे उस प्रकार सर्वथा मेटनेयोग्य है।** भ्रान्ति, अज्ञान छोड़नेयोग्य है। आहाहा! है? **कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव? 'महसि अचलितैः' 'महसि अचलितैः' शुद्ध चिद्रूप के... 'महसि'** का अर्थ किया। **शुद्ध चिद्रूप के... 'अचलितैः' अनुभव में अखण्ड धारारूप मग्न हैं।** आहाहा! '**महसि अचलितैः**' महिमावन्त प्रभु, आनन्द का कन्द नाथ, उसमें '**अचलितैः**' उसकी दृष्टि में, अनुभव में लीन रहना। भले उपयोग राग में जाये परन्तु लब्धरूप में तो लीन रहना। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

'**महसि अचलितैः**' शुद्ध चिद्रूप भगवान आत्मा का अनुभव अखण्ड धारा। ध्रुव में से एक समय भी हटना नहीं। खसीश नहीं को क्या कहते हैं? हटना नहीं, खिसकना नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहा न? कैसे हैं (सम्यग्दृष्टि जीव)? '**महसि अचलितैः**' '**महसि**' का अर्थ शुद्ध चिद्रूप। उसके अनुभव में '**अचलितैः**'। दुनिया चाहे जो कहो, चाहे जो मानो, उसकी दरकार छोड़ देना। आहाहा! तू तेरी वस्तु की दृष्टि की

सम्हाल में रहना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **'महसि अचलितैः' अखण्ड धारा (प्रवाह)रूप...** आहाहा!

कैसा है शुद्ध चिद्रूप का अनुभव? 'शुद्धैकात्ममये' समस्त उपाधि से रहित... विकल्प से रहित **ऐसा जो अकेला जीवद्रव्य, उसके स्वरूप है।** सम्यग्दृष्टि के अनुभव में अकेला जीवद्रव्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निमित्त नहीं, राग नहीं और पर्याय भी नहीं। पर्याय तो झुकी है द्रव्य पर। एक शुद्ध जीवद्रव्य का अनुभव, बस! आहाहा! द्रव्य पर्याय में आता नहीं। पर्याय द्रव्य में आती नहीं परन्तु पर्याय द्रव्य पर झुकती है, वहाँ लीन रहना। आहाहा! ऐसी बातें हैं। पर्याय तो पर्यायरूप रहती है, पर्याय कहीं द्रव्यरूप नहीं हो जाती। दोनों भिन्न हैं। पर्याय में द्रव्य का अभाव है, द्रव्य में पर्याय का अभाव है। परन्तु पर्याय है, उसे द्रव्य पर झुका दे, वहाँ रहे। आहाहा! भले उपयोग किसी समय विकल्प में शुभ-अशुभ में आता है, परन्तु अन्दर परिणति की श्रद्धा और एकाग्रता को छोड़ना नहीं। अन्दर शुद्ध चिद्घन में जो परिणति है, उसे छोड़ना नहीं। आहाहा!

अकेला जीवद्रव्य उसके स्वरूप है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि तो अकेला जीवद्रव्य ही दृष्टि में, स्वरूप में है, पर्याय भी उसकी दृष्टि में नहीं। क्योंकि पर्याय है, वह तो उसे विषय करती है। विषय करती है जो पर्याय, वह तो ऐसा कहती हैं कि मैं तो अखण्ड द्रव्य हूँ, वह मैं हूँ। मैं यह हूँ, ऐसा नहीं। यह मैं हूँ। सम्यग्दृष्टि को वहाँ से हटना नहीं, ऐसा उपदेश करते हैं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ७, मंगलवार, दिनांक-३१-०१-१९७८, कलश-१९७, प्रवचन-२२०

कलशटीका, १९७, २०० में तीन कम कलश। फिर से। थोड़ा चला है, फिर से। '**निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यतां**' निपुण उसे कहते हैं, जो आत्मा द्रव्य परमात्मस्वरूप शुद्ध अखण्ड अभेद है, उसकी अनुभव में प्रतीति हुई, अनुभव में प्रतीति (हुई)। वह चीज़ क्या है, ऐसा पर्याय में अनुभव आना। अनुभव में तो जितनी शक्ति आत्मा में है, उसका एक अंश व्यक्तरूप से सब गुणों की पर्याय का वेदन है। उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं, निपुण कहते हैं।

जितनी संख्या में आत्मद्रव्य में गुण है। अनन्तानन्त हे न! आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे। सर्व गुणों को एक अंश व्यक्तरूप (होता है)। अनन्त गुण तो शक्तिरूप से है, परन्तु सम्यग्दर्शन में 'सर्व गुणांश, वह समकित' ऐसा श्रीमद् का वाक्य है। अपना अध्यात्म का वाक्य है, रहस्पूर्ण चिट्ठी (में कहा है) 'ज्ञानादि एकदेश व्यक्त' यह चौथे गुणस्थान में है और ज्ञानादि पूर्ण व्यक्त केवलज्ञानी में है।

यहाँ कहते हैं, '**निपुणैः' सम्यग्दृष्टि जीवों को परद्रव्य में आत्मबुद्धि ऐसी मिथ्यात्वपरिणति जिस प्रकार मिटे, उस प्रकार सर्वथा मेटनेयोग्य है।** आहाहा! पहले नास्ति से बात की। पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि, विकल्पबुद्धि, भेदबुद्धि। अभेद वस्तु अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें भेद (करना कि) यह गुणी है और यह गुण है, ऐसी भेदबुद्धि करना, वह भी विकल्प है। उस विकल्प में लाभ मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। वह मिथ्यादृष्टिपना जिस प्रकार मिटे, उस प्रकार से मिटानेयोग्य है।

कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव? आहाहा! '**महसि अचलितैः**' '**महसि**' की व्याख्या शुद्ध चिद्रूप अनुभव। '**महसि**' की व्याख्या—शुद्ध चिद्रूप अनुभव। '**अचलितैः' अखण्ड धारारूप मग्न....** दो शब्द का यह अर्थ है। आहाहा! शुद्ध चिद्रूप भगवान ध्रुव। कल आया है न? एक व्यक्ति का बहिन के वचन में से, वचनामृत में से आया था। उसमें है, शब्द है न कोई? भाई! वाँचन किया किसी ने, दक्षिण ओर से कहीं से पत्र आया है। वाँचन कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसमें यह लिखा है, अपने तो पहले से कहते हैं। 'जागता

जीव ध्रुव है न?' उसमें यह शब्द है। गुजराती। दिया न? उसमें एक शब्द है। जागता जीव ध्रुव है न। उसका हिन्दी में अर्थ क्या? जागता जीव अर्थात् ज्ञायकभाव। उभो छे अर्थात् ध्रुव है न! ध्रुव है। जागता ज्ञायकभाव, जागता स्वभाव उभो है न। उभो अर्थात् ध्रुव है न! वह ध्रुवस्वभाव कहाँ जाये? ऐसा शब्द है उसमें—वचनामृत में है।

जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? अवश्य प्राप्त होगा। इसका अर्थ। शास्त्रीय भाषा में ज्ञायकभाव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? आहाहा! यह तो गुजराती सादी भाषा में (लिखा है)। उसका अर्थ यह है। ज्ञायकभाव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? वह एक समय की पर्याय में भी आता नहीं। ऐसे **शुद्ध चिद्रूप के अनुभव में अखण्ड धारारूप मग्न हैं।** शुद्ध चिद्रूप के अनुभव में अखण्ड धारारूप मग्न। शुद्ध च्रिदूप तो वस्तु है, ऐसा कहते हैं।

कैसा है शुद्ध चिद्रूप का अनुभव? 'शुद्धैकात्ममये' समस्त उपाधि से रहित ऐसा जो अकेला जीवद्रव्य उसके स्वरूप है। क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन में जो अनुभव होता है, वह द्रव्य का अनुभव नहीं होता—द्रव्य का वेदन नहीं होता। वेदन तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि करने से जो एकत्वपने में शक्ति का अंश, प्रत्येक शक्ति का अंश व्यक्त होता है, उसका वेदन होता है। ध्रुव का वेदन नहीं होता। परन्तु यहाँ कहना है कि शुद्ध चिद्रूप वस्तु। वस्तु, ऐसा कहा न? **'शुद्धैकात्ममये' समस्त उपाधि से रहित ऐसा जो अकेला जीवद्रव्य उसके स्वरूप...** उसका अनुभव। सूक्ष्म बात है, भगवान!

वस्तु है वस्तु, वह तो ध्रुव है। अपने दोपहर में आयेगा। त्रिकाली शुद्ध आत्मा को ही आत्मा कहा है। निश्चय आत्मा—वास्तविक आत्मा तो त्रिकाली, पर्याय सिवाय का, अकेले त्रिकाली ध्रुव स्वरूप को ही आत्मा कहा है। उस आत्मद्रव्य का अनुभव। तो द्रव्य के अनुभव का अर्थ—उस त्रिकाली की ओर झुकना। त्रिकाली वस्तु का वेदन नहीं होता। ध्रुव का वेदन कहाँ होगा? वेदन तो पर्याय का है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, सम्यग्ज्ञान पर्याय है, सम्यक्चारित्र पर्याय है, सिद्ध पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है। तो पर्याय का वेदन है परन्तु पर्याय में वेदन किसका है? ऐसा कहते हैं। शुद्ध चिद्रूप का। आहाहा! भाषा ऐसी है—शुद्ध चिद्रूप का अनुभव। है तो वेदन पर्याय का। परन्तु शुद्ध चिद्रूप जो त्रिकाल है, त्रिकाल है, उस ओर का लक्ष्य है न, इस कारण से, वह लक्ष्य है, वह पर्याय

है, परन्तु उस पर्याय का लक्ष्य त्रिकाल के ऊपर है तो शुद्ध चिद्रूप का अनुभव है, ऐसा कहने में आया। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू!

भगवान वीतरागस्वरूप अन्दर है, वह बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! वीतरागस्वरूप आत्मा है। यहाँ शुद्ध चिद्रूप कहा। शुद्ध चिद्रूप का अनुभव। पाठ ऐसा है न? शुद्ध चिद्रूप तो त्रिकाली है, उसका अनुभव, वह तो वर्तमान पर्याय है। यह कहते हैं, देखो! **'शुद्धैकात्ममये' समस्त उपाधि से रहित ऐसा जो अकेला जीवद्रव्य...** अकेला जीवद्रव्य, उसका स्वरूप, वह अनुभव। आहाहा! शास्त्र भाषा है, वह तो गम्भीर है न, भगवान! यह तो आचार्यों, सन्तों... आहाहा! प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में वेदन करते-करते विकल्प आया है (तो) शास्त्र की रचना हो गयी है, बनाया नहीं। वह तो परमाणु की पर्याय उस समय में (उसके) जन्मक्षण में परमाणु में टीका होने की पर्याय की योग्यता थी तो पर्याय हुई। समझ में आया? आहाहा! तो उसमें भी यह आया।

भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! तू कौन है? शुद्ध चिद्रूप त्रिकाल, शुद्ध पवित्र त्रिकाल। वह शुद्ध चिद्रूप। आया न? **अकेला जीवद्रव्य...** वह स्वरूप अनुभव। आहाहा! स्वरूप तो त्रिकाली ध्रुव है, उसके अनुभव का अर्थ, उसे अनुसरकर होना। शुद्ध चिद्रूप द्रव्य है, उसे अनुसरकर होना, परन्तु है पर्याय। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु!

द्रव्य और पर्याय दोनों भिन्न है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं। अनुभव की पर्याय में द्रव्य आता नहीं। पर्याय में पर्याय है, द्रव्य में द्रव्य है। परन्तु पर्याय में द्रव्य जितनी ताकतवाला है, उतना ज्ञान और श्रद्धा आती है। समझ में आया? क्या कहा? वस्तु जो है, वस्तु, यहाँ शुद्ध चिद्रूप कहा न? चिद्रूप, वह तो ज्ञान की प्रधानता से कथन है, बाकी है तो अनन्त गुण का एकरूप। चिद्रूप कहा है, वह तो ज्ञान की मुख्यता से कथन है, परन्तु शुद्ध चिद्रूप अर्थात् अनन्त-अनन्त गुण का एकरूप, ऐसा जो आत्मा, उसका अनुभव। आत्मा वह तो त्रिकाली ध्रुव, परन्तु उसका अनुभव (होता है), वह पर्याय है। उत्पाद की (पर्याय), उत्पन्न होती है। उस पर्याय में द्रव्य का अनुभव। इसका अर्थ (यह कि) पर्याय में द्रव्य आता नहीं तथा द्रव्य में पर्याय मिल नहीं जाती। समझ में आया?

पर्यायधर्म और द्रव्यधर्म दोनों भिन्न हैं। आहाहा! द्रव्य का स्वभाव पर्याय में आता नहीं। एक समय की दशा में त्रिकाली द्रव्य कैसे आवे? और एक समय की पर्याय त्रिकाली द्रव्य में तन्मय कैसे हो? आहाहा! मात्र त्रिकाली भगवान जो आत्मा आनन्द और शुद्ध शक्ति पूर्ण स्वभाव। पर्याय का लक्ष्य इस ओर होता है तो उसका अनुभव, ध्रुव का (अनुभव) है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! बात में बहुत अन्तर है, भाई! मार्ग जो है, वस्तुस्थिति अलौकिक है। वह वीतराग ने जानी, पूर्ण अनुभव की और वाणी द्वारा आ गया है।

यह कहा, **और क्या करना है?** यहाँ तक तो अपने आया था। '**ज्ञानता आसेव्यतां**' **शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप...** शुद्ध वस्तु, वह त्रिकाली (द्रव्य), उसका अनुभव, वह वर्तमान पर्याय। **शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप...** वापस अनुभवरूप, वह **सम्यक्त्वपरिणति...** सम्यक् परिणति। सम्यक् है तो प्रतीतिरूप, परन्तु शुद्ध चिद्रूप के अनुभवरूप प्रतीति है। उसमें प्रतीति हुई कि यह चीज़ पूर्ण आनन्द है। सम्यक्रूपी परिणति में वस्तु आयी नहीं। समकित की अनुभूति में आनन्द का वेदन हुआ। सम्यक्त्व के साथ अविनाभूत अनुभूति। अनुभूति अर्थात् आनन्द का वेदन। अनुभूति के साथ सम्यग्दर्शन ख्याल में आता है। सम्यग्दर्शन सीधे ख्याल में नहीं आता। उस अनुभूति के ख्याल से सम्यक्त्व ख्याल में आया। उस सम्यक्त्व का अनुभव यहाँ कहते हैं। है न? क्या कहा? देखो!

शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप... शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप, ऐसा कहा है। शुद्ध वस्तु तो त्रिकाली। उसके अनुभवरूप सम्यक्त्व। आहाहा! है? शास्त्र सामने है न? प्रभु! यह तो भगवान की वाणी है न! यह भगवान की वाणी है। सन्तों की वाणी, वह भगवान की वाणी है। जिनवर कहते हैं, वह वाणी है। यह तो बीच में आड़तिया हैं, सन्त आड़तिया हैं। माल सर्वज्ञ का है। आहाहा! समझ में आया? आड़तिया समझ में आता है? यह व्यापारी आड़तिया होते हैं न? माल तो पूर्ण सर्वज्ञ परमात्मा का है। यह सन्त अपनी अनुभूति की परिणति के काल में विकल्प आया तो भगवान कहते हैं, वह बात कह दी। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप सम्यक्त्व...** भाषा देखो! समकित की व्याख्या करते हुए ऐसी (व्याख्या) की। शुद्ध वस्तु के, वह द्रव्य। उसका अनुभव,

वह पर्याय। यह अनुभव पर्यायरूप समकित परिणति। आहाहा! सूक्ष्म है, प्रभु! परन्तु वस्तु तो यह है। तीनों काल यह सत्य है। उसमें कुछ फेरफार हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्या (कहते हैं)? ओहो! टीकाकार राजमल, इसमें से बनाया है, समयसार नाटक। इसमें से हों! इस कलश टीका में से समयसार नाटक बनाया है। 'राजमल जिनधर्मी, जैनधर्म का मर्मी' ऐसा समयसार नाटक में लिखा है।

यहाँ (कहते हैं), **शुद्ध वस्तु के...** वह तो वस्तु हुई। **अनुभवरूप-सम्यक्त्व....** यह पर्याय-अवस्था। समकित परिणति वापस, भाषा ली है न? समकितरूपी परिणति। कारण कि वह तो पर्याय है न? सम्यग्दर्शन वह पर्याय है। चाहे तो क्षायिक समकित हो, अरे! केवलज्ञान हो तो भी वह पर्याय है। उसकी एक समय की अवधि है। दूसरे समय में दूसरा केवलज्ञान। भले हो वैसा का वैसा परन्तु दूसरा होता है। यहाँ कहते हैं कि समकित परिणतिरूप **सर्वकाल रहना उपादेय है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को तो परिणति त्रिकाल द्रव्य को अनुसरकर अनुभव में (आयी, वह) प्रतीतिरूप परिणति सदा काल रहनी चाहिए। भले उपयोग कोई विकल्प में जाये, परन्तु उसकी शुद्ध परिणति हटती नहीं। ध्रुव के ऊपर जो परिणति, अवस्था है, वह कभी एक समय हटती नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप... अनुभवरूप। भाषा है न? **सम्यक्त्वपरिणतिरूप सर्वकाल रहना उपादेय है।** आहाहा! हें?

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान में या सातवें गुणस्थान में?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चौथे से। चौथे से शुद्धस्वरूप की परिणति है। भले उपयोग विकल्प में जाये, परन्तु शुद्ध परिणति समकितरूपी परिणति सदा काल रहती है। आहाहा! यहाँ तो सम्यक् परिणति लेनी है, चारित्र परिणति तो विशेष आगे है। यहाँ तो शुद्ध समकित परिणति भी कायम रहती है। प्रतीतिरूपी, अनुभव में प्रतीति हुई, वह प्रतीति कायम रहती है, अखण्ड धारा रहती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है न, प्रभु! आहाहा! 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' श्रीमद् कहते हैं। 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' मूल मार्ग यह है। आहाहा! यह मार्ग अन्तर में है। मार्ग पर्याय में है, मार्ग राग में नहीं, मार्ग द्रव्य-गुण में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप सम्यक्त्वपरिणतिरूप... वापस ऐसा है। अकेली परिणति नहीं ली। वहाँ भी अनुभव नहीं लिया। **शुद्ध वस्तु के अनुभवरूप...** ऐसा। शुद्ध वस्तु के अनुभवस्वरूप **सम्यक्त्वपरिणतिरूप...** आहाहा! **सर्वकाल रहना उपादेय है।** धर्मी को तो त्रिकाल शुद्ध द्रव्य का ध्येय, जिस ध्यान में ध्येय बनाया, ध्रुव को ध्यान में ध्येय बनाया, वह ध्येय एक समय भी हटता नहीं। आहाहा! चाहे तो शुभ उपयोग आ जाये, अशुभ उपयोग आ जाये परन्तु ध्रुव के ध्येय की परिणति जो है, वह कभी हटती नहीं। आहाहा! समझ में आया? हसमुखभाई! यह तो सब सूक्ष्म है, बापू! रुपये में कहीं हाथ आवे, ऐसा नहीं। सब धूल है। आहाहा!

तीन लोक का नाथ परमात्मस्वरूप प्रभु स्वयं है। आहाहा! वह परमात्मस्वरूप, परिणति—अनुभव में आता नहीं, परन्तु उसका अनुभव होता है। वह अनुभवरूप **सम्यक्त्वपरिणतिरूप सर्वकाल रहना उपादेय है।** ऐसा लिया न? आहाहा! इसका अर्थ—जो ध्रुव का अनुभव किया और ध्रुव को ध्येय बनाया, उस ध्रुव का ध्येय एक समय भी हटता नहीं। आहाहा! चाहे तो खाता हो, पीता हो, ऐसी क्रिया में दिखाई दे परन्तु ध्रुव के ध्येय से एक समय भी हटता नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग प्रभु (ऐसा है)। महाप्रभु स्वयं है तो उसका मार्ग भी प्रभु जैसा बड़ा होगा। आहाहा!

सर्वकाल रहना उपादेय है। क्या जानकर ऐसा होवे? आहाहा! '**इति एवं नियमं निरूप्य**' इस प्रकार से कहते हैं कि वह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। नियम का अर्थ किया। '**एवं नियमं**' **ऐसे वस्तुस्वरूप परिणमन के निश्चय को अवधार करके।** आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान ध्रुव, ऐसा वस्तुस्वरूप, उसके **परिणमन के निश्चय को अवधार करके।** उसकी पर्याय में परिणमन करके निश्चय अवधारकर। आहाहा! है? '**एवं नियमं**' '**एवं नियमं**' यह वस्तु के स्वरूप का निश्चय। परिणमन का निश्चय लिया, फिर अर्थ किया। **परिणमन के निश्चय को अवधार करके।** यह परिणमन कायम रखकर। अवधारकर परिणमन कायम रखकर। थोड़ा बहुत गुजराती आ जाती है, हिन्दी में थोड़ा स्पष्ट होता है। आहाहा!

ऐसे वस्तुस्वरूप परिणमन के निश्चय को... मूल तो '**एवं नियमं**' शब्द है। '**एवं**' अर्थात् वस्तु। '**एवं**' अर्थात् वस्तु '**नियमं**' अर्थात् उसका निश्चय। उसके परिणमन

का निश्चय। आहाहा! यह तो भागवत् कथा है। नियमसार में आता है न? अन्त में। यह भागवत् कथा है। भगवतस्वरूप परमात्मा। अन्यमति वह भागवत कहते हैं, वह नहीं, हों! आहाहा! नियमसार में अन्तिम गाथा में है और नियमसार में तो ऐसा भी कहा, दोपहर को चलता है। अन्तिम गाथा में (ऐसा कहा), मैंने मेरी भावना के लिये यह बनाया है, हों! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, यह नियमसार मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा! प्रभु! प्रभु की शक्ति का पार नहीं। उसकी अनुभव की शक्ति के सामर्थ्य का पार नहीं। आहाहा! ऐसा अवधारकर। है न?

'**निरूप्य**' का अर्थ ऐसा कथन है। परन्तु कथन है वाचक है। यहाँ वाचक न लेकर उसका वाच्य लिया है। '**निरूप्य**' कथन। परन्तु कथन न लेकर वाच्य लिया। **परिणमन के निश्चय को अवधार करके।** परिणमन को निश्चय से अवधारकर। आहाहा! **वह वस्तु का स्वरूप कैसा?** अब दो भाग करते हैं। '**अज्ञानी नित्यं वेदकः भवेत्**' अज्ञानी अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव। आहाहा! '**नित्यं**' **सर्वकाल द्रव्यकर्म का,...** द्रव्यकर्म का वेदक तो निमित्त से कथन है। जड़ को तो स्पर्शता नहीं, जड़ वेदन में निमित्त है तो कहा। वेदक **भावकर्म का भोक्ता होता है...** यह यथार्थ है। अज्ञानी स्वरूप का, शुद्ध चैतन्य का अनुभव नहीं होने से, उस ओर का झुकाव नहीं होने से पर्याय और राग पर झुकाव होने से राग का भोक्ता होता है। अज्ञानी राग का वेदक—भोक्ता होता है। भाषा तो समझ में आये ऐसी है, बापू! हों! भाषा तो सादी है, प्रभु! भाव तो है, वह है, भाव तो जो है, वह है। आहाहा!

अज्ञानी **मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल द्रव्यकर्म का,...** यह निमित्त से कथन है। **भावकर्म का...** यथार्थ (कथन है)। **भोक्ता होता है...** जड़कर्म को क्या भोगे कर्म को? परन्तु निमित्त है, यहाँ भावकर्म हुआ, उसे वह निमित्त है तो साथ में ले लिया कि द्रव्यकर्म और भावकर्म का भोक्ता है। बाकी जड़ को तीन काल में आत्मा भोगता नहीं। समझ में आया? भोक्ता है विकार का। है? भावकर्म अर्थात् पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति ऐसे जो भावकर्म हैं, उन्हें अज्ञानी भोगता है। आहाहा! थोड़े शब्द में कितना डाला है! देखो! यह कहीं कथा नहीं। यह तो अध्यात्म वाणी है, अध्यात्म वाणी! आहाहा!

ऐसा निश्चय है;... आहाहा! क्या कहते हैं? कि मिथ्या अर्थात् असत्य दृष्टि है

अर्थात् सत्य जो वस्तु त्रिकाली शुद्ध चिद्रूप है, उसकी दृष्टि नहीं और एक समय की पर्याय और दया, दान विकल्प आदि की दृष्टि है, इस कारण से उसका सदा भोक्ता है। आहाहा! **ऐसा निश्चय है;...** यह निश्चय है, ऐसा निश्चय है। आहाहा!

एक व्यक्ति कहता था, तुम समयसार की बहुत महिमा करते हो। मैं पन्द्रह दिन में पढ़ गया। बहुत अच्छी बात, बापू! पण्डितजी! एक व्यक्ति कहता था, तुम इतनी महिमा करते हो। एक-एक पद में पार नहीं आवे, ऐसी बात है। आहाहा! गणधर जैसे भी पार न पावे, ऐसी चीज़ है। एक-एक शब्द में अनन्त आगम है। आहाहा! तब वह कहे, मैं तो पन्द्रह दिन में समयसार पढ़ गया। बहुत अच्छी बात, बापू! यह पन्द्रह दिन में पढ़ा परन्तु क्या पढ़ा? आहाहा! उसके भाव क्या है, वह समझे बिना पढ़े पहाड़े। घडिया को क्या कहते हैं? पहाड़ा। आहाहा! ऐसा परम सत्य होना चाहिए। आहाहा!

कहते हैं, मिथ्यादृष्टि सर्व काल भावकर्म का भोक्ता है, यह निश्चय है। **मिथ्यात्व का परिणमन ऐसा ही है।** एकान्त कह दिया। मिथ्यादृष्टि का परिणमन एकान्त दुःखरूप है। आहाहा! 'ही' है न? 'ही'। **मिथ्यात्व का परिणमन ऐसा ही है।** आहाहा! जिसे आत्मा के स्वरूप के आनन्द का वेदन नहीं और आनन्द की ओर की दृष्टि नहीं, उसकी रागरूपी दृष्टि है। मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व का परिणमन ऐसा ही है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा समझना परन्तु सत्य होना चाहिए। एक भाव भी यथार्थ जाने तो जयसेनाचार्यदेव की टीका में कहा है, एक भाव भी यथार्थ जाने तो सर्व भाव यथार्थ जानने में आ जाते हैं। जयसेनाचार्यदेव की टीका में ऐसा पाठ है। एक भी वस्तु यथार्थ, कोई भी चीज़—द्रव्य-गुण-पर्याय, शुद्धता आदि एक भाव को भी यथार्थ जाने तो उसे सर्व भाव यथार्थ जानने की शक्ति प्रगट हो गयी। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, **ऐसा निश्चय है; मिथ्यात्व का परिणमन ऐसा ही है। कैसा है अज्ञानी? 'प्रकृतिस्वभावनिरतः'** आहाहा! **ज्ञानावरणादि आठ कर्म के उदय होने पर...** प्रकृतिस्वभाव शब्द लिया है न? **नाना प्रकार के...** (अर्थात्) अनेक प्रकार के **चतुर्गति...** चार गति। उसे गति का वेदन है। मैं मनुष्य हूँ या देव हूँ या तिर्यंच हूँ। आहाहा! मिथ्यादृष्टि के वेदन में चार गति में से जिस गति में है, उस गति का वेदन है। आहाहा! और शरीर का वेदन... शरीर तो जड़ है परन्तु शरीर की ओर लक्ष्य करके, यह

मेरा शरीर है, ऐसा मिथ्यादृष्टि की पर्याय पर होने से, शरीर है, उसकी दृष्टि होने से शरीर की ओर का लक्ष्य करके राग का वेदन करता है, वह शरीर का वेदन कहा जाता है।

शरीर, **रागादिभाव,...** इतना लिया। रागादिभाव सुख-दुःख का भोक्ता। रागादिभाव का कर्ता। पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव का कर्ता और सुख-दुःख का वेदन। वह सुख-दुःख का भोक्ता। **इत्यादि में आपा जान...** अपनापन जानकर, उनमें अपनापन मानकर। आहाहा! अज्ञानी शरीर को और चार गति को अपनी मानकर और पुण्य-पाप के भाव को अपने मानकर और उसके भोक्ता के भाव को भी अपने मानकर। आहाहा! है? अपनापन। मूल तो '**निरतः**' है। '**निरतः**' नि—विशेष रत शब्द है, परन्तु इसका स्पष्ट अर्थ किया। **आपा जान एकत्वबुद्धिरूप परिणमा है।** यह '**निरतः**' एकत्वबुद्धिरूप वह तो अपनापन जानकर का स्पष्टीकरण किया। **आपा जान एकत्वबुद्धिरूप परिणमा है।** यह '**निरतः**' की व्याख्या है। एकत्वबुद्धिरूप परिणमन। राग में, शरीर में, गति में और सुख-दुःख की परिणति में एकत्व मानकर परिणमा है। आहाहा! '**निरतः**' की व्याख्या की। '**निरतः**' '**नि**' विशेष रत—एकत्वबुद्धि। आहाहा! मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ, मैं नारकी हूँ, मैं सेठ हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं मूर्ख हूँ। आहाहा! सब पर्यायबुद्धि में एकत्व मानकर... आहाहा! परिणमित हुआ है, यह अज्ञानी की व्याख्या की।

अब, ज्ञानी। '**तु ज्ञानी जातु वेदकः नो भवेत्**' '**तु**' का अर्थ किया **मिथ्यात्व के मिटने पर ऐसा भी है...** वापस अकेला अज्ञान का ही परिणमन है, ऐसा नहीं। ज्ञानी को वह मिटकर ज्ञान, आनन्द का भी अनुभव है। आहाहा! '**तु**' **मिथ्यात्व के मिटने पर ऐसा भी है...** ऐसा भी क्यों कहा? कि अज्ञान में गति आदि को अपनी मानकर अनुभव करता है तो ज्ञानी को ज्ञान में ऐसा (अनुभव) नहीं परन्तु अपना अनुभव करके मानता है, ऐसा भी है। अकेला अज्ञानपने अनुभव करता है, ऐसी ही दशा जीव की सदा है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मिथ्यात्व के मिटने पर ऐसा भी है... कैसा है? **कि सम्यग्दृष्टि जीव...** ज्ञानी अर्थात् ऐसा लिया। **ज्ञान...** शब्द है न? **सम्यग्दृष्टि जीव...** '**जातु**' **कदाचित्...** आहाहा! **कदाचित्...** '**वेदकः नो भवेत्**' आहाहा! यह काल को सूचित करता है। '**जातु**' यह काल को

सूचित करता है। '**जातु**' शब्द जहाँ आवे, वहाँ काल को सूचित करता है। किसी भी काल में, ऐसा। आहाहा! **द्रव्यकर्म का, भावकर्म का भोक्ता नहीं होता;...** द्रव्यकर्म का निमित्त लिया। **ऐसा वस्तु का स्वरूप है।** आहाहा!

सम्यग्दृष्टि भावकर्म का भोक्ता अपना मानकर होता नहीं, ऐसा है। अपनापन जानकर, कहा न? अपना मानकर नहीं, परन्तु उसे है अवश्य। जितना राग है, उसे जाने कि यह राग है और राग का भोक्ता भी है। ऐसा जानता है। समझ में आया? जानता है तो राग के भोक्तापने का ज्ञायक हो गया। वह राग के वेदक को ज्ञेय करके—परज्ञेय करके जाननेवाला रह गया। आहाहा! समझ में आया? और अज्ञानी अपना मानकर, वह राग-द्वेष, पुण्य, दया, दान अपनी चीज़ है, ऐसा मानकर भोगता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म पड़े, प्रभु! परन्तु बात तो यह है। आहाहा!

आज सुना, भाई! एक लड़का कोई गरासिया का नौ महीने का लड़का गाँव में था, उसे कोई खिलाता था। गर्म पानी था, उसमें गिरा तो मर गया। नौ महीने का। गरासिया है न यहाँ? उनका लड़का नौ महीने का होगा, वह ऐसे खेलता था। आहाहा! पानी गर्म था, उसमें गिरा तो मर गया। आहाहा! ऐसे अवतार तो अनन्त किये हैं। यह तो एक दृष्टान्त देते हैं, हों! अनन्त-अनन्त काल में प्रभु कहाँ नहीं रहा यह? आहाहा! अनन्त भव किये, अब तो उदास हो जा, प्रभु! ऐसा कहते हैं। इस भव के काम और भव के कारण, भव और भव के कारण के भाव से उदास हो जा न! आहाहा! समझ में आया? रस छोड़ दे।

यहाँ यह कहते हैं, ज्ञानी भावकर्म का भोक्ता नहीं होता। आहाहा! विकारी परिणाम होते हैं, परन्तु अपने मानकर अनुभव नहीं करते। आहाहा! जब तक राग है, छठवें गुणस्थान में कहा न? समयसार नाटक में नहीं?—कि छठवें गुणस्थान में भी महाव्रत के जो विकल्प उठते हैं राग (होता है) वह जगपंथ है। ऐसा पाठ है। समयसार नाटक पुस्तक यहाँ नहीं। चालीसवाँ बोल है। मोक्ष अधिकार है न? उसमें चालीसवाँ बोल (काव्य) है। मुनियों को भी जितना विकल्प उठता है, वह जगपंथ है। आहाहा! वह संसारपंथ है, वह उतना संसारमार्ग है। आहाहा! कोई पत्र यहाँ लाये थे। इसकी खबर नहीं, उसमें खबर है। मोक्ष अधिकार का ४०वाँ बोल है। नया है न उसमें? इसमें

भी होगा अवश्य। हें? इसमें भी है। ४०वाँ बोल है न? मोक्ष अधिकार न? मोक्ष अधिकार में होना चाहिए। मोक्ष द्वार। ठीक! आया। ४०, हाँ, यह आया।

'ता कारन जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर,
परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर।

आहाहा! मुनि को भी जितना प्रमाद है, उतना जगपंथ है। गजब है! आहाहा! एकदम ऐसा ही कह दे कि सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए बस, उसे कुछ मलिनता है ही नहीं, ऐसा नहीं है। वह तो दृष्टि के अनुभव की अपेक्षा से कहा गया है। परन्तु पर्याय में जहाँ तक मलिनता है, वहाँ तक परिणति की अपेक्षा से तो कर्ता और भोक्ता दोनों कहे जाते हैं। यहाँ तो स्वभाव की दृष्टि से कर्ता-भोक्ता, करनेयोग्य है इस अपेक्षा से कर्ता-भोक्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ आया, देखो 'ता कारन जगपंथ....' आहाहा!

'घटमैं है प्रमाद जब ताई, पराधीन प्रानी तब ताई। जब प्रमाद की प्रभुता नासै, तब प्रधान अनुभौ परगासै।' यह प्रमाद की, छठे गुणस्थान की प्रमाद की बात की है। प्रमादी है न? जितना राग आता है, (उतना प्रमाद है)। 'ता कारन जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर।' स्वभाव सन्मुख की उग्रता वह शिवपंथ का जोर है और राग पंथ है, वह जगपंथ है। आहाहा! मुनि को भी (जितना) उदयभाव है, वह जगपंथ है। आहाहा! समझ में आया? इसमें ४०वाँ बोल निकला। यह तो बड़ी पुस्तक है न, उसमें।

(यहाँ कहते हैं), वस्तु का स्वरूप है। **भोक्ता नहीं होता; ऐसा वस्तु का स्वरूप है।** ज्ञानी भोक्ता नहीं। **कैसा है ज्ञानी? 'प्रकृतिस्वभावविरतः'** वह था। **'प्रकृतिस्वभाव-निरतः'** अज्ञानी **'प्रकृतिस्वभावनिरतः'** प्रकृति जड़ के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ विकार, उसमें **'निरतः'** और धर्मी **'प्रकृतिस्वभावविरतः'** है? **'विरतः' कर्म के उदय के कार्य में हेय जानकर छूट गया है... 'विरतः'** का अर्थ किया विरक्त, विरक्त। राग से विरक्त है, स्वभाव में रक्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : सदाचार प्रकृतिस्वभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सदाचार शुभराग, वह तो प्रकृतिस्वभाव है। लोग जिसे सदाचार

कहते हैं, वह सदाचार है ही नहीं। सदाचार तो सत् आचार। सत् स्वरूप भगवान का आचरण करना, वह सदाचार है। लोग सदाचार लौकिक में कहते हैं, वह सदाचार है ही नहीं। आहाहा! नैतिक जीवन हो। परस्त्री का त्याग हो, आदि सब लौकिक सज्जनता है, शुभभाव है। वह सदाचार नहीं। व्यवहार में व्यवहारनय से सदाचार कहने में आता है। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। नियमसार का कहा था। समझ में आया?

कर्म के उदय के कार्य में... इसका अर्थ ऐसा नहीं कि कर्म का उदय आया इसलिए यहाँ राग हुआ। परन्तु उदय है और उस ओर का लक्ष्य है तो कार्य—राग हुआ। उस उदय के कार्य में विरत है—विरक्त है। धर्मी उदय के कार्य में विरक्त है और स्वभाव के कार्य में रक्त है। आहाहा! समझ में आया? विरक्त है का अर्थ किया कि, **हेय जानकर छूट गया है स्वामित्वपना जिसका,... हेय जानकर छूट गया है स्वामित्वपना जिसका,...** सम्यग्दृष्टि को राग आता है, परन्तु स्वामित्व छूट गया है। आहाहा! स्वामी नहीं। मेरी चीज़ है, ऐसा मानता नहीं। आहाहा! ज्ञाता के ज्ञान में ज्ञेयरूप से-परज्ञेय रूप से जानता है। स्वामीपना नहीं है, आहाहा! यह दशा है, बापू! **स्वामित्वपना जिसका, ऐसा है।** क्या? **हेय जानकर छूट गया है स्वामित्वपना जिसका,...** वह विरत है न? विरत। विरत का अर्थ स्वामित्व छूट गया, ऐसा। **ऐसा है।**

भावार्थ इस प्रकार है कि जीव के सम्यक्त्व होने पर अशुद्धपना मिटा है,... दृष्टि और स्वभाव की अपेक्षा से कहा है कि अशुद्धपना मिट गया है। दृष्टि का और अनन्तानुबन्धी का अशुद्धपना मिट गया है, परन्तु यहाँ अशुद्धपना मिट गया है, ऐसा सामान्य कहा है। **इसलिए भोक्ता भी नहीं है।** अशुद्धपना दृष्टि के विषय में रहा नहीं। दृष्टि के विषय में तो भगवान रहा तो सम्यग्दृष्टि को राग का भोक्ता कहा नहीं जाता। क्योंकि उसे राग का स्वामित्व है नहीं। इसलिए उसको भोक्ता नहीं है, ऐसा कहने में आता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १९८

(वसन्ततिलका)

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम्।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा-
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ।।६-१९८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ज्ञानी कर्म न करोति च न वेदयते' [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव, [कर्म न करोति] रागादि अशुद्धपरिणामों का कर्ता नहीं है। [च] और [न वेदयते] सुख-दुःख से लेकर, अशुद्धपरिणामों का भोक्ता नहीं है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'किल अयं तत्स्वभावं इति केवलं जानाति' [किल] निश्चय से [अयं] जो शरीर, भोग, रागादि, सुख-दुःख इत्यादि समस्त [तत्स्वभावं] कर्म का उदय है; जीव का स्वरूप नहीं है-[*इति (अयं) केवलं जानाति'] सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा जानता है, परन्तु स्वामित्वरूप नहीं परिणमता है। 'हि सः मुक्तः एव' [हि] तिस कारण से [सः] सम्यग्दृष्टि जीव, [मुक्तः एव] जैसे निर्विकार सिद्ध हैं, वैसा है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'परं जानन्' जितनी है परद्रव्य की सामग्री, उसका ज्ञायकमात्र है; मिथ्यादृष्टि के समान, स्वामीरूप नहीं है। और कैसा है? 'शुद्धस्वभावनियतः' [शुद्धस्वभाव] शुद्धचैतन्यवस्तु में [नियतः] आस्वादरूप मग्न है। किस कारण से? 'करणवेदनयोः अभावात्' [करण] कर्म का करना, [वेदन] कर्म का भोग — ऐसे भाव, [अभावात्] सम्यग्दृष्टि जीव के मिटे हैं, इस कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यात्व, संसार है, मिथ्यात्व के मिटनेपर जीव, सिद्धसदृश है।।६-१९८।।

पौष कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक-०२-०२-१९७८, कलश-१९८, प्रवचन-२२१

सम्यग्दृष्टि जीव रागादि अशुद्ध परिणामों का कर्ता नहीं है। आहाहा! क्योंकि शुद्ध जीव स्वभाव जहाँ अनुभव में आया तो शुद्ध जीव तो वीतरागस्वरूप ही है। ऐसी सम्यग्दृष्टि हुई, चौथा गुणस्थान। कहते हैं कि **रागादि अशुद्ध परिणामों का कर्ता नहीं है।** अशुद्ध परिणामों का रचनेवाला नहीं। होता है, परन्तु वह मेरा कार्य है—ऐसा नहीं

है। उसका स्वामित्वपना छूट गया है और अपने में राग का ज्ञान करके ज्ञान का वेदन करता है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव किसे कहते हैं? कि जिसे अपना स्वभाव ध्रुव शुद्ध चैतन्य, जिसे नियमसार में कारणपरमात्मा कहा, उसे दृष्टि में लेकर जिसका अनुभव हुआ है कि मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ, ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने स्वभाव से विपरीत रागादि भाव, दया, दान, व्रतादि के विकल्प होते हैं, उनका कर्ता नहीं होता। समझ में आया? उन्हें ज्ञाता-दृष्टारूप से जानता है। मेरी चीज़ में वह राग नहीं, व्यवहार आता है। दया, दानादि विकल्प, भगवान की भक्ति, ऐसा भाव आता है, परन्तु उसका वह ज्ञाता-दृष्टा रहता है। क्योंकि अपना स्वभाव ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है, उसकी अपेक्षा से राग की, विकल्प की रचना करना, ऐसा दृष्टि में है नहीं और दृष्टि के विषय में भी वह है नहीं। समझ में आाय?

कहते हैं कि रागादि अशुद्ध परिणाम। रागादि अर्थात् द्वेष आदि, अंश आदि। **अशुद्ध परिणामों का कर्ता नहीं है।** आहाहा! 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा' यह 'निर्जरा अधिकार' (में) कहा है। 'कर्ता सो जाने नहीं, जाने सो कर्ता नहीं होई।' 'करे कर्म सो ही करतारा' राग मेरा कर्तव्य है, ऐसा करनेवाला है, वह मिथ्यादृष्टि कर्ता ही होता है। 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा' परन्तु अपना स्वरूप जो स्व-पर प्रकाशक है, उसका जिसे अन्तर में ज्ञान, दर्शन हुआ है, वह राग को जाननेवाला रहता है। यशपालजी! सूक्ष्म बातें है, भगवान! यह राग जाने सो जाननहारा, यह बात है। आहाहा! राग आता है तो राग सम्बन्धी का ज्ञान, राग है; इसलिए राग का ज्ञान होता है—ऐसा भी नहीं है। अपने स्वभाव की जहाँ दृष्टि हुई—सम्यग्दर्शन, आनन्द का आंशिका वेदन (हुआ), वहाँ उस ज्ञान की पर्याय में एक समय में स्व-परप्रकाशक पर्याय अपने से, अपने सामर्थ्य से उत्पन्न होती है। तो राग को जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! यह राग सम्बन्धी अपना ज्ञान है, उस ज्ञान को ज्ञान जानता है। ऐसी बात है। देवीलालजी! उपदेश के वाक्य में तो ऐसा आवे कि राग को जानता है, ऐसा आया, लो! राग तो पर है। राग को जानता है, ज्ञान स्व-परप्रकाशक के सामर्थ्य में राग का ज्ञान हो जाता है, वह राग है; इसलिए नहीं। अपने

स्वरूप की दृष्टि हुई है तो अपनी स्व-परप्रकाशक पर्याय अपने सामर्थ्य से अपने में होती है। आहाहा! बहुत अन्तर, बापू! समझ में आया? आहाहा!

अशुद्ध परिणामों का कर्ता नहीं है। और सुख-दुःख से लेकर अशुद्ध परिणामों का भोक्ता नहीं है। आहाहा! सुख-दुःख (अर्थात्) यह कल्पना के, हों! यह आत्मा के सुख की बात नहीं। यह सुख-दुःख की कल्पना के सुख। इन्द्रियों की ओर यह ठीक है, ऐसा राग; अठीक है, ऐसा द्वेष, वह सुख। आत्मा के सुख की बात यहाँ नहीं है। सुख-दुःख से लेकर **अशुद्ध परिणामों का...** ऐसा लिया न? सुख अर्थात् इन्द्रिय में सुख है ऐसी कल्पना, वह यहाँ लेना है। सुख (अर्थात्) आत्मा के सुख की बात यहाँ नहीं है।

सुख-दुःख से लेकर अशुद्ध परिणामों का भोक्ता नहीं है। आहाहा! क्योंकि जो अपने आनन्द को भोगता है, उस आनन्द के स्वाद के समक्ष राग का स्वाद जहर जैसा दिखता है। विषकुम्भ कहा न मोक्ष अधिकार में? शुभभाव को भी विषकुम्भ कहा, जहर का घड़ा! कुम्भ अर्थात् घड़ा—घट। जहर का घड़ा। आहाहा!

अपना भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का दल, उसका भान हुआ और सम्यग्दर्शन में आत्मा के अतीन्द्रिय आननद के, अरे! अनन्त शक्ति जितनी है, उन समस्त शक्तियों का अंश व्यक्त—प्रगट वेदन में आया। आहाहा! जितनी शक्तियाँ हैं, अनन्त-अनन्त शक्ति की व्यक्तता का अंश। आहाहा! (वह जीव) सुख-दुःख जहर का भोक्ता नहीं होता। समझ में आया? उस सुख-दुःख की कल्पना का जानने-देखनेवाला रहता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। क्योंकि प्रभु तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञाता-दृष्टा उसका त्रिकाल स्वभाव है। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वभाव त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? वह भोक्ता भी नहीं है।

कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'किल अयं तत्स्वभावं इति केवलं जानाति' देखो! आहाहा! **'किल'** अर्थात् वास्तव में। **निश्चय से... 'किल'** का अर्थ वास्तव में, निश्चय से, वास्तविक ऐसा है। **निश्चय से... 'अयं'** यह **शरीर, भोग, रागादि, सुख-दुःख इत्यादि समस्त... 'तत्स्वभावम्' कर्म का उदय हैं, जीव का स्वरूप नहीं है...** आहाहा! समझ में आया? भगवान जीव का स्वरूप—स्व-रूप, स्व अपना रूप तो आनन्द और ज्ञान, वह अपना स्वरूप है। यह रागादि अशुद्ध आदि, वह अपना स्वरूप—स्वभाव—स्व-भाव,

स्वभाववान का यह रागादि स्वभाव नहीं है। तो अपने स्वभाव को जाननेवाला जीव उन अशुद्ध परिणामों का कर्ता-भोक्ता नहीं होता। आहाहा! वह कर्म का उदय जीव का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो '**तत्स्वभावम्**' ऐसा कहना है न? '**अयं तत्स्वभावं इति केवलं जानाति**' बस! आहाहा! क्या '**तत्स्वभावम्**'? चैतन्यस्वभाव की बात यहाँ नहीं है। राग, दया, दान, विकल्प आदि होते हैं '**तत्स्वभावम्**' उस स्वभाव को अपने ज्ञान में रहकर (कर्ता नहीं होता)। यह लेते हैं, देखो! **जीव का स्वरूप नहीं है... 'तत्स्वभावम्'** कर्म का उदय स्वभाव **जीव का स्वरूप नहीं है... 'इति केवलं जानाति'** आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा जानता है,...** बस! अपने में है नहीं, अपने से हुए ही नहीं। विकृत अवस्था, वह कर्मजन्य है। उस कर्मजन्य का अर्थ क्या? कर्म ने कहीं उत्पन्न करायी नहीं। उत्पन्न हो तो अपनी पर्याय में निर्बलता से निमित्त के वश होकर हुई है, परन्तु वह परिणाम जीव स्वरूप के नहीं। इतना बतलाने के लिये वह कर्म निमित्त का स्वभाव है, ऐसा कहा है। निमित्त ने किया है, ऐसा यहाँ नहीं लेना। परद्रव्य किसी को विकार या अविकार करे, यह किसी में सामर्थ्य नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो कर्म के स्वभाव का अर्थ वह विभावभाव, विकार मेरा स्वभाव नहीं। तो वह कर्म अर्थात् दुःखरूप विकारी (भाव), वह कर्म का स्वभाव है। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगता है।

शरीर, भोग, रागादि, सुख-दुःख इत्यादि समस्त... कर्म का स्वभाव है। ऐसा। '**तत्स्वभावम्**' है न? **जीव का स्वरूप नहीं है... 'इति केवलं जानाति'। 'केवलम्'** ऐसा विशेषरूप से, केवल '**जानाति**' बस! केवल '**जानाति**', राग को केवल '**जानाति**'। केवल '**जानाति**' का अर्थ जरा भी उसका कर्ता-भोक्ता नहीं होता। केवल '**जानाति**'। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। केवल '**जानाति**'। अपने में रहकर निर्बलता से जो विकारादि हुए, उन्हें केवल जानता ही है। केवल अर्थात् मात्र जानता ही है। जरा भी कर्ता-भोक्ता नहीं होता। इसलिए 'केवल' शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी ठेठ स्पर्श कर डाले ऐसी है। आहाहा! ऐसी बात कहीं है नहीं। यह तो अन्तर की बात है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

'इति केवलं जानाति' सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा जानता है, परन्तु स्वामित्वरूप नहीं

परिणमता है। स्वामीपने—अपने हैं, ऐसा नहीं होता। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम सम्यग्दृष्टि को, पंचम गुणस्थानवर्ती को, मुनि को भी आते तो हैं। समझ में आया? परन्तु उसके स्वामीपने परिणमता नहीं। स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति अपने में है। ४७ शक्ति में अन्तिम ४७वीं स्वस्वामीसम्बन्ध (शक्ति है)। स्व अर्थात् अपना द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध। स्व-अपना, स्वस्वामी, उसका स्वामी। उसका स्वस्वामीसम्बन्ध गुण है। तो गुण की पकड़ गुणी की हुई, वह स्वस्वामीसम्बन्ध का ही स्वामी होता है, वह राग का स्वामी नहीं होता। क्या कहा?

फिर से। (राग का) स्वामी क्यों नहीं होता? कि अन्दर आत्मा में एक स्वस्वामी-सम्बन्ध नाम का गुण है, शक्ति है। सत् सत् प्रभु का सत्त्व। सत्त्व कहो, भाव कहो, गुण कहो, शक्ति कहो। उस गुण में एक स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण है। इस कारण से अपने स्वभाव का भान जहाँ हुआ है, वह अपने स्वरूप के स्वस्वामीसम्बन्ध में रहता है। पर के साथ स्व और मैं स्वामी, ऐसा नहीं होता। आहाहा! ऐसा है, भाई! भाषा तो सादी है, प्रभु! भाव तो है वह है। दूसरा क्या करे? आहाहा! भगवान है न प्रभु तू भी! भगवानस्वरूप अन्दर है। आहाहा!

कहते हैं, '**केवलं जानाति**' अर्थात् केवल का अर्थ इतना किया कि उसका स्वामित्व नहीं। वरना तो केवल... केवल जाननेवाला ही रहता है। उसका अर्थ किया कि उसका स्वामीपना नहीं होता। समझ में आया? यह तो भाई! यह कहीं विद्वत्ता की चीज़ नहीं, यह तो अन्तर की चीज़ है। जो कोई भाषा में होशियार हो जाये और लोगों को समझाये, इसलिए वह ज्ञान, ऐसा नहीं है। विद्वत्ता, वह कोई ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो कोई दूसरी चीज़ है। आहाहा! लोगों को समझाना भी न आवे, ऐसी शक्ति न हो तो उसका सम्यग्ज्ञान चला नहीं जाता। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान को हेय मानेगा तो शिथिल नहीं हो जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय माने अर्थात् अन्दर उग्र पुरुषार्थ हुआ। क्योंकि आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है, उस गुण का कार्य ४७ शक्ति में क्या लिया है? समयसार में अन्त में ४७ शक्तियाँ (आती हैं)। आत्मा में वीर्य—पुरुषार्थ नाम का गुण है। यह जड़

वीर्य है, (जिससे) पुत्र-पुत्री उत्पन्न होते हैं, वह तो जड़, मिट्टी-धूल है। यह तो अन्दर एक वीर्य नाम का गुण अनादि-अनन्त है। प्रभु ने उसका स्वरूप ऐसा लिया है और ऐसा है कि वीर्य—स्वस्वरूप की रचना करे, उसका नाम वीर्य कहते हैं। अपने शुद्ध निर्मल परिणाम की रचना करे, उसो नाम वीर्य गुण कहते हैं। अशुद्ध व्यवहाररत्नत्रय की रचना करे... आहाहा! उसे तो नपुंसक कहा है। पुण्य-पाप अधिकार में है और दूसरी जगह है। 'क्लीब' कहा है, संस्कृत में 'क्लीब' (कहा है)। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव की रचना करे, वह क्लीब है। क्योंकि जैसे क्लीब-नपुंसक को वीर्य नहीं होता तो उसे पुत्र नहीं होता। उसी प्रकार शुभभाव में धर्म की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ (कहते हैं) **परन्तु स्वामित्वरूप नहीं परिणमता है।** परिणमता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक राग परिणमता तो है न? और नय के अधिकार में तो ऐसा भी लिया, ४७ नय में कि धर्मी हो, सन्त हो तो भी राग आता है, उस राग का परिणमन है, उतना कर्ता हूँ, ऐसा जानता है। कर्ता अर्थात् करनेयोग्य है, ऐसा नहीं, कर्तव्य है, ऐसा नहीं। परन्तु कर्ता अर्थात् परिणमना, मैं मुझसे करता हूँ, ऐसा। ४७ नय में ऐसा लिया है और भोक्ता भी मैं हूँ। मैं राग का भोक्ता हूँ। पर्यायदृष्टि से, हों! पर्याय से। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि में कर्ता-भोक्ता है ही नहीं। परन्तु पर्याय में समकिती को भी जब तक राग और पुण्यादि का परिणमन होता है, तब तक वह कर्ता है, ऐसा नय से जानता है। आहाहा! और भोक्ता भी मैं हूँ, ऐसा जानता है। परन्तु किस अपेक्षा से? पर्यायदृष्टि से पर्याय का ज्ञान करने, व्यवहारनय का (ज्ञान करने के लिये)। यहाँ तो जहाँ निश्चय से अन्दर दृष्टि के विषय का ज्ञान चलता है, वहाँ तो उस परिणमन का कर्ता मैं हूँ नहीं, (ऐसा आता है)। आहाहा!

मनोहरलालजी वर्णी हैं न? उन्होंने दो प्रश्न किये थे, जयपुर आये थे, खास जयपुर आये थे। क्षुल्लक है न, क्षुल्लक आये थे, दो दिन रहे थे। उन्होंने दो प्रश्न किये थे। पहला यह प्रश्न किया था कि यह राग को पुद्गल परिणाम क्यों कहा? भाई! जानते हो मनोहरलालजी को? उसे पुद्गल परिणाम क्यों कहा? क्योंकि वह निकल जाता है, अपने नहीं, निकल जाता है, इसलिए पुद्गल कहा। अपने में रहे, वह जीव है। निकल

जाता है, इसलिए पुद्गल परिणाम। पुद्गल परिणाम नहीं, परन्तु पुद्गल कहा है। कर्ता-कर्म (अधिकार) में तो राग दया, दान के विकल्प को पुद्गल कहा है। आया है न ७५-७६ गाथा में? समझ में आया? दो प्रश्न हुए थे। एक यह प्रश्न हुआ था। दूसरा प्रश्न (यह हुआ था कि) यदि आप इस उद्देशिक आहार का स्पष्टीकरण करो तो अच्छा। लोग करते हैं, ऐसा। इतना बोले नहीं थे परन्तु उद्देशिक का अर्थ होवे तो (अच्छा)। मैंने कहा, प्रभु के विरह में क्या कहूँ? लोग करते हैं और लेते हैं, वह तो उद्देशिक है। उनके कहने का आशय था कि लोग बनाते हैं न? लेनेवाले को क्या? अरे! परन्तु खबर नहीं लेनेवाले को कि मेरे लिये बनाते हैं? समझ में आया? ग्यारहवीं प्रतिमावाले को भी उद्देशिक (आहार) नहीं चलता। नौ कोटि में एक कोटि टूटती है। समझ में आया? अनुमोदन हो जाता है, वहाँ नौ कोटि का त्याग नहीं रहता। समझ में आया?

यह प्रश्न तो हमारा गृहस्थाश्रम में था। (संवत्) १९६९ के वर्ष। १९७० के वर्ष में ढुंढिया की दीक्षा हुई। ६९, ६९ समझे? ६०+९। हमारे गुरु से मैंने प्रश्न किया था। ६५ वर्ष हुए। कहा, साधु के लिये यह मकान बनावे और साधु प्रयोग करे तो नौ कोटि में कौन सी कोटि टूटती है? नौ कोटि समझ में आती है? मन-वचन-काया, करना-कराना और अनुमोदना। यह तो उस समय प्रश्न किया था। ६५ वर्ष पहले। इतनी बात सुनी कि साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो और प्रयोग करे तो वह साधु नहीं प्रयोग करे। मैंने पूछा कि नौ कोटि से त्याग है तो उसके लिये मकान बनाया और प्रयोग करे तो कौन सी कोटि टूटती है? तो हमारे गुरु बहुत भद्रिक थे। दृष्टि तो सम्प्रदाय की थी, मिथ्यादृष्टि थी परन्तु ऐसे बहुत भद्रिक थे। तो मेरी दीक्षा रुक जाये, इस कारण से ऐसा जवाब दिया। क्योंकि मैंने दीक्षा नहीं ली थी। मैंने प्रश्न किया था। (उन्होंने कहा) तुम्हारे लिये तुम्हारे भाई ने मकान बनाया हो और तुम प्रयोग करो, उसमें क्या करना आवे? मैंने फिर जवाब नहीं दिया। मेरे ख्याल में था, उस समय कि अनुमोदन होता है। नौ कोटि में एक कोटि टूट जाती है। समझ में आया? बापू! यह तो प्रभु का मार्ग है, यह कहीं किसी का नहीं है। अपनी कल्पना से अर्थ करना, वह कोई चीज़ नहीं है। भगवान विराजते हैं। भगवान साक्षात् विराजते हैं कि पेढी के नाम से कुछ भी चलाना (ऐसा नहीं होता)। प्रभु का मार्ग है, भाई! आहाहा! इसे भव का भय होना चाहिए न! आहाहा!

यह उद्देशिक का प्रश्न किया था, उनको कहा, मैंने तो बहुत शान्ति से कहा था, हों! मैं तो द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी अभी किसी को मानता नहीं। शान्ति से सुनते थे, मैंने भी शान्ति से कहा। वस्तु की स्थिति (यह है)। मैं तो अभी द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी किसी को मानता नहीं। क्योंकि वे भी उनके लिये (बनाया हुआ) लेते हैं। मैंने तो शान्ति से (कहा)। हमको किसी का अनादर नहीं है। विरोध हो तो भी भगवान है। आत्मा के साथ प्रेम रखना। कोई भी व्यक्ति हो, चाहे जितनी विरोध श्रद्धा हो, परन्तु उसके प्रति बैर-विरोध बिल्कुल नहीं करना। शान्ति से... शान्ति से... वह भी अन्दर भगवान है। एक समय की भूल है, वह भूल निकाल देगा। अपने तो ऐसा लेना। समझ में आया? मैं तो क्या कहूँ? प्रभु! अभी भगवान का विरह पड़ा और उसके लिये (बनाया हुआ) ले तो दोष नहीं, ऐसा नहीं है, भाई! उसके लिये बनाया हुआ साधु लेते हैं।

अभी पांच साधु आये थे न? अभी भावनगर गये थे न? पाँच साधु थे, पाँच आर्यिका थी, एक क्षुल्लक (ऐसे) ग्यारह थे। और एक व्यक्ति था, आहार बनाने के लिये चार-पाँच महिलायें थीं। मैंने तो प्रश्न किया था, यह उद्देशिक आहार करते हैं (उसका क्या)? हमको तो क्या खबर पड़े? हम कहीं अवधिज्ञानी हैं कि हमारे लिये बनाते हैं। बारह-तेरह व्यक्तियों के लिये बनाते थे। उनके साथ एक ब्रह्मचारी था, वह बहुत नरम था। वह मेरे पास आया, कहे, महाराज! मुझे हिन्दी मोक्षमार्गप्रकाशक दो न! हिन्दी मिलता नहीं। मैंने कहा, ले जाओ, भेंट ले जाओ। जाओ, पढ़ो बापू, पढ़ो! यहाँ तो बहुत पुस्तकें हैं। नरम था कपड़े का व्यापारी था और एक व्यक्ति साथ में था, भोजन के लिये। उद्देशिक लेते हैं, उसमें बिल्कुल कोटि टूटती नहीं, (ऐसा नहीं है।)ऐषणा दोष है, अहिंसा का दोष है और उसके लिये बनाते हैं और जहाँ भोजन लेते जाते हैं तो वह क्या कहता है? आहार शुद्ध। बोलते हैं न? आहार शुद्ध, वचन शुद्ध, मन शुद्ध। तो वह तो झूठा है। बनाया है तो इनके लिये, आहार शुद्ध कहाँ से आया? और ऐसा बोले तो भी ले, (यह) झूठे की अनुमोदना (हुई)। प्रभु! मार्ग ऐसा है। किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं है। यह तो वस्तु के स्वरूप की स्थिति की बात है, भाई! भगवान! किसी को दुःख हो ऐसी तो किसी की भावना हो नहीं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो भाई यह है।

यहाँ यह कहा, शुद्ध परिणाम थोड़े अस्थिरता के होते हैं, उनका भी स्वामी नहीं। आहाहा! मुनि या क्षुल्लक के लिये बनाया हुआ आहार ले तो कोटि टूटती है। ऐषणा टूटती है, अहिंसा टूटती है। नौ कोटि में कोटि टूटती है। प्रभु! मार्ग ऐसा है। प्रभु का विरह पड़ा, वीतराग परमात्मा अभी उपस्थित नहीं और पीछे ऐसी गड़बड़ चलाना, बापू! मार्ग ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें अवधिज्ञान की बात कहाँ है ? ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह बुद्धि कहाँ ? स्पष्ट साथ में बारह व्यक्ति और पकानेवाले चार। किसके लिये पकाते हैं ? जवाब ऐसा, बापू! कहा, होता नहीं, भाई! आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ यह कहते हैं, कदाचित् मुनि को शुभराग आ जाये, मुनि को शुभराग (आवे) तो भी जाननेवाले रहते हैं। यह बारहवीं गाथा में आया न ? ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा कि '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो॥**' फिर बारहवीं गाथा में ऐसा कहा, '**ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥**' वहाँ व्यवहार का उपदेश है, यह प्रश्न है नहीं। '**ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥**' वहाँ कितने ही लोग ऐसा अर्थ करते हैं कि नीचे के लोगों को व्यवहार का उपदेश देना, यह बात वहाँ है ही नहीं। उसकी व्याख्या ऐसी है कि '**ववहारदेसिदा**' टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने लिया है कि राग आता है, उसे जानना, उस काल में जानना, उसे '**ववहारदेसिदा**' कहा गया है, यह शब्द है। भूल गये।

मुमुक्षु : उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस काल में... शब्द...

मुमुक्षु : '**तदात्वे**'।

पूज्य गुरुदेवश्री : '**तदात्वे**'। मुझे तो यह शब्द (था)। '**तदात्वे**' संस्कृत शब्द है। '**तदात्वे**' उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहार आवे, उस काल में जाना हुआ, ऐसा। दूसरे समय में दूसरा व्यवहार (आवे) तो उस काल में वह जाना हुआ। क्योंकि समय-समय में धर्मी की शुद्धि बढ़ती है, और अशुद्धि घटती है तो उस समय

में लिया है। ऐसा पाठ है, '**तदात्वे**' लिया है। '**तदात्वे**' अर्थात् उस-उस समय में जाना हुआ प्रयोजनवान है। जो पहले समय में जाना कि अशुद्धता थोड़ी है और शुद्धता विशेष है। फिर शुद्धता विशेष बड़ी, अशुद्धता घटी। तो उस समय में उस प्रकार से जाना हुआ प्रयोजनवान है। समय-समय का भिन्न-भिन्न ज्ञान, उस उस समय में जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसा '**तदात्वे**' शब्द पड़ा है। संस्कृत टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने बहुत स्पष्ट किया है। इसका अर्थ लोग ऐसा करते हैं कि नीचेवाले को व्यवहार का उपदेश करना। यह उपदेश करने की व्याख्या है ही नहीं। आहाहा!

भाई ने प्रश्न किया था, साहूजी ने कलकत्ता में। यहाँ यह कहा है न? '**ववहारदेसिदा**'। कहा, बापू! देशना का अर्थ वहाँ उपदेश नहीं। संस्कृत टीका तो देखो। उस समय में जितना व्यवहार आता है, और शुद्धि की जितनी पर्याय है, उन दोनों को जानना, वह व्यवहार है। त्रिकाल को जानना, वह निश्चय है और पर्याय की शुद्धि-अशुद्धि का जानना, उसका नाम व्यवहार है। क्या हो प्रभु? इसमें क्या करना? मार्ग तो यह है।

यह यहाँ कहते हैं, देखो! स्वामीपना। 'केवल' शब्द यहाँ लिया है। स्वामीपना नहीं, वह तो केवल जाननेवाला रहता है। आहाहा! '**हि सः मुक्त एव**' गजब बात है, देखो! धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! क्योंकि प्रभु आत्मा मुक्त स्वरूप है। शास्त्रभाषा से यहाँ मुक्त आया है और १४-१५ गाथा में अबद्धस्पृष्ट आया है। प्रभु अबद्धस्पृष्ट है, उसे जाना , उसने जिनशासन जाना। शुद्ध उपयोग में जानने में आया कि यह आत्मा तो अबद्धस्पृष्ट है। बद्ध और स्पृष्ट है ही नहीं। विशेष है नहीं, संयुक्त है नहीं। बोल है। अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, असंयुक्त, अविशेष, ऐसे पाँच बोल हैं। इन पाँच बोल में ऐसा है, अकेला आत्मा शुद्ध चैतन्यघन निश्चय पूर्ण है, ऐसा जो जानता है, उसने जिनशासन जाना। '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं।**'

अभी और यह प्रश्न आया है न? विद्यानन्दजी की ओर से (आया है)। '**अपदेससंतमज्झं**'। '**अपदेससंतमज्झं**' का अर्थ उन्होंने ऐसा किया है—अखण्ड प्रदेश। ऐसा नहीं है। जयसेनाचार्यदेव की टीका में स्पष्ट शब्द है, उसे झूठा कहते हैं।

जयसेनाचार्यदेव की बात खोटी है (ऐसा कहते हैं)। लो, आचार्य की बात खोटी है। अमृतचन्द्राचार्य को '**अपदेस**' का अर्थ समझ में नहीं आया, इसलिए छोड़ दिया। अरे! अमृतचन्द्राचार्य कौन है? प्रभु! आहाहा! उन्होंने तो गणधर जैसा (कार्य किया है)। कुन्दकुन्दाचार्य ने तीर्थंकर जैसा काम किया है और गणधर जैसा काम अमृतचन्द्राचार्य ने किया है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहा! यह कहे, अमृतचन्द्राचार्य ने '**अपदेस**' का अर्थ छोड़ दिया है, इसलिए वे समझे नहीं। '**अपदेस**' द्रव्यसूत्र है, तो द्रव्यसूत्र की व्याख्या नहीं की। भाव की की है। मूल तो ऐसा है। तो वे कहें, समझ नहीं सके इसलिए अर्थ नहीं किया। और जयसेनाचार्य ने अर्थ किया, '**अपदेस**' अर्थात् द्रव्यसूत्र। वह खोटा है, (ऐसा वे) कहते हैं। तब क्या है? तो कहते हैं, '**अपदेस**' अर्थात् अखण्ड प्रदेश। परन्तु ऐसी बात शास्त्र में है ही नहीं। या कहना असंख्य प्रदेश या कहना एक प्रदेश, ऐसा शास्त्र में आता है। यह क्या कहा? या कहना असंख्य प्रदेश। ४७ शक्ति में आता है—नियतप्रदेशत्वशक्ति, नियतप्रदेशत्वशक्ति। असंख्य प्रदेशी निश्चय शक्ति उसमें है। ऐसा गुण में आया है और बहुत संक्षिप्त करना हो तो पंचास्तिकाय में ३१ गाथा में ऐसा आया है, लोकप्रमाण एकप्रदेशी, ऐसा आया है। है तो लोकप्रमाण परन्तु एकप्रदेशी गिनने में आया। भंग नहीं करके। है असंख्य (प्रदेश)। पंचास्तिकाय की ३१ गाथा है। वह नियतप्रदेशत्व है, वह ४७ शक्ति में है। प्रदेश अखण्ड है, ऐसी बात वहाँ है ही नहीं। असंख्यप्रदेशी गिनो या सामान्यरूप से कहना हो तो एक प्रदेशी कहो, बस! समझ में आया? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। यह किसी ने किया नहीं। जैसा है, वैसा भगवान ने कहा है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, समकिती तो मुक्त है, कहते हैं। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट लिया न? '**जो पस्सदि अपपाणं अबद्धपुट्ठं**' अबद्ध, नास्ति से कहा है; मुक्त है यह अस्ति से है। समझ में आया? अबद्धस्पृष्ट है न? बद्धस्पृष्ट नहीं, यह नास्ति से है और मुक्त, वह अस्ति से है। तो मुक्त यहाँ लिया है। आहाहा! वस्तु है, वह तो मुक्तस्वरूप ही है। पर्याय में राग और पर्याय में निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। द्रव्य और राग को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है ही नहीं द्रव्य के साथ। आहाहा! शशीभाई! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

सम्यग्दृष्टि जीव... 'हि सः मुक्तः एव' आहाहा! 'हि' का अर्थ किया, **इस कारण**

से.... 'सः' अर्थात् **सम्यग्दृष्टि जीव... 'मुक्तः एव' जैसे निर्विकार सिद्ध हैं, वैसा है।** आहाहा! इस अपेक्षा से। पवित्र जो शुद्ध भगवान द्रव्य और गुण पवित्र है, वैसी परिणति— प्रतीति, सम्यग्दर्शन में परिणति भी शुद्ध हो गयी। उसमें राग का सम्बन्ध नहीं, इस अपेक्षा से मुक्त ही है, ऐसा कहने में आया है। द्रव्य से तो मुक्त है ही परन्तु पर्याय में भान हुआ तो पर्याय में भी इतना मुक्तपना आया तो उसे मुक्त ही है, ऐसा कह दिया है।

फिर से, '**मुक्तः एव**' कहा न? पाठ तो अमृतचन्द्राचार्य का है। '**मुक्तः एव**' (कहा) तो पूर्ण मुक्त तो है नहीं। परन्तु दो प्रकार है। एक तो मुक्तस्वरूप है, ऐसा सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ तो मुक्तस्वरूप है, इस कारण से अबद्धस्पृष्ट कहा। वह भी मुक्त हुआ। अब अन्दर का भान हुआ, राग से भिन्न है, ऐसी परिणति भी उतनी मुक्त हो गयी। राग से भिन्न होकर और स्वभाव में एकता होकर शुद्ध परिणति हुई, उतनी भी राग से मुक्त हो गयी। पर्याय भी, हों! तो उसे कहा कि '**मुक्तः एव**'। आहाहा! पूर्ण मुक्त नहीं परन्तु मुक्त जैसा है, ऐसा कहकर कहा।

यह तो निर्जरा अधिकार में भी आता है। लिखा है उसमें, पृष्ठ १२५, निर्जरा अधिकार। वहाँ साक्षात् मोक्ष लिया है। कलश है। निर्जरा अधिकार का दसवाँ कलश इसमें है। तब मिलाते-मिलाते लिख लिया होगा। निर्जरा अधिकार है न? (उसका) दसवाँ कलश है, दसवाँ। निर्जरा अधिकार, १४२ कलश। निर्जरा का दसवाँ, वैसे १४२। उसमें लिया है, देखो! ऊपर से पाँचवीं-छठी लाईन है। **कैसा है ज्ञानपद? कैसा है ज्ञानपद? 'साक्षात् मोक्षः'।** है? **प्रत्यक्षरूप से सर्वथा प्रकार से मोक्षस्वरूप है।** आहाहा! (जैसा) स्वरूप है, वैसी परिणति हो गयी तो उसे (मुक्त) कह दिया। आहाहा! साक्षात्। समझ में आया? बहुत गम्भीर। पूरे समयसार में एक-एक गाथा, एक-एक शब्द... ओहोहो! भगवान की सीधी वाणी। अनुभव, सम्यग्दर्शन सहित चारित्र की अनुभव की भूमिका में यह भगवान के पास सुना और यह आया है। आहाहा! हें? आहाहा!

यहाँ कहा '**हि सः मुक्तः एव**'। कहा न? '**हि सः मुक्तः एव**' ऐसा। **सम्यग्दृष्टि जीव... 'मुक्तः एव'। जैसे निर्विकार.... 'एव'** कहा सही न? इसलिए मुक्त कहा। **जैसे निर्विकार सिद्ध हैं वैसा है।** ऐसा। वह '**एव**' लिया था न? '**मुक्तः एव**' मुक्त की भाँति।

किसकी भाँति ? तो सिद्ध भगवान की भाँति, ऐसा। है ? '**मुक्तः एव**' शब्द-पाठ है न ? '**मुक्तः एव**' '**मुक्तः एव**' मुक्त की भाँति। **जैसे निर्विकार सिद्ध हैं वैसा है।** ऐसा। आहाहा! .राजमलजी ने ठीका भी कैसी की है! आहाहा! एक-एक शब्द की कीमत है, प्रभु! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ केवली विराजते हैं, उनकी वाणी है, उनकी गद्दी पर बैठकर अर्थ करना... भगवान! बड़ी पेढ़ी है भगवान की तो। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बहुत सरस! आचार्य की तो क्या बात करना, परन्तु राजमलजी ने टीका बनायी, वह बहुत सरस बनायी। राजमल, नाटक समयसार क्या कहलाता है ? बनारसीदास, टोडरमल। आहाहा! वस्तु की स्थिति का वर्णन है। अन्तर में बात बैठनी चाहिए, बापू! आहाहा! अकेली भाषा कुछ काम नहीं करती। आहाहा!

कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? 'परं जानन्' है न ? '**परं जानन्' जितनी है परद्रव्य की सामग्री उसका ज्ञायकमात्र है,...** है ? उसमें 'केवल' आया था न ? '**केवल जानाति**' वहाँ स्वामीपना लिया। स्वामी नहीं। यहाँ तो '**परं जानन्**' (लिया है)। आहाहा! **जितनी है परद्रव्य की सामग्री उसका ज्ञायकमात्र है,...** आहाहा! वह जाननेवाला है, ऐसा है। क्योंकि अपना स्वभाव ज्ञान और आनन्द है, ऐसा स्वसन्मुख होकर भान हो गया तो परसन्मुख के जितने रागादि हैं, उनका वह कर्ता-भोक्ता नहीं। '**परं जानन्**' कहा न ? केवल **ज्ञायकमात्र है,...** यहाँ लिया है, देखा! है न ? **ज्ञायकमात्र है,...** ज्ञायकमात्र है, ऐसा। **ज्ञायकमात्र है,...** आहाहा! शरीर, वाणी, मन की क्रिया होती है, वह तो जड़ से होती है, उसका भी ज्ञायकमात्र है और रागादि अशुद्धभाव होते हैं, उनका भी ज्ञायकमात्र, ज्ञायकमात्र है। आहाहा! समझ में आया ?

मिथ्यादृष्टि के समान स्वामीरूप नहीं है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को तो राग का स्वामित्व होता है। राग मेरा है, और राग से—शुभ करते-करते मेरा कल्याण होगा, (ऐसा मानता है तो) वह मिथ्यादृष्टि है, उसका उसे स्वामित्व है। अपना स्वस्वामीसम्बन्धपने का सम्बन्ध छोड़कर राग का स्वस्वामी हुआ। आहाहा! समझ में आया ? '**शुद्धस्वभाव-नियतः**' सम्यग्दृष्टि **शुद्ध चैतन्यवस्तु में... 'नियतः' आस्वादरूप मग्न है।** आहाहा! देखो! '**नियतः**' का अर्थ निश्चय किया है न ? '**नियतः**' अर्थात् निश्चय। निश्चय का

अर्थ अपने आनन्द का स्वाद है। आहाहा! वस्तु स्वरूप के स्वाद का यहाँ '**नियतः**' अर्थ किया। आहाहा! राग के स्वाद का कर्ता-भोक्तापना छोड़कर सम्यग्दृष्टि निज स्वरूप का स्वादिष्ट है। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, हसमुखभाई! मुम्बई में कुछ मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! हैरान... हैरान होकर मर जाये मुफ्त के। फिर करोड़पति, दस करोड़ और धूल करोड़। आहाहा! आहाहा!

ऐसा भगवान अन्दर... कहते हैं, वह तो '**नियतः**' **शुद्ध चैतन्यवस्तु में...** '**नियतः**' **आस्वादरूप मग्न है।** आहाहा! **किस कारण से?** '**करणवेदनयोः अभावात्**' किस कारण से ऐसा है? राग को करना और भोगना, ऐसा भाव **सम्यग्दृष्टि जीव के मिटे हैं...** '**अभावात्**' है न? आहाहा! क्योंकि राग के ऊपर की दृष्टि छूट गयी। दृष्टि जिसमें राग नहीं, वहाँ दृष्टि लग गयी है—ध्रुव पर। आहाहा! तो उसमें तो राग है नहीं, तो राग का कर्ता-भोक्ता मिट गया। आहाहा! '**अभावात्**' लिया न? '**करणवेदनयोः अभावात्**'।

भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यात्व संसार है,... अब जोर देते हैं। मिथ्यात्व, वह संसार है। आहाहा! राग को अपना मानना और राग से लाभ मानना और राग पर दृष्टि है, वह संसार, मिथ्यात्व है। वही संसार है। संसार छोड़ा, ऐसा कहते हैं न? स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब छोड़े तो संसार छोड़ा? नहीं... नहीं... नहीं। संसारपर्याय अपने से भिन्न नहीं रहती। संसार पर्याय है तो अपनी पर्याय अपने से भिन्न नहीं रहती। विकारी पर्याय अपने में है, वह संसार है। आहाहा! **मिथ्यात्व के मिटने पर जीव सिद्धसदृश है।** आहाहा! मिथ्यात्व का नाश होने पर सिद्धसदृश है। सिद्धपना भले अभी नहीं, परन्तु सिद्धसदृश कहा गया है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक-०३-०२-१९७८, कलश-१९८, १९९, प्रवचन-२२२

कलशटीका, १९८ (कलश के) अन्तिम थोड़े शब्द हैं न? १९८ भावार्थ। **भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यात्व संसार है,...** पाठ में '**मुक्त एव**' कहा है न? अन्तिम शब्द। संसार कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं रहता। संसार, वह आत्मा की भूल है तो भूल अपने से भिन्न नहीं रहती। वह भूल क्या? राग की एकताबुद्धि। '**करणवेदन**' (पाठ) है न? राग का करना और वेदना, उससे रहित भाव, वह सम्यग्दृष्टि। और राग का करना और वेदना, वह मिथ्यादृष्टि। वह मिथ्यात्व ही संसार है। कहते हैं न, स्त्री, कुटुम्ब छोड़कर, दुकान छोड़ी, उसने संसार छोड़ दिया। हें? परन्तु संसार उसमें कहाँ था? पर के त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति। आत्मा में ऐसी एक शक्ति है कि पर का त्याग और ग्रहण उसमें है ही नहीं। पर का त्याग-ग्रहण कैसे हो? वह तो अनादि से है ही। पर का त्याग है, ग्रहण तो है नहीं। पर के त्याग-ग्रहणरहित ऐसी शून्यत्व शक्ति आत्मा में है। ४७ शक्तियों में त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति उसका नाम है। आहाहा! यहाँ तो राग का त्याग और स्वभाव का अनुभव, उसका नाम त्याग और ग्रहण है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जिसने राग का त्याग नहीं किया। किसमें से? अपनी ज्ञान की पर्याय में से। राग जो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, उससे ज्ञान की पर्याय भिन्न नहीं की और एकत्व किया। राग के आधीन होकर पर्याय को राग के साथ एकत्व किया, वही मिथ्यात्व है और वही संसार है। आहाहा! अनन्त काल से भटकता है तो इस दृष्टि से भटकता है। कहते हैं कि मिथ्यात्व, वह संसार है। है न? मिथ्यात्व का अर्थ यह। इसकी पर्याय में निश्चय से तो भगवान ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय में आबालगोपाल सबको स्व ही ज्ञात होता है। क्या कहा? आबालगोपाल की ज्ञान की पर्याय में... समयसार १७वीं गाथा, १७-१८ (गाथा)।

वर्तमान ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य होने से ज्ञान की पर्याय में स्व ही जानने में आता है। स्व वस्तु ही ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होती है। अज्ञानी को और सब आबाल-गोपाल को। तब ऐसा क्यों नहीं जानता? कि ज्ञान की पर्याय जो है, भले अज्ञानी की पर्याय हो परन्तु पर्याय का स्वभाव, ज्ञान की पर्याय है न?

तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है न? तो ज्ञान की पर्याय में स्वद्रव्य का ज्ञान तो अज्ञानी को भी होता ही है। अरे... अरे...! ऐसी बात।

१७-१८ गाथा है। आबाल-गोपाल को ज्ञान की पर्याय में... समयसार, टीका में है, मूल पाठ में थोड़ा है। टीका में है—आबाल-गोपाल १७वीं गाथा है न?

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥१७॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥१८॥

इसके अर्थ में स्पष्टीकरण किया। अस्ति से है। टीका में नास्ति से स्पष्टीकरण किया। **जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** इसकी टीका **जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** तीसरा पेराग्राफ है। **आबाल-गोपाल सबके सदाकाल अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** आहाहा! क्या कहा? सब जीव, आबाल-गोपाल—बालक से लेकर वृद्ध, सबको उनकी ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय वस्तु है, वही जानने में आती है। अपनी चीज़, हों! द्रव्य। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से आबाल-गोपाल सबको सर्व काल पर्याय में पूर्ण द्रव्य ज्ञेय है, वही जानने में आता है, तथापि उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है। अज्ञानी की दृष्टि राग के ऊपर है। दया, दान, व्रतादि का जो शुभरागादि विकल्प है, उसके ऊपर दृष्टि है, इस कारण से पर्याय में पूरा ज्ञेय पूरा तत्त्व द्रव्य, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु पर्याय में जानने में तो आता है, परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है, उसकी दृष्टि वहाँ रागरुचि, पर्यायबुद्धि में राग में है, इस कारण से उसे ख्याल में नहीं आता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञात होने पर भी ख्याल में नहीं आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, अज्ञान के कारण ख्याल में नहीं आता। कहा न यह तो? कि राग की रुचि के प्रेम में, ज्ञान की पर्याय में सब आबाल-गोपाल सबको आत्मा ही जानने में आता है, ऐसा होने पर भी। ऐसा यहाँ कहा न? देखो न! **उसके अभाव के कारण... अज्ञानी को 'यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'... उसके अभाव के**

कारण, नहीं जाने हुए का श्रद्धान गधे के सींग के समान होने से... देखो! **निश्चय से मूढ़ जो अज्ञानी... बन्ध के वश पर (द्रव्यों के) साथ एकत्व के निश्चय से...** यह टीका है, बहुत स्पष्ट है। क्या कहते हैं? कि आबाल-गोपाल को। आबाल-गोपाल अर्थात् आ-बाल (अर्थात्) बालक से लेकर गोपाल अर्थात् वृद्ध। सबको ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय स्वप्रकाश में आता है। वह ज्ञेय जो पूर्ण द्रव्य है न? वही स्वप्रकाश में आता है। अज्ञानी को भी आता है, आबाल-गोपाल सबको। तथापि उसकी दृष्टि वहाँ नहीं। दृष्टि वह राग के ऊपर है। राग—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि मैं करूँ, रचूँ, भोगूँ, यह दृष्टि वहाँ है तो पर्याय में पर्यायवान द्रव्य जानने में आता है, तथापि उसकी दृष्टि में राग आया। आहाहा! यशपालजी! सूक्ष्म है, भैया बात तो ऐसी है। आहाहा! टीका में बहुत स्पष्ट किया है।

आबाल-गोपाल सबको सदाकाल... और सबको ऐसा पाठ है। आहाहा! समझ में आया? अभी पहले शुरुआत में कहा था न? पण्डितजी के साथ बात करते थे। कहा, राग है न राग, राग से भिन्न करे तो ज्ञान की पर्याय में ज्ञान की पर्याय पूर्ण को जानती है। राग से भिन्न करे तो दृष्टि वहाँ जाती है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य इतना है। पर्याय का, हों! परन्तु राग से भिन्न होकर पर्याय का लक्ष्य (वहाँ) जाये तो उस पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, तो लक्ष्य वहाँ द्रव्य पर जाता है। क्या कहा? ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो मूल बात है, भाई!

ऐसा क्यों नहीं होता? आबाल-गोपाल को पर्याय में आत्मा जानने में आता है, तो भी क्यों जानने में नहीं आता? कहते हैं, राग के वश होकर। बन्ध के वशात्। दृष्टि वहाँ पड़ी है। समझ में आया? यह है, देखो! **अनादि बंध के वश...** ऐसी टीका है। अनादि बन्ध के वश पड़ा है तो उसकी पर्याय में ज्ञेय आने पर भी जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अपने बहुत बार बात हो गयी है, परन्तु यह तो सहज यह बात करनी थी कि राग के वश होता है, इस कारण से पर्याय में ज्ञेय ज्ञात होने पर भी जान नहीं सकता। और धर्मीजीव राग से ज्ञान की पर्याय को भिन्न की तो उस पर्याय में ज्ञेय—आत्मद्रव्य ही जानने में आया है। वहाँ भिन्न किया तो द्रव्य पर उसका लक्ष्य गया। उस

पर्याय में द्रव्य जानने में आया है। उस पर्याय में द्रव्य आया नहीं, पर्याय में द्रव्य आया नहीं। इस ओर पर्याय में राग भी आया नहीं। राग आया नहीं, तथा द्रव्य आया नहीं। परन्तु राग से भिन्न करके ज्ञान की पर्याय पकड़ती है, वहाँ उस पर्याय में पर्यायवान जानने में आता है, वहाँ दृष्टि जाती है। उसका ज्ञान होता है। अरे! ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

इसमें तो आबाल-गोपाल पाठ लिया है। है? **अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा आबाल-गोपाल सबको सदाकाल स्वयं ही अनुभव में आने पर भी...** देखा? आहाहा! पोते अर्थात्? स्वयं। आहाहा! क्योंकि ज्ञान की पर्याय का... बापू! यह तो धीरज की बातें हैं। यह कोई (कथा, वार्ता नहीं)। ज्ञान की पर्याय में, ज्ञानगुण त्रिकाली है, उसका स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, परन्तु वह तो ध्रुवरूप है और पर्याय में परिणमन में, ज्ञान की पर्याय में स्व-परप्रकाशक जानने की सामर्थ्य है, सामर्थ्य है तो पर्याय स्व को जानती ही है। आबाल-गोपाल सबको, अज्ञानी को भी। परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ क्यों नहीं जाती? कि, वह राग के आधीन हो गया है। पर्याय में राग, विकल्प है, उसका कर्ता-भोक्ता होकर उसके आधीन हो गया है। उसके आधीन होकर पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है तो द्रव्य भी जाना नहीं और ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य कितना है, उसे भी नहीं जाना। आहाहा! ऐसा है, बापू! यह अन्दर की बातें हैं। सूक्ष्म पड़े परन्तु अब (क्या हो)? समझ में आया? यह कहा।

यहाँ कहते हैं, '**करणवेदनयोः**' आहाहा! यह बुद्धि जहाँ छूट गयी तो राग से ज्ञान की पर्याय भिन्न हुई, राग से भेदज्ञान हुआ तो उस पर्याय में जानने में आती (स्व) चीज़ तो ज्ञात होती थी परन्तु इसका लक्ष्य वहाँ नहीं था, इसलिए जानता नहीं था, तो पर्याय राग से भिन्न की, उस पर्याय में ज्ञेय पूरा द्रव्य ज्ञात होता था, तो यह पर्याय ज्ञेय का ज्ञान करती है, (उसमें) अपना भी ज्ञान है और उसका भी ज्ञान है, ऐसे सामर्थ्य की प्रतीति आने से द्रव्य की दृष्टि हो गयी। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग के ऊपर से लक्ष्य नहीं छूटे तो दृष्टि किस प्रकार करनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि से राग के ऊपर जाता है। राग से भिन्न करे,

पर्याय पर लक्ष्य जाये, राग को भिन्न करे तो ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है तो वह भी ज्ञात हो गया कि पर्याय का इतना सामर्थ्य है। पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि अज्ञानी को भी पर्याय में ज्ञेय पूरा द्रव्य ही जानने में आता है। आहाहा! अनादि से आबाल-गोपाल को सबको और सदाकाल, ऐसा पाठ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा होने पर भी, ऐसा पाठ है न? देखो! उसमें ऐसा पाठ है।

राग और बन्ध के वश। दृष्टि वहाँ अनादि से है। अन्दर चीज़ क्या है और उस ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य क्या है, उसकी प्रतीति की ही नहीं। आहाहा! मुनिव्रत लिये, बाह्य त्याग किया, सब क्रिया (की)। अभी आयेगा। बाद की गाथा में आयेगा, कलश में आयेगा। १९९ कलश में (आयेगा)। परन्तु ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य इतना है कि राग को अपना मानता है, वह तो मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! परन्तु वह ज्ञान की पर्याय स्वद्रव्य को भी जानती है और राग को भी, राग में एकत्व हुए बिना राग को भी जानती है। ऐसा पर्याय में स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य है, ऐसी प्रतीति होने पर पूरे ज्ञेय की प्रतीति उसमें हो गयी। आहाहा! समझ में आया? और वह मिथ्यात्व टलने से संसार गया। वह यहाँ (कहते हैं), मिथ्यात्व गया तो संसार गया। क्योंकि मिथ्यात्व, वही संसार है। आया है न अन्त में? आहाहा! इस मूल चीज़ की बात है। स्थिरता किस प्रकार हो, वह तो बाद में, परन्तु यह मूल चीज़ है। आहाहा! मूल चीज़ की जहाँ खबर नहीं, वहाँ (स्थिरता कैसी?) और जो चीज़ जानने में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? गधे के सींग जैसी है। जो चीज़ जानने में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा किस प्रकार करना? आहाहा!

पर्याय में राग से जब एकत्व किया है तो पर्याय में ज्ञेय ज्ञात होने पर भी उसकी बुद्धि राग के वश हो गयी है। आहाहा! तो वह नहीं जानता स्व को और नहीं जानता यथार्थ पर को। समझ में आया? और राग से यथार्थरूप से भिन्न होकर, '**करणवेदनयोः**' भिन्न होकर, यह आ गया न? '**करणवेदनयोः अभावात्**' है न? **सम्यग्दृष्टि जीव के मिटे हैं...** यह '**करणवेदनयोः**' मिट गया। आहाहा! सूक्ष्म है। अन्दर शल्य है, वह मिथ्याशल्य है। दूसरा सब तो बाद में, परन्तु इस राग से लाभ होगा, शुभराग की क्रिया करता है तो मुझे लाभ होगा, ऐसी एकत्वबुद्धि है, वह महामिथ्यात्व शल्य है। इस कारण

उसकी दृष्टि ज्ञान की पर्याय में आत्मा ज्ञात होने पर भी जान नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? सेठजी! भाषा समझ में आती है? किसी समय थोड़ी-थोड़ी गुजराती आ जाती है। कहाँ गया इनका लड़का? आहाहा! समझ में आया या नहीं? सेठ के पुत्र हैं न! आहाहा! कैसे समझ में आये, ऐसा पूछते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय में—ज्ञान की पर्याय में राग का '**करणवेदनयोः**' जो है, वही मिथ्यात्व है और वही संसार है और जिसका मिथ्यात्व छूट गया। यह आया न? देखो! **मिथ्यात्व के मिटने पर जीव सिद्धसदृश है।** आहाहा! फिर पर्याय में राग की एकत्वबुद्धि छूट गयी और राग से ज्ञान की पर्याय को भिन्न किया तो पर्याय में ज्ञेय जानने की सामर्थ्य है, वह भी ख्याल में आ गया कि इस पर्याय की सामर्थ्य द्रव्य को जानने की है और इस पर्याय की सामर्थ्य राग को राग में एकमेक हुए बिना, राग की अस्ति है तो ज्ञान हुआ है—ऐसा भी नहीं, यह राग, व्यवहार हो, परन्तु अपनी पर्याय अपने से स्व का ज्ञान करते हुए पर का ज्ञान अपनी सामर्थ्य से होता है। आहाहा! वह सिद्धसदृश है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा विशाल सभा में रखे तो लोगों को ऐसा लगे कि यह क्या बोलते हैं? पागल जैसा लगे। यहाँ तो निश्चिन्तता की वसतु है। बाहर में दो-चार हजार लोग आवे और देखे कि यह क्या कहते हैं यह वह? पागल जैसी बातें करते हैं। लगे ऐसा, हों! परमात्मप्रकाश में कहा है, हें?

मुमुक्षु : आपकी बातें इतनी दूर से सुनने आये हैं। पागल जैसा क्या लगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो बड़े शहर की बात है। बड़े शहर में पाँच-पाँच हजार, दस हजार लोग आते हैं। मुम्बई में दस-दस हजार लोग व्याख्यान में (आते हैं)। ऐसा लगावे तो कहे, क्या कहते हैं यह? भोपाल में चालीस हजार लोग आठ दिन के व्याख्यान में। बापू! वहाँ तो अमुक बात को बहुत स्पष्ट करते... करते... करते... करते... कितना स्थूल करना पड़े। बात तो यह आवे। यहाँ तो थोड़े में भी बहुत आ जाता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **मिथ्यात्व संसार है,...** भाषा देखो! फिर अव्रत और प्रमाद, कषाय, योग रहे न? वह तो अल्प संसार की स्थिति है, उसकी गिनती नहीं है। उससे

अल्प रस, स्थिति पड़ती है, उसे यहाँ गिनने में आया नहीं। और वास्तव में तो सम्यग्दर्शन होने के बाद राग आता है, उसे भी परज्ञेयरूप से जानता है। अर्थात् वह तो स्वयं राग से भिन्न ही है और स्वभाव से एकत्व है तो सिद्धसदृश है। आहाहा! समझ में आया? पाठ में है न? '**स हि मुक्त एव**' कलश में है न? चौथा अन्तिम पद। '**स हि मुक्त एव**' कलश में है, उसका यह अर्थ है। अन्तिम, अन्तिम। मूल श्लोक का अन्तिम शब्द। आहाहा! अब १९९ कलश।

यह तो भगवान की वाणी है, बापू! मुनियों की सन्तों की। यह कहीं कोई कथा, वार्ता नहीं। यह तो एक-एक शब्द में महान गम्भीरता पड़ी है। आहाहा! एक-एक शब्द में अनन्त-अनन्त आगम रहे हैं, ऐसी यह वाणी है। यह कोई कल्पना से बनायी हुई चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब १९९।

कलश - १९९

(अनुष्टुप्)

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ।।७-१९९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तेषां मोक्षः न' [तेषां] ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को [न मोक्षः] कर्म का विनाश, शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं है। कैसे हैं वे जीव? 'मुमुक्षतां अपि' जैनमताश्रित हैं, बहुत पढ़े हैं, द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं, मोक्ष के अभिलाषी हैं, तो भी उन्हें मोक्ष नहीं है। किनके समान? 'सामान्यजनवत्' जिस प्रकार तापस, योगी, भरड़ा इत्यादि जीवों को मोक्ष नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जैनमतआश्रित हैं, कुछ विशेष होगा, सो विशेष तो कुछ नहीं है। कैसे हैं वे जीव? 'तु ये आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति' [तु] जिस कारण ऐसा है कि [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव, [आत्मानं] जीवद्रव्य को [कर्तारं पश्यन्ति] वह ज्ञानावरणादि कर्म को — रागादि अशुद्धपरिणाम को करता है, ऐसा जीवद्रव्य का स्वभाव है — ऐसा मानते हैं, प्रतीति करते हैं, आस्वादते हैं। और कैसे हैं? 'तमसा ततः' मिथ्यात्वभाव — ऐसे अन्धकार से व्याप्त हैं, अन्ध हुए हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि वे महामिथ्यादृष्टि हैं जो जीव का स्वभाव, कर्तारूप मानते हैं; कारण कि कर्तापन, जीव का स्वभाव नहीं है; विभावरूप अशुद्धपरिणति है, सो भी पर के संयोग से है, विनाशीक है।।७-१९९।।

कलश - १९९ पर प्रवचन

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ।।७-१९९।।

आहाहा! **'तेषां मोक्षः न' ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को कर्म का विनाश, शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं है।** आहाहा! जहाँ मिथ्यात्व का नाश नहीं तो उसे सर्व कर्म का नाश होता ही नहीं। वह तो संसार में भटकेगा। कैसा है? देखो! **ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को कर्म का विनाश,...** अर्थात् **शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं है। 'न मोक्षः'** है न इसलिए (ऐसा कहा)।

कैसे हैं वे जीव ? 'मुमुक्षतां अपि' जैनमताश्रित हैं,... जैन को माननेवाले हैं। जैन देव-गुरु-शास्त्र को माननेवाले जैन हैं, तो भी मिथ्यादृष्टि हैं। क्यों ? **बहुत पढ़े हैं,...** बहुत पढ़ा है, बहुत शास्त्र पढ़े हैं। उसमें क्या हुआ ? है ? ऐसे जीव को स्वरूप की प्राप्ति नहीं है। कैसे (जीव को) ? '**मुमुक्षतां अपि**' वह मुमुक्षु है। मुमुक्षु अर्थात् **जैनमताश्रित है...** जैन मत के आश्रित है। **बहुत पढ़ा है...** जानपना भी बहुत है, उसमें क्या हुआ ? और **द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं,...** दया, दान, व्रतादि के परिणाम बराबर पालन करते हैं, द्रव्यचारित्र। समझ में आया ? ब्रह्मचर्य पालते हैं, शरीर से आजीवन बालब्रह्मचारी भी होते हैं। जैनमताश्रित मुमुक्षु जैनमताश्रित है परन्तु दृष्टि की खबर नहीं और बहुत पढ़ा है, एक बात।

द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं,... एक बात। वह **मोक्ष के अभिलाषी हैं...** उसे ऐसा है कि मुझे मोक्ष लेना है, मोक्ष लेना है। परन्तु ऐसा लेना है, लेना है, वस्तुदृष्टि बिना ? (मोक्ष के) **अभिलाषी हैं तो भी उन्हें मोक्ष नहीं है।** आहाहा ! समझ में आया ? है ? जिसे राग के विकल्प की एकता टूटती नहीं और '**करणवेदनयोः**' मैं राग का करण-कर्ता और वेदन में पड़ा है, वह जैनमताश्रित हो, सम्प्रदाय में हो, बहुत पढ़ा हो और द्रव्यक्रिया भी करता हो, आजीवन बालब्रह्मचारी हो, उसमें क्या हुआ ? वह तो अनन्त बार किया है। बालब्रह्मचारी तो शुभभाव, राग है। ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप, उसका चर्य अर्थात् चरना, आनन्द में रमना तो है नहीं। समझ में आया ? यह कहते हैं।

द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं, मोक्ष के अभिलाषी हैं तो भी उन्हें मोक्ष नहीं है। आहाहा ! वस्तु की दृष्टि की जहाँ खबर नहीं, सम्यग्दर्शन किसे कहना ? और सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है ? इसके बिना सब बात थोथा है। पढ़ा, गुना, चारित्र क्रिया सब (थोथा है)। कठिन पड़े लोगों को, क्या हो ? आहाहा ! उपमा देते हैं।

किनके समान ? 'सामान्यजनवत्' ईश्वर को कर्ता माननेवाले होते हैं न सामान्यजन ! जगत का कर्ता ईश्वर है, ऐसा माननेवाले। पाठ में यह है, मूल पाठ में। **'सामान्यजनवत्' जिस प्रकार तापस, योगी, भरड़ा इत्यादि जीवों को मोक्ष नहीं है।** मिथ्यादृष्टि को। वेदान्त माननेवाला, ईश्वर को कर्ता माननेवाले को जैसे मोक्ष नहीं, उसी प्रकार इस जीव को भी मोक्ष नहीं। जैनमताश्रित पढ़ा, गुना है, द्रव्यचारित्र पालता है, तो

भी वह मिथ्यादृष्टि है, उसे मोक्ष नहीं है, धर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जैनमतआश्रित हैं, कुछ विशेष होगा, सो विशेष तो कुछ नहीं है। जैनधर्म में तो है, जैनधर्म पालता तो है न व्यवहार क्रिया आदि? जैन के शास्त्रों का जानपना है, तो दूसरे की अपेक्षा इसमें कुछ अन्तर तो है या नहीं? कोई ऐसा कहता है। है? **कुछ विशेष होगा,...** (ऐसा) कोई कहे **सो विशेष तो कुछ नहीं है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जैनमतआश्रित हैं,...** जैन की क्रिया करता है, ब्रह्मचर्य पालता है, व्रत पालता है, आहाहा! जिनेश्वर ने कहे वैसे व्यवहार के व्रत पालता है... आहाहा! तो **कुछ विशेष होगा, सो विशेष तो कुछ नहीं है।** आहाहा!

कैसे हैं वे जीव? 'तु ये आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति' बस! यही (बात है)। पाठ में तो ऐसा लिया है, छह काय के जीव की दया मैं पाल सकता हूँ। मूल पाठ में यह है। चारित्र की व्याख्या। छह काय जीव है, एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (और त्रस) की दया मैं पाल सकता हूँ, उनकी रक्षा मैं कर सकता हूँ। तो जैसे ईश्वरकर्ता माननेवाला है, उसी प्रकार यह छह काय के जीवों की मैं दया पाल सकता हूँ, दोनों एक जाति की श्रद्धावाले हैं। वह सामान्यजन की व्याख्या है। मूल पाठ में वह है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गृहीत मिथ्यादृष्टि से तो इसमें कुछ अन्तर पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, इसे मानता है, वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है। साधुपना है नहीं, ऐसी क्रियाकाण्ड में श्रावकपना भी नहीं और मानता है कि हम श्रावक हैं। वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : कोई ऐसा हुआ हो कि मुनि हुआ और गृहीत मिथ्यात्व छोड़ा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहीत मिथ्यात्व छोड़ा हो परन्तु यहाँ तो यह भी नहीं। यहाँ तो गृहीत मिथ्यादृष्टि की तुलना में डालना है। समान कहा न? समान कहा न? देखो न! **किसकी भाँति?** ऐसा लिया है न! आहाहा! यहाँ तो भाई एक-एक शब्द की कीमत है। **किसकी भाँति?** वहाँ मूल पाठ में तो सामान्यजन का अर्थ यह लिया है कि ईश्वर का

कर्ता मानते हैं न? वे ईश्वर को कर्ता माननेवाले जीव और यह राग का कर्ता माननेवाला जीव, दोनों एक सरीखी दृष्टिवाले हैं। आहाहा! और वहाँ बन्ध अधिकार में तो ऐसा लिया है कि जो शास्त्र का ज्ञान है, वह शब्द का ज्ञान है, ऐसा वहाँ लिया है। वह आत्मा का ज्ञान नहीं। अज्ञानी को शास्त्र का ग्यारह अंग का ज्ञान हो तो वहाँ पाठ ऐसा लिया है कि वह शब्दज्ञान है, शब्द का ज्ञान है, शब्द का ज्ञान है। ऐसा लिया है। और वहाँ नौ तत्त्व की श्रद्धा ली है, वहाँ नौ तत्त्व लिये हैं। कौन श्रद्धा? कि नौ तत्त्व। श्रद्धा कौन? कि नौ तत्त्व। ऐसा लिया है। वह नौ तत्त्व की श्रद्धा, भेदवाली, हों! वह मिथ्यादृष्टि है। और छह काय के जीव की दया वह चारित्र, ऐसा वहाँ लिया है। छह काय की दया। पाँच महाव्रत की बात नहीं की, एक लिया क्योंकि एक में चारों समा जाते हैं। छह काय की दया, छह काय की रक्षा करता हूँ। जैसे ईश्वर जगत का कर्ता (है, ऐसा मानते हैं), यह कहता है कि छह काय के जीव की दया का मैं कर्ता हूँ। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! बात तो ऐसी है, प्रभु! सत्य तो इस प्रकार से है। इसलिए समान कहा है। मूल पाठ में भी ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों की श्रद्धा एक सरीखी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सरीखी है, इसलिए एक समान है। है न? देखो न! '**आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति**' किस कारण से? **मिथ्यादृष्टि जीव जीवद्रव्य को कर्ता मानता है अर्थात् वह ज्ञानावरणादि कर्म को रागादि अशुद्ध परिणाम को...** इतना संक्षिप्त लिया है। पाठ में तो ऐसा पाठ है, छह काय के जीव की रक्षा कर सकता हूँ। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय की रखा कर सकता हूँ। तो जैसे जगत का ईश्वरकर्ता है, उसी प्रकार यह रक्षा करता हूँ, ऐसा मानता है तो उसका कर्ता हुआ। (दोनों) मिथ्यादृष्टि समान हैं। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े परन्तु क्या (हो)? भाई! सत्य तो यह है। हें? बात तो यह है। जँचे, न जँचे स्वतन्त्र है, जीव स्वतन्त्र है। आहाहा! भगवान के समवसरण में भी अनन्त बार गया था। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा। महाविदेह में तो तीर्थंकरों का कभी विरह नहीं होता। समवसरण में भी अनन्त बार गया। अनन्त बार गया, हीरा के थाल... आहाहा! कल्पवृक्ष के फूल, मणिरत्न के दीपक (लेकर गया)... जय भगवान! ऐसी पूजा, भक्ति भगवान की अनन्त बार की। वह तो परद्रव्याश्रित शुभभाव है। आहाहा! जैनमताश्रित

ऐसा हो तो भी मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि वह राग का कर्ता मानता है। ईश्वर को जगत का कर्ता मानता है, यह छह काय की रक्षा करने का मानता है—दोनों समान हैं।

मुमुक्षु : दया पालने का चारित्रव्रत में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दया पालने का नहीं आता। वह जरा शुभराग आता है, बस! इतना। पर को न मारूँ, ऐसा शुभराग आता है, वह व्यवहार है। तीन काल में पर की दया कोई पाल नहीं सकता। परद्रव्य की पर्याय की रक्षा कौन करे? आहाहा!

यहाँ तो पर की दया का भाव आया, वह राग है, बस इतना। उस राग को व्यवहार कहा जाता है। किसे? जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान स्व के आश्रय से अनुभव हुआ हो, उसके राग को व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? पर की दया पाल सकता हूँ, ऐसा न माने और राग हुआ तो मुझे लाभ हुआ, ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है, क्या हो? एक-एक श्लोक में कितनी गम्भीर बात पड़ी है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, दिगम्बर कोई भी शास्त्र लो, सत्य के रहस्य से भरपूर हैं। दूसरे अनुयोग भले हो, दूसरे अनुयोग में तात्पर्य तो वीतरागता बतलानी है न! आहाहा! हें?

मुमुक्षु : राग को तो पालना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को पालता है, वही मिथ्यादृष्टि है—ऐसा कहते हैं। अनादि से करता है। आहाहा! रक्षा की, मैंने राग की रक्षा की, राग की रक्षा। वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

ज्ञानावरणादि कर्म को रागादि अशुद्ध परिणाम को करता है, ऐसा जीवद्रव्य का स्वभाव है—ऐसा मानते हैं,... जीवद्रव्य का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा नहीं मानता, मैं पर की दया पाल सकता हूँ, ऐसे राग का कर्ता होना, वह मेरा स्वभाव है—ऐसा मानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे जीव को बचाना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बचा सकता है? तीन काल में बचा नहीं सकता। उसके आयुष्य की स्थिति पूरी हो तो देह छूट जाती है। आयुष्य हो और लाख उपाय दूसरे करे

तो मरता नहीं। जिस क्षण में, जन्मक्षण में उसका उत्पत्ति का काल है, देह छूटने का (काल है) उस क्षण ही छूटेगी, तुझसे नहीं छूटेगी और उसमें रहेगा, शरीर में रहने की जब तक योग्यता है, आयुष्य के कारण (रहता है), ऐसा कहना भी निमित्त है परन्तु अपने आत्मा की शरीर में रहने की जितनी योग्यता है, उतना ही रहेगा, उसमें कोई दूर कर सके या जिला सके, ऐसा तीन काल में नहीं है। बहुत कठिन काम, भाई! दुनिया से तो बात अलग है। यह तो सर्वज्ञ जिनेन्द्र प्रभु वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का यह हुकम है। आहाहा! है?

ऐसा **आस्वादता है...** तीन शब्द लिये। **ऐसा जीवद्रव्य का स्वभाव है...** राग करना, वह तो जीव का स्वभाव है, करने का हमारा भाव है, ऐसा। **ऐसा मानते हैं, प्रतीति करते हैं, (और राग को) आस्वादते हैं।** आहाहा! राग का ही अनुभव है। आत्मा के आनन्द का वहाँ अनुभव नहीं। आहाहा! शास्त्र में लिखा है या नहीं? यशपालजी! यह कहीं सोनगढ़ का है? यह सोनगढ़ का है या....?

मुमुक्षु : यहाँ से प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जहाँ से प्रकाशित हुआ हो। अरे! भगवान! क्या करता है? बापू! छाप चाहे जो हो। यह यहाँ प्रकाशित हुआ है? यह हिन्दी? फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री अनुवादक हैं। दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट है। हमको तो यह भी खबर नहीं। यहाँ कौन देखे? किसी को कहा नहीं कि तुम छपाओ। छपाकर लावे तब देखते हैं।

मुमुक्षु : किसी ने फेरफार किया हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : फेरफार करे, अपनी दृष्टि से करे तो करे। यहाँ तो बहुत गुप्तरूप में कहने आते हैं। यह शान्तिभाई गुजर गये न? वे शान्तिभाई मेरे पास एकान्त में आये थे, मुझे लाख रुपये देना है। मैंने कहा, मैं कुछ जानता नहीं। वे गुजर गये न? २०-२५ दिन पहले अन्दर आये थे। मुझे लाख रुपये देना है। कहा, कहाँ देना है? हमने कभी किसी को कहा नहीं। फिर पचास हजार अपने यह सूक्ष्म व्याख्यान चले थे न? पचास हजार उसमें और पचास हजार ऐसा कहते थे। आयेंगे अभी। यहाँ तो बहुत

लाखों रुपये गुप्तरूप से देते हैं। एक व्यक्ति आया था, पाँच मिनिट बैठा। पैसे रखे। मैंने कहा कितने होंगे? दो-पाँच हजार होंगे? देखा तो पचास हजार! नोट। यहाँ रखे। मैं अन्दर बैठता हूँ न वहाँ। दो-तीन वर्ष हुए। उसके समय में। साढ़े तीन वर्ष हुए न? मैंने कहा, हजार, दो हजार होंगे। ऐसे नोट देखे वहाँ दस-दस हजार के पाँच=पचास हजार। कौन लेकर देता है? मैंने तो लेकर दे दिये रामजीभाई को, हमारे क्या? हमारे नोटों का क्या करना है? रामजीभाई को दे दिये। पचास हजार, लाख रुपये देते हैं। परन्तु उसमें क्या हुआ अब धूल में? लाख हो या करोड़ हो। आहाहा! उसमें राग मन्द किया हो तो पुण्य है, और पुण्य मेरी चीज़ है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! यहाँ तो इतनी स्पष्ट बात है, भाई! आहाहा

यहाँ यह कहा, **और कैसे हैं? 'तमसा ततः' मिथ्यात्वभाव ऐसे अन्धकार से व्याप्त हैं,...** अज्ञानी अन्धकार में पड़े हैं। यह शुभराग मेरा है और मुझे लाभ होगा, वह अज्ञान अन्धकार में पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्रतादि पालना या नहीं पालना?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या पाले? आता है, राग आता है, वह आस्रव है। व्यवहारनय से कथन में आवे, परन्तु राग है, वह तो विकार है। मैं पाल सकता हूँ, रख सकता हूँ, वह तो मिथ्यात्व है। आता है, निरतिचार व्रत पालना, ऐसा व्यवहारनय से कथन आता है। सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! अज्ञानी को तो है कहाँ? आहाहा! पुरुषार्थसिद्धिउपाय में तो ऐसा कहा, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव अपराध है। मूल पाठ है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय, अमृतचन्द्राचार्य (कृत)। जिस भाव से आहारकशरीर का बन्ध पड़े, वह भाव अपराध है। पर की दया का भाव, वह राग है, हिंसा है। ऐसा लिखा है, पाठ है। यह तो सत्य बात है, बापू! जगत से विपरीत है। आहाहा! यह कहा, नहीं?

महामिथ्यादृष्टि हैं... ऐसा कहा? आहाहा! **जो जीव का स्वभाव कर्तारूप मानते हैं; कारण कि कर्तापन जीव का स्वभाव नहीं है, विभावरूप अशुद्ध परिणति है; सो भी पर के संयोग से है,...** विभाव, राग वह पर के संयोग से है, वह निश्चय से अपनी यथार्थ परिणति है ही नहीं। उसे अपनी माने, वह महामिथ्यादृष्टि है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २००

(अनुष्टुप्)

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ।।८-२००।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् परद्रव्यात्मतत्त्वयो कर्तृता कुतः' [तत्] तिस कारण से [परद्रव्य] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गल का पिण्ड और [आत्मतत्त्वयोः] शुद्धजीवद्रव्य; इनमें [कर्तृता] जीवद्रव्य, पुद्गलकर्म का कर्ता; पुद्गलद्रव्य, जीवभाव का कर्ता—ऐसा सम्बन्ध [कुतः] कैसे होवे? अपितु कुछ नहीं होता। किस कारण से? 'कर्तृ-कर्मसम्बन्धाभावे' [कर्तृ] जीव, कर्ता; [कर्म] ज्ञानावरणादि, कर्म-ऐसा है जो [सम्बन्ध] दो द्रव्यों का एक सम्बन्ध, ऐसा [अभावे] द्रव्य का स्वभाव नहीं है, तिस कारण। वह भी किस कारण से? 'सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति' [सर्वः] जो कोई वस्तु है, वह [अपि] यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है तथापि [सम्बन्धः नास्ति] अपने-अपने स्वरूप है; कोई द्रव्य, किसी द्रव्य के साथ तन्मयरूप नहीं मिलता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। इस कारण जीव, पुद्गलकर्म का कर्ता नहीं है।।८-२००।।

पौष कृष्ण ११, शुक्रवार, दिनांक-०३-०२-१९७८, कलश-२००, २०१, प्रवचन-२२३

कलशटीका, २०० है न? २०० कलश है।

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ।।८-२००।।

'तत् परद्रव्यात्मतत्त्वयोः कर्तृता कुतः' तिस कारण से... यह कहेंगे। **ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गल का पिण्ड और... 'आत्मतत्त्वयोः' शुद्ध जीवद्रव्य,...** शुद्ध जीवद्रव्य। **इनमें जीवद्रव्य पुद्गलकर्म का कर्ता,...** ऐसा है नहीं। कर्म की पर्याय आत्मा करता है या शरीर की पर्याय आत्मा करता है, (ऐसा नहीं)। यह हलन-चलन की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं। **जीवद्रव्य पुद्गलकर्म का कर्ता, पुद्गलद्रव्य जीवभाव का कर्ता...** कर्म जीव को राग करावे, राग हो—ऐसा नहीं है। कर्म परद्रव्य है, भगवान आत्मा परद्रव्य है।

यहाँ पहले इतना तो सिद्ध किया कि, परद्रव्य इसे विकार कराता है, ऐसा नहीं। तथा आत्मा कर्म की पर्याय करता है, ऐसा नहीं है। यद्यपि अन्दर तो दूसरी चीज़ सिद्ध करनी है। वास्तव में तो यह भावकर्म का कर्ता भी आत्मा नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि परिणाम... कहेंगे। २०२ में है। मोह, राग, द्वेष अशुद्ध परिणति का कर्ता, यह अज्ञान से माना है। आहाहा! पुद्गलकर्म शरीरादि या कर्म की पर्याय आत्मा करता नहीं, करता नहीं और कर्म आत्मा को विकार कराता नहीं। विकार अज्ञानभाव से जीव अपनी भूल से, अपने को भूलकर, 'अपने को आप भूलकर' अज्ञानी विकार करे, परन्तु वह विकार कर्म करावे, कर्म उदय में आये इसलिए उस कर्म के कारण विकार होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? रत्नत्रय शुभराग है, पुण्य है, वह भी कर्म कराता है, ऐसा नहीं है। परद्रव्य कर्म जीव का भाव कैसे करे? अज्ञानभाव से यहाँ सिद्ध करना है न? रागादि का कर्ता अज्ञानी स्वयं से विकार का, व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता होता है। कर्म से विकार, शुभभाव हो और शुभभाव से शुद्धभाव हो, तब तो कर्म से मुक्ति का उपाय हुआ, ऐसा इसका अर्थ हुआ। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि पुद्गलकर्म को जीव नहीं करता और पुद्गलद्रव्य जीवभाव का कर्ता, **ऐसा सम्बन्ध कैसे होवे?** आहाहा! '**सर्वोऽपि सम्बन्धः**' यहाँ तो निषेध है। तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है न? परन्तु इसका अर्थ यह कि निमित्त भी कर्ता नहीं अर्थात् वास्तव में सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया? निमित्त हो, परन्तु निमित्त विकार करावे अथवा परद्रव्य की पर्याय होने में विकार, आत्मा निमित्त है तो आत्मा निमित्त है तो वहाँ कर्म की पर्याय होती है, आत्मा ने राग-द्वेष किये तो कर्म की पर्याय कर्म में हुई, ऐसा है नहीं। समझ में आया? क्योंकि कर्म परमाणु में कर्म होने की पर्याय का स्वकाल था, उसके कारण से कर्म की पर्याय होती है। जीव ने अज्ञानभाव से राग-द्वेष किये तो उसके कारण कर्म की पर्याय होना पड़ी, ऐसा नहीं। समझ में आया?

ज्ञानावरणीय छह कारण से बँधता है। छह कारण आते हैं न? निन्हव, असातना (इत्यादि) यह छह कारण हैं न तत्त्वार्थसूत्र में? वह भाव हुआ तो यहाँ ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध पड़ा, ऐसा नहीं है। तथा वह भाव, कर्म ने कराया है... छह प्रकार के हैं

न (जिससे) ज्ञानावरणीय बँधता है? छह प्रकार से दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय जो आठों कर्म के निमित्त विकार हैं न? वह विकार है तो यहाँ कर्म हुए, ऐसा नहीं है और कर्म यहाँ है तो उसके कारण यहाँ कर्म विकार कराते हैं, ऐसा भी नहीं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : दोनों मिले तो विकार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। दोनों कभी मिलते ही नहीं। मिले कहाँ से? दो के बीच में तो अभाव है। राग कर्म को छूता नहीं, कर्म का उदय जड़ पर्याय, राग को स्पर्श नहीं करता। धीरे भगवान, बात तो ऐसी है, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो अभी अज्ञानी विकार करता है, तो भी विकार के कारण वहाँ कर्म की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। वह तो उसके परमाणु में उस समय में विकार की पर्याय होने की योग्यता से हुई है। आहाहा! और यहाँ अज्ञानी जीव में जो विकार हुआ, पुण्य दया, दान, व्रत के परिणाम का कर्ता मैं हूँ, तो उस परिणाम का कर्ता कर्म है, कर्म ने वह परिणाम कराये हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! है?

'**पुद्गलद्रव्य जीवभाव का कर्ता**' ऐसा सम्बन्ध क्यों होगा? अर्थात् कुछ भी नहीं होता। किस कारण से? '**कर्तृकर्मसम्बन्धाभावे**' आहाहा! अभाव की व्याख्या तो ऐसी करेंगे कि आत्मा में वह स्वभाव नहीं। वास्तव में तो दया, दान का, व्यवहाररत्नत्रय का राग करना, उसका करना, ऐसा जीव का कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा! जीव की अनन्त शक्ति है, संख्या से अनन्त स्वभाव है और एक-एक शक्ति का अनन्त सामर्थ्य है, परन्तु वह कोई शक्ति ऐसी नहीं कि विकार करे। आहाहा! यह अज्ञानभाव से विकार अज्ञानी उत्पन्न करता है। वह कर्म से नहीं, स्वभाव से नहीं। आहाहा! समझ में आया? कर्म से विकार नहीं हुआ, स्वभाव से नहीं हुआ, स्वभाव में ऐसी कोई शक्ति नहीं। पर्याय में अपनी योग्यता से षट्कारकरूप परिणति पर्याय करती है, तो वहाँ अज्ञानी को विकार होता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, प्रभु! मार्ग तो ऐसा ही है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि '**कर्तृकर्मसम्बन्धाभावे**' **जीव कर्ता, ज्ञानावरणादि कर्म** -

ऐसा... यहाँ पहले जड़ से लिया है। क्योंकि यह परस्पर लेना है न? इसलिए ऐसा लिया है। जीव जड़ को करता नहीं, जड़ आत्मा की पर्याय को करता नहीं, ऐसा लिया है। फिर तो आगे २०२ कलश में स्पष्ट लेंगे कि विकार का कर्ता भी जीवस्वभाव, जीव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जो विकृतदशा होती है, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, तो यह पर्यायबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि पर का कर्ता होता है। वह निमित्त होता है और कर्म की पर्याय जो बँधती है, वह उसके कारण से है। कर्म कर्म के कारण से बँधते हैं।

ज्ञानी को कर्मबन्ध तो उसे भी है, दसवें गुणस्थान तक छह कर्म का बन्धन है। है या नहीं? दसवें में। आयुष्य और मोह दो नहीं है। दसवें में राग है, अंश है, छह कर्म बँधते हैं। परन्तु ज्ञानी राग का ज्ञाता रहता है और बन्ध हुआ, उसका भी ज्ञाता है। आहाहा! समझ में आया? यदि राग को उपादेय माने तो उसने आत्मा को हेय माना। यह परमात्मप्रकाश में आया है, कहा था। ३७ गाथा? हें? ३६ गाथा। परमात्मप्रकाश की ३६वीं गाथा है। जिसने राग को उपादेय माना, शुभराग, हों! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का... आहाहा! उसने आत्मा को हेय माना। आहाहा! परमात्मप्रकाश अभी वाँचन हो गया है। प्रत्येक गाथा यहाँ तो ४३ वर्ष से चलता है। समझ में आया? आहाहा!

नौवें ग्रैवेयक जो साधु जाते हैं, तो उनके पंच महाव्रतादि निरतिचार होते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का भान नहीं। राग की कर्ताबुद्धि है। है तो निरतिचार, व्रत-महाव्रत, हों! पाँच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण। आहाहा! नहीं तो ऊपर जा नहीं सकता। (क्योंकि) मिथ्यादृष्टि है। परन्तु वह राग का कर्ता होता है। ज्ञान का कर्ता (होता नहीं), आनन्द का स्वाद नहीं। आहाहा! आनन्द का स्वाद नहीं, इसलिए उसे राग का स्वाद है। है निरतिचार पंच महाव्रत, हों! परन्तु उसे राग का स्वाद है। आत्मा का स्वाद नहीं। क्योंकि राग को उपोदय मानकर वहाँ ही उसकी रुचि में रहा है। आहाहा! इस कारण से भगवान आनन्दकन्द प्रभु, राग को उपादेय माननेवाले को भगवान आत्मा हेय हो गया। यशपालजी! ऐसी बात है। आहाहा! और जिसने भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु को जिसने उपादेयरूप से सम्यग्दर्शन, ज्ञान में माना, उसका अनुभव किया, उसे राग हेय है।

व्यवहार आता है, सम्यग्दर्शन हुआ, मुनि हुआ तो भी राग, व्यवहार तो आता है या नहीं? परन्तु है हेय। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ वहाँ तक लेना कि कर्म विकार कराते नहीं। कराते नहीं, कहते हैं न? और विकार हुआ तो कर्मबन्धन हुआ, ऐसा भी नहीं है। छह कारण से ज्ञानावरणीय बँधता है। ज्ञानावरणीय तो समकिती को भी बँधता है। उसे छह बोल तो होते हैं। आहाहा! परन्तु धर्मीजीव उसका कर्ता नहीं होता, ज्ञाता रहता है। भाव और भाव से बन्ध-निमित्त-निमित्त सम्बन्ध, इन दोनों का जाननेवाला रहता है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? आहाहा! अज्ञानी उस राग का कर्ता होता है तो वहाँ कर्म की पर्याय कर्म के कारण से होती है। इसने राग किया, इसलिए कर्म की पर्याय हुई—(ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : राग न किया होता तो कर्मपर्याय नहीं हुई होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह प्रश्न ही नहीं। यह प्रश्न हुआ था। (संवत्) २००६ के वर्ष में तुम्हारे गाँव में—राजकोट में प्रश्न हुआ था। चुनीलाल मूलशंकर ने प्रश्न किया था। मूलशंकर नहीं? छह के वर्ष, छह (२००६) कितने वर्ष हुए? २८। २८ वर्ष पहले सभा में प्रश्न हुआ था कि राग न किया होता तो कर्म उत्पन्न नहीं होते, परन्तु यह प्रश्न ही कहाँ है? यहाँ तो राग करता है, बस! इतनी बात है। उस समय कर्म की पर्याय होती है, वह राग से हुई नहीं। राग नहीं करते तो कर्म में भी कर्म होने की योग्यतावाले परमाणु नहीं होते। अरे! प्रभु! क्या करे? समझ में आया? ऐसा कि राग न किया होता तो कर्म नहीं बँधते; इसलिए इतना तो हुआ या नहीं? कि नहीं, नहीं भाई! ऐसा नहीं, प्रभु! राग हुआ तो वहाँ बन्ध हुआ, वह उससे नहीं। वह तो पर्याय में होनेवाली पर्याय क्रमबद्ध में वही आनेवाली थी। परन्तु राग न करते तो? परन्तु न करने का प्रश्न कहाँ आया? राग तो है, इतनी बात तो सिद्ध करनी है। नहीं होता तो भी कर्म की पर्याय उससे नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? एक न्याय पलटे तो पूरा तत्त्व पलट जाता है, प्रभु! क्या हो? आहाहा! यह तो सर्वज्ञ तीन लोक के नाथ परमात्मा से मार्ग आया है। ऐसा है। आहाहा!

ज्ञानावरणादि कर्म - ऐसा है जो दो द्रव्यों का एक सम्बन्ध, ऐसा... 'अभावे'

शब्द में क्या लिया? देखो! दो द्रव्य के सम्बन्ध का अभाव। उसका अर्थ क्या लिया? **द्रव्य का स्वभाव नहीं है...** ऐसा। यह द्रव्य का स्वभाव नहीं। आहाहा! द्रव्य का स्वभाव कर्म की पर्याय करे, ऐसा नहीं और कर्म की पर्याय जीव को विकार करावे, ऐसा कोई स्वभाव नहीं। आहाहा! अभाव की यह व्याख्या की। यह तो मध्यस्थता से समझने की बात है, भगवान! यह कोई पण्डिताई और विद्वत्ता से अपनी बात मानना और उसे शास्त्र से सिद्ध करना, यह बात नहीं है। समझ में आया? यह तो भगवान त्रिलोकनाथ जैसी वस्तुस्थिति है, वैसा वर्णन करते हैं, ऐसा ज्ञानी मानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अभाव। **दो द्रव्यों का एक सम्बन्ध, ऐसा...** अभाव स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। यहाँ राग हुआ तो कर्मबन्धन हो, ऐसा स्वभाव ही नहीं और कर्म का उदय आया तो यहाँ राग करना पड़े, ऐसा कोई स्वभाव ही नहीं है। आहाहा! जैन में कर्म की विपरीतता ऐसी बड़ी घुस गयी है। स्थानकवासी, श्वेताम्बर में तो है ही। क्योंकि वे तो कृत्रिम शास्त्र हैं, परन्तु इसमें (दिगम्बर में) ऐसी स्पष्ट बात की है, उसमें भी विपरीतता यही है कि कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है। विकार आत्मा में तो है नहीं तो विकार कहाँ से हुआ? पर्याय में विकार कैसे हुआ? कि कर्म के कारण से हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर बहुत बीमार हो तो असातावेदनीय का उदय आया, ऐसा कहा जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से नहीं। वह तो निमित्त से कथन है। असातावेदनीय के परमाणु भिन्न हैं और शरीर की पर्याय भिन्न है तो असाता के उदय से यहाँ बुखार हुआ... ताव समझ में आता है न? बुखार। ऐसी बात है ही नहीं। आहाहा! क्योंकि असाता के उदय के रजकण भिन्न चीज़ है और इस शरीर में बुखार आया, वह भिन्न चीज़ है तो उस उदय से यहाँ बुखार आया, यह तो निमित्त का कथन करने के लिये बात करते हैं, परन्तु उस निमित्त से यहाँ हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? कर्म आत्मा को बुखार ला दे या यह रोग आता है न? क्षय का या

अनेक प्रकार के (दूसरे रोग आते हैं), उल्टी होती है, उल्टी, उल्टी कहते हैं न? वमन, तो ऐसा कर्म का उदय आया तो वमन हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा! क्योंकि वमन की पर्याय भिन्न है और कर्म के उदय के रजकण की पर्याय भिन्न है। तो वह पर्याय उससे करे, वस्तु का स्वभाव ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दो द्रव्यों का एक सम्बन्ध, ऐसा द्रव्य का स्वभाव नहीं है... आहाहा! **वह भी किस कारण से? 'सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति'** यह शब्द। आहाहा! एक द्रव्य को और दूसरे द्रव्य को **'सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति'** आहाहा! भगवान! (यह) कोई बात है! दो दिन पहले नहीं कहा था? यह पैर चलते हैं, वे जमीन को छूकर नहीं चलते। कल प्रश्न था न? भाई! दोपहर का। वार आता है, मुझे उसमें से दो शब्द निकालने थे। वारा है न? समुद्र। वारासि दोनों एक ही वाक्य है कि वारासि में दो भिन्न है? ऐसा। वा अर्थात् पानी और रासि अर्थात्.... पहले आया था। वा अर्थात् पानी, जल। राशि अर्थात् ढेर यह उदधि हुआ। ऐसा। ऐसे दो शब्द ख्याल में थे। यह कहा था। वा-रासि, वारासि। परन्तु वा अर्थात् पानी और रासि (अर्थात्) ढेर अर्थात् फिर उदधि हुआ। ऐसा। यह आया था, पहले आ गया। कलशटीका में, खबर है न? दिमाग में तो ख्याल में आया था। दो शब्द अलग है या एक ही वाक्य है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह दृष्टान्त आया है न? सागर में, समुद्र में जो तरंग उठती है, न तरंग? वह हवा आयी तो तरंग उठती है, ऐसा नहीं। माणेकचन्द्रजी सेठ! ऐसी बात है। यह आता है। समयसार में पाठ में आ गया है। ८३ गाथा, ८३ में है। समुद्र में तरंग उठती है तो हवा आयी तो तरंग उठती है, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : हवा निमित्त तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त की व्याख्या क्या? एक उपस्थित चीज़ है, परन्तु निमित्त उसे कहते हैं कि उसमें उससे हो नहीं। उससे हो तो निमित्त नहीं कहा जाता है, वह तो उपादान हो गया। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! यह तो सत्य वस्तु का स्वरूप है न, प्रभु! यह कहीं किसी ने बनाया है, ऐसा है? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! अरे! स्वयं को न जँचे, इससे कहीं वस्तुस्थिति पलट जायेगी? वस्तु तो जैसी है, वैसी है। आहाहा!

'**सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति**' आहाहा! एक द्रव्य को और दूसरे द्रव्य को '**सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति**' कठिन बात। आत्मा यहाँ शरीर के आधार से रहा है, ऐसा भी नहीं। आत्मा यहाँ कर्म के आधार से रहा है, ऐसा भी नहीं। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य के साथ सम्बन्ध ही नहीं। इसलिए शरीर में आत्मा रहा है तो कर्म है, उसके आधार से रहा है, ऐसा नहीं है। आत्मा अपने आधार से रहा है। आहाहा! निरालम्बी ऐसा निज आत्मद्रव्य। अपने समवसरण स्तुति में पण्डितजी ने बनाया है। भगवान तीर्थंकर का शरीर होता है न? नीचे अन्तरिक्ष रहता है। सिंहासन को भी स्पर्श नहीं करते। शरीर, हों! सिंहासन, कमल। सिंहासन पर कमल, कमल पर शरीर। उस कमल को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! अन्तरिक्ष।

हम गये थे, वहाँ अन्तरिक्ष में कहा था कि जो अन्तरिक्ष है, वह तो दिगम्बर का ही है, परन्तु विवाद करे तो क्या करना? श्वेताम्बर का अन्तरिक्ष है ही नहीं। सिंहासन और कमल और भगवान, ऐसी बात है ही नहीं। वहाँ अन्तरिक्ष नाम पड़ा है, इसका बड़ा विवाद करते हैं। वहाँ एक श्वेताम्बर साधु रुके हैं। मूर्तियों को बिगाड़ डालना और ऐसा करना। पत्र में आया है। अरे! भगवान! भाई! अन्तरिक्ष शब्द ही दिगम्बर का है। पण्डितजी! अन्तरिक्ष है न? तो अन्तरिक्ष तो कहाँ श्वेताम्बर में तो ऐसा है ही नहीं। मैंने वहाँ कहा था। अन्तरिक्ष, बापू! ऐसा है ही नहीं। यह तो न्याय से विचार करो। भगवान सवमसरण में सिंहासन पर कमल और कमल पर भी वे स्पर्श नहीं करते। उससे चार अंगुल ऊपर रहते हैं। आहाहा! वह अन्तरिक्ष... क्या कहलाता है? स्थल... स्थल, तीर्थस्थल। श्वेताम्बर तो यह है ही नहीं। श्वेताम्बर में तो पृथ्वी शिलापट है। उनके तो करोड़ों श्लोक देखे हैं न, सब टीकायें (देखी हैं)। पृथ्वी शिलापट है, वहाँ भगवान बैठते हैं, ऐसा आता है। अरे! ऐसे विवाद, बापू! क्या करे? भाई! सत्य को सत्य रीति से भी स्वीकार करना नहीं। क्या हो? कौन करावे? वह भी स्वतन्त्र प्राणी है। आहाहा! श्वेताम्बर में है, उपासक में है। मिथ्या बात है। समवसरण के अतिरिक्त भगवान कहीं विराजते नहीं। वे समवसरण में भी अध्धर (रहते हैं)। कमल को स्पर्श नहीं करते, फिर दूसरा प्रश्न कहाँ है? आहाहा! वहाँ किसी का आधार है? परमाणु परमाणु के

आधार से वहाँ रहे हैं। आहाहा! भगवान! सत्य तो ऐसा है, प्रभु! प्रभु का विरह पड़ा, इससे कहीं सत्य बदल जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : चातुर्मास के समय तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : रहते हैं परन्तु उन्हें कुछ ऐसा कल्प नहीं कि यहाँ रहना ही पड़े। वे तो कल्पातीत हैं। यह तो ठीक है। यहाँ तो मात्र अपने अन्तरिक्ष सिद्ध करना था। कमल पर अध्धर रहते हैं। उसकी पर्याय में, परमाणु में आधार नाम का एक गुण है तो उसके कारण से वहाँ रहा है। दूसरे को स्पर्श भी नहीं करते। पाँच हजार धनुष ऊँचे! पाँच हजार धनुष ऊँचे!! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, '**सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति**' है न? आहाहा! गजब बात करते हैं न! देखो! यह सन्तों की वाणी है, यह केवली की वाणी है। आहाहा! '**सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति**' अपने-अपने स्वरूप से है। आहाहा! है? **जो कोई वस्तु है,...** जो कोई वस्तु है—द्रव्य-गुण-पर्याय, **वह यद्यपि एकक्षेत्रावगाहरूप है...** एक चीज़ और दूसरी चीज़ आकाश के एकक्षेत्रावगाह है। एकक्षेत्रावगाह का अर्थ? आकाश का क्षेत्र एक है। बाकी स्व का क्षेत्र और पर का क्षेत्र तो भिन्न है। परमाणु का क्षेत्र और आत्मा का क्षेत्र भिन्न है। परन्तु एकक्षेत्रावगाह अर्थात् आकाश जहाँ है, वहाँ जीव है और वहाँ कर्म है, वे एकक्षेत्रावगाह हैं। समझ में आया? कहाँ आया?

एक क्षेत्रावगाहरूप है तथापि... देखा? तो भी। ऐसा होने पर भी। आहाहा! **अपने अपने स्वरूप है, कोई द्रव्य किसी द्रव्य के साथ तन्मयरूप नहीं मिलता है,...** आहाहा! अभावरूप है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में अत्यन्त अभावरूप है। अभावरूप है, वह भाव किस प्रकार करे? समझ में आया? एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य के बीच अत्यन्त अभाव है। अभाव है तो भावपर्याय पर की पर्याय कैसे करे? न्याय समझ में आता है? यह तो न्याय से (बात करते हैं), भगवान! आहाहा! समझ में आया?

एक क्षेत्रावगाहरूप है तथापि... 'सम्बन्ध नास्ति' आहाहा! यहाँ आत्मा है तो कहते हैं, वह कर्म के आधार से रहा ही नहीं। लो! शरीर के आधार से रहा नहीं। समवसरण स्तुति हमारे पण्डितजी ने लिखी है। 'जैसा निरालम्बन आत्मा, वैसा निरालम्बन

भगवान का शरीर।' वहाँ अन्तरिक्ष में है। पण्डितजी—हिम्मतभाई ने समवसरण की स्तुति बनायी है न? 'जैसा निरालम्बन आत्मा, वैसा निरालम्बन भगवान का शरीर।' भगवान का, अध्धर। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ किसी के अवलम्बन से रहा ही नहीं। एक जगह होने पर भी। यहाँ से आत्मा निकलता है तो आत्मा के कारण कर्म साथ आते हैं, ऐसा नहीं है। कर्म के परमाणु अपने कारण से वहाँ (जाते हैं)। उनमें क्रियावर्ती शक्ति है तो उसके कारण से कर्म, कर्म से जाते हैं, आत्मा आत्मा के कारण से (जाता है)। दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा है तो कर्म ऐसे गये, (ऐसा नहीं है)। श्रेणिक राजा नरक में गये तो नरकानुपूर्वी का उदय आया, तो वहाँ आत्मा ऐसे गया, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! समझ में आया? उस समय की जीव की पर्याय की ऐसी गति होने की योग्यता है। कर्म तो निमित्तमात्र है और पर के साथ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! गजब बात है! कठिन पड़े बात, बापू! क्या करे? भाई! आहाहा!

श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती (थे)। हीरा चूसकर देह छोड़ी (तो भी) समकित में दोष नहीं है। वह तो चारित्र का दोष था। यह बात देह के सम्बन्ध की इतनी की एक गुण की पर्याय में दूसरे गुण की पर्याय किस प्रकार हो? आहाहा! हीरा चूसकर मर गये न? सिर फूटकर। तो उससे क्षायिक समकित में इसके कारण से दोष है? ऐसा नहीं। आहाहा! क्योंकि रागदोष भिन्न है, समकित भिन्न है। आहाहा! यदि रागदोष के कारण समकित में दोष आ जाये तो राग हो, तब तक निर्मल समकित होगा ही नहीं, ऐसा होगा। समझ में आया? बात समझ में आती है? भाषा तो सादी हिन्दी करते हैं, होती है। अपने गुजराती भी थोड़ी-थोड़ी समझे। आहाहा!

कोणिक उनका पुत्र, कोणिक। कोणिक उनका पुत्र है न? श्रेणिक का पुत्र। अपनी गद्दी के लिये उन्हें जेल में डाल दिया। फिर उसकी माँ को खबर पड़ी। कोणिक माता को वन्दन करने गया। मैं तो राज करने बैठा हूँ, मेरे पिता को आज जेल में डाला। अरे रे! भाई! तूने क्या किया? तेरे पिता को तेरे प्रति इतनी प्रीति... प्रीति, प्रेम इतना था, तेरा जन्म हुआ तो तू मेरे गर्भ में था, तब मुझे ऐसा दोहला आया। दोहला को क्या कहते

हैं ? मनोरथ। मनोरथ हुआ कि श्रेणिक का कलेजा खाऊँ। ऐसा हुआ। श्रेणिक का कलेजा खाऊँ, ऐसा मनोरथ हुआ। फिर कहा, तब मुझे ख्याल था, इस कारण तेरा जन्म हुआ तो मैंने छोड़ दिया। क्या कहलाता है ? कचरे का ढ़ेर... कचरे का ढ़ेर। उकरडे को क्या कहते हैं ? कचरे का ढ़ेर। (उसमें) डाल दिया। वहाँ जन्मकर तुरन्त छोड़ दिया। वहाँ कूकड़ा आया। कूकडा नहीं कहते ? मुर्गा। (उसने) चोंच मारी। जन्मा था और चोंच मार (उसमें) पीव हो गया था, चिल्लाहट माचाये।

यहाँ श्रेणिक चेलना के पास गये। उसकी माता के पास (जाकर कहा), बालक कहाँ गया ? साहेब ! गर्भ में था तब मुझे ऐसा मनोरथ आया था, इसलिए मैंने छोड़ दिया। अरे ! यह क्या किया ? भले मनोरथ हुआ, उसमें क्या हुआ ? वहाँ गये। जहाँ डाल दिया था वहाँ गये। (बालक को) पीव (हो गया था)। पीव को क्या कहते हैं ? रसी। खून और पीव। श्रेणिक ने उठाकर उसे चूसा। अरर ! बालक को यह दु:ख होता है ! तेरे पिताजी ने ऐसा किया और तूने क्या किया ? तेरे जन्म के समय तेरे पिताजी ने ऐसा किया था। अर र ! मेरी बहुत भूल हुई, माँ ! मैं जाता हूँ। वह हथियार लेकर जेल में तो उन्हें छुड़ाने जा रहा था। श्रेणिक राजा को ऐसा लगा कि यह मुझे मारने आता है। समकित है परन्तु यह बाह्य का दोष हो जाता है। समझ में आया ? यह मुझे मारने आया। यह मार डालेगा क्योंकि मुझे जेल में डाला है। यह मुझे मार डालने आया है। (हीरा चूसा और) देह छूट गयी। क्षायिक समकित है। चारित्रदोष आया, उसे जानते हैं। आहाहा ! यह राग को और स्वभाव को कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? इस अपेक्षा से तो राग भी परद्रव्य है। भगवान स्वभाव स्वद्रव्य, वह द्रव्य भिन्न है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, '**सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति**' आहाहा ! **यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है, तथापि अपने अपने स्वरूप है, कोई द्रव्य किसी द्रव्य के साथ तन्मयरूप नहीं मिलता है,...** आहाहा ! उसमें आता है न ? भाई ! समयसार में। शिल्पी करता है परन्तु तन्मय नहीं है। शिल्पी अर्थात् कारीगर काम करता है, ऐसा पाठ है। करता है नहीं, शब्द ऐसा लिखा है। उसका विवाद किया है न ? रतनचन्दजी (मुखत्यार) उल्टा अर्थ करते

हैं। ऐसा कि, देखो! करते तो हैं या नहीं? वह तो करता है, ऐसा लोग देखते हैं, इसलिए कहा है। शिल्पी यह करता है परन्तु तन्मय नहीं होता। ऐसा पाठ है। मूल श्लोक। इसका अर्थ कि करता तो नहीं। लोग ऐसा मानते हैं कि देखो, यह करता है। क्या कहलाता है? जेवरात। गहने... गहने। स्वर्णकार करता है न? तो लोग देखते हैं या नहीं? करे क्या? छूता भी नहीं वह। हथौड़ा स्वर्ण को स्पर्श नहीं करता तो करे क्या?

मुमुक्षु : सोनी ने गहने नहीं किये?

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनी ने नहीं किये और गहने बनाये नहीं। आहाहा! रामजीभाई ने वकालत की नहीं। भाषा हुई थी, (तब) मानते थे कि मैंने की। वह अज्ञान था। यह तो वस्तु का स्वरूप है। यह कहीं किसी व्यक्ति की बात नहीं है। मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... उस समय तो वकालत करते होंगे, तब तो इनकी बड़ी छाप थी (सब वकीलो में)। लोग कहते थे, बड़े हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपने अपने स्वरूप है, कोई द्रव्य किसी द्रव्य के साथ तन्मयरूप नहीं मिलता है,...** यहाँ दूसरा कहना था कि शिल्पी करता है, ऐसा पाठ है। तो करता ही नहीं। करता है, यह तो लोग देखते हैं, इस अपेक्षा से करता है, परन्तु तन्मय नहीं होता, ऐसा शब्द है। इसलिए वे लोग वहाँ समयसार में ऐसा अर्थ करते हैं, शिल्पी करता तो है, ऐसा कहते हैं। करता ही नहीं। वह तो करता है, वह तो तू देखता है, इस अपेक्षा से करता है, ऐसा लिखा है। तेरी दृष्टि ऐसी है कि यह करता है। समझ में आया? समयसार में है। शिल्पी करता है। शिल्पी करण देता है, करण-साधन। हथौड़ा होता है न? हथौड़ा। हथौड़ा लेता है। हाथौड़ा से करण-साधन लेता है। लेता है ऐसा लिखा, वह तो भाषा है। लोग देखते हैं, इसलिए कहते हैं, देखो! इसने यह हथौड़ा लिया। परन्तु तन्मय नहीं होता, ऐसा वहाँ पाठ है। शिल्पी करता है, करण देता है, परन्तु तन्मय नहीं होता। परन्तु करण को स्पर्शता ही नहीं, स्पर्शता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भगवान!

अरे! ऐसा समय मिला, प्रभु! यह मनुष्य का देह कब आवे? और उसमें वीतराग की वाणी और उसमें वीतराग के भाव..! आहाहा! ऐसे काल में नहीं जँचे तो कब

जँचेगा ? प्रभु ! कब यह समय मिलेगा ? आहाहा ! अनन्त काल में रुलता हुआ दु:खी... दु:खी... दु:खी है। भ्रमणा में भगवान को भूलकर भ्रमणा में भव करता है। हें ? आहाहा !

यहाँ कहा, **ऐसा वस्तु का स्वरूप है। इस कारण जीव पुद्गलकर्म का कर्ता नहीं है।** यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा ! जीव इस आँख की पलक को हिलाता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? आँख की पलक हिलती है, वह कर्म का उदय आया, इसलिए हिलती है, ऐसा भी तीन काल में नहीं है। पलक समझते हो ? आहाहा ! भाई ! यह बात तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा ! **इस कारण जीव पुद्गलकर्म का कर्ता नहीं है।** अब २०१ श्लोक है।

कलश - २०१

(वसन्ततिलका)

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्धं
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः।
यत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम्।।९-२०१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् वस्तुभेदे कर्तृकर्मघटना न अस्ति' [तत्] तिस कारण से [वस्तुभेदे] जीवद्रव्य, चेतनस्वरूप; पुद्गलद्रव्य, अचेतनस्वरूप — ऐसे भेद को अनुभवते हुए, [कर्तृकर्मघटना] जीवद्रव्य, कर्ता; पुद्गलपिण्ड, कर्म-ऐसा व्यवहार [न अस्ति] सर्वथा नहीं है। तो कैसा है? 'मुनयः जनाः तत्त्वं अकर्तृ पश्यन्तु' [मुनयः (च) जनाः (च)] (इस प्रकार मुनिजन और लौकिकजन) सम्यग्दृष्टि हैं जो जीव वे [तत्त्वं] जीवस्वरूप को [अकर्तृ पश्यन्तु] 'कर्ता नहीं है'—ऐसा अनुभवो-आस्वादो। किस कारण से? 'यतः एकस्य वस्तुनः अन्यतरेण सार्द्धं सकलोऽपि सम्बन्धः निषिद्धः एव' [यतः] जिस कारण से [एकस्य वस्तुनः] शुद्धजीवद्रव्य का, [अन्यतरेण सार्द्धं] पुद्गलद्रव्य के साथ [सकलः अपि] द्रव्यरूप, गुणरूप अथवा पर्यायरूप [सम्बन्धः] एकत्वपना, [निषिद्धः एव] अतीत-अनागत-वर्तमान काल में वर्जा है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिनिधन जो द्रव्य जैसा है, वह वैसा ही है; अन्य द्रव्य के साथ नहीं मिलता है; इसलिए जीवद्रव्य, पुद्गलकर्म का अकर्ता है।।९-२०१।।

कलश - २०१ पर प्रवचन

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्धं
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः।
यत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम्।।९-२०१।।

अब यहाँ आया। वहाँ उसमें '**सर्वः अपि**' था, यहाँ '**सकलोऽपि**' लिया। मुनि और जो जन ईश्वरकर्ता माननेवाले हैं, उन्हें जन में लिया है। यहाँ दोनों अर्थ करेंगे— मुनिजन। परन्तु समयसार में ऐसा अर्थ लिया है। मुनि और ईश्वरकर्ता माननेवाले दोनों, तुम्हारी कर्ता की दृष्टि छोड़ दो। आहाहा! समझ में आया? यह मुनिजन का अर्थ है, विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १३, रविवार, दिनांक-०५-०२-१९७८, कलश-२०१, प्रवचन-२२४

कलशटीका २०१ कलश चलता है। कल कलश बोल लिया गया है, उसका शब्दार्थ। **'तत् वस्तुभेदे कर्तृकर्मघटना न अस्ति'** क्या कहते हैं? **तिस कारण से जीवद्रव्य...** यह जीववस्तु है, वह चैतन्य वस्तु है। जानन स्वभाव से भरपूर चैतन्य है। जैसे शक्कर मिठास से भरी है, अफीम कड़वाहट से भरा है, उसी प्रकार यह भगवान आत्मा जीवद्रव्य वह चैतन्य स्वभाव से भरा है, वह चैतन्यस्वभाव है। ज्ञायक जानन-देखन ऐसा त्रिकाली उसका ज्ञायक ध्रुव स्वभाव, वह चैतन्य और **पुद्गलद्रव्य अचेतन...** कर्म जो कर्म अन्दर जड़ है, बात उस जड़ की लेनी है। शुभ-अशुभभाव करता है न, इसलिए पुण्य-पाप के रजकण कर्म में कर्मपर्याय होकर बँधते हैं। वह कर्म है, वे अचेतन हैं। यह शरीर भी अचेतन है, वाणी अचेतन है।

कहते हैं कि चेतन और अचेतन ऐसा स्वरूप, **ऐसे भेद को अनुभवते हुए...** क्या कहते हैं? दो के पृथक्पने के भेद को अनुभव करते हुए। दोनों भिन्न है, तो दोनों भिन्न है, ऐसा अनुभव करते हुए। आहाहा! **जीवद्रव्य कर्ता, पुद्गलपिण्ड कर्म - ऐसा व्यवहार सर्वथा नहीं है।** आहाहा! जीव कर्ता...

मुमुक्षु : व्यवहार तो है, निश्चय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार भी झूठा है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐसा है, भगवान!

वस्तु एक है, उसमें दूसरी वस्तु का अभाव है और दूसरी वस्तु में इस आत्मा का भी अभाव है। (जिसमें) अभाव है, वह दूसरी चीज़ का कर्ता कैसे हो सकता? समझ में आया? सूक्ष्म विषय है। यह बड़े डॉक्टर हैं, यह होम्योपैथी के डॉक्टर हैं, भावनगर से आये हैं। अरे! भगवान! यहाँ तो कहते हैं, समयसार नाटक में एक आया है,

'मूढ़ कर्म को कर्ता होवे, फल अभिलाष धरे फल जोवे,
ज्ञानी क्रिया करे फल सुनी, लगे न लेप निर्जरा दूनी।'

आहाहा! क्या कहते हैं? उसका अर्थ क्या? 'मूढ कर्म को...' मैं शरीर की क्रिया करता हूँ और जड़ कर्म मिट्टी अन्दर है, उन्हें मैं करता हूँ, वाणी मैं करता हूँ और

मैं लिख सकता हूँ और मैं दूसरे को पैसा, लक्ष्मी दे सकता हूँ... आहाहा! वह मूढ़ जीव कर्म अर्थात् उस कार्य का कर्ता होता है। 'मूढ कर्म को कर्ता होवे, फल अभिलाष धरे...' अभिलाषा धरकर। मैंने उसका काम किया तो मुझे उसका फल कुछ मिलेगा। भूल है। काम कर सकता नहीं तो फल कहाँ से मिलेगा?

वस्तु की स्थिति के लिये है। यह करुणा का शब्द है। व्यक्ति के प्रति तो प्रेम है, सब आत्मा भगवान है। समझ में आया? यह बाद में कहेंगे। अरे! खेद से कहते हैं, ऐसा कहेंगे। अरे! प्रभु! तू आत्मा है न, नाथ! तेरी चीज़ में दूसरी चीज़ का तो अभाव है न! और दूसरी चीज़ में तेरा अभाव है। अभाव है तो तू दूसरे के भाव का कर्ता होता है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान!

यहाँ तो कहते हैं, यहाँ तो कर्म नजदीक है, उसकी बात है। शरीर, वाणी की बात तो ली ही नहीं। यहाँ तो जितने राग-द्वेष, पुण्य-पाप आत्मा में होते हैं, उतने कर्म की पर्याय में वर्गणा रजकण की है, वह कर्मरूप-पर्यायरूप होती है तो उसका भी कर्ता आत्मा नहीं है। अज्ञानी राग करे। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, वह राग है उसका अज्ञानी कर्ता होता है। क्योंकि स्वरूप में तो राग है नहीं। स्वरूप तो ज्ञान, आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु है, तो वह शुद्ध चैतन्यस्वभाव शाश्वत् असली चीज़, वह तो दया, दान, व्रत, विकल्प उठते हैं, उनका भी कर्ता नहीं है। आहाहा! तथापि अज्ञानी उनका कर्ता मानता है, तथापि राग का कर्ता मानता होने पर भी नये कर्म की रजकण की अवस्था बँधती है, उसका तो तू व्यवहार से भी कर्ता नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! यह तो विज्ञान का विज्ञान सूक्ष्म है। डॉक्टर को बराबर एक घण्टा मिलता है, ठीक! होम्योपैथी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक चीज़ आत्मा चैतन्य है और अन्दर यह कर्म, यह धूल पड़ी है न अन्दर? यह पुण्य के रजकण पड़े हों न अन्दर? उनका उदय आता है तो बुद्धि बिना का मनुष्य हो तो उसे भी पाँच-पाँच लाख पैदा होते हैं। हमने तो देखा है न! बुद्धि के बारदान समझे? बारदान अर्थात् खाली खोखा। बुद्धि बिना के हों तो भी पाँच-पाँच लाख महीने में पैदा करते हैं। है या नहीं, बराबर है या नहीं? तुम्हारे वह भाई

नहीं? मलूकचन्दभाई नहीं? मलूकचन्द का पुत्र। देखो न! पाँच करोड़, छह करोड़ रुपये! अभी मुम्बई गये लगते हैं। कुर्सी पर बैठते हैं। मलूकचन्दभाई। बुद्धि कैसी है, वह सब हमको खबर है। परन्तु आमदनी बड़ी है। पाँच-छह करोड़ रुपये की आमदनी। एक महीने की कितनी? एक दिन की दस हजार-पन्द्रह हजार की आमदनी। पैदाश समझ में आता है? आमदनी। उसमें क्या हुआ? वह कहीं बुद्धि से (नहीं आते)। वह तो पूर्व के परमाणु (बँधे हों), पूर्व में कोई शुभभाव हुए हों, शुभभाव तो एकेन्द्रिय में भी होता है, उसमें कोई नयी चीज़ नहीं। वह शुभभाव हुए हों और पुण्य के रजकण बँध गये हों और पुण्य रजकण का पाक होकर जब खिरने की तैयारी होती है तो नये संयोग में लक्ष्मी आदि दिखती है। वह कोई इसके वर्तमान प्रयत्न का फल लक्ष्मी है, ऐसा नहीं है। सेठ! देखो! यह सेठ रहे, करोड़पति। हें? वस्तु की स्थिति तो ऐसी है न, भगवान! यहाँ मानो या बाहर मानो, वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जरा सूक्ष्म बात है कि अन्तर के परमाणु जो रजकण हैं, यह फोटो खींचते हैं या नहीं? भैया! यह हमारे फोटो खींचते हैं। फोटो खींचते है तो सामने से रजकण यहाँ आते हैं? पहले न्याय समझो। फोटो खींचते हैं न? यहाँ बराबर फोटो खिचता है तो वहाँ से यहाँ रजकण आते हैं? यहाँ रजकण हैं, वे अपनी पर्याय से परिणमते हैं, उसमें सामने (पदार्थ) तो निमित्त है, परन्तु निमित्त से यहाँ कुछ हुआ है, ऐसा नहीं है। सामने से फोटो खींचते हैं... अमेरिका में सिंह होता है न। दो-दो सौ सिंह। अफ्रीका के जंगल में। उन्हें फिल्मवाले (फिल्म) लेने जाते हैं। पाँच-पाँच लाख की मोटर (हो)। लोहे के सरिया हो। सिंह आवे तो अन्दर काट न सके। दो-दो सौ सिंह के फोटो खींचते हैं। यदि वहाँ से रजकण आते हों तो उसका शरीर सूख जाये। सूक्ष्म बात है, भगवान! यहाँ फोटो खिंचता है। यहाँ परमाणु के भरे हुए रजकण हैं, वहाँ उन परमाणु में इस प्रकार से परिणमन होकर फोटो खिंचता है। वह सामने की चीज़ में से वे रजकण आते नहीं। समझ में आया? ऐसा... यह तो दृष्टान्त हुआ।

उसी प्रकार आत्मा जब पुण्य और पाप के भाव करता है, शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव (करे), उस समय सामने वहाँ रजकण है, वे पुण्यरूप से परिणम जाते हैं। इसने शुभभाव किया तो वहाँ पुण्यरूप से परिणमना हुआ, ऐसा नहीं है।

आहाहा! अब यह बात ऐसी है, प्रभु! क्या करे? समझ में आया? फोटो खिंचता है, वह वहाँ के रजकण के कारण से खिंचता है। इसके कारण से नहीं। यह बात कौन माने? पागल जैसी बात है।

डॉक्टर के लिये एक बार अभी कहा था न कि, यह जमीन है न जमीन? पैर चलते हैं तो जमीन को स्पर्श नहीं करते। बहुत सूक्ष्म बात है। विज्ञान का विज्ञान सूक्ष्म है। पैर जमीन को स्पर्श नहीं करते और पैर चलते हैं। क्योंकि पैर के रजकण भिन्न हैं और जमीन के रजकण भिन्न हैं तो एक-दूसरे में अभाव है। अभाव है तो स्पर्श करे, ऐसा नहीं हो सकता। सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो किसी को दृष्टान्त देते हैं, हों! बात तो बहुत बड़ी है। आहाहा! समझ में आया?

अस्ति है, जो तत्त्व अस्ति है, है और दूसरी चीज़ भी है तो है, वह है, अपने से परिणमन करती है, पलटती है। पर से पलटे तो स्वयं अपनी पर्याय बिना का रहा। प्रत्येक पदार्थ अपना अस्तित्व रखकर वर्तमान में पलटता है। वह पलटना हुआ पर के कारण से है, ऐसा तीन काल में नहीं है, सूक्ष्म है, भगवान! विज्ञान का विज्ञान है। यह लोग विज्ञान कहते हैं, वह नहीं, यह तो सर्वज्ञ का विज्ञान है। आहाहा!

कोई अज्ञानी यहाँ जितने शुभभाव करे तो उतने प्रमाण में शुभ सातारूप से पुण्यरूप से परिणमे, परन्तु वह परिणमता है तो राग उसका कर्ता है और कर्म की पर्याय हुई, वह उसका कार्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बात! विद्यालय में मिले नहीं, डॉक्टर में कहीं मिले नहीं, व्यापारी में मिले नहीं। यह बड़े सेठ रहे। है सागर में बात तुम्हारे? सागर में यह बात है? आहाहा!

मुमुक्षु : पूरे हिन्दुस्तान में नहीं है, सागर में तो क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभु यहाँ तो यह कहते हैं, देखो! चेतनवस्तु वह अचेतन की पर्याय की कर्ता कैसे हो? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह भाषा जो होती है, वहाँ के रजकण परमाणु में शब्दवर्गणा, शब्द की वर्गणा अर्थात् परमाणुओं का समूह, उसमें उस समय शब्द होने का पर्याय का स्वकाल है, तो शब्द होते हैं। आत्मा से होते हैं और इन दो होंठ से भी शब्द होते हैं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : जीभ से तो होते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी जीभ से नहीं होते। यह तो मैंने नाम नहीं लिया। आहाहा! प्रभु! बात क्या करें? वस्तु भिन्न भिन्न, भिन्न चीज़ का भिन्न कर्ता हो जाए तो भिन्न चीज़ रह नहीं सकती। अनन्त तत्त्व है। आत्मायें अनन्त हैं और अनन्त रजकण हैं। यदि अनन्त अनन्तरूप से अपनी अवस्था—पर्याय के कर्ता होते हैं तो अनन्तरूप से रह सकते हैं। परन्तु अनन्त है, उसमें यह उसका कर्ता और वह उसका कर्ता हो तो अनन्त नहीं रह सकते। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह धर्म की बात तो बहुत सूक्ष्म है। यह तो अभी साधारण बात है। स्थूल-स्थूल बात करते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **भेद को अनुभवते हुए...** आहाहा! जिसे जड़ की पर्याय और अपनी चैतन्य की अवस्था, पर्याय अर्थात् अवस्था, वे भिन्न-भिन्न भासित होते हैं। अपना भिन्न अनुभव करते हुए। आहाहा! **'कर्तृकर्मघटना' जीवद्रव्य कर्ता, पुद्गलपिण्ड कर्म—ऐसा व्यवहार सर्वथा नहीं है।** आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! यह तो भगवान चैतन्यस्वरूप है न! आत्मा में तो चैतन्यस्वभाव भरा है न! यह अनादि अनन्त चैतन्यस्वभाव से भरपूर भरा हुआ परिपूर्ण है। दूसरी भाषा कहें तो, शास्त्रभाषा से कहें तो सर्वज्ञस्वभाव से ही आत्मा भरपूर है। सर्व शब्द न लें तो 'ज्ञ' स्वभाव से भरा है। ज्ञ स्वभाव वह परिपूर्ण, परिपूर्ण अखण्ड अभेद पड़ा है। 'ज्ञ' के साथ 'सर्व' शब्द लागू करें तो सर्वज्ञ होता है। वह सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। आहाहा!

राग का कर्ता या अपनी पर्याय का कर्ता कहना, वह भी अभी उपचार है। निर्मल पर्याय का कर्ता कहना, वह भी उपचार है। आहाहा! क्यों उपचार है? कि निर्मल पर्याय कार्य और आत्मा कर्ता, ऐसा उसमें भेद पड़ गया। वह भी उपचार से (कहा)। निर्मल परिणति का कर्ता, निर्मल का, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो परिणति—अवस्था, त्रिकाली के अवलम्बन से होती है, तथापि कहते हैं कि उस पर्याय का कर्ता वह द्रव्य नहीं, वस्तु नहीं। वस्तु पर्याय की कर्ता, वह तो उपचार से, व्यवहार से कहा जाता है। तो फिर राग का कर्ता आत्मा हो और जड़ की पर्याय का कर्ता आत्मा हो, यह मान्यता बड़ा मिथ्या भ्रम है, अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

देखो! यहाँ आया न? **तो कैसा है? 'मुनयः जनाः तत्त्वं अकर्तृ पश्यन्तु' 'मुनयः जनाः'** इसमें अर्थ एक ही किया है। उसमें दो किये हैं। मुनि और जन। जन अर्थात् जो कोई जगत का कर्ता मानता है, मैं इसे करता हूँ, इसे करता हूँ, वह जन—मनुष्य। और यहाँ '**मुनयः**' जैन के मुनि या समकिती। ये दोनों लिये हैं, यहाँ एक लिया है। समयसार में अर्थ में दो लिये हैं। '**मुनयः जनाः**' शब्द है न? '**मुनयः**' अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव। आहाहा! '**जनाः**' अर्थात् जीव, ऐसा लिया है और मूल समयसार में, मूल तो जरूर तो दो की जरूरत है—'**मुनयः जनाः**' क्योंकि वहाँ पाठ ऐसा है न कि, यह कर्ता है। ईश्वर जगत का कर्ता है, ऐसा माननेवाले जनों! तुम ऐसा न मानो, छोड़ दो। ऐसा कहते हैं। और '**मुनयः**' अर्थात् जैन के लोग तुम पर के कर्ता हो, ऐसा न मानो। ऐसी वस्तु की स्थिति नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

'मुनयः जनाः' सम्यग्दृष्टि हैं जो जीव, वे जीवस्वरूप को 'कर्ता नहीं है' ऐसा अनुभवो... आहाहा! यह जरा सूक्ष्म बात है। क्या? कि भगवान आत्मा उस राग का कर्ता भी नहीं, ऐसा अनुभव करो। अनुभव करो अर्थात् चैतन्य जो आनन्दस्वरूप भगवान है, ज्ञान और आनन्द स्वभाव है, उसे अनुसरकर होओ। जो चैतन्य भगवान आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु, उसे अनुसरकर होओ, अनुभव करो। परन्तु राग को अनुसरकर राग के कर्ता न होओ। आहाहा! देवीलालजी! बात ऐसी सूक्ष्म, बापू! क्या कहे? प्रत्येक का स्पष्टीकरण किया जा सकता है परन्तु यह थोड़ा-थोड़ा (कहते हैं।) इतना सब (स्पष्टीकरण) करने जायें तो लम्बा चले नहीं। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है।

आत्मा स्वतन्त्र है और परमाणु भी स्वतन्त्र है। एक-एक परमाणु—पाईन्ट आहाहा! पक्षघात होता है तो आत्मा हिला सकता है? शरीर को हिला सकता है? डॉक्टर! यह पक्षघात होता है न? आत्मा तो है अन्दर। वह आत्मा कर्ता है ही नहीं। आहाहा! परन्तु अज्ञानी मानता है कि मैं ऐसे पैर हिलाऊँ, ऐसे चलाऊँ और ऐसे चलाऊँ।

मुमुक्षु : पैर में सुन्न चढ़े तब भी हिला नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुन्न चढ़े तो भी हिला नहीं सकता। यह खाली समझे? यह पैर (शून्य हो जाये)। जरा ऐसे हिल नहीं सके। हमारे यहाँ सुन्न को खाली कहा जाता

है। वह भी जड़ की दशा है, भगवान! आहाहा! तुझसे हुई नहीं और तुझसे रुकती नहीं और तुझसे होती नहीं। आहाहा! वस्तु ऐसी है। यह तो सर्वज्ञ से, लॉजिक—युक्ति से भी यह सिद्ध हो सकता है। न्याय में 'नि' धातु है। 'नि' न्याय। ले जाना, ले जाना। जैसी वस्तु की मर्यादा है, उस प्रकार से ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय कहा जाता है और वह न्याय लोकोत्तर नीति है। लोकोत्तर नीति! यह जगत की नीति, लौकिक सज्जनता, यह दूसरी चीज़ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि लोकोत्तर नीति ऐसी है कि अपनी आत्मा चीज़ जो कर्म, अन्दर की बात यहाँ तो ली है, जितने प्रमाण में राग-द्वेष करे, उतने प्रमाण में वहाँ कर्म की अवस्था होती है। तो भी उस कर्म की अवस्था का कर्ता आत्मा नहीं है। तो फिर नजदीक में ऐसा बनता है, उसका भी कर्ता नहीं, तो दूर शरीर, वाणी, मन का आत्मा कर्ता हो, हिला सके, बोल सकता है, दूसरे को पैसा दे सकता है, मैं दूसरे को लक्ष्मी दे सकता हूँ और रख सकता हूँ, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी का भ्रम है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! हें?

मुमुक्षु : कर्म तो दिखते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म दिखते नहीं परन्तु यह दृष्टान्त नहीं दिया? दिखते नहीं परन्तु दृष्टान्त दिया न कि बुद्धि साधारण हो तो भी पाँच लाख पैदा करे। (उसमें) क्या दिखता है? हमको तो बहुत अनुभव है। हमारे भाई थे न? भागीदार। साधारण बुद्धि (तो भी) दो-दो लाख पैदा करते थे। हमारे कुँवरजीभाई भागीदार थे न? बुआ के पुत्र। दुकान थी न पालेज में हमारी दो दुकानें थीं। मैंने पाँच वर्ष दुकान चलायी थी परन्तु छोटी उम्र, १७ से २२। सत्रह वर्ष में बड़ी दुकान चलायी थी। दो दुकानें हैं, अभी दुकान है, बड़ी दुकान है, अभी बड़ी दुकान है। तीस-पैंतीस लाख रुपये हैं। तीन-चार लाख की आमदनी है। दोनों दुकानें हैं। पालेज (जो) भरुच और बड़ोदरा के बीच है। हमारे भागीदार थे वे बुद्धिवाले कैसे थे, यह हमको खबर है। हें?

मुमुक्षु : वे तो बड़े सेठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे रामजीभाई ने एक बार मश्करी की थी। कुँवरजीभाई

यहाँ आते थे। तुमको कितनी बार सेठ कहें? भाई! तब कहे, पाँच सौ बार कहे। वह कहे, हजार बार कहे। ऐसे जवाब भी देना आवे नहीं और दो-दो लाख वर्ष में पैदा करे। दो लाख! उस समय, हों! ग्यारह-बारह वर्ष पहले गुजर गये। अभी लड़के हैं। अधिक कमाते हैं, तीन-चार लाख कमाते हैं। तीस-पैंतीस लाख रुपये हैं। हमारी दो दुकानें थीं। धूल में भी किसी की दुकान नहीं और पैसा भी नहीं। अरर्र! ऐसी बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि एक रजकण को भी एक आत्मा हिला सके, यह तीन काल में होता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। '**मुनयः जनाः**' **ऐसा अनुभवो...** अर्थात् क्या कहते हैं? कि राग का और पर की क्रिया का कर्ता नहीं। मैं अकर्ता हूँ तो ऐसे ज्ञानस्वरूप को अनुभव कर। आहाहा! पर का कर्ता नहीं तो पर के कर्तापने की बुद्धि उठा ले और अकर्ता भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, वहाँ दृष्टि लगा दे और उसका आस्वाद दे। आहाहा! उसे आस्वादो—आत्मा के आनन्द का स्वाद लो। राग के कर्तापने में तो मिथ्यात्व का स्वाद, आकुलता का—दुःख का स्वाद है। आहाहा! कठिन ऐसी बातें, भाई! समझ में आया? राग का और कर्म का कर्ता मानने में मिथ्याश्रद्धा का, आकुलता का-दुःख का वेदन है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यहाँ आचार्य महाराज करुणा करके कहते हैं, आहाहा! है न? **आस्वादो।** आहाहा! '**पश्यन्तु**' '**अकर्तृ पश्यन्तु**' की व्याख्या की है। '**अकर्तृ**' तुम देखो अर्थात् राग और पर की पर्याय का कर्ता नहीं, ऐसा '**अकर्तृ**' देखो। आत्मा अकर्ता है, उसका अनुभव करो। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात तो है, भाई! हमको तो सबकी खबर है न! पूरी दुनिया में क्या चलता है (खबर है)। यह तो ८८ वर्ष हुए। हमारी तो पूरी जिन्दगी, ७० वर्ष से तो ऐसे ही चलता है। निवृत्ति, दुकान पर भी हम तो निवृत्ति से ही रहते थे। पिताजी की दुकान थी। आहाहा! हमने तो बहुत देखा है, पूरा हिन्दुस्तान (घूमे हैं)। धर्म कहनेवाले, बोलनेवाले और सुननेवाले को कुछ देखा है। आहाहा! यह मार्ग, भाई! क्या कहें?

यहाँ कहते हैं, '**अकर्तृ पश्यन्तु**' आहाहा! सन्त, आनन्द को वेदन करनेवाले प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवियों... आहाहा! 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में

रहना' शरीर की छोटी उम्र थी, दस वर्ष की, ग्यारह वर्ष की थी। सत्तर, बहत्तर, पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है। हमारे साथ में—पड़ोसी थे। पाडोशी समझे न? पड़ोसी। वे ब्राह्मण थे, परन्तु हमारी माताजी का जो पीहर था वहाँ के थे, इसलिए मामा कहते थे। मूलजीमामा कहते थे। वे जब नहाये तब इतना बोलते थे। दस वर्ष की हमारी उम्र थी, तब की बात है, यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है। 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे, भजना परिब्रह्म को दूजा कुछ न कहना रे...' यह तो अपनी गुजराती भाषा। 'अनुभवी को इतना...' यह क्या कहते हैं? कहा, यह बोलते हैं वह क्या? मामा। यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है। उन्हें भी खबर नहीं होती, भाषा बोले। वे वस्त्र बदले न? क्या कहलाते हैं वे? कपड़े। उनके कपड़े का नाम होता है। कम्बल छोटी हो। यह बोलते हों, 'अनुभवी को...' यह कहते हैं वह क्या? 'अनुभवी को इतना...'

यह यहाँ कहते हैं, हे प्रभु! '**अकर्तृ पश्यन्तु**' आहाहा! अर्थात्? अर्थात् शुभ-अशुभराग आता है, उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे। वह तेरी चीज़ नहीं, तुझमें नहीं, तू उसमें नहीं। आहाहा! यह तो कोई बात है! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, भाव विकल्प उठते हैं, वृत्ति उठती है, वह वृतित राग है, उसमें तू नहीं है। क्योंकि उसमें तू हो तो राग छूट जाता है और तू तो रहता है। राग और तू एक हो तो राग का नाश हो जाता है और तेरा नाश नहीं होता, तू तो अविनाशी रहता है। तो राग में तू नहीं और तुझमें राग नहीं। ऐसा '**अकर्तृ पश्यन्तु**' आहाहा! समझ में आया? बात तो गम्भीर है, प्रभु! क्या हो? आहाहा! सब भगवान है, अन्दर प्रभु है। बाहर पर्याय में—अवस्था में भूल है, वस्तु तो वस्तु है। गन्ने का रस... शेरड़ी समझ में आती है? गन्ने का रस और छिलके दोनों भिन्न चीज़ है। पिलते हैं तो रस अलग पड़ जाता है और छिलके अलग पड़ जाते हैं। कूचा कहते हैं न? पण्डितजी! क्या कहते हैं? यह गन्ने के कूचा। शेरडी-गन्ना। उसी प्रकार आत्मरस, आनन्दरस और पुण्य-पाप और शरीर के छिलके भिन्न हैं। आहाहा! कूचा (छिलका) कहते हैं न? आहाहा!

'**अकर्तृ पश्यन्तु**' प्रभु! तू परद्रव्य का कर्ता हो नहीं सकता। उसके साथ हम तो ऐसा भी कहते हैं कि तेरा राग भी तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! जैसे पर का कर्ता नहीं हो सकता, वह तो स्थूल बात हुई, परन्तु अन्दर में पुण्य-पाप के भाव हैं, उनका भी वास्तव

में रचना करनेवाला तू नहीं है। तू (कर्ता) माने तो अज्ञान है। आहाहा! '**अकर्तृ पश्यन्तु**' आहाहा! सन्तों की वाणी तो देखो! प्रभु! तू अकर्ता है। यह शुभ-अशुभभाव को भी रचनेवाला भी नहीं। पर की क्रिया करनेवाला नहीं (ऐसा) एक बार '**पश्यन्तु**' तू अन्दर में देख तो सही। आहाहा! अन्दर आनन्दकन्द प्रभु है। शुद्ध चिदानन्द आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

आस्वादो। है न? '**पश्यन्तु**' आहाहा! अनुभव करो। '**पश्यन्तु**' अनुभव करो। '**पश्यन्तु**' आस्वादो। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! एक बार ख्याल में तो बात लो। आहाहा! आहाहा! कहते हैं कि तू एक चीज़ है या नहीं? है तो उसकी कोई शक्ति-सामर्थ्य है या नहीं? वस्तु है तो वस्तु का कोई स्वभाव है या नहीं? जैसे वस्तु त्रिकाली है तो उसका स्वभाव, भाववान का स्वभाव, स्वभाववान का स्वभाव। जैसे त्रिकाली स्वभाववान है, ऐसे स्वभाव त्रिकाल है। उसमें ज्ञान, सच्चिदानन्द, आनन्द, शान्ति आदि त्रिकाली स्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव में दृष्टि करके कर्ताबुद्धि छोड़कर अकर्तापने का अनुभव करो तो तुझे शान्ति मिलेगी, धर्म होगा और जन्म-मरण मिटेंगे, वरना जन्म-मरण मिटेंगे नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। समझ में आया? आहाहा!

'**पश्यन्तु**' ओहोहो! गजब बात करते हैं न! देखो! देखो अर्थात् यह देखो। अन्दर चैतन्यमूर्ति भगवान है, उसे वर्तमान दशा में जो राग को तू देखता है और कर्ता मानता है, वह छोड़ दे और तेरी वर्तमान दशा में दशावान को देख। आहाहा! धीर का काम है, बापू यह तो। यह कहीं कोई पण्डिताई पढ़ जाये और बड़े व्याख्यान देना आवे इसलिए... वह चीज़ नहीं है। आहाहा! समकिती को—ज्ञानी को व्याख्यान देना भी न आवे, इतना क्षयोपशम न हो तो न भी कर सके। उसके साथ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो अन्दर माल की बात है।

प्रभु! यह मनुष्यपना तुझे मिला, यह एक-एक पल जाता है... प्रभु! महाकीमती जाता है। ऐसा मनुष्यपना मिलना अनन्त काल में मुश्किल है। उसमें यह कर्तापना है। पर के कर्तापने का अभाव और अपनी अनुभूति की पर्याय का कर्तापना, वह तेरा कार्य है। समझ में आया? आहाहा! है?

किस कारण से ? 'यतः एकस्य वस्तुनः अन्यतरेण सार्द्धं सकलोऽपि सम्बन्धः निषिद्धः एव' क्या कहते हैं ? एक चीज़ में दूसरी '**अन्यतरेण**'। दूसरी चीज़ के साथ '**सकलोऽपि सम्बन्धः**' इसमें जरा सूक्ष्म बात है। क्या ? कि भगवान आत्मा और पुण्य-पाप के भाव और कर्म, आत्मा में इन दो का तादात्म्य सम्बन्ध है ही नहीं। तादात्म्य सम्बन्ध अर्थात् ? जैसे अग्नि और उष्णता, यह तादात्म्य सम्बन्ध है। शक्कर और मिठास, यह तादात्म्य—तद्-आत्म-तत् स्वरूप सम्बन्ध है। वैसे आत्मा का और पुण्य-पाप के भाव का और कर्म के तादात्म्य—तत् स्वरूप है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? भाई! भाषा तो सादी है, परन्तु भाव तो अलौकिक है। जैसे अग्नि और उष्णता, वह तो तादात्म्य—तत् स्वरूप है। उष्णता और अग्नि दोनों एक है, तादात्म्य सम्बन्ध है। वैसे आत्मा में और आत्मा के आनन्द में तादात्म्य सम्बन्ध है परन्तु आत्मा को और राग को और कर्म को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है। यशपालजी! आहाहा! बहुत प्रेम से सुनते हैं। बात तो ऐसी है, भगवान! आहाहा! क्या कहते हैं ?

प्रभु! तुझे ऐसा मनुष्यपना अनन्त काल में मिला। मनुष्य की व्याख्या तो गोम्मटसार में ऐसा कहते हैं, ज्ञायते इति मनुष्य। जानना, आत्मा का अनुभव करना, वह मनुष्य है। आहाहा! नहीं तो मनुष्य स्वरूपे मृगा चरंति। मनुष्यरूपे मृग—हिरण है। हिरण कहते हैं ? मृग। अपने नहीं आता ? मनुष्यरूपे मृगा चरंति। मनुष्यरूप से मृग-हिरण है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा, आहाहा! और उसका ज्ञान और आनन्द का आत्मा के साथ तादात्म्य तद्रूप सम्बन्ध है। अग्नि और उष्णता की भाँति, शक्कर और मिठास की भाँति। सोने में स्वर्ण और पीलाश, चिकनाहट की भाँति तादात्म्य सम्बन्ध है। ऐसे भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द का तादात्म्य सम्बन्ध है, तत्स्वरूप में। राग पुण्य-पाप के भाव का और कर्म का, शरीर का आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया ? एक बात।

आलाप पद्धति में यह आया है। आलाप पद्धति एक (शास्त्र) है न ? उसमें आया है। मैंने उसमें से लिखा है। तब पढ़ते-पढ़ते थोड़ा लिखा है। तादात्म्य सम्बन्ध गुण-गुणी भाव। क्या कहते हैं ? कि आत्मा गुणी है और राग उसका गुण है, ऐसा नहीं

है। आहाहा! जैसे शक्कर गुणी है, मिठास गुण है। वैसे उसमें मैल है, वह गुणी शक्कर है, मैल उसका गुण है, ऐसा नहीं है। न्याय समझ में आता है? लॉजिक से तो बात चलती है। न्याय में 'नि' धातु है। नि (अर्थात्) ले जाना। वस्तु की स्थिति है, वहाँ ज्ञान को अन्दर ले जाना। आहाहा! सूक्ष्म बात तो है, भाई! इसने अनन्त काल से किया नहीं। यह बाहर की होली में मैंने किया... उसमें एक आता है, 'मैं कर्ता मैं किनही कैसी, कब लो कहे जो ऐसी' यह आता है, समयसार नाटक में आता है। समझे? मैं कर्ता, मैंने ऐसा किया, ऐसा करूँगा, ऐसा करूँगा। परन्तु भाई! तूने क्या किया? किसका करेगा? कान्तिभाई! 'मैं कर्ता मैं किनही कैसी, कब लो कहे जो ऐसी...' शब्द भूल जाते हैं, शब्द याद नहीं रहते। पहले बहुत पढ़ते थे तब याद रहता था। समयसार नाटक तो सम्प्रदाय में पढ़ते थे। आहाहा! समझ में आया? बहुत शब्द है, अन्दर से आ जाते हैं। समयसार नाटक में था। 'ज्ञानी क्रिया करे फल सुनि लगे न लेप निर्जरा दुनि' यह कहा था न? 'मूढ कर्म को कर्ता होवे, फल अभिलाष फले जब जोवे, ज्ञानी क्रिया करे फल सूनी' राग आता है, जानता है। वह मैं नहीं, मेरी चीज़ नहीं। 'लगे न लेप निर्जरा दुनि' दुनि (शब्द) तो पद्य के साथ मिलाने के लिये कहा। असंख्यगुणी निर्जरा हो जाती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, तादात्म्य सम्बन्ध नहीं, गुण-गुणी सम्बन्ध नहीं। भगवान आत्मा गुणी अर्थात् गुणवाला और राग उसका गुण, आत्मा गुणी और शरीर उसका गुण, आत्मा गुणी और कर्म उसका गुण—ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा तो आनन्द और ज्ञान उसका गुण है। वह गुण और आत्मा गुणी को तादात्म्य सम्बन्ध है। यह गुण-गुणी का भाव है। आहाहा! कर्म के साथ गुण-गुणी का भाव नहीं है। है?

लक्ष्य-लक्षण भाव। लक्षण राग और लक्ष्य आत्मा, ऐसा नहीं। आहाहा! आलाप पद्धति में है। समझ में आया? दया नाम का विकल्प, वह लक्षण और आत्मा लक्ष्य, ऐसा नहीं है। ज्ञान लक्षण और आत्मा लक्ष्य, ऐसा है। आहाहा! इसी प्रकार कर्म लक्षण और आत्मा लक्ष्य, ऐसा नहीं है। आहाहा! लक्ष्य-लक्षण भेद है। समझ में आया?

दूसरा लिखा है, वाच्य-वाचक भाव। अचेतन शब्द, वे वाचक हैं और उनका

वाच्य चेतन है, ऐसा नहीं है। जैसे शक्कर बोलते हैं न शक्कर? तीन अक्षर है। उनका वाच्य क्या? शक्कर पदार्थ। परन्तु जहर शब्द का वाच्य शक्कर है? जहर शब्द का वाच्य तो जहर है। उसी प्रकार राग वाचक है और आत्मा उसका वाच्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, प्रभु! तुझमें तो शक्ति तो अनन्तगुणी अनन्त है, प्रभु! एक क्षण में केवलज्ञान ले, उतनी सामर्थ्य अन्दर पड़ी है। एक क्षण में केवलज्ञान! आहाहा! परमात्मा हो जाये, प्रभु! तू इतना है, परन्तु तुझे तेरी प्रतीति, विश्वास नहीं। बाहर का विश्वास आता है। यह तुम्हारे क्या कहलाता है? कुनेन। कुनेन थोड़ी ले तो बुखार मिट जायेगा, उसका विश्वास (आता है)। कुनेन कहते हैं न? भाई! यह ले तो बुखार मिट जाये। उसका इसे विश्वास आता है।

दूसरे प्रकार से लें। बड़ा ग्रास यहाँ फँस जायेगा इसकी शंका इसे नहीं पड़ती। उसमें नि:शंक है कि यह लेते हैं, वह बराबर अन्दर चला जायेगा। अन्दर देखा नहीं कि कहाँ जाता है और क्या जाता है? ग्रास लेते हैं न? आहार... आहार। कहाँ जाता है और कैसे जाता है? उसमें नि:शंक है। वह तो नीचे जायेगा और बराबर पच जायेगा। परन्तु यह छिद्र-बिद्र होगा तो इतना बड़ा पिण्ड पड़ता है अन्दर फँस जायेगा या नहीं? करनेयोग्य किया नहीं और नहीं करने योग्य करके चौरासी लाख योनियों में भटकता है। आहाहा! समझ में आया? वाचक-वाच्य कहा न?

विशेष—विशेषण भाव। विशेष—विशेषण, क्या कहते हैं? विशेष आत्मा और विशेषण राग, ऐसा भी नहीं है। विशेष-विशेषण कहते हैं न? जैसे द्रव्य विशेष है तो गुण उसका विशेषण है। आत्मा द्रव्य वस्तु है, वह विशेष है और विशेषण अर्थात् ज्ञानगुण विशेषण है। इसी प्रकार आत्मा विशेष है और राग विशेषण है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? तब उतार लिया है। उस आलाप पद्धति में से। यह सम्बन्ध नहीं, (ऐसा कहा है न)? तो वहाँ सम्बन्ध लिया है। आलाप पद्धति है न? बहुत सूक्ष्म। आहाहा!

विशेष—विशेषण। भगवान आत्मा विशेष है और उसका विशेषण क्या? कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द वह उसका विशेषण है। जानन, देखन, आनन्द, वह विशेषण है

और विशेष आत्मा है। इसी प्रकार आत्मा विशेष है और राग विशेषण है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है परन्तु थोड़ा-थोड़ा तो कहते हैं। यह तो पूरा संसार हटा डाले। भाई! अनन्त काल का परिभ्रमण वह यह कहीं साधारण बात है? आहाहा! नौवें ग्रैवेयक जैन साधु होकर अनन्त बार गया, तथापि सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! हजारों रानियाँ छोड़ी, हजारों रानियाँ, राजपाट छोड़े, परिवार छोड़कर अकेला जंगल में रहा। पंच महाव्रत लिये परन्तु आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है, राग से भिन्न है ऐसा अनुभव नहीं किया। कर्ताबुद्धि वहाँ रह गयी। आहाहा! विशेष कहेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक-०६-०२-१९७८, कलश-२०१, २०२, प्रवचन-२२५

२०१ (कलश), यहाँ तक आया है। फिर से थोड़ा लेते हैं। '**तत् वस्तुभेदे कर्तृकर्मघटना न अस्ति**' सिद्धान्त। वस्तु में भिन्नता है, वहाँ कर्ता-कर्मपना घटित नहीं होता। दो भिन्न वस्तुओं में कर्ता-कर्मपना (अर्थात्) यह कर्ता और यह उसका कार्य, ऐसा घटित नहीं होता। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र अपनी पर्याय का परिणमन करनेवाला है। उसका कार्य दूसरा (पदार्थ) करे, ऐसी वस्तु की स्थिति नहीं है। वस्तु का नियम ही नहीं है। यह कहा। कहा न?

जीवद्रव्य चेतनस्वरूप, पुद्गलद्रव्य अचेतनस्वरूप... ऐसी भिन्नता को जानते और अनुभव करते हुए। आहाहा! '**कर्तृकर्मघटना**' **जीवद्रव्य कर्ता, पुद्गलपिण्ड कर्म...** व्यवहार सर्वथा नहीं है। आहाहा! क्योंकि पर के साथ सम्बन्ध कहा न? (इसलिए) व्यवहार हो गया न? कर्ता आत्मा और परद्रव्य की पर्याय कार्य, तो वह तो व्यवहार हो गया। परद्रव्य हो गया न, इसलिए व्यवहार। वह व्यवहार भी सर्वथा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय तो नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार भी नहीं। व्यवहार कहाँ से आया? सूक्ष्म बात है, बापू!

अनन्त पदार्थ अपनी स्वयं पर्यायरूप से, षट्कारकरूप से वर्तमान पर्याय परिणमती है। पर्याय षट्काकररूप से परिणमती है, हों! चाहे तो विकार हो या चाहे तो अविकार हो। यहाँ विकार का तो निषेध करेंगे, स्वभाव की अपेक्षा से। जगत में छहों द्रव्य और उनकी वर्तमान पर्याय, वह षट्कारक रूप से विकार के या अविकार के षट्कारकरूप से परिणमन स्वतन्त्र उस समय की स्थिति है। उसमें दूसरा उसे करे, उसके द्रव्य और गुण भी करते नहीं तो दूसरा करे, ऐसा कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि पर्याय एक समय की भी सत् है, अहेतुक है। उसका कोई हेतु (नहीं)। है, उसका हेतु क्या? चाहे तो विकृत अवस्था हो या चाहे तो अविकृत हो। वह इपने षट्कारक—कर्ता,

कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण से परिणमती है, वह वस्तु का स्वरूप है। तो वह व्यवहार सर्वथा नहीं। परकर्म का कुछ करे, यहाँ तो कर्म की बात लेनी है, वह कर्म जो नजदीक के सम्बन्ध में है, उसका भी कर्ता नहीं तो दूर क्षेत्र में रही हुई चीज़ का, उसकी पर्याय का कर्ता आत्मा है नहीं। आहाहा!

तो कैसा है ? 'मुनयः जनाः' 'अकर्तृ पश्यन्तु' यहाँ **'मुनयः जनाः'** का अर्थ इतना लिया है। सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा लिया है और अपने समयसार में **'मुनयः'** अर्थात् सन्त, सच्चे मुनि और जनों, अर्थात् विष्णु कर्ता माननेवाले जन। दो अर्थ लिये हैं। समझ में आया ? **'मुनयः जनाः'** मुनि और जन। जो लौकिक विष्णु कर्ता मानते हैं, वे जीव भी परद्रव्य को कर्ता न मानो। समझ में आया ? यहाँ एक अर्थ किया— **'मुनयः जनाः'** वहाँ पण्डित जयचन्द्रजी ने दो अर्थ किये हैं। और दो अर्थ हैं, वे बराबर हैं। क्योंकि वह विष्णु कर्ता का चला आता है न ?

सम्यग्दृष्टि हैं जो जीव वे जीवस्वरूप को 'कर्ता नहीं है'... आहाहा! कर्म का कर्ता तो नहीं है, परन्तु निश्चय से तो राग का कर्ता भी नहीं है। इसके लिये पहले कहा था न पहले ? कि जीवद्रव्य तो चेतनस्वरूप है, ऐसा कहा था। रागरूप है या (जड़) रूप है (ऐसा नहीं है), वह तो चेतनस्वरूप है। ज्ञायकस्वभाव है। वह ज्ञायकभाव पर का कैसे करे ? आहाहा! तो **'अकर्तृ पश्यन्तु' 'अकर्तृ पश्यन्तु'** की व्याख्या 'कर्ता नहीं', ऐसा अनुभव करो-आस्वादो। आहाहा! पर का, राग का कर्ता भी नहीं, वह तो चेतनस्वरूप है, ऐसी दृष्टिवन्त हे जीवो! अकर्ता देखकर **'पश्यन्तु'** (अर्थात्) अपने स्वरूप को अनुभव करो। आहाहा! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भगवान! बात तो ऐसी है, क्या हो इसमें ? **'अकर्तृ पश्यन्तु'** की व्याख्या कि राग का भी अकर्ता देखो। इसका अर्थ कि आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका आस्वाद लो। आहाहा! समझ में आया ? यह तो अपने कल चल गया है, यह तो चन्दुभाई आये हैं, इसलिए फिर से शुरु किया है।

सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव करो। अकर्ता देखो। **'पश्यन्तु'** देखो। अर्थात् राग का भी कर्ता नहीं, अकर्ता देखो। अर्थात् आत्मा राग का अकर्ता है तो आत्मा के आनन्द का आस्वाद लो। आहाहा! समझ में आया ? थोड़े शब्दों में तो बहुत भरा है, भगवान! यह सन्तों की वाणी इतनी सूक्ष्म है। अध्यात्म बात। आहाहा! जब राग का अकर्ता देखो

(ऐसा कहा), उसका अर्थ यह कि अपनी दृष्टि में स्वभाव आया तो स्वभाव की दृष्टि से अपने अकर्तापने का अनुभव करो। अर्थात् आनन्द का... आहाहा! राग है, वह आकुलता थी, उस आकुलता का अकर्ता देखो। वहाँ उसका अर्थ कि आनन्द का वेदन करो। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है। यह दुनिया के साथ कुछ चर्चा-वाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। यह तो कल कहा था न? समयसार में आया न? स्वयं स्व और परसमय के साथ वाद-विवाद करना नहीं, प्रभु! मार्ग ऐसा है, नाथ! कि कहीं शब्द से पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वसमय और परसमय के साथ वाद, वचनविवाद करना नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा जब चेतनस्वरूप है तो राग का अकर्ता जब देखा तो इसका अर्थ ऐसा हुआ कि अपने आनन्द का कर्ता होता है और कर्ता का कर्म आनन्द हो। यह भी उपचार से कहा जाता है। उसमें इतना भेद पड़ा न कि आत्मा कर्ता और आनन्द का स्वाद लेनेवाला कर्म। आहाहा! यह पहले आ गया है, पहले कलश में आ गया है। उपचार से कर्ता, पहले में आ गया है। अपनी परिणति का कर्ता भी उपचार से है। भेद पड़ा न? (इसलिए)। यह पहले आ गया है। आहाहा! ऐसी बातें है। यह तो अकेला भगवान परमानन्दस्वरूपी प्रभु! आहाहा!

यह चीज़ स्वाभाविक त्रिकाली आनन्द चीज़, वह विकृत अवस्था को कैसे करे? आहाहा! और विकृत अवस्था को न करे तो आनन्द अवस्था प्रभु (उसे करे)। पर के ऊपर तो दृष्टि रही नहीं। राग, दया, दान, व्रतादि का भी कर्ता नहीं। आहाहा! उसके ऊपर की दृष्टि उठ गयी है। मैं (उसका) रचनेवाला हूँ, यह दृष्टि तो उठ गयी है तो दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर आयी। आहाहा! भगवान तो चेतन और आनन्दस्वरूप है प्रभु तो। तो आनन्द का अनुभव करो। आहाहा! देवीलालजी! सूक्ष्म है परन्तु प्रभु! मार्ग तो यह है। आहाहा! इसमें किसी के लिये छोटे-बड़े शरीर की या छोटे-बड़े आयुष्य की कोई आवश्यकता नहीं है। हें? आहाहा! उसमें पठन बहुत है, तो यह समझ में आये, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो भगवान... वह आता है न? 'शिवभूत' अणगार, नहीं? शिवभूति को? मा-रुष और मा-तुष, इतना याद नहीं रहता था। गुरु ने उसका अर्थ इतना कहा कि वीतराग तात्पर्य। प्रभु! किसी के प्रति रोष नहीं, किसी के प्रति सन्तोष नहीं, राग नहीं। मा-रुष, मा-तुष। इतने शब्द भी याद न रहे। परन्तु उसका

तात्पर्य वीतरागता था, वह अन्दर में भावभासन हो गया। समझ में आया? वे शब्द भी इतने याद नहीं रहे। और एक स्त्री उड़द की दाल और क्या कहलाते हैं वे? छिलके! हमारे यहाँ अपने क्या कहा जाता है दाल को? छड़ी दाल कहते हैं हमारे यहाँ। छड़ी... धुली हुई, सफेद। वह छिलका निकालने के बाद सफेद रहती है न? उसे छड़ी दाल कहते हैं। एक बाई ऐसे ऊपर के छिलके निकाल डालती थी। किसी ने उससे पूछा क्या करती हो? माँ! (उसने कहा कि) छिलके निकालती हूँ और उड़द को अलग करती हूँ। इतना सुना। (अन्दर भाव का) भासन तो था। सुना और अन्दर विकल्प—छिलके थोड़े थे, छिलके! आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्यघन भगवान हूँ। अन्दर उतर गये (और) केवलज्ञान हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो फिर यह अभ्यास करने की कोई आवश्यकता ही नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जिसे भान नहीं, उसे तो पहले अभ्यास करना पड़ेगा न? जिसे बहुत शल्य है, विपरीत शल्य बहुत है, उतने प्रमाण में उसे अभ्यास करके विपरीत शल्य निकालने पड़ेंगे न? उनको तो कोई विपरीत शल्य नहीं थे। समझ में आया? असंख्य प्रकार के मिथ्यात्व और गृहीत मिथ्यात्व और अगृहीत मिथ्यात्व असंख्य प्रकार के हैं। सूक्ष्मरूप से तो अनन्त प्रकार के हैं। कहाँ-कहाँ इसकी पकड़ है, उसे छोड़ने के लिये ज्ञान तो करना पड़ेगा न? जिसे छूट गये हैं, उसे तो समाप्त हो गया है। आहाहा! समझ में आया?

अनादि काल से तत्त्व क्या चीज़ है, उसका अभ्यास तो अन्तर में किया नहीं तो उसने स्वलक्ष्य से शास्त्र का अभ्यास करना, ऐसा प्रवचनसार में चला है। प्रवचनसार, दूसरा अधिकार शुरु करते हुए, ज्ञेय अधिकार शुरु करते हुए ९३ गाथा में (कहते हैं)। ९२ गाथा (तक) ज्ञान अधिकार है, पश्चात् ९३ से ज्ञेय अधिकार है। ज्ञेय अधिकार का अभ्यास करो, वह भी स्वलक्ष्य से करना, ऐसा कहते हैं। कहा है न चन्दुभाई? आहाहा! और उस ज्ञेय अधिकार में ऐसा लिया है कि ज्ञेय का स्वरूप ऐसा है, यद्यपि ज्ञेय अधिकार कहा है परन्तु जयसेनाचार्य ने तो उसे समकित का अधिकार कहा है। पहले ९२ गाथा तक ज्ञान का अधिकार, फिर १०८ गाथा समकित का अधिकार और फिर चरणानुयोग, ऐसे तीन (अधिकार) है।

मुझे तो दूसरा कहना था कि इस ज्ञेय के अधिकार में १०१ और १०२ (गाथा) में ऐसा लिया है कि ज्ञेय का स्वरूप ही ऐसा है कि जिस क्षण में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पन्न होगी, ऐसा ज्ञेय का स्वरूप है। कोई दूसरे से उत्पन्न होती है, द्रव्य-गुण से नहीं और पर से भी नहीं। आहाहा! यह ज्ञेय अधिकार है और गर्भित रीति से समकित का अधिकार है। यह तो जयसेनाचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि यह समकित का ही अधिकार है, क्योंकि जैसी वस्तु है, वैसी ज्ञान में, ख्याल में प्रतीति आवे तो सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? ज्ञेय अधिकार में ऐसा कहा है कि, ज्ञेय ऐसा है। ज्ञेय अपने से ऐसा है कि उत्पाद के काल में उत्पाद, व्यय के काल में व्यय। उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं, व्यय को उत्पाद की अपेक्षा नहीं, उत्पाद में ध्रुव की अपेक्षा नहीं। यह ज्ञेय का ऐसा स्वरूप है। आहाहा! चन्दुभाई! पर की अपेक्षा तो निकाल दी। आहाहा! भगवान! यह तो शान्ति की बात है, प्रभु! यह कोई...

समय-समय की पर्याय में उत्पाद होता है। ज्ञेय अधिकार में—समकित के अधिकार में जिस समय जो पर्याय जहाँ उत्पन्न होती है, उस उत्पाद को व्यय और ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। पर की अपेक्षा तो नहीं... आहाहा! समझ में आया? एक बात। ज्ञेय अधिकार १०१ गाथा में यह कहा और १०२ में ऐसा कहा—जन्मक्षण। उस द्रव्य की पर्याय का जन्म-उत्पत्ति का काल है। आहाहा! कल बात आयी थी न? भाई! वह पाँच लब्धि, उसमें उन्होंने काललब्धि ली है। यहाँ अपने ऐसे पाँच लब्धि में क्षयोपशम आता है, क्षयोपशम। और उन्होंने काललब्धि ली है। मुझे दूसरा कहना है। काललब्धि में यह (बात) है कि, जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह काललब्धि है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा लिया है, पाठ है। काललब्धि उसे कहते हैं कि जिस समय में छहों द्रव्य की पर्याय उत्पन्न होने की है, उस समय में, हों! उस समय में आगे-पीछे नहीं, पहले-बाद में नहीं, फेरफार नहीं, उसे काललब्धि कहा जाता है। यह छहों द्रव्य में काललब्धि है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में मूल गाथा है। छहों द्रव्यों को काललब्धि है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें दो गाथा हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो गाथायें हैं, खबर है न, सब वांचन हो गया है, व्याख्यान हो गये हैं। यहाँ तो ४३ वर्ष हुए।

काललब्धि, ऐसा लिया है। समझ में आया? पाँच लब्धि में क्षयोपशम लब्धि के स्थान पर काललब्धि ली है। सवेरे आया था न? नियमसार में। वहाँ आगे उसका अर्थ यह किया कि जिस समय में (होनेवाली हो, वह होती है) परन्तु वह पर्याय द्रव्य में नहीं। वहाँ तो यह लेना है न? चार भाव है, परन्तु वे भाव, द्रव्य में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव '**अकर्तृ पश्यन्तु**' आहाहा! वह राग का रचनेवाला भी नहीं, ऐसा देखो तो उसका अर्थ यह हुआ कि तेरी आनन्द की पर्याय को आस्वाद करो। आहाहा! उसका कर्ता होकर आनन्द की पर्याय को तेरा कार्य बना। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भगवान! पर की दया तो पाल सकता नहीं। पर की दया पाल सकता हूँ, यह कार्य तो व्यवहार भी नहीं है। निषेध किया न? क्योंकि पर की दया तो पर की पर्याय है, उसे आत्मा कैसे पाल सकता है? आहाहा! परन्तु पर की दया का भाव आया, उसका भी कर्ता होता है, तो वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा को राग का भी अकर्ता देखो, आहाहा! अर्थात् भगवान आत्मा को आनन्दमय ज्ञानमय देखो। हें? आहाहा! वह आनन्दमय और ज्ञानमय देखने से तेरी पर्याय में आनन्द का स्वाद आयेगा। आहाहा! समझ में आया?

यह तो सन्तों की वाणी है, प्रभु! यह तो अध्यात्म की वाणी, नाथ! एक-एक शब्द में अनन्त आगम भरे हैं। एक-एक गाथा में नहीं, परन्तु एक-एक पद में! क्या कहा? अनन्त आगम! श्रीमद् कहते हैं न, ज्ञानी के एक वाक्य में, एक शब्द में अनन्त आगम रहे हैं। आहाहा! कितनी उसमें गम्भीरता और अपेक्षित बातें कितनी हैं, वह ज्ञानी जान सकता है, अज्ञानी को पता नहीं लगता। समझ में आया? आहाहा!

अनुभवो-आस्वादो। किस कारण से? किस कारण से पर का अकर्ता देखना और आत्मा का अनुभव करना? आहाहा! '**यतः एकस्य वस्तुनः अन्यतरेण सार्द्धं सकलोऽपि सम्बन्धः निषिद्धः एव**' कारण कि... '**एकस्य वस्तुनः**' शुद्ध जीवद्रव्य का... '**अन्यतरेण सार्द्धं**' पुद्गलद्रव्य के साथ और रागादि के साथ लेना। समझ में

आया? **'सकलः अपि' द्रव्यरूप, गुणरूप अथवा पर्यायरूप... 'सम्बन्धः' 'सम्बन्धः'** की व्याख्या **एकत्वपना...** समझ में आया? नहीं है—**अतीत-अनागत-वर्तमान काल में वर्जा है।** काल में लिया न? कि आत्मा और राग को तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। यह कर्ता-कर्म अधिकार की पहली गाथा में आया है। ६९ और ७० (गाथा)। कर्ता-कर्म की पहली ६९ और ७० गाथा में तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, (ऐसा लिया है)। भगवान को ज्ञान और आनन्द के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है, परन्तु राग के साथ तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, ऐसा लिया है। वहाँ है न, ६९-७०? आहाहा! इसी प्रकार यहाँ आत्मा....

मुमुक्षु : क्षणिक तादात्म्य है, ऐसा आप किसी-किसी समय कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्षणिक तो समझाने के लिये कहते थे। अनित्य तादात्म्य। कहा था, खबर है। एक पर्याय है न, एक पर्याय में तादात्म्य है, अज्ञानी को, हों! परन्तु वह यहाँ लेना नहीं। वहाँ कर्ता-कर्म में यह बात नहीं लेनी है। वहाँ तो तादात्म्यसम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा कहा है। मूल संस्कृत है, अमृतचन्द्राचार्य की बात है। समझ में आया? सम्बन्ध ही संयोगसिद्धसम्बन्ध कहा है। पाठ ही ऐसा लिया है। राग और भगवान (आत्मा) स्वभाव के साथ संयोगसम्बन्ध है, तादात्म्यसम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! ऐसा पाठ है। यह बात तो यहाँ बहुत बार चली है। आहाहा! आहाहा! बाद में तो स्पष्टीकरण करने को कहा कि यह पर्याय जड़ में नहीं। राग है तो अनित्य संयोग है, परन्तु उसे परमार्थ से संयोग सम्बन्ध वहाँ कहा है। आहाहा! कर्ता-कर्म ६९-७० (गाथा)। ६९ कहते हैं न? ७० में एक कम। पहली शुरुआत की दो गाथाएँ।

यहाँ कहते हैं कि तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। सर्व सम्बन्ध कहा न? कल चार बोल कहे थे। तादात्म्यसम्बन्ध नहीं, गुण-गुणी भाव नहीं। गुणी आत्मा और राग उसका गुण, ऐसा है नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह आत्मा का गुण और आत्मा गुणी, ऐसा नहीं। सर्व सम्बन्ध है न? यह सम्बन्ध भी नहीं। तादात्म्यसम्बन्ध नहीं, गुण-गुणी सम्बन्ध नहीं। दो (हुए)। तीसरा, लक्षण-लक्ष्य सम्बन्ध नहीं। राग लक्षण और आत्मा लक्ष्य, ऐसा परमार्थ सम्बन्ध नहीं है। परमार्थ सम्बन्ध नहीं, ऐसा क्यों कहा? कि पंचास्तिकाय में ऐसा आया है, चन्दुभाई! चाहे तो उत्पाद राग का हो, उसे लक्षण कहा है और द्रव्य को लक्ष्य कहा है। सूक्ष्म बात है थोड़ी, भाई! वहाँ तो

अस्तिकाय सिद्ध करना है। पंचास्तिकाय है न? तो अस्तिकाय सिद्ध करना है। वहाँ पहले ऐसा लिया है कि उत्पाद-व्यय लक्षण है, ध्रुव लक्ष्य है। तो उत्पाद-व्यय रागादि उत्पाद (होता है), वह भी लक्षण है और आत्मा लक्ष्य है। वह तो वस्तु की सिद्धि करने के लिये ऐसा है, ऐसा सिद्ध करने के लिये कहा है। बात समझ में आती है? आहाहा!

एक ओर ज्ञान लक्षण है और प्रभु लक्ष्य है। दूसरी ओर पंचास्तिकाय में अस्ति सिद्ध करने के लिये शुरुआत में पहली गाथाओं में ऐसा लिया है कि राग लक्षण है और आत्मा लक्ष्य है। आत्मा की अस्ति वहाँ सिद्ध करनी है, इतना। अभी अनुभव बाद में। आहाहा! पंचास्तिकाय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव में उत्पाद-व्यय लक्षण (कहे हैं) तो रागादि का उत्पाद और व्यय, वह भी लक्षण और ध्रुव वह लक्ष्य—ऐसा लिया है। आहाहा! यह बात। यहाँ यह बात नहीं। यहाँ लक्षलक्षण सम्बन्ध में राग लक्षण और आत्मा लक्ष्य, ऐसा सम्बन्ध नहीं है। यहाँ स्वभावदृष्टि का वर्णन है और वहाँ वस्तु की स्थिति सिद्ध करने के लिये वर्णन किया है। बस! जैसा है वैसा। समझ में आया? आहाहा! यह लक्ष्य-लक्षण कहा।

वाच्य-वाचक भाव। वाचक राग है और वाच्य भगवान है, ऐसा उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वाच्य-वाचक, यह आलाप पद्धति में है। आलाप पद्धति में सम्बन्ध की यह व्याख्या ली है। वाच्य-वाचक नहीं।

विशेष-विशेषण नहीं। आत्मा विशेष और राग उसका विशेषण अथवा आत्मा विशेष और कर्म उसका विशेषण, ऐसा नहीं है। समझ में आया? विशेषण समझ में आता है? जैसे ज्ञान विशेषण है और आत्मा विशेष है। यह तो विशेष-विशेषण है। परन्तु कर्म विशेषण है और आत्मा विशेष है, ऐसा नहीं। और राग विशेषण है और आत्मा विशेष है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आाय? हें?

मुमुक्षु : आगम ज्ञान भी विशेषण नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आगमज्ञान भी वास्तव में तो व्यवहार लक्षण में आता है। सवेरे कहा था। अभी कहा न? राग को लक्षण कहा और आत्मा को लक्ष्य कहा, इस अपेक्षा से कहा। वस्तु की स्थिति की अपेक्षा से आगमज्ञान भी ज्ञान नहीं। यह कहा न? बन्ध

अधिकार में (कहा) कि आचारांग आदि के ज्ञान को वहाँ शब्दज्ञान कहा है, भाई! बन्ध अधिकार में। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तीन बोल की व्याख्या है। उसमें... क्या कहा अभी? आचारांग ज्ञान की व्याख्या—आचारांग आदि के ज्ञान को शब्दज्ञान कहा है। व्यवहार। तो वह शब्दज्ञान है। चाहे तो शास्त्र के ज्ञान को शब्दज्ञान कहा है। इसलिए निषेध है, ऐसा कहा है। बन्ध अधिकार में है। और नौ तत्त्व की श्रद्धा... समझ में आया? वह भी पर है। अभी कहा न? क्या कहा? शब्दज्ञान। ऐसे श्रद्धा को—व्यवहार श्रद्धा को, नौ तत्त्व की श्रद्धा, ऐसा लिया है। वह श्रद्धा ही नौ तत्त्व है। जैसे शास्त्र का ज्ञान, वह शब्दज्ञान है, उसी प्रकार नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह नौ तत्त्व है, ऐसा कहा है। वह आत्मा नहीं। वहाँ लिया है, तीन बोल लिये हैं। बन्ध अधिकार में आया है। है?

मुमुक्षु : भेद की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यहाँ यह बताना है न कि वह तेरी चीज़ नहीं है। तेरे साथ गुण-गुणी, विशेष-विशेषण सम्बन्ध उसके साथ है ही नहीं। आहाहा!

तीसरी बात। पहले तो ऐसा कहा कि आचारंग के ज्ञान को शब्दज्ञान कहते हैं। वह आत्मज्ञान नहीं है। आहाहा! नौ तत्त्व की श्रद्धा को नौ तत्त्व कहते हैं। नौ तत्त्व की श्रद्धा को नौ तत्त्व कहते हैं। जैसे आचारंग के ज्ञान को शब्दज्ञान कहते हैं, (उसी प्रकार) नौ के भेदवाली श्रद्धा को नौ तत्त्व कहते हैं, वह आत्मा नहीं है और छह काय की दया वहाँ ली है। पंच महाव्रत में एक ही लिया है। क्योंकि एक में (बाकी के) चार आ जाते हैं। वह व्यवहारचारित्र कौन? कि छह काय जीव, ऐसा लिया है। व्यवहारचारित्र कौन? कि छह काय जीव, ऐसा लिया है। आहाहा! अरेरे! क्योंकि उसमें वह निमित्त है तो निमित्त का आश्रय है तो उसे छह काय कह दिया है। व्यवहारचारित्र जो राग की मन्दता है, वह व्यवहारचारित्र छह काय जीव है, ऐसा कहा है। वह छह काय का लक्ष्य है न, तो उसे छह काय ही कह दिया है। इसलिए वह हेय है, ऐसा कह दिया है। आहाहा! क्या हो? भाई! मार्ग तो ऐसा है। यह तो भगवान के श्रीमुख से निकली हुई वाणी है। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ जैसे ऐसे कहा है और यहाँ यह लेना कि वह सम्बन्ध ही नहीं। आहाहा!

विशेष-विशेषण सम्बन्ध ही नहीं। राग विशेषण है और आत्मा विशेष है, ऐसा सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। पंचास्तिकाय में ऐसा कहते हैं कि उत्पाद-व्यय विशेषण और ध्रुव विशेष है। वहाँ तो अस्ति सिद्ध करनी है, इतनी बात है। यहाँ तो स्वभाव की दृष्टि सिद्ध करके उसे निकाल डालना है। दृष्टि में से उसका आश्रय निकाल डालना है। आहाहा! समझ में आया? यह बोल तो आया था।

एक यह रह गया था। स्वस्वामीसम्बन्ध, यह कल नहीं आया था। ४७ शक्तियाँ हैं न? समयसार में ४७ कहते हैं न? चार और सात। उसकी अन्तिम शक्ति— स्वस्वामीसम्बन्ध है। स्वस्वामीसम्बन्ध किसके साथ है? कि अपना द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध, वह स्व और उसका वह स्वामी। परन्तु राग उसका स्व और आत्मा उसका स्वामी, ऐसा अन्दर नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय स्व और आत्मा उसका स्वामी, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ यह कहा, स्वस्वामी— राग स्व और आत्मा स्वामी, ऐसा सम्बन्ध राग के साथ नहीं है। आहाहा! यहाँ स्थूलरूप से कथन किया है। कर्म स्व और आत्मा स्वामी, ऐसा सम्बन्ध नहीं है। उसमें से निकालकर कहा कि राग स्व और आत्मा स्वामी, यह सम्बन्ध भी है नहीं। यह बाद में कहेंगे, स्पष्ट करेंगे। बाद के २०२ श्लोक में (कहेंगे)। समझ में आया? कोई कहे कि यहाँ तो कर्म के साथ बात है परन्तु राग के साथ बात कहाँ आयी इसमें? कि वह तो कर्म के साथ बात करते हैं, उसमें राग की बात साथ में आ गयी। समझ में आया? आहाहा!

'सकलः अपि' द्रव्य से, गुण से और पर्याय से एकपने **अतीत-अनागत-वर्तमान काल में वर्जा है।** तीनों काल। आहाहा! तीनों काल आत्मा को कर्म के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। (लोग) ऐसा लगाते हैं, कर्म का उदय आवे तो आत्मा को विकार करना ही पड़े। यह निमित्त होकर आता है, ऐसा कितने ही लोग कहते हैं। कौन कहते हैं, खबर है, समझे? वह निमित्त होकर आता है। नोकर्म निमित्त है, वह तो बनाओ तो बनाओ, परन्तु कर्म तो निमित्त होकर ही आता है। उदय आवे तो विकार करना ही पड़े, ऐसी बात नहीं है। हें? डिग्री टू डिग्री। वह है न एक कहता था न? कि जितना उदय आवे, उतना डिग्री टू डिग्री विकार करना पड़ता है। खबर है। आहाहा! प्रभु! ऐसा नहीं है। यहाँ तो निषेध करते हैं। परद्रव्य को अपने द्रव्य के साथ स्वस्वामीसम्बन्ध है ही

नहीं। वह भिन्न चीज़ है, एक-दूसरे में अत्यन्त अभाव है। कर्म की उदय पर्याय में और राग की पर्याय में दोनों में अत्यन्त अभाव है। आहाहा! और निश्चय में तो राग की पर्याय में और स्वभाव की पर्याय में भी अत्यन्त अभाव है। समझ में आया?

चार सम्बन्ध (अभाव) आते हैं न? हें? प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्यभाव, अत्यन्तअभाव। उस अत्यन्त अभाव में इस राग का अभाव नहीं आता। चार में यह नहीं आता। यह तो अध्यात्म का अभाव है। अध्यात्म की दृष्टि में चार व्यवहार है। न्याय ग्रंथों में प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। यह अत्यन्त अभाव पर और स्व के बीच का अभाव है और स्वभाव की स्थिति में राग और स्वभाव के बीच अत्यन्त अभाव है। इन चार बोल में यह नहीं आता। समझ में आया? आता है न वह? ७३ गाथा में, नहीं? कर्ता-कर्म (अधिकार) की ७३ (गाथा)। राग का स्वामी कर्म है। आहाहा! हें? क्या कहा?

मुमुक्षु : उसी और उसी में लिखा है कि फिर आत्मा उसका स्वामी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आत्मा स्वामी अज्ञानरूप से है। अज्ञानरूप से होकर स्वामी होता है, ऐसा। दो बोल हैं। पहले एक बोल, पश्चात् दो बोल हैं। चेतना परिणाम की बात है। है न उसमें? भाई! दो बोल आते हैं, खबर है। पहले यह बोल आता है, पश्चात् दूसरे दो बोल हैं। यह चेतना के परिणाम हैं, ऐसा आता है। वहाँ तो उसकी वस्तु की स्थिति कहते हुए पहले स्वामीपने कह दिया है, परनतु बना है, चेतना स्वयं परिणमा है, इस अपेक्षा से वहाँ चेतना के परिणाम कहे हैं। परन्तु यह चलता अधिकार हो तो अधिक (स्पष्टीकरण आवे)। तीन बोल है, खबर है न। आहाहा! ७३, ७३ गाथा। कर्ता-कर्म। आहाहा!

यहाँ (कहते हैं), सर्व सम्बन्ध। सम्बन्ध का अर्थ क्या किया? **एकत्वपना...** सम्बन्ध का अर्थ यह किया। आहाहा! समझ में आया? है न? सामने पुस्तक है या नहीं? इसलिए सामने पुस्तक रखते हैं। नहीं तो नीचे पुस्तक और ऊपर बैठना, यह ठीक नहीं कहलाता। पण्डितजी! यह प्रश्न हो गया है। परन्तु बापू! इसे अधिक समझने के लिये इसमें विनय है, इसलिए नीचे है, वह पुस्तक के (अविनय) के लिये नहीं। शब्द का क्या अर्थ है, यह (समझ में आये तो) इसे बहुमान आवे। इसलिए यह ऐसा है।

समझ में आया? नहीं तो नीचे पुस्तक और ऊपर (बैठना, यह बराबर नहीं है)। सब खबर है, बापू! खबर नहीं कहीं? परन्तु वांचनकार को अधिक विनय तब प्रगटे कि इस शब्द का ऐसा भाव! ऐसा उसे ख्याल में आने पर उसे सीधा बहुमान आता है। वह वास्तविक विनय है। आहाहा! है वह है, बाकी क्या हो? यह अभी साधु आये थे, वे ऐसा कहते थे कि तुम पुस्तक नीचे रखो तो हम सुनने नहीं आयेंगे। अभी थे न, भावनगर गये न? अब उसे क्या कहना? क्या अपेक्षा है? बापू! समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु : अन्धेरे में रह गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : रह गये। बापू! अनादि से अन्धकार है। एक-एक बोल में पृथक्ता है और कैसे विवेक है, उसे समझना कठिन है, भाई! आहाहा!

एकत्वपना अतीत-अनागत-वर्तमान काल में वर्जा है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिनिधन... अनादिनिधन अर्थात्? अन-आदि और अ-निधन, ऐसा। आदि नहीं और निधन अर्थात् अन्त नहीं। अनादिनिधन का ऐसा अर्थ करना। अनादि अर्थात् आदि नहीं, निधन अर्थात् नाश नहीं। निधन का अर्थ नाश होता है। **अनादिनिधन जो द्रव्य जैसा है, वह वैसा ही है,...** पर के साथ कोई सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा। और द्रव्य भी जैसा है, वैसा ही है। आहाहा! वास्तव में तो द्रव्य को भी राग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए। बड़ी बातें लम्बी-लम्बी करे, उसमें सत्य निकले नहीं, वह कहीं वस्तु कहलाये? प्रभु! आहाहा! यह तो परमात्मा का— वीतराग का मार्ग है।

अन्य द्रव्य के साथ नहीं मिलता है, इसलिए जीवद्रव्य पुद्गलकर्म का अकर्ता है। यहाँ पुद्गल की व्याख्या कही है तो अब स्पष्ट करने के लिये राग-द्वेष की व्याख्या करते हैं। आगे की गाथा (कलश) में। मूल तो वहाँ पुद्गल कहा। परन्तु पुद्गल का कर्ता होता है, वह राग-द्वेष का कर्ता होता ही है। वही पुद्गल का कर्ता मानता है। समझ में आया? परन्तु राग-द्वेष का कर्ता माने, वह पुद्गल का कर्ता निमित्त से मानता है। यह सिद्ध करने के लिये अब राग-द्वेष कहेंगे। यहाँ अकेले कर्म लिये हैं तो अब राग-द्वेष के भाव डालेंगे। २०२।

गाथा - २०२

(वसन्ततिलका)

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मानमग्नमहसो वत ते वराकाः।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म-
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ।।१०-२०२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'वत ते वराकाः कर्म कुर्वन्ति' [वत] दुःख के साथ कहते हैं कि [ते वराकाः] ऐसी जो मिथ्यादृष्टि जीवराशि, [कर्म कुर्वन्ति] मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति करती है। कैसी है 'अज्ञान-मग्नमहसः' [अज्ञान] मिथ्यात्वरूप भाव के कारण, [मग्न] आच्छादा गया है [महसः] शुद्धचैतनयप्रकाश जिसका, ऐसी है; 'तु ये इमं स्वभावनियमं न कलयन्ति' [तु] क्योंकि [ये] जो [इमं स्वभावनियमं] जीवद्रव्य, ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड का कर्ता नहीं है — ऐसे वस्तुस्वभाव को [न कलयन्ति] स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से नहीं अनुभवती है। भावार्थ इस प्रकार है कि — मिथ्यादृष्टि जीवराशि, शुद्धस्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है; इसलिए पर्यायरत है, इसलिए मिथ्यात्व-राग-द्वेष अशुद्धपरिणामरूप परिणमती है। 'ततः भावकर्म-कर्ता चेतन एव स्वयं भवति न अन्यः' [ततः] तिस कारण [भावकर्म] मिथ्यात्व-राग-द्वेष-अशुद्ध-चेतनारूप परिणाम का, [कर्ता चेतन एव स्वयं भवति] व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है — ऐसा जीवद्रव्य, आप कर्ता होता है; [न अन्यः] पुद्गलकर्म, कर्ता नहीं होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव, मिथ्यादृष्टि होता हुआ जैसे अशुद्धभावरूप परिणमता है, वैसे भावों का कर्ता होता है — ऐसा सिद्धान्त है।।१०-२०२।।

कलश - २०२ पर प्रवचन

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मानमग्नमहसो वत ते वराकाः।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म-
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ।।१०-२०२।।

.....'**वराकाः**' का अर्थ रंक, भिखारी होता है। उसमें—समयसार में पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ किया है। '**कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म**' देखा? अब भावकर्म लिया। '**वत ते वराकाः कर्म कुर्वन्ति**' '**वत**' अर्थात् **दुःख के साथ कहते हैं कि,...** आहाहा! आचार्य कहते हैं, अरे रे! हम क्या कहें? दुःख के साथ कहते हैं, कहते हुए खेद होता है, ऐसा कहते हैं। **ऐसी जो... 'ते वराकाः'** रंक, भिखारी। अपनी चैतन्यलक्ष्मी की खबर नहीं। भगवान—भग अर्थात् आनन्द आदि लक्ष्मी जिसका स्वरूप है। आहाहा! उसकी जिसे खबर नहीं, वह राग का भिखारी कर्ता होता है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का भी भिखारी रंक कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ ऐसा किया कि **मिथ्यादृष्टि जीवराशि...** ऐसा। रंक, वांराका अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवराशि, ऐसा। ऐसा अर्थ किया है। समझ में आया? चन्दुभाई! राग को अपना मानता है, वह कौन है? रंक है। रंक का अर्थ मिथ्यादृष्टि जीव। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो गरीब हो, वह मिथ्यादृष्टि हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि गरीब है। निर्धन है, उसकी बात यहाँ नहीं है। निर्धन-सधन धूल के हों, दो-पाँच अरबवाले या गरीब हों, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? लक्ष्मी उसकी है कहाँ? वास्तव में तो लक्ष्मीपति कहते हैं, वह जड़पति है। निर्जरा अधिकार में सम्यग्दृष्टि की गाथा में तो ऐसा आया है कि मैं राग का स्वामी होऊँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। आहाहा! यह गाथा, पाठ है। क्योंकि भैंस... भैंस होती है न? भैंस का स्वामी पाड़ा होता है। इसी प्रकार लक्ष्मी मेरी है और राग मेरा है, (ऐसा मानूँ तो) मैं जड़ हो जाऊँ। आहाहा! निर्जरा अधिकार में है। समयसार, प्रवचनसार,... दिगम्बर सन्तों की वाणी में तो समुद्र भरे हैं, समुद्र! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह वाराँका, आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीवराशि...** पण्डित जयचन्द्रजी ने वराँका का अर्थ रंक किया है। समयसार। इसका अर्थ रंक, रंक—भिखारी (किया है)। और दूसरा अर्थ यह है। यहाँ वराँका का अर्थ भिखारी न करते मिथ्यादृष्टि भिखारी रंक है। मिथ्यादृष्टि को कहा।

मुमुक्षु : सदाचार धर्म पाले तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : सदाचार धर्म पाले तो भी भिखारी है। राग है, विकल्प है। सदाचार दो प्रकार के हैं। एक सज्जनता, राग की मन्दता का सदाचार और एक सत्— आनन्दकन्द का सत् का आचार। वह सदाचार (है और) वह वास्तविक सदाचार है। व्यवहाररत्नत्रय का आचरण भी अनाचार है, ऐसा लिखा है। आहाहा! नियमसार में आता है। हैं?

मुमुक्षु : महाव्रत को भी अनाचार कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनाचार कहा है, अनाचार है। जहर है न! आहाहा! लो, हो गया समय? ओहोहो! विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल १, बुधवार, दिनांक-०८-०२-१९७८, कलश-२०२, प्रवचन-२२६

२०२ (कलश)। थोड़ा चला है, एक लाईन। फिर से। श्लोक बोला गया है। **'वत ते वराकाः कर्म कुर्वन्ति'** आहाहा! अरे! आचार्य महाराज कहते हैं कि, दुःख के साथ मुझे कहना पड़ता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **दुःख के साथ कहते हैं कि,... 'ते वराकाः'** अपनी चीज़ आनन्द और ज्ञान लक्ष्मी से भरी है, उसकी खबर नहीं, ऐसे रंक। वरांका अर्थात् रंक—भिखारी। पर में अपना लाभ मानते हैं। राग और दया, दान और व्रतादि के परिणाम, जो अपने में है नहीं तो अपनी लक्ष्मी अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञानादि स्वभाव, उस लक्ष्मी को तो जानता नहीं और वरांका राग और दया, दान विकल्प का कर्ता होता है, वह भिखारी है। आहाहा! ऐसा कहा है। दुःख के साथ कहना पड़ता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! करुणा है न, करुणा! अरे रे! खेद के साथ कहते हैं कि... आहाहा! यह वरांका अर्थात् रंक। इसका अर्थ किया भाई ने—**मिथ्यादृष्टि जीवराशि...** क्यों? कि स्वरूप का लक्ष्य नहीं और राग के, दया, दान, व्रतादि के परिणाम का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। जीवराशि है। लो, कोई (गुजराती शब्द) आ जाता है। समझ में आया? आहाहा!

वरांका की व्याख्या यह की है कि मिथ्यादृष्टि जीवराशि। क्योंकि एकाध जीव नहीं न, अनन्त जीव मिथ्यादृष्टि हैं। अपनी लक्ष्मी जो आनन्द और ज्ञानस्वरूप ध्रुव चैतन्य भगवान, उसे तो जानता नहीं, उसकी कीमत नहीं, उसका माहात्म्य नहीं, उस ओर की सन्मुखता-झुकाव नहीं। जहाँ वस्तु पड़ी है, वहाँ झुकाव नहीं और जिसमें—रागादि में वस्तु नहीं, वहाँ भिखारी, रंक उसका कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है, भगवान!

यहाँ स्वरूप-लक्ष्मी को छोड़कर जो रागभाव आदि आते हैं, शुभाशुभभाव, वह **मिथ्यादृष्टि जीवराशि... 'कर्म कुर्वन्ति'** यह मोह-राग-द्वेष अशुद्ध परिणति को करती है। आहाहा! यह तो सब अरबोंपति और करोड़ोंपति साधु हो, महा पंच महाव्रत धारण करता हो, जिसे लाखों लोग मानते हों तो भी कहते हैं कि अरे! प्रभु! तेरी लक्ष्मी जो

अन्दर आनन्द पड़ी है... आहाहा! अनन्त ज्ञान, शान्ति आदि स्वभावसन्मुख तो तेरी दृष्टि नहीं, उस ओर का तुझे अनुभव नहीं। यह आगे कहेंगे अभी, '**कलयन्ति**', '**न कलयन्ति**' कहेंगे। '**न कलयन्ति**' का अर्थ उसका अनुभव नहीं और राग और पुण्य के परिणाम और पाप के परिणाम को मिथ्यादृष्टि जीव मोह (अर्थात्) पर में सावधान (रहकर) **राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति करती है।** आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कैसा है? कौन कैसी है? मिथ्यादृष्टि जीवराशि। स्वरूप की दृष्टि, लक्ष्मी की खबर नहीं ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव की राशि। जो राग से लाभ होगा, राग दया, दान, व्रतादि के परिणाम, ऐसे मिथ्यात्वभाव को—मोह को करता है और राग-द्वेष को करता है। आहाहा! समझ में आया? कैसी है जीवराशि? '**अज्ञानमग्नमहसः**' आहाहा! **मिथ्यात्वरूप भाव के कारण...** यह राग का कर्ता होता है, जो आत्मा के स्वभाव में राग को करने की कोई शक्ति, स्वभाव है ही नहीं। आत्मा के स्वभाव में, गुण में, शक्ति में, सत् के सत्त्व में, सत् जो भगवान आत्मा उसका सत्त्व जो स्वभावभाव, उसमें कोई स्वभाव, शक्ति राग को करे, ऐसी कोई शक्ति है नहीं। ऐसे स्वभाव का अनजाना प्राणी... आहाहा! अज्ञान अर्थात् मिथ्यात्वरूप पाप के भाव के कारण से।

'**मग्न**' '**मग्न**' की व्याख्या क्या की है? देखो! **आच्छादा गया है,...** आच्छादित हो गया है। आहाहा! ढँक गया है, उसने चैतन्य वस्तु को ढाँक दिया है। समझ में आया? है या नहीं? चन्दुभाई! आहाहा! ज्ञानानन्द, सहजानन्दस्वरूप प्रभु में तो मग्न (नहीं)। '**अज्ञानमग्न**' स्वरूप को ढाँककर मिथ्यात्व में मग्न हो गया है। आहाहा! अज्ञान में मग्न अर्थात् मिथ्यात्व में मग्न अथवा मिथ्यात्व से अपना स्वरूप आच्छादित हुआ है। आहाहा! है तो सही। समझ में आया?

ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा न? ग्यारहवीं गाथा (समयसार)। तिरोभाव और आविर्भाव—दो भाषा ली है। संस्कृत टीका में है, ग्यारहवीं मूल गाथा। जैनदर्शन का प्राण! अज्ञानी को आत्मा तिरोभूत हो गया है, ऐसा वहाँ कहा है। ज्ञायकभाव भूतार्थभाव, भूतार्थ कहा न? वह तिरोभूत हो गया है। इसका अर्थ, ज्ञायकभाव तिरोभूत होता नहीं। तो भी पाठ ऐसा है। ग्यारहवीं गाथा में पाठ ऐसा है। आहाहा! कि भगवान आत्मा

ज्ञायकस्वरूप, उसकी मिथ्यादृष्टि के कारण ज्ञायकभाव ढँक गया है। ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव ही है, परन्तु उसकी दृष्टि में ढँक गया, इस कारण से ढँक गया है, ऐसा कहा है। समझ में आया? आच्छादित कहा न? वस्तु आच्छादित (होती नहीं)। वस्तु तो वस्तु है ही। वस्तु में तो कभी आविर्भाव भी नहीं होता और तिरोभाव भी नहीं होती। वस्तु तो त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु मिथ्याश्रद्धा के कारण राग का कर्ता होता है, इस कारण से, वस्तु का स्वभाव ढँक गया है, ढाँक दिया है। वस्तु तो वस्तु है ही। ऐसा (समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में सम्यग्दर्शन का (विषय कहा है)।

'**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' वहाँ ऐसा लिया है कि उस ज्ञायकभाव का जिसे भान नहीं और राग को अपना मानता है, उसे आत्मा—ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। उसे तिरोभूत हो गया है। वस्तु तो वस्तु है, वस्तु तिरोभूत—आविर्भाव होती नहीं। आहाहा! तिरोभूत समझ में आता है? ढाँक दिया है। आविर्भाव—प्रगट हुई, ऐसा कहते हैं। ज्ञानी को ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ है, ऐसा पाठ है। तो ज्ञायक तो ज्ञायक ही है, वह आविर्भाव या तिरोभाव कभी होता नहीं। समझ में आया? परन्तु अज्ञान में उसका ख्याल नहीं था, भान नहीं था, इस कारण से ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया, ऐसा कहने में आया और भान में आया कि यह तो चैतन्यमूर्ति ज्ञायक है, ऐसा सम्यग्दर्शन में भान आया, तो आविर्भाव हो गया अथवा ज्ञायक तो ज्ञायक है ही परन्तु ख्याल में आया, इसलिए आविर्भाव हुआ, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? भाई! अध्यात्ममार्ग सूक्ष्म है। आहाहा! यह कोई कथा, वार्ता नहीं। यह तो भगवत् कथा—आत्मा की कथा है। आहाहा!

कहते हैं, ज्ञायकभाव अज्ञानभाव से आच्छादित हो गया है। आहाहा! है न? अज्ञान की व्याख्या मिथ्यात्व की। **मिथ्यात्वरूप भाव के कारण आच्छादा गया है,...** कौन? **शुद्ध चैतन्यप्रकाश जिसका,...** वह। आहाहा! द्रव्यस्वभाव। द्रव्यस्वभाव कभी ढँके और खुले, ऐसा है नहीं। वह तो पर्याय में भान नहीं, उसे ढँक गया कहने में आया है और भान हुआ तो प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आया है। वह तो है, वह है, ज्ञायक

त्रिकाल द्रव्य। समझ में आया? आहाहा! परन्तु जिसे अपने ज्ञायकस्वभाव पर अन्दर में अस्तित्व की प्रतीति आयी नहीं, यह अस्तित्व मैं परमानन्दस्वरूप अस्तित्व हूँ, मेरी अस्ति ही पूर्ण ज्ञान और आनन्द से है, ऐसी अस्ति की जिसे स्वीकृति नहीं, अनुभव में नहीं, ऐसा अभी तो लेंगे, वह राग को ही अपना मानकर पूरे आत्मा को ढाँक दिया है। आहाहा! समझ में आया?

कौन ढँक गया है? '**महसः**' '**महसः**' **शुद्ध चैतन्यप्रकाश...** आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्य ध्रुव प्रकाश, वह ढ़ँक गया है। पर्याय में भान नहीं, इसलिए ढँक गया— ऐसा कहा। बाकी है वह तो है ही। आहाहा! समझ में आया? '**तु ये इमं स्वभावनियमं न कलयन्ति**' पहले वरांका, भिखारी कहा न? आहाहा! अरे! प्रभु! भगवान होकर तू भिक्षा माँगता है? मुझे राग चाहिए और राग हो तो मुझे लाभ हो, व्यवहाररत्नत्रय का भाव शुभराग है, उस शुभराग से मुझे लाभ है, वह तो भिखारी—रंक हो गया। पर में माँगता है, वस्तु कहीं वहाँ है? आहाहा! समझ में आया?

वरांका कहकर तो अर्थकार ने मिथ्यादृष्टि जीवराशि कहा। इसका अर्थ यह कि जिसे इस वस्तु की स्थिति की खबर नहीं, उसे अनुभव नहीं तो वह वरांक-भिखारी मिथ्यादृष्टि जीवराशि अपने स्वरूप को, अज्ञान में मग्न होकर ढाँक देता है। आहाहा! थोड़े शब्दों में भी अन्दर भाव बहुत हैं। आहाहा! यह तो सन्तों की वाणी है, प्रभु! आहाहा! 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुःखिया' सन्त की व्याख्या मुनि ही, ऐसा कहीं वहाँ नहीं। सन्त की व्याख्या तो समकितदृष्टि को भी सन्त कहते हैं। समयसार नाटक है न? उसमें पहले बहुत नाम आये हैं। वहाँ सन्त शब्द भी प्रयोग किया है। (संत अर्थात्) सम्यग्दृष्टि। समयसार नाटक में पहले नाम आये हैं न? उसमें है। आहाहा! योगी शब्द भी प्रयोग किया है। यह दोपहर में आयेगा। मोक्षार्थी शब्द है न? वहाँ संस्कृत में योगी लिया है। मुमुक्षु योगी, ऐसा लिया है। आहाहा!

जिसे आत्मा के अनुभव के रस का स्वाद आया, वह मुमुक्षु, वह योगी है। जिसने अपने स्वभाव में अपनी पर्याय को जोड़ दिया है। राग से तोड़ दिया और स्वभाव के साथ जोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया? इस अपेक्षा से तो मुमुक्षु को भी योगी कहा

जाता है। आहाहा! यह योगी अर्थात् वह बाबा, योगी-बोगी वह यहाँ नहीं, हों! यह तो भगवान आत्मा परमानन्द के रस से, कस से भरपूर, लबालब भरपूर है, ऐसा '**कलयन्ति**' अर्थात् अनुभव हुआ.... आहाहा! उस स्वभाव का स्वीकार हुआ, उस त्रिकाल स्वभाव का सत्कार किया, सत्कार—सत्-कार, सत् का कार्य किया... आहाहा! उसे योगी कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो समकिती चक्रवर्ती के राज में पड़ा हो। आहाहा! परन्तु उसकी दृष्टि का जुड़ान तो स्वभाव के साथ है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहा, **शुद्ध चैतन्यप्रकाश...** आहाहा! '**तु ये इमं स्वभावनियमं न कलयन्ति**' **क्योंकि जो,...** '**तु**' का अर्थ किया। **क्योंकि जो,...** '**इमं स्वभावनियमं**' **जीवद्रव्य ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड का कर्ता नहीं है...** राग का भी कर्ता नहीं, ऐसा साथ में ले लेना। **जीवद्रव्य ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड का कर्ता नहीं है...** ऐसे वस्तु के स्वभाव को अज्ञानी '**न कलयन्ति**'। '**न कलयन्ति**' (अर्थात्) न अभ्यसति, न अनुभवति। आहाहा! समझ में आया? अपना स्वभाव चैतन्य भगवान महाप्रभु विराजता है, उसका तो स्वीकार—अनुभव नहीं और राग का स्वीकार और अनुभव करता है, वह वस्तु के स्वरूप का नियम नहीं जानता। क्योंकि अज्ञानी राग का कर्ता होता है, उसे वस्तु के स्वरूप की खबर नहीं। वस्तु आत्मा है, वह राग करे या कर्म करे, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

'**न कलयन्ति**' वस्तु स्वभाव को '**न कलयन्ति**'। आहाहा! वह राग का कर्ता होता है और कर्म का कर्ता तो निमित्त से कहा गया है, कर्ता तो है नहीं, पुद्गल की पर्याय पुद्गल से होती है और व्यय भी उससे होता है, परन्तु यहाँ राग का कर्ता है तो पर का कर्ता है, ऐसा निमित्त से कहा गया है। समझ में आया? तो कहते हैं कि जो कुछ वस्तु के स्वभाव का नियम अर्थात् वास्तविक स्थिति नहीं अनुभव करते। आहाहा! चैतन्यद्रव्य जो ज्ञायमूर्ति प्रभु, उसे '**न कलयन्ति**' (अर्थात्) उसका जिसने अन्तर अभ्यास किया नहीं। अभ्यास अर्थात् अनुभव। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है। लक्ष्मीचनदभाई! वीरचन्दभाई को प्रेम है परन्तु यह वस्तु कोई ऐसी अलग प्रकार की है। बाहर के पैसे में लोग फँस जाते हैं। करोड़ मिले और दो करोड़ मिले और धूल

मिली और... अर र! बापू! वह चीज़ तो जड़ है न, भाई! वह जड़ तेरी कहाँ से हो गयी? यहाँ तो राग का कर्ता होता है, तो मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लक्ष्मी, शरीर, स्त्री और परिवार और वे तो परद्रव्य (हैं) और स्वद्रव्य में अत्यन्त अभावरूप हैं। समझ में आया? वे अभावरूप हैं, वह तेरा भाव कहाँ से आया? यहाँ तो अपने स्वरूप को, शुद्धता को '**न कलयन्ति**' शुद्ध का वेदन-अनुभव करता नहीं, वह अज्ञानी वस्तु के नियम को नहीं जानता कि आत्मा राग का कर्ता नहीं है। ऐसे नियम को वह नहीं जानता। आहाहा! समझ में आया?

धीरे से, ध्यान रखना। कुछ नहीं समझ में आयेगा? ऐसा नहीं मानना। भगवान केवलज्ञान लेने की सामर्थ्यवाला प्रभु है। एक समय में केवलज्ञान ले, एक समय में! आहाहा! उसे ऐसी बात न समझ में आये, 'नहीं समझ में आती'—यह शल्य उसे समझने नहीं देता। समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द का नाथ, यहाँ तो सबकों जीवराशि कहा न? सर्व जीवराशि को कहा कि, तू भगवान है न प्रभु! तीन काल तीन लोक में सर्व जीव भगवत्स्वरूप है, ऐसी तू भावना कर। आहाहा! यह आ गया न? बन्ध अधिकार में। 'विनाशआर्तम' अथवा समयसार जानकर क्या करना? दो जगह यह आता है। यह कर और यह विचार और यह अनुभव करना। आहाहा!

जिसकी पर्यायदृष्टि गयी, राग को अपना मानना, वह दृष्टि गयी और स्वभावदृष्टि हुई तो दूसरे को भी स्वभावस्वरूप ही देखता है। आहाहा! भगवानस्वरूप चैतन्यमूर्ति भगवान है। भूल है तो पर्याय में है तो पर्यायबुद्धि तो निकाल दी है। इस कारण से उसकी पर्याय में उसका ज्ञान करता है, परन्तु वस्तु भगवानस्वरूप है, उसे वह साधर्मी रूप से आत्मा मानता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि वस्तु स्वभाव का अनुभव। वापस '**न कलयन्ति**' के अर्थ में भाषा कहाँ तक ली है? **स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से नहीं अनुभवती है।** आहाहा! ये क्या कहा? क्योंकि उसमें एक प्रकाश नाम की शक्ति है। भगवान आत्मा में... ४७ शक्ति का वर्णन है न? ऐसी तो अनन्त शक्ति हैं, परन्तु ४७ शक्ति के वर्णन में ऐसा लिया है। नय ४७, शक्ति ४७, उपादान-निमित्त के दोहे ४७ और चार कर्म की प्रकृति ४७। ४७ समझ

में आता है ? चार और सात। वहाँ आचार्य ने ४७ शक्ति में पूरा किया, नय में ४७ नय ले लिये। समझ में आया ? चार घाति कर्म की प्रकृति ४७ है और भैया भगवतीदास ने उपादान-निमित्त के दोहे बनाये, वे ४७ हैं। तेरी चीज़ में तो आनन्द का नाथ प्रभु अनन्त गुण है न, प्रभु! आहाहा! यह चार घाति कर्म के निमित्त से पर्याय में हीन दशा है, वह भी तुझमें नहीं। आहाहा! तू तो पूर्ण है। ऐसा जिसे '**न कलयन्ति**' अनुभव प्रत्यक्ष नहीं करता। आहाहा! यह तो सार का सार है, प्रभु!

स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से नहीं अनुभवती है। कौन नहीं अनुभव करती ? मिथ्यादृष्टि जीवराशि। पहले ऊपर कहा। आहाहा! मिथ्यादृष्टि जीव की राशि, अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष आनन्द का अनुभव नहीं करती। आहाहा! **स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से नहीं अनुभवती है।** आहाहा! अनुभव नहीं करता, वह स्वभाव का नियम नहीं जानता, इसलिए वह राग का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? व्यवहाररत्नत्रय जो है, वह भी शुभराग है और राग से मुझे लाभ होगा और राग मेरी चीज़ है, वह अपने स्वरूप के प्रत्यक्ष अनुभव से रहित होता हुआ राग को अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया ? अथवा वह राग-शुभराग है, वह साधन है और मेरी चीज़ साध्य है, ऐसा मानता है। जिसे साधन मानता है, उसका प्रेम क्यों छोड़े ? समझ में आया ? जिसे अपने लाभ में— शुद्ध निश्चय में कारण मानता है, उस कारण की रुचि क्यों छोड़े ? आहाहा! समझ में आया ? यह कहते हैं प्रत्यक्षरूप से अनुभवती नहीं। मिथ्यादृष्टि जीवराशि राग की कर्ता होती है। समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि—मिथ्यादृष्टि जीवराशि... देखो! पहले आया था न यह ? **शुद्धस्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट है,...** आहाहा! शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप प्रभु के आनन्द के स्वाद से मिथ्यादृष्टि जीव राशि भ्रष्ट है। आहाहा! जैन हो, जैन का साधु हो, अपने पहले आ गया है, पहले आया था न ? जैनमताश्रित हो, बहुत पढ़ा हो, द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालता हो, मोक्ष का अभिलाषी हो तो भी उसे मोक्ष नहीं है। पहले १९९ में आ गया है।

अनुभव से भ्रष्ट है,... मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि है। राग जो शुभ है, वह मुझे (लाभ

करेगा)। आहाहा! यह प्रवचनसार में कल ७७ गाथा में आ गया। शुभ और अशुभ दोनों भाव में विशेष मानता है कि शुभ ठीक और अशुभ अठीक, ऐसा भेद डालता है, वह घोर संसार में भटकेगा। प्रवचनसार की ७७ गाथा। पुण्य और पाप दोनों भाव में भेद है, विशेष है; एकरूप है—ऐसा नहीं मानकर पुण्य और पाप में कुछ अन्तर है, ऐसा माननेवाले घोर संसार में नरक और निगोद में जायेंगे। आहाहा! घोर संसार तो वह नरक और निगोद है। आहाहा! वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर मुनिपना माने, मनावे और मानते हों, उन्हें भला जाने तो निगोदम् गच्छई, ऐसा लिया है। यह ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा नहीं है। बड़ा गुनहगार है। आहाहा! समझ में आया? (किसी को ऐसा लगे कि) एक वस्त्र का टुकड़ा रखे और मुनिपना माने, इतने में क्या हुआ? भाई! इतने में तो पूरे नौ तत्त्व की विपरीत दृष्टि हो गयी। समझ में आया? क्योंकि मुनि को जितना अजीव का संयोग चाहिए, उससे अधिक संयोग माना तो अजीव की श्रद्धा ही यथार्थ नहीं। और वहाँ जो वस्त्र रखने का विकल्प आया तो वहाँ उतना आस्रव होता ही नहीं, तो उसने आस्रव को भी माना नहीं। और जिसे विकल्प आया, उससे संवर अल्प हुआ, वहाँ उतना संवर कम हुआ, (यथार्थ मुनिदशा में) वहाँ संवर विशेष होता है, वहाँ ऐसा विकल्प नहीं होता, तो संवर तत्त्व को भी माना नहीं। संवर की, आस्रव की, अजीव की—संयोग की, जीव के आश्रय की (भूल है)। जहाँ वस्त्र ग्रहण का विकल्प आया और मुनिपना माने तो (वह मिथ्यात्व है)। जीव का आश्रय उग्ररूप से लिया है, वहाँ संवर विशेष होता है, वहाँ वस्त्र ग्रहण का विकल्प उत्पन्न होता ही नहीं। वहाँ जीव का आश्रय विशेष लिया है तो उस आश्रय की भी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! तो भी कितने ही ऐसा कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य ने यह भारी कठोर कर दिया है। अरे! प्रभु! तू न कहे, ऐसा न कह, भाई! ऐसा कि वस्त्र का एक ताना रखे और मुनिपना माने तो सीधे निगोद (जाये)! बस!

मुमुक्षु : बहुत बड़ा गुनाह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। जैसा है, वैसा ही यथार्थ है। इसने बड़ा गुनाह किया है। नौ तत्त्व की वास्तविक स्थिति की मर्यादा तोड़ डाली है। समझ में आया?

आहाहा! यह कोई सम्प्रदाय की अपेक्षा से बात नहीं है। वस्तु की स्थिति की मर्यादा से इसने विरुद्ध कर दिया है। समझ में आया? किसी को दुःख लगे, वह कुछ नहीं, बापू! आहाहा! और इस मिथ्यात्व का दुःख, भाई! आहाहा! वर्तमान तो दुःखी, परन्तु इसके फलरूप से दुःख। अरे रे! जिसे एक प्रतिकूलता—काँटा लगे तो ठीक नहीं लगता, उसे यह मिथ्यात्व के फलरूप से नरक और निगोद, बापू! ऐसे जीवों का कहीं तिरस्कार नहीं कराया। समझ में आया? आहाहा! अरे रे! उसे वहाँ कैसा दुःख होगा और क्या होगा? समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, '**न कलयन्ति**' अपने अनुभव से भ्रष्ट है, **इससे पर्यायरत है...** आहाहा! बस! जहाँ आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं तो वहाँ जहाँ दृष्टि है, वहाँ तो राग है, वहाँ रत है। आहाहा! सूक्ष्म है, बापू! भगवान! तू तो है न, बापू! भाई! आहाहा! जिसे यह वस्तु के स्वभाव का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं... आहाहा! वह पर्यायरत है। क्योंकि इस ओर रत नहीं तो इस ओर रत है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस ओर रत का अर्थ—प्रत्यक्ष अनुभव। उस ओर रत का अर्थ—पर्याय में राग, राग की रुचि। आहाहा! समझ में आया?

पर्यायरत है,... है? **इससे...** इस कारण से। यह कारण दिया है। **मिथ्यात्व राग-द्वेष अशुद्ध-परिणामरूप परिणमती है।** आहाहा! मिथ्यात्व और राग-द्वेष अशुद्ध परिणामरूप जीवराशि परिणमती है। जीवराशि कहा न? वह जीवराशि मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणमती है, आहाहा! जिसे उस शुभराग का प्रेम है और शुभराग को साधक मानता है, उसे मोक्ष के मार्ग में कारण मानता है। यहाँ तो अभी (अज्ञानियों ने) शुभ, वह मोक्ष का मार्ग है, ऐसा खुल्ला रखा है। मक्खनलालजी (ने)। आहाहा! प्रभु ऐसा नहीं होता, बापू! भाई! शुभराग है, वह तो बन्धन का कारण है। चाहे तो मुनियों को पंच महाव्रत का विकल्प आवे, वह जगपंथ है, उतना संसार है। आहाहा! उसे मोक्षमार्ग नहीं कहा जाता। आहाहा! अभी प्रभु का विरह पड़ा। लक्ष्मी जाये, परिवार में क्लेश हो और बाप मर जाये, फिर झगड़े हों। आहाहा! इसी प्रकार तीन लोक के नाथ अभी नहीं होते, केवलज्ञान प्रगट होने की लक्ष्मी घट गयी और झगड़े खड़े किये।

आहाहा! एक कहे, शुभभाव करते-करते होगा। आहाहा! बाकी तो झगड़ा मिटाने का मार्ग यह है। उसे कोई माननेवाले अधिक मिलें या न मिले, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। सत् को माननेवाले कोई अधिक हों तो वह सत् है, ऐसी कोई सत् के लिये संख्या की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! सत् तो सत्स्वरूप ही है। उससे जो भ्रष्ट है, वे राग में रत हैं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए मिथ्यात्व राग-द्वेष अशुद्ध-परिणामरूप परिणमती है। 'ततः भावकर्मकर्ता चेतन एव स्वयं भवति न अन्यः' आहाहा! इस कारण से। देखो! यहाँ तो पुण्य-पाप के भाव का कर्ता चेतन ही है, (ऐसा कहा)। एक ओर अकर्ता कहा, वह तो स्वभाव की दृष्टि से। जिसे स्वभाव की दृष्टि, अनुभव हुआ है, वह राग का कर्ता नहीं, वह राग का जाननेवाला है, परन्तु अज्ञानी को अभी स्वभाव की खबर नहीं, वह ऐसा कहता है कि मैं राग का कर्ता नहीं, कर्म के कारण से राग होता है या कर्म का कर्ता और राग का कर्ता हूँ, यह बात अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? (बात) सूक्ष्म तो है, भाई! आहाहा!

'भावकर्मकर्ता चेतन एव स्वयं भवति न अन्यः' वह पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का कर्ता चेतन स्वयं ही अज्ञानभाव से है। उसे ऐसा नहीं कि उसे राग हुआ, इसलिए कर्म के कारण हुआ, उसे कर्म के कारण हुआ, (ऐसा नहीं)। समझ में आया? आहाहा! दो शब्द तो प्रयोग किये हैं। एक तो **'भावकर्मकर्ता चेतन एव' 'चेतन एव'** चेतन ही, ऐसा। है न? **व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है—ऐसा जीवद्रव्य,...** यह क्या कहा? 'ही' **'एव'** है न? **मिथ्यात्व राग-द्वेष—अशुद्ध चेतनारूप परिणाम का, 'कर्ता चेतन एव स्वयं भवति' व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है...** अज्ञानी। आत्मा की पर्याय में, आत्मा व्यापक ऐसा कहा जाता है और राग, वह व्याप्य है। अज्ञानी का व्याप्य-व्यापकपना वह है। आत्मा व्यापक अर्थात् पसरनेवाला, फैलनेवाला और व्याप्य अर्थात् कार्य, राग। वह अज्ञानरूप से अज्ञानी राग में व्याप्य-व्यापकपने परिणमता है। आहाहा! वह कर्म के कारण रागपना आया है और ऐसा है, वह खोटी बात है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

एक नरक के दुःख का वर्णन रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आया है, भाई ने थोड़ा

डाला है। उसके एक क्षण के दुःख करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से नहीं कहे जा सकते। करोड़ों जीभों से! आहाहा! बापू! भगवान! तू भूल गया। बाहर का उत्साह और हर्ष में, बाहर का उत्साह और हर्ष में तेरे दुःख अनन्त काल में कैसे थे, (वह भूल गया)। जिसके क्षण के दुःख को कहने में करोड़ों जीभ और करोड़ों भव भी कह नहीं सकते। वे दुःख कैसे होंगे? बापू! आहाहा! आहाहा! जिसके आनन्दस्वभाव को कहा नहीं जा सकता, ऐसी अगम्य वस्तु, परन्तु जिसके दुःख के स्वभाव को कहने के लिये करोड़ों जीभ और करोड़ों भव में कहा नहीं जा सकता, इतना उल्टा-विपरीत पड़ा है, (उतने) नरक में दुःख हैं। एक क्षण का, हों! आहाहा! वहाँ तो दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। दस हजार (वर्ष) और एक समय की स्थिति में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है, दस हजार और दो समय की स्थिति में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। ऐसे जाते-जाते पल्योपम ले लेना और सागरोपम ले लेना और ३३ सागर लेना। आहाहा!

भाई! आदि रहित काल में प्रभु! तूने विचार नहीं किया। आदि रहित काल, प्रभु! कहाँ रहा तू? अनन्त-अनन्त (काल में) किसी काल में भव बिना का रहा नहीं। वह भव तो सब यह किये। आहाहा! चारों गति दुःखी है। ऐसे यह नरक के दुःख का वर्णन तो गजब बात है, भाई! आहाहा! इस मिथ्यात्व के कारण, मिथ्यात्व की कितनी नीचता है, और उसका फल कितना हल्का है, उसकी खबर नहीं और सम्यग्दर्शन का फल कितना लाभदायक है, भवच्छेद करके अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करेगा, उसके माहात्म्य की इसे खबर नहीं है। समझ में आया?

व्याप्य-व्यापक, समझ में आया? '**चेतन एव स्वयं भवति**' '**स्वयं भवति**' की व्याख्या की है। स्वयं व्याप्य-व्यापक होता है, ऐसा। है न? '**कर्ता चेतन एव स्वयं भवति**' कर्ता व्यापक होकर और वह '**स्वयं भवति**' होता है, वह व्याप्य है। आहाहा! शुभराग का व्याप्य-व्यापकरूप से कर्ता अज्ञानी होता है। '**स्वयं एव भवति**' होना, वह व्याप्य है, होनेवाला वह व्यापक है। अज्ञानी व्यापक है, राग उसका व्याप्य है। आहाहा! अरे! भाई! यह विचार तो किया नहीं और किसी की लगाकर यह है और वह है (लगायी)। आहाहा! समझ में आया?

व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है—ऐसा... परिणमता है, देखो! होता है, वह रागरूप होता है। तू ऐसा ही मान बैठे कि मुझे राग कर्म के कारण हुआ है, अज्ञानी ऐसा मान ले (तो) मूढ है। तू स्वयं ही व्यापक होकर व्याप्य-कार्य राग का तूने किया है। स्वरूप की तो तुझे खबर नहीं। आनन्द का नाथ भगवान है, उसका कार्य तो आनन्द की दशा है। आहाहा! समझ में आया? एक मिनिट रह गया, दूसरी एक (बात) याद आयी।

आत्मा में एक अकार्यकारण नाम की शक्ति, गुण है। अकार्यकारण नाम का आत्मा में एक गुण है कि जिस गुण के कारण राग का कर्ता भी नहीं और राग का कार्य उसे नहीं। राग का कारण भी नहीं और राग का वह कार्य नहीं। कार्य अर्थात् निर्मलदशा हो, वह राग के कारण हुई, ऐसा नहीं है और निर्मलदशा राग को उत्पन्न करे, यह भी नहीं है। अकार्यकारण नाम का आत्मा में एक अनादि-अनन्त गुण है। आहाहा! उस चीज़ की खबर नहीं, इसलिए वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि राग में व्याप्य-व्यापक होकर परिणमता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कर्ता होता है,... देखा? **ऐसा जीवद्रव्य, आप कर्ता होता है, पुद्गलकर्म कर्ता नहीं होता है।** यहाँ तो पुद्गलकर्म का कर्ता नहीं, ऐसा लेना है, तथापि व्याप्य-व्यापक में पुद्गल कर्ता नहीं, ऐसा ले लिया। अज्ञानी राग स्वयं करता है और राग पर तो दृष्टि है, वस्तु की तो खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? **पुद्गलकर्म कर्ता नहीं होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ जैसे अशुद्धभावरूप परिणमता है, वैसे भावों का कर्ता होता है,...** बस! अशुद्धरूपी परिणमन है, तो उसका कर्ता होता है, यह अज्ञानी का कार्य है। आहाहा! और यह परिभ्रमण का कारण है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २०३

(शार्दूलविक्रीडित)

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तञ्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाञ्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ।।११-२०३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ततः अस्य जीवः कर्ता च तत् चिदनुगं जीवस्य एव कर्म' [ततः] तिस कारण से [अस्य] रागादि अशुद्धचेतनापरिणाम के [जीवः कर्ता] जीवद्रव्य, (पर्याय) उस काल में व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है; इसलिए कर्ता है [च] और [तत्] रागादि अशुद्धपरिणमन, [चिदनुगं] अशुद्धरूप है, चेतनारूप है; इसलिए [जीवस्य एव कर्म] उस काल में व्याप्य-व्यापकरूप, जीवद्रव्य आप परिणमता है; इसलिए जीव का किया है। किस कारण से? 'यत् पुद्गलः ज्ञाता न' [यत्] जिस कारण से [पुद्गलः ज्ञाता न] पुद्गलद्रव्य चेतनारूप नहीं है; रागादि परिणाम, चेतनारूप है; इसलिए जीव का किया है। कहा है भाव, उसे गाढ़ा-पक्का करते हैं — 'कर्म अकृतं न' [कर्म] रागादि अशुद्धचेतनारूप परिणाम, [अकृतं न] अनादिनिधन आकाशद्रव्य के समान स्वयंसिद्ध है, ऐसा भी नहीं है; किसी के द्वारा किया हुआ होता है। ऐसा है किस कारण से? 'कार्यत्वात्' कारण कि घट के समान उपजता है, विनशता है। इसलिए प्रतीति ऐसी जो करतूतिरूप है। [च] तथा 'तत् जीव-प्रकृत्योः द्वयोः कृतिः न' [तत्] रागादि अशुद्धचेतनपरिणमन, [जीव] चेतनद्रव्य और [प्रकृत्योः] पुद्गलद्रव्य, ऐसे [द्वयोः] दो द्रव्यों की [कृतिः न] करतूति नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि जीव तथा कर्म के मिलने पर, रागादि अशुद्धचेतनपरिणाम होता है; इसलिए दोनों द्रव्य, कर्ता हैं। समाधान इस प्रकार है कि दोनों द्रव्य, कर्ता नहीं हैं, कारण कि रागादि अशुद्धपरिणामों का बाह्यकारण-निमित्तमात्र, पुद्गलकर्म का उदय है; अन्तरंग कषाय व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य, विभावरूप परिणमता है; इसलिए जीव का कर्तापना घटित होता है; पुद्गलकर्म का कर्तापना घटित नहीं होता है, कारण कि 'अज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्' [अज्ञायाः] अचेतनद्रव्यरूप है जो [प्रकृतेः]

ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, उसके [स्वकार्य] अपनी करतूति के [फल] सुख-दुःख के [भुग्भाव] भोक्तापने का [अनुषंगात्] प्रसंग प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो द्रव्य, जिस भाव का कर्ता होता है, वह उस द्रव्य का भोक्ता भी होता है। ऐसा होनेपर रागादि अशुद्धचेतनपरिणाम, जो जीव-कर्म दोनों ने मिलकर किया होवे, तो दोनों भोक्ता होंगे, सो दोनों भोक्ता तो नहीं हैं। कारण कि जीवद्रव्य, चेतन है तिस कारण सुख-दुःख का भोक्ता होवे, ऐसा घटित होता है; पुद्गलद्रव्य अचेतन होने से, सुख-दुःख का भोक्ता घटित नहीं होता। इसलिए रागादि अशुद्धचेतनपरिणमन का अकेला संसारी जीव, कर्ता है, भोक्ता भी है। इसी अर्थ को और गाढ़ा-पक्का करते हैं— 'एकस्याः प्रकृतेः कृतिः न' [एकस्याः प्रकृतेः] अकेले पुद्गलकर्म की [कृतिः न] करतूति नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि रागादि अशुद्धचेतनपरिणाम अकेले पुद्गलकर्म का किया है। उत्तर ऐसा है कि ऐसा भी नहीं है, कारण कि 'अचित्त्वलसनात्' अनुभव ऐसा आता है कि पुद्गलकर्म, अचेतनद्रव्य है, रागादि परिणाम, अशुद्धचेतनारूप है; इसलिए अचेतनद्रव्य का परिणाम, अचेतनरूप होता है; चेतनरूप नहीं होता। इस कारण रागादि अशुद्धपरिणाम का कर्ता, संसारी जीव है, भोक्ता भी है।।११-२०३।।

माघ शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक-०९-०२-१९७८, कलश-२०३, प्रवचन-२२७

---

२०३ कलश है।

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तञ्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाञ्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ।।११-२०३।।

यह अनादि अज्ञानी की बात है। विकार (भाव) जो पुण्य-पाप के (भाव) होते हैं, वे जीव अपनी पर्याय में विकार करते हैं, कर्म से नहीं होता। अभी यह बात सिद्ध करनी है। अज्ञानी आत्मा विकार का कर्ता व्याप्य-व्यापक होकर, व्यापक अर्थात् पसरकर, व्याप्य अर्थात् विकारी कार्य को वह करता है, कर्म नहीं। आत्मा के स्वभाव

की दृष्टि से देखो, तब तो राग का कर्ता आत्मा नहीं। वह तो दृष्टि का विषय शुद्ध चैतन्यस्वभाव जहाँ दृष्टि में आया तो इस अपेक्षा से धर्मी-सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वभाव का कर्ता होता है। शुद्धस्वभाव अर्थात् पर्याय। वह राग का कर्ता नहीं होता। क्योंकि राग करने की अन्दर में अनहद शक्ति है, उसमें से कोई शक्ति नहीं है। इस कारण से समकिती जीव राग का कर्ता नहीं होकर राग का ज्ञाता है।

यहाँ दूसरी बात लेनी है। यह तो अज्ञानी राग करता है, तो वह राग का करनेवाला है कौन? राग, द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पुण्य-पाप के भाव। यह कहते हैं, देखो! **'ततः अस्य जीवः कर्ता च तत् चिदनुगं जीवस्य एव कर्म' तिस कारण से रागादि अशुद्ध चेतनापरिणाम के जीवद्रव्य उस काल में...** उस काल में। उस काल में अर्थात् जब तक अज्ञानभाव है (अर्थात्) अपने स्वभाव का सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, तब तक उस काल में, ऐसा। **व्याप्या-व्यापकरूप...** परिणमता है। आहाहा! कोई ऐसा कहता है न? शास्त्र में तीन बातें आयीं।

एक ओर जयसेनाचार्यदेव की टीका में आता है, रतनचन्दजी यह बात सामने रखते हैं, ऐसा कि पुत्र नहीं माता का, नहीं पिता का। दोनों का पुत्र होता है। इसी प्रकार लाल रंग खारी फिटकरी और साबुन, फिटकरी और क्षार मिलकर लाल रंग होता है तो वह दोनों मिलकर लाल होते हैं, एक से नहीं। इसी प्रकार आत्मा और कर्म दो मिलकर कर्म-विकार होता है, एक से नहीं। यह जयसेनाचार्यदेव की टीका में वहाँ कहा है, वह तो प्रमाण का ज्ञान कराया है। चन्दुभाई! आहाहा! क्या हो? वह तो निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराया है, परन्तु दो से होता है, ऐसा यथार्थरूप से नहीं है। आहाहा! यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं।

एक ओर कहे कि विकार पुद्गल का परिणाम हैं, जीव का नहीं। वह किस अपेक्षा से? जहाँ अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य पूर्णानन्द पूर्ण प्रभु अनन्त गुण की राशि, ऐसे भगवानआत्मा का ज्ञान और अनुभव में प्रतीति हुई तो वह आत्मा राग का कर्ता नहीं। उस राग का कर्ता, कर्म है—ऐसा वहाँ कहा है। क्योंकि दोनों चीज़ निकल जाती है तो राग का कर्ता कर्म है, आत्मा नहीं। आहाहा!

व्याप्य-व्यापकभाव से भी ऐसी एक चीज़ आती है। सूक्ष्म बात है, भाई! एक

ओर ऐसा कहते हैं कि पूर्व कर्म व्यापक है। १०८-१०९-११०-१११ गाथा, समयसार। पूर्व कर्म व्यापक है और नये कर्म व्याप्य है। चन्दुभाई! अपने यह सब तो बहुत बार चल गया है। यह तो यहाँ क्या कहते हैं और वहाँ क्या बात है? यह बात (करते हैं)। समझ में आया? जहाँ दो होकर विकार होता है, ऐसा कहा, वहाँ तो निमित्त का ज्ञान कराया है और राग का कर्ता आत्मा नहीं, वह पुद्गल के परिणाम है तो वह पुद्गल कर्ता है, ऐसा कहने के काल में जिसे अपने स्वभाव की दृष्टि ज्ञायकस्वरूप सम्यग्दर्शन हुआ तो वह राग का कर्ता नहीं परन्तु राग का ज्ञाता है, ऐसा जानकर राग का कर्ता वह आत्मा नहीं, पुद्गल है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ वहाँ वह वह आचरे आत्मार्थी जन यही' एक स्थान में कुछ कहा और दूसरे स्थान में कुछ कहा परन्तु किस अपेक्षा से कहा है, उसे न समझे तो बड़ी गड़बड़ उठे। यहाँ तो बिल्कुल आत्मा ही विकार करता है, ऐसा सिद्ध करना है, चन्दुभाई! आहाहा!

कर्ता-कर्म अधिकार की ७५ गाथा में (ऐसा कहा कि) राग-द्वेष आदि और शरीरादि सब परवस्तु है, आत्मा उसका कर्ता नहीं है। ७५ (गाथा)। आहाहा! अन्तरंग और बहिरंग, ऐसा शब्द वहाँ आया है। है न? यहाँ तो बहुत वाँचन हो गया है। बहिरंग अर्थात् शरीर, वाणी, मन और अन्तरंग अर्थात् पुण्य-पाप, राग-द्वेष, मिथ्यात्वादि। इन सबमें व्यापक आत्मा और उसका वह व्याप्य, ऐसा है नहीं। आहाहा! वहाँ तो ७५ में तो ज्ञानी की बात करते हैं। ज्ञानस्वभाव मैं चैतन्यमूर्ति प्रभु, पूर्ण आनन्द और ज्ञान हूँ—ऐसी प्रतीति में अनुभव में ज्ञेय होकर, वस्तु का त्रिकाली स्वभाव वर्तमान पर्याय में ज्ञेय होकर जानने में आया और उसमें प्रतीति की कि यह आत्मा तो शुद्ध चैतन्यघन है। उसे रागादि का व्याप्य-व्यापकरूप से करनेवाला आत्मा नहीं। राग का कर्ता कर्म और कर्म व्यापक होकर विकार-व्याप्य होता है। आहाहा! समझ में आया? ७५-७६-७७-७८-७९ पाँच गाथाओं में यह (लिया है)। वहाँ ज्ञानी की बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **जीवद्रव्य उस काल में...** उस काल में अर्थात् जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं, अज्ञान है। आहाहा! **उस काल में व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है,...** आत्मा—व्यापक जीव और विकार व्याप्य। व्यापक (अर्थात्) कर्ता, व्याप्य उसका कर्म

अर्थात् अज्ञानी का कार्य। जैन में भी बहुत ऐसा कहते हैं न कि कर्म और आत्मा दोनों मिलकर विकार होता है। उसके सामने यह दलील है। और सांख्यमत में ऐसा दृष्टान्त आता है कि यह रजो, तमो और सत्त्व जो विकार है, वह प्रकृति का कार्य है। यह टीका में है। सांख्य दर्शन की बात टीका में ली है। सांख्य भी ऐसा कहते हैं कि रजो, तमो और सत्त्व गुण है न? तीन विकार है। है तो तीन विकार, परन्तु उस विकार का कर्ता प्रकृति है, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार जैन में भी कोई अज्ञानी इस राग का कर्ता आत्मा नहीं, ऐसा अज्ञानी मानता है, उसके सामने यह दलील है, समझ में आया? ऐसा है। कितनी बात आयी?

एक ओर कहते हैं कि जैसे दो के बिना पुत्र नहीं होता, वैसे दो के बिना विकार नहीं होता, ऐसा पाठ है। जयसेनाचार्यदेव की टीका, समयसार। वहाँ दूसरी बात है। वहाँ तो निमित्त और उपादान साथ में लेकर प्रमाणज्ञान कराया है और जहाँ कर्म व्यापक और नया कर्म व्याप्य है, ऐसा लिया है। वह द्रव्य भिन्न और यह द्रव्य भिन्न। १०९-११०-१११-११२ गाथा है। अमृतचन्द्राचार्यदेव की संस्कृत टीका और जयसेनाचार्यदेव की दोनों की टीका है। समझ में आया? वहाँ तो ऐसा कहा कि पूर्व कर्म का उदय है, वह व्यापक है और नया कर्म बँधता है, वह व्याप्य है। आहाहा! कठिन बातें, कठिन बहुत। लोगों को प्राप्त करना कठिन, भाई! मार्ग तो अन्तर का अभ्यास हो, उसे यह समझ में आये, ऐसा है। ऐसी बात है। समझ में आया? आहाहा!

वहाँ ऐसा कहा कि पूर्व का कर्म व्यापक और नया कर्म व्याप्य। परद्रव्य व्याप्य और यह द्रव्य व्यापक। आहाहा! वह किस अपेक्षा से कहा? द्रव्य का स्वभाव ऐसा है नहीं कि विकार करे। विकार करे और बन्धन हो, ऐसा द्रव्य का स्वभाव नहीं है। तो उस विकार का कर्ता वास्तव में पूर्व का कर्म है, वह नये कर्म का कारण है तो नया कर्म व्याप्य है, पूर्व कर्म व्यापक है। बीच में राग होता है, वह भी कर्म के निमित्त से होता है, ऐसा। चन्दुभाई! आहाहा!

यहाँ दूसरी बात है। ज्ञानी बिल्कुल राग का कर्ता है, ऐसा नहीं। आहाहा! क्योंकि एक समय की विकृतदशा और त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, शुद्धस्वभाव जहाँ पिण्ड अकेला प्रभु, ऐसी जहाँ अन्तर सम्यक् दृष्टि हुई, सम्यक् अर्थात् सत्य, वह सत्य ऐसा है, तो वह

राग का कर्ता नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि उस काल में (अर्थात्) जब तक अज्ञानी है और आत्मा का भान नहीं, वह ऐसा कहते हैं कि यह विकार कर्म से होता है, हमारे से नहीं, उसके सामने यह दलील है। समझ में आया? आहाहा! **उस काल में...** ऐसा शब्द पड़ा है न? **व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इसलिए कर्ता है...** आहाहा!

जीवद्रव्य कर्ता। यह जीवद्रव्य कर्ता। वास्तव में जो जीव वस्तु है, वह तो कर्ता है नहीं, परन्तु जीवद्रव्य कर्ता का अर्थ उस समय की पर्याय को जीवद्रव्य कहा। सूक्ष्म बात है। द्रव्य जो है, वह तो त्रिकाली शुद्ध ही है। चाहे तो एकेन्द्रिय की पर्याय हो, दो इन्द्रिय की पर्याय हो, स्वर्ग की पर्याय चाहे जो हो, परन्तु द्रव्य तो शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द ही है। द्रव्य में विकार भी होता नहीं और द्रव्य में अविकारी पर्याय भी नयी होती हे, ऐसा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जब तक ज्ञान और आत्मा का स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु दृष्टि में आया नहीं, तब तक उसकी दृष्टि को पर के ऊपर है तो उस काल में पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के परिणाम (होते हैं), उनमें व्यापक आत्मा है, अथवा उसकी पर्याय। त्रिकाली द्रव्य तो पसरता नहीं। जीवद्रव्य तो यहाँ कहा। समझ में आया? द्रव्य तो ध्रुव है। ध्रुव कर्ता किस प्रकार होगा? ऐ..ई! आहाहा! परन्तु उस समय की पर्याय जो विकृत करनेवाली है, छह कारक है न? छह कारक—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, उनमें कर्ता जीवद्रव्य नहीं लेना। कारक पर्याय में होते हैं। अरे! ऐसी बात है। समझ में आया? वहाँ कर्ता जीवद्रव्य लिया, परन्तु पर्याय की जो दशा है, उसे जीवद्रव्य कह दिया है। पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण। आहाहा! समझ में आया? तो यहाँ जीवद्रव्य कहा, उसमें भी पर्याय लेना।

व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इसलिए कर्ता है और रागादि अशुद्ध परिणमन अशुद्धरूप है, चेतनारूप है,... आहाहा! देखो! यहाँ मिथ्यात्व और राग-द्वेष को भी चेतनारूप कहा है। है न? अन्दर शब्द है—'**चिद्-अनुगं**' संस्कृत शब्द है—'**चिद्-अनुगं**' समझ में आया? आहाहा! इसका अर्थ किया है, देखो! '**चिद्-अनुगं**'। चिद्

अर्थात् अशुद्धरूप चेतनारूप है। '**चिद्-अनुगं**'। चेतन को अनुसरकर होता है। यह विकार पर को अनुसरकर होता नहीं। आहाहा! '**चिद्-अनुगं**' अशुद्धरूप। अर्थ तो करना है '**चिद्-अनुगं**' इसका अर्थ चेतनारूप अशुद्धरूप है। समझ में आया? चन्दुभाई! पाठ में '**चिद्-अनुगं**' है। '**चिद्-अनुगं**' का अशुद्धरूप ऐसा अर्थ होता नहीं परन्तु '**चिद्-अनुगं**' (अर्थात्) चेतन को अनुसरकर होता है, इसलिए वह चेतन है। 'है' लेना, हों! 'छे' शब्द आ जाता है।

मुमुक्षु : घड़ीक में उसे जीव का कहो, घड़ीक में पुद्गल का कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो बात करते हैं। एक में ऐसा कहे कि पुद्गल स्वामी है। दूसरे में ऐसा कहे कि दो कर्ता है। तीसरे में ऐसा कहे कि ज्ञानी भी विकार का स्वामी है। कल आया न? कल अपने आया था न? अधिष्ठाता, नय अधिकार। अनन्त धर्म का अधिष्ठाता आत्मा है, स्वामी आत्मा है। वह समकितदृष्टि का ज्ञानप्रधानता से कथन है। आहाहा! विकार का करना और विकार के परिणमन का स्वामी आत्मा है, ऐसा वहाँ लिया है। प्रवचनसार, ४७ नय ज्ञानप्रधान अधिकार। हैं?

मुमुक्षु : दोष बतलाना हो, तब ऐसा कहे कि जीव का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका दोष है, परिणति उसकी है, उसका स्वामी वह है। उसका स्वामी कहीं जड़कर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो जो बताते हैं, वह तो अज्ञानी की बात है। आहाहा! दोष होता है, भाई! जैसा कर्म का उदय आवे, वैसा हमें विकार करना पड़े और कर्म का उदय आवे, वह तो निमित्त होकर आता है, पककर आता है, तो निमित्त होकर आता है तो यहाँ विकार करना ही पड़ता है, ऐसा नहीं है। नोकर्म है, वह तो हम बनावें तो बने, परन्तु कर्म जो है वह तो निमित्त होकर आता है, ऐसा प्रश्न उठा था, बड़ी चर्चा हुई थी, लेख भी हुआ है। नाम नहीं देते। समझ में आया? ऐसा कि कर्म जो है... क्या कहा अभी? कहा न कि निमित्त होकर आता है। सुना है या नहीं? वहाँ सम्मेदशिखर में हो गया है, एक व्यक्ति ने बड़ा लेखन किया है कि कर्म से यह विकार होता है, कर्म से होता है। अर्थात्? वह कर्म निमित्त होकर आते हैं। ऐसा कि कर्म निमित्त होकर जहाँ आया तो विकार करना

ही पड़ता है। वह निमित्त होकर आता है तो निमित्त कराता ही है, ऐसा (वे) कहते हैं। परन्तु निमित्त तो स्पर्श भी नहीं करता न! यहाँ भी निमित्त को स्पर्श नहीं करता। अज्ञानी भी निमित्त को स्पर्श नहीं करता, परन्तु अपनी पर्याय में अपने स्वभाव का भान नहीं, मैं ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु हूँ, ऐसी खबर नहीं, इसलिए पर्यायदृष्टि में विकाररूप परिणमना, व्याप्य-व्यापक होकर अज्ञानी स्वयं करता है। आहाहा! समझ में आया? देखो!

रागादि अशुद्ध परिणमन... 'चिद्-अनुगं'। 'चिद्-अनुगं' अर्थात् चेतनारूप, ऐसा लेना है। **'चिद्-अनुगं'**। ज्ञान को अनुसरकर हुआ है अर्थात् आत्मा को अनुसरकर हुआ है, कोई कर्म को अनुसरकर हुआ है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा सब अब... कितनी अपेक्षायें! ऐसा भी है। विकार का आश्रय आत्मा है, ऐसा भी आता है। प्रवचनसार। पण्डितजी! यहाँ तो सब बात हो गयी है। है, कौन सी गाथा है खबर है? गाथा कहीं याद रहती है? हें? १०। बस, लो, देखो! .... **स्व-पर आश्रयभूत वस्तु के अभाव में (अर्थात् अपने आश्रयभूत जो वस्तु वह न हो तो) निराश्रय परिणाम को शून्यता का प्रसंग आता है।** यह सव का आश्रय है, ऐसा। राग के परिणाम को स्व का आश्रय है। आश्रय का अर्थ उसमें होता है, इसलिए उसका आश्रय है, ऐसा कहा। संस्कृत टीका है न? समझ में आया? आहाहा! स्व-आश्रय है। **क्योंकि स्व-आश्रयभूत वस्तु के अभाव में निराश्रय परिणाम को शून्यता का प्रसंग आता है।** परिणाम से भिन्न वस्तु देखने में नहीं आती। परिणाम बिना की वस्तु गधे के सींग के समान हैं। देखो! वहाँ लिया है। उसे स्व-आश्रय है। उसका आश्रय है। इससे भी दूसरा शब्द है। यहाँ कहा न? कौन जाने कहाँ होगा? दूसरा शब्द स्पष्ट है। मूल संस्कृत पाठ है। आहाहा! क्या कहा यह? क्या कहा?

विकारी परिणाम कोई पर के आश्रय से नहीं होते, ऐसा वहाँ कहते हैं। स्व आत्मा के आश्रय से होते हैं। आत्मा में होते हैं, इसलिए आत्मा के आश्रय से होते हैं, ऐसा कहा। कोई ऐसा कहे कि आत्मा का तो त्रिकाल शुद्धस्वभाव है। उसके आश्रय से विकार कैसे हुआ? इसका अर्थ यहाँ ऐसा नहीं लेना। यहाँ तो आत्मा में आत्मा के कारण से होता है, इसलिए आत्मा के आश्रय से होता है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! यह निकालना दोपहर में। भाई! स्पष्ट 'आश्रय' (शब्द) है। बताया था, नहीं?

पण्डितजी! ऐसा कि विकार का कारण भी आत्मा ही है, आश्रय है। ऐसा है। कितनी गाथा है? हैं?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह तो प्रवचनसार, समझ में आया?

यहाँ जो लेना है, वह तो उस काल में जब तक स्वरूप की दृष्टि, शुद्धस्वभाव पूर्ण पवित्र त्रिकाल की दृष्टि हुई नहीं, तब तक पर्याय में लक्ष्य में अस्तिपना तो वहाँ है, यहाँ (स्वभाव में) अस्तिपने की दृष्टि तो है नहीं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को तो अस्तित्व वस्तु अन्दर पूर्ण है, उसकी दृष्टि अन्दर प्रतीति में है। इसलिए पूर्ण अस्तित्व है, उस अस्तित्व की प्रतीति के ज्ञान के भान में क्षणिक विकृत (भाव) है, उसका वह कर्ता होता नहीं। परन्तु यहाँ तो उस काल में उसका अस्तित्व जो त्रिकाल शुद्ध है, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! तो उसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर ही है तो राग और पुण्य, पाप, विकल्प का कर्ता वह होता है। उस काल में (होता है)। जब तक अपना पूर्ण अस्तित्व दृष्टि में आया नहीं, तब तक इतने अस्तित्व में राग का कर्ता, पुण्य-पाप का कर्ता अज्ञानी होता है। आहाहा! क्या हो? प्रभु! भगवान का मार्ग ऐसा है।

एक ओर वे रतनचन्दजी ऐसा दृष्टान्त देते हैं कि देखो! दो के बिना नहीं होता। यह जयसेनाचार्यदेव की टीका में आता है। हल्दी और... हल्दी... हल्दी कहते हैं न? हल्दी। हल्दी और चूना दो मिले तो लाल रंग होता है, ऐसा पाठ है। लाल, लाल समझे? फिटकरी और हल्दी दो मिलकर लाल होता है ....। तो ऐसा कि भगवान आत्मा और कर्म दो मिलकर विकार होता है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है, भाई! तू ऐसा पकड़ ले कि उसके कारण से हुआ है (तो ऐसा नहीं है)। आहाहा! क्या हो?

'जीवस्य एव कर्म' उस काल में व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है,... दो जगह 'उस काल में', 'उस काल में' (शब्द) रखे हैं। जब तक उसे स्वभाव की दृष्टि— सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, तब तक उसकी पर्यायबुद्धि राग का ही अस्तित्व भासित होता है। पूर्ण अस्तित्व का भान नहीं तो यह अस्तित्व इतना भासित होता है। इस कारण जीव ही स्वयं राग और द्वेष का कर्ता होता है। है? इसलिए **जीव का किया हुआ है।** देखो!

आहाहा! जीव का किया हुआ है अर्थात् जीव की पर्याय में जीव ने किया है, ऐसा। समझ में आया? द्रव्य तो ध्रुव शुद्ध त्रिकाल है। समझ में आया? ज्ञान में जीव ध्रुवता की खबर नहीं तो पर्याय में अज्ञान से अज्ञान व्यापक होकर—कर्ता होकर विकारी पर्याय व्याप्य होती है, उसका कर्म होता है। आहाहा! ऐसा है, भगवान!

किस कारण से? 'यत् पुद्गलः ज्ञाता न' देखो! जो जाने, वह भूले, ऐसा बताते हैं। आहाहा! पुद्गल में जानना कहाँ होता है? जाने तो भूले। जाननेवाला भूलता है, जड़ क्या भूले? आहाहा! समझ में आया? वह **'पुद्गलः ज्ञाता न' जिस कारण से पुद्गल द्रव्य चेतनारूप नहीं है;...** आहाहा! और **रागादि परिणाम चेतनारूप है,...** आहाहा! कहो! पुण्य-पाप, काम, क्रोध के भाव, दया, दान के भाव वे चेतनारूप हैं। अब एक ओर ऐसा कहे। क्या अपेक्षा है? वह चेतना की पर्याय—कर्मचेतना, कर्मफलचेतना चेतना की पर्याय है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना। ज्ञानचेतना तो ज्ञानी को ही होती है। समझ में आया? और कर्मचेतना, कर्मफलचेतना समकिती को गौणरूप से होती है परन्तु उसका वह कर्ता-भोक्ता नहीं। परमार्थ से, हों! स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से। परिणमन की अपेक्षा से कर्ता-भोक्ता है। यह तो कहा न? अनन्त नयों में व्यापक। कर्ता स्वयं, अधिष्ठाता—स्वयं स्वामी है। इस अपेक्षा से पर्याय का ज्ञान कराने को, समकिती को भी परिणमन में जितना राग है, उतना वह कर्ता और उतना भोक्ता कहने में आता है। समझ में आया? अनन्त नयों का समुदाय ऐसा श्रुतप्रमाण, उस श्रुतप्रमाण से आत्मा का अनुभव करता है, उसमें प्रमेय—पूरा शुद्ध द्रव्य प्रमेय हो जाता है और उस प्रमेय में भी श्रुतप्रमाण में विकारी, अविकारी पर्याय भी प्रमेय हो जाती है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात अब। प्रवचनसार ४७ नय की बात है।

(समयसार में) जहाँ शक्ति का वर्णन चला, ४७ शक्ति, वहाँ विकार की बात नहीं है। शक्ति के वर्णन में विकारी पर्याय उसमें है ही नहीं। क्योंकि शक्ति है, स्वभाव है और उसका स्वभाववान दोनों के परिणमन में विकार है ही नहीं। वहाँ शक्ति के वर्णन में विकार और विकार का जाननेवाला ऐसा भी नहीं लिया। वहाँ तो निर्मल पर्याय क्रमसर होती है और निर्मल गुण अक्रम कायम रहते हैं। क्रम, अक्रम शब्द वहाँ प्रयोग

किया है, शुरुआत में शक्ति का वर्णन करने से पहले (प्रयोग किया है)। क्रम में भी निर्मल पर्याय, अक्रम में निर्मल गुण। ४७ शक्ति के वर्णन में वहाँ क्रम में विकारी पर्याय ली ही नहीं। क्योंकि शक्ति का वर्णन द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से है और नय का वर्णन ज्ञान की प्रधानता से है। आहाहा! समझ में आया? क्रम-अक्रम वहाँ निर्मल परिणति का क्रम लेना। आहाहा! इतनी बातें अब कहाँ की कहाँ? समझ में आया? यहाँ तो अनेक बार बात हो गयी है। समझ में आया? सब पुस्तक में प्रकाशित हो गया है।

वहाँ (नय के अधिकार में) तो दूसरी बात कहनी है कि परिणति में रागादि है परन्तु तो भी कर्ता परिणाम और भोक्ता परिणाम मुझे होते हैं, पूरे श्रुतप्रमाण में, परन्तु उसका लक्ष्य पूरे द्रव्य को भी जानता है, गुण को भी जानता है और पर्याय को भी जानता है। यहाँ तो अकेली पर्याय को जाननेवाले अज्ञानी की बात चलती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा का ऐसा कहे दे कि विकार होता है, वह हमारे में नहीं है, कर्म से विकार हुआ है। अरे! ज्ञानी को भी विकार होता है, वह अपने अपराध से होता है, कर्म से नहीं। आया है न? पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, जिस भाव से आहारकशरीर बँधे, उस भाव को अपराध कहा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय (गाथा 220)। वह तो समकिती है। तीर्थंकरगोत्र बँधता है, ऐसा विकल्प आवे, वह तो समकिती को होता है, मिथ्यादृष्टि को वह होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वहाँ तो ऐसा कहा है कि वह अपराध है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अपराध है। समकिती का अपराध है। आहाहा! आहारकशरीर और तीर्थंकरगोत्र कोई मिथ्यादृष्टि बाँधते नहीं। वहाँ तो आहारकशरीर, तीर्थंकरगोत्र लिया है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। यह क्या है? कि अपराध है। आहाहा! एक ओर कहे कि राग का कर्ता ज्ञानी नहीं। एक ओर कहे कि यह अपराध ज्ञानी का है। किस अपेक्षा से है? प्रभु! करनेयोग्य है, ऐसा करके कर्ता नहीं, परन्तु परिणमन है—इस अपेक्षा से कर्ता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा बहुत गम्भीर मार्ग, भाई! वीतराग का मार्ग... आहाहा!

किस कारण से? 'पुद्गलः ज्ञाता न' रागादि परिणाम चेतनारूप है, इसलिए जीव किया है। कहा है भाव उसे गाढ़ा-पक्का करते हैं... कहे हुए भाव को गाढ़ा—निश्चित पक्का करते हैं। **'कर्म अकृतं न' रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणाम...** कार्य

है। तो कार्य किये बिना होता नहीं। आहाहा! जैसे... है न? घट-पट का दृष्टान्त दिया है। देखो! **अनादिनिधन आकाश द्रव्य के समान स्वयंसिद्ध है ऐसा भी नहीं है,...** विकार किसी के किये बिना हुआ है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! **किसी के द्वारा किया हुआ होता है।** क्योंकि कार्य है। विकार पुण्य-पाप, दया, दान, काम, क्रोध आदि कार्य है। तो कार्य कर्ता के बिना नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **किसी के द्वारा किया हुआ होता है।** कार्य है न?

ऐसा है किस कारण से? देखो! आया, देखा? '**कार्यत्वात्**'। वह कार्य है, विकार वह कार्य है। तो किये बिना कार्य होता नहीं। करनेवाले के बिना कार्य होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! एक-एक पद में कितना भरा है, देखो न! ओहोहो! कुछ अन्दर से निकाला जा सके उसका पार नहीं होता। इतनी अन्दर गम्भीरता भरी है, हों! सन्तों की वाणी है न! आहाहा! चारित्रवन्त। स्वयं प्रचुर स्वसंवेदन, आनन्द के वेदन में पड़े हैं। उनको विकल्प आया, उसके भी कर्ता नहीं। एक अपेक्षा से परिणमन है तो ज्ञानदृष्टि से कर्ता है। आहाहा!

यहाँ तो अज्ञानी की बात चलती है। विकार, वह कार्य है न? विकार परिणाम, वह कार्य है या अकार्य है? पर्याय है, वह तो कार्य है। चाहे तो निर्मल पर्याय हो, वह भी कार्य है और मलिन पर्याय हो, वह भी कार्य है। समझ में आया? तो विकारी पर्याय कार्य है तो किये बिना कार्य होता नहीं। आहाहा! देखो! दृष्टान्त दिया है। देखो! **ऐसा है किस कारण से? कारण कि घट के समान उपजता है,...** देखो! जैसे घट कार्य है। मिट्टी कार्य नहीं, परन्तु घट तो कार्य है। इसी प्रकार विकार कार्य है। घट कार्य है तो कर्ता के बिना नहीं होता। मिट्टी कर्ता है, पर्याय उसकी और घट कार्य है। कुम्हार कर्ता है, ऐसा नहीं। यह तो ३७२ गाथा में आया न? समयसार ३७२ (गाथा)। हम तो कुम्हार ने घड़ा किया, ऐसा देखते नहीं। अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), घड़ा तो मिट्टी से हुआ है, ऐसा हम तो देखते हैं। आहाहा! समझ में आया? ३७२ गाथा है, टीका में है। आहाहा! हम तो देखते नहीं कि घड़ा कुम्हार ने किया है। है यहाँ समयसार? गुजराती है। ३७२ है।

कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं; मिट्टी ही कुम्हार के स्वभाव को नहीं स्पर्शती हुई, अपने स्वभाव से कुम्भभाव से उपजती है। आहाहा! देखो! **मिट्टी अपने स्वभाव को उल्लंघन नहीं करती, इसलिए...** क्या कहा? देखो! मिट्टी के स्वभाव से उत्पन्न होती है। आहाहा! **मिट्टी कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न नहीं होती, परन्तु मिट्टी के स्वभाव से ही उत्पन्न होती है, क्योंकि (द्रव्य के) अपने स्वभाव को द्रव्य के परिणाम का उत्पादक देखने में आता है। ऐसा होने से, मिट्टी अपने स्वभाव को उल्लंघन नहीं करती इसलिए, कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं...** आहाहा! मिट्टी की पर्याय, मिट्टी। ध्रुवपना तो साथ में लिया है। मिट्टी स्वयं घड़े की कर्ता है, कुम्हार कर्ता है—ऐसा हम तो देखते नहीं। है? अन्दर है, हों! **'स्वपरिणामपर्यायेणो त्पद्यमानानि किं निमित्तभूत-द्रव्यान्तरस्वभावेनोत्पद्यन्ते,...** यहाँ तो याद आवे, तब (बात आवे)।

यहाँ यह कहा, देखो! **कारण कि घट के समान उपजता है,...** घड़ा कार्य है, तो कार्य कर्ता के बिना नहीं होता। मिट्टी कर्ता है और घड़ा कार्य है। कुम्हार कर्ता है और घड़ा कार्य है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्यों? **कारण कि घट के समान उपजता है, विनशता है।** कार्य सिद्ध करना है न? उपजे और व्यय, उपजे और व्यय, उपजे और व्यय—यह कार्य है। ध्रुव भिन्न है। उपजे और विनशे, वह कार्य है तो कार्य कर्ता के बिना नहीं होता। **इसलिए प्रतीति ऐसी जो करतूतिरूप है।** इसलिए प्रतीति ऐसी है कि विकार कार्यरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह तो न्याय का विषय है, भाई! जरा सूक्ष्म तो पड़े ऐसा है। क्या करे? लॉजिक से, न्याय से बात सिद्ध की है, परन्तु इसे समझना तो पड़ेगा या नहीं?

तथा... तथा 'तत् जीव-प्रकृत्योः द्वयोः कृतिः न' रागादि अशुद्ध चेतनपरिणमन चेतनद्रव्य और पुद्गलद्रव्य ऐसे दो द्रव्यों की करतूति नहीं है। लो, ठीक! जयसेनाचार्यदेव की टीका में ऐसा कहा है कि कर्म और आत्मा दो होकर कार्य होता है। वहाँ तो प्रमाण का ज्ञान कराया, निमित्त का। बाकी उससे कुछ होता नहीं। भाई ने सिद्ध किया था, परन्तु हमारे तो तब चर्चा हुई थी। २१ वर्ष पहले, वर्णीजी के साथ। निमित्त बिल्कुल कुछ नहीं करता। उस समय वे नहीं माने। नहीं, एकान्त हो जाता है। किसी समय निमित्त भी करता है। अभी कैलाशचन्दजी ने प्रसिद्ध किया है, सोनगढ़वाले निमित्त नहीं

मानते, ऐसा नहीं है, परन्तु निमित्त पर में कुछ करता है, ऐसा नहीं है। क्रमबद्ध और निमित्त उस दिन तो विरुद्ध था, वर्णीजी की शैली से। वह भी तब तो बैठे थे। परन्तु उस समय यह बात थी नहीं। फिर विचार करने पर उन्हें जँच गयी कि क्रमबद्ध तो लगता है। प्रत्येक द्रव्य की अवस्था जिस समय में जहाँ होनेवाली है, वहाँ होनेवाली है, क्रमसर! हार... हार, लो, यह क्रमबद्ध का आया। किसने पूछा था? चेतनजी! रात्रि में क्रमबद्ध का किसी ने कहा था? भाई, नवलचन्दभाई! क्रमबद्ध का आया नहीं था, तुम कहते थे न? परन्तु पहले थोड़ा आ गया है। रात्रि में कहा था।

मोती का हार है। ९९ गाथा में दृष्टान्त है। प्रवचनसार ९९ गाथा। मोती का हार है, उसमें जहाँ-जहाँ जो-जो मोती है, वहाँ-वहाँ वह-वह मोती है। उसी प्रकार आत्मद्रव्य में जहाँ जहाँ पर्याय है, वहाँ वहाँ उस काल में वह पर्याय क्रमबद्ध है। आहाहा! समझ में आया? छहों द्रव्य की क्रमबद्धपर्याय है, परन्तु उस क्रमबद्धपर्याय का तात्पर्य क्या? वीतरागता तात्पर्य है। भगवान के प्रत्येक शास्त्र का (तात्पर्य वीतरागता है)। क्रमबद्धपर्याय में वीतरागता कब होती है? द्रव्य पर दृष्टि पड़ती है, सत्य स्वभाव की प्रतीति हुई, अनुभव हुआ, तब उसे क्रमबद्ध का निर्णय सच्चा हुआ, तो कर्ताबुद्धि नाश हो गयी। समझ में आया?

क्रमबद्ध—जिस समय में जो (पर्याय) होनेवाली है, वही होगी, प्रत्येक द्रव्य में। वहाँ कर्ताबुद्धि उड़ गयी। मैं करूँ तो होती है, मैं करूँ तो होती है, ऐसी बुद्धि उड़ गयी है। ज्ञाताबुद्धि हो गयी। आहाहा! जानन-देखन में हूँ, ऐसी बुद्धि हुई, उसे क्रमबद्ध का सच्चा ज्ञान है। क्योंकि उसे कर्ताबुद्धि नष्ट हुई है और ऐसे का ऐसे क्रमबद्ध... क्रमबद्ध कहकर, मैं करूँ, मैं करूँ - ऐसा रहे तो क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय हुआ ही कहाँ है? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, देखो! राग **दो द्रव्यों की करतूति नहीं है।** आहाहा! **चेतनद्रव्य और पुद्गलद्रव्य ऐसे दो द्रव्यों की करतूति नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि जीव तथा कर्म के मिलने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम होता है, इसलिए दोनों द्रव्य कर्ता हैं।** वह तो द्विक्रियावादी हो गया। आता है न द्विक्रियावादी?

द्विक्रियावादी (अर्थात्) एक द्रव्य अपनी भी क्रिया करे और पर की भी करे। वह मिथ्यादृष्टि है। **समाधान इस प्रकार है कि दोनों द्रव्य कर्ता नहीं हैं, कारण कि रागादि अशुद्ध परिणामों का बाह्य कारण-निमित्तमात्र पुद्गल कर्म का उदय है;...** आहाहा! निमित्त, ऐसा भी नहीं कहा, निमित्तमात्र! एक (पदार्थ) है ऐसा, बस! आहाहा! शास्त्र में ऐसा आता है, ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान आच्छादित है। लो! ज्ञानावरणीय नाम पड़ा है। कर्म कैसा है? कि ज्ञानावरणीय (अर्थात्) ज्ञान को आवरण। यह तो निमित्त का कथन है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता तो आवरण कैसे करे? समझ में आया? आहाहा! चार घातिकर्म, ऐसा आता है न? घातिकर्म नाम आता है न? तो कर्म घात करता है न? परद्रव्य पर का घात करता है या नहीं? घातिकर्म आता है न? वह तो स्वयं से भावघाति परिणमन करता है। प्रवचनसार की सोलहवीं गाथा में है—स्वयंभू। स्वयंभू की १६वीं गाथा में है। द्रव्य और भाव दो घातिकर्म है। पाठ है न? भाई! प्रवचनसार १६वीं गाथा। भावघाति। अपनी परिणति अपनी से घात करती है, तब घातिकर्म को निमित्त कहा जाता है। आहाहा! अरे! क्या हो? भाई! यहाँ तो इतना सब याद कैसे रहे? कितने पहलू इसमें करना! भाई! इसे अभ्यास तो करना पड़ेगा न? सत्य सत्य है। सत्य के शोधक को सत्य का स्वरूप क्या है, उसका इसे निर्णय तो करना पड़े न? एकान्त मान ले, कुछ का कुछ मान ले तो गड़बड़ उठे। आहाहा!

बाह्य कारण-निमित्तमात्र पुद्गल कर्म का उदय है; अन्तरंग कारण व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य विभावरूप परिणमता है;... देखो! आहाहा! अन्तरंग कारण तो जीव स्वयं है, अन्यत्र तो निमित्तमात्र दूसरी चीज़ है। वह कहीं इसे परिणमाती नहीं। आहाहा! बड़ा विवाद, कर्म का बड़ा विवाद है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय घातिकर्म है, ऐसा पाठ नहीं? और नामकर्म प्रकृति में नहीं आता? वह क्या कहलाता है? हें? उपघात, परघात नामकर्म की प्रकृति आती है। परघाति और दूसरा क्या? उपघात। दो प्रकृतियाँ हैं। नामकर्म ९३ प्रकृति हैं न? उसमें उपघात प्रकृति है और एक परघात प्रकृति है। उपघात स्वयं से होता है और परघात पर से घात होता है। दो प्रकृतियाँ हैं—उपघात, परघात। यह तो निमित्त प्रकृति है, ऐसा। घात तो स्वयं से पर्याय का होता है तब प्रकृति को निमित्त कहा जाता है। क्या हो? प्रभु! ऐसा मार्ग है। अरे! आहाहा! यह

भवभ्रमण उसे अनन्त काल से टलता नहीं। उसे टालने का उपाय तो यह है। अन्दर स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन है, उसकी परिणति का कर्ता स्वतन्त्र हूँ, विकाररूप भी मैं और अविकाररूप भी मैं। इस समय की बात है, हों! मात्र विकाररूप (परिणमता) है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? है?

अन्तरंग कारण व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य विभावरूप परिणमता है;... अब यहाँ विभावरूप परिणमता है तो कितनों को प्रश्न हुआ कि विभाविकशक्ति है तो विभावरूप परिणमता है या नहीं? विभाविकशक्ति (अर्थात्) विभावरूप परिणमता है इसलिए विभावशक्ति कही है, ऐसा नहीं है। विभावशक्ति तो चार द्रव्य में नहीं, इस अपेक्षा से विशेषभावरूप विभावरूप शक्ति, ऐसा कहा है, परन्तु विभावशक्ति है, इसलिए विभावरूप परिणमे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्योंकि विभावशक्ति तो सिद्ध में भी है। शक्ति कहाँ जाये? वह तो गुण है। जैसे ज्ञानगुण है, वैसा विभावगुण है। गुण का अर्थ, चार द्रव्यों में नहीं और यह विशेषभाव है, इसलिए विभाव (कहा)। आहाहा! यहाँ यह कहा। **जीवद्रव्य विभावरूप परिणमता है;...** पर्याय में। उस विभावशक्ति के कारण नहीं। पर्याय में विभावरूप परिणमने की योग्यता से स्वयं से विभावरूप परिणमता है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए जीव का कर्तापना घटित होता है, पुद्गलकर्म का कर्तापना घटित नहीं होता है;... आहाहा! विकार का कर्तापना जीव को घटित होता है। कर्म से विकार होता है, यह बिल्कुल मिथ्या बात है। समझ में आया? बड़ी चर्चा हुई थी। (संवत्) १९७१ के वर्ष। दीक्षित होने के बाद दूसरा वर्ष। लाठी में चातुर्मास था। बड़ी चर्चा हुई। विकार होता है, वह कर्म है तो विकार होता है न? प्रश्न उठा था, बड़ा प्रश्न था। (संवत्) १९७१। बहुत वर्ष हो गये। ६३ वर्ष पहले की बात है। तो कहा कि बिल्कुल झूठ (बात) है। श्वेताम्बर में 'भगवतीसूत्र' में एक पाइ है, उस समय पढ़ते थे। १६००० श्लोक हैं, सवा लाख (श्लोक प्रमाण) संस्कृत टीका है, सब देखी है। उस समय पढ़ते थे। पहले-पहले शुरुआत में—१९७१। उसमें आया था कि संशय अपने से होता है, कर्म से नहीं। तो यह चर्चा मैंने बाहर रखी कि देखो! मिथ्यात्व का या राग का विकार होता है, वह स्वयं से होता है, पर से नहीं, कर्म से नहीं। स्थानकवासी, श्वेताम्बर,

दिगम्बर में सबमें यह चलता है, कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है। सब झूठ है, कहा। विकार अपनी पर्याय में उस काल में अपनी योग्यता से अपने कारकों से करता है। अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुलटे पुरुषार्थ से नाश करता है। दूसरी बात निमित्तमात्र चाहे जो हो। आहाहा! विरोध किया था, एक सेठ था, दामोदर सेठ था, दामनगर। गृहस्थ (था) उसने विरोध किया था। (मैंने कहा), चाहे जो कहो, हमारी तो जो बात हो, वह बदलती नहीं। समझ में आया? सेठ थे। उस समय तो दस लाख रुपये बहुत कहलाते थे न? अब तो करोड़पति बहुत पड़े हैं। तब तो दस लाख, साठ वर्ष पहले। चालीस हजार की आमदनी थी। चालीस हजार की! उस समय तो कहाँ इतने सब गृहस्थ थे? दामोदर सेठ दामनगर।

मुमुक्षु : पूरा द्रव्य विकारी हो जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं; पर्याय में विकार होता है। यह तो वे भाई रतनचन्दजी (मुखत्यार) कहते हैं। हें?

मुमुक्षु : प्रवचनसार ९ गाथा में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बिल्कुल नहीं लिखा। रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं कि विकार पर्याय में शुभ हो तो पूरा द्रव्य अशुद्ध हो जाता है। बिल्कुल झूठी बात है। द्रव्य तो जैसा है, वैसा ही रहता है। पर्याय में शुद्ध-अशुद्ध होता है। रतनचन्दजी यह कहते हैं, पर्याय में अशुद्धता होती है तो द्रव्य अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध हो जाय तो फिर शुद्धता आयी कहाँ से? द्रव्य तीन काल में अशुद्ध होता ही नहीं, तीन काल में नहीं होता।

मुमुक्षु : अशुद्धद्रव्यार्थिकनय से द्रव्य अशुद्ध कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अशुद्ध द्रव्य कहने में आता है, पर्याय की अशुद्धता से। है, ग्यारहवीं गाथा में है, बारहवीं गाथा में है। आहाहा! बारहवीं गाथा में है। ऐसा कि अशुद्धपने द्रव्य परिणमता है, वह अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से वह जाननेयोग्य है। व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। 'तदात्वे' प्रयोजनवान है, संस्कृत है।

यहाँ यह कहा कि **पुद्गलकर्म का कर्तापना घटित नहीं होता है; कारण कि 'अज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्'** अचेतनद्रव्य यदि कर्ता हो तो अचेतनद्रव्य को भोक्तापने का प्रसंग आता है। कर्ता हो, वह भोक्ता होता है। जड़ को तो भोक्तापना है नहीं। आहाहा! सुख-दुःख का भोक्ता जड़ है नहीं। सुख-दुःख का, हों!

कर्ता और भोक्ता दोनों है। कर्म में जड़ में भी कर्ता-भोक्तापना है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है। डाला है, अपने सब डाला है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में (आता है), पुद्गल परमाणु भी भोक्ता है। यह व्यय भोग जाता है न? व्यय। भोक्ता है, कर्ता है। आहाहा! तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है। यह तो सब देखा था, सम्प्रदाय में देखा था। उसमें भी सब दिगम्बर शास्त्र देखे थे। कहीं दृष्टान्त दिया था। किसी जगह दिया होगा।

यहाँ कहते हैं कि द्रव्य जिस भाव का कर्ता होता है, वह द्रव्य का भोक्ता भी होता है। यदि कर्म कर्ता हो तो कर्म को भोगना पड़ेगा। तो वह कर्ता है नहीं। आहाहा! **ऐसा होने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम जो जीव-कर्म दोनों ने मिलकर किया होवे तो दोनों भोक्ता होंगे सो दोनों भोक्ता तो नहीं हैं।** आहाहा! ऐसा है नहीं। **कारण कि जीवद्रव्य चेतन है, तिस कारण सुख-दुःख का भोक्ता होवे...** अज्ञानपने की बात है। **पुद्गल द्रव्य अचेतन होने से सुख-दुःख का भोक्ता घटित नहीं होता। इसलिए रागादि अशुद्ध चेतनपरिणमन का अकेला संसारी जीव कर्ता है,...** स्पष्ट शब्द है। अकेला जीव अज्ञानरूप से विकार का कर्ता होता है। समझ में आया? और **भोक्ता भी है।** इसी अर्थ को विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ३, शुक्रवार, दिनांक-१०-०२-१९७८, कलश-२०३, २०४, प्रवचन-२२८

अपने यहाँ (तक चला है)। **इसी अर्थ को और गाढ़ा-पक्का करते हैं—** अन्तिम छह-सात लाईन है। लाईन अर्थात् पंक्ति। २०३ कलश की अन्तिम पाँच-छह लाईन है। **'एकस्याः प्रकृतेः कृतिः न' अकेले पुद्गलकर्म की करतूति नहीं है।** राग और विकार पुण्य-पाप के होते हैं, वह अकेला पुद्गल करता है, ऐसा नहीं है। तथा दो होकर करते हैं, ऐसा भी नहीं है। अकेला करता है, यह पहले आ गया है।

भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि रागादि अशुद्ध परिणाम अकेले पुद्गलकर्म का किया है। कर्म पुद्गल है तो विकार होता है, उदय आता है तो जीव को विकार करना ही पड़ता है, ऐसा कोई माने तो वह मिथ्यात्व है, (जैसा मानता है), ऐसा है नहीं। **उत्तर ऐसा है कि ऐसा भी नहीं है;...** ऐसा है कि यह भी नहीं है। कर्म से विकार होता है, यह बिल्कुल झूठ बात है। आहाहा!

कारण कि 'अचित्त्वलसनात्' अनुभव ऐसा आता है कि पुद्गलकर्म अचेतन द्रव्य है,... ऐसा। कर्म जड़ है, वह तो जड़ अचेतन है और विकार है, वह तो चैतन्य का भाव है। आहाहा! चन्दुभाई! यहाँ तो एकान्त अज्ञानी भी ऐसा मानता है... आया है न प्रकृति में? सब प्रकृति कराती है। ज्ञानावरणीय है, वह ज्ञान को ढँकता है, परघात है वह पर को घात करता है, यह सब प्रकृति में आया न? इसलिए कर्म ही कराता है। ऐसा सांख्यमति की भाँति तुम्हारे जैन के लोग भी ऐसा मानते हैं तो वे मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! सब ईश्वर करावे, प्रकृति करे। यह सांख्य में तो रजो, तमो और सत्त्व प्रकृति के गुण कहे हैं। वे प्रकृति के हैं, पुरुष—आत्मा के नहीं। ऐसे जैन के लोग भी इस प्रकार कोई कहे कि विकार तो कर्म का कार्य है, वह झूठ बात है। आहाहा!

कारण कि अनुभव ऐसा आता है कि पुद्गलकर्म अचेतन द्रव्य है, रागादि परिणाम अशुद्ध चेतनारूप है;... अज्ञानी अज्ञान, राग, द्वेष करता है, वह अज्ञानी स्वयं करता है, स्वयं करता है। कर्म तो निमित्तमात्र है। निमित्त कुछ कराता नहीं। आहाहा! यहाँ तो अज्ञानी की बात चलती है। बिल्कुल कथंचित् अज्ञानरूप से कर्ता है, ऐसा न

माने उसे समझाते हैं। बाद के श्लोक में आयेगा, कथंचित् कर्ता और कथंचित् अकर्ता। जब तक अज्ञान, मिथ्यादृष्टि है, तब तक राग और विकार का कर्ता है। आहाहा! सर्वथा अकर्ता माननेवाला अज्ञानी भी राग का कर्ता नहीं माननेवाला मिथ्यादृष्टि है, सांख्य की भाँति, ऐसा कहते हैं। (पुद्गलकर्म) अचेतनद्रव्य है, रागादि तो चेतनरूप है।

इसलिए अचेतन द्रव्य का परिणाम अचेतनरूप होता है,... अचेतन द्रव्य के परिणाम तो अचेतनरूप होते हैं, चेतनरूप नहीं और यह (रागादि) तो चेतनरूप है। आहाहा! एक ओर पुण्य-पाप के भाव को पुद्गल कहे, पुद्गल के परिणाम कहे, वह किस अपेक्षा से? वह तो स्वभाव की दृष्टि हुई है, तो स्वभाव का व्याप्य-व्यापकपना स्वभाव में आया। व्यापक स्वभाव और व्याप्य निर्मल अवस्था, वह व्याप्य। ऐसा गिनकर राग का कर्ता आत्मा नहीं, स्वभावदृष्टिवन्त को, वह राग कर्म का कार्य है—ऐसा कहकर छुड़ा दिया... आहाहा! परन्तु अज्ञानी भी ऐसा मान ले कि हमारे में विकार होता है, वह कर्म से होता है, तो (ऐसा नहीं है)। कथंचित् कर्ता है, ऐसी जिनस्तुति है, जिनवाणी है। पाठ है न? आहाहा! यह कथंचित् कर्ता को तो इसने उड़ा दिया। समझ में आया? सर्वथा अकर्ता है, यह बात झूठी है। अज्ञानभाव से कर्ता है और आत्मज्ञानभाव से अकर्ता है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

यहाँ यह कहा, **रागादि अशुद्ध परिणाम का कर्ता संसारी जीव है, भोक्ता भी है।** आहाहा! जब तक मिथ्यादृष्टिपना है, द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई नहीं, आनन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, ज्ञानरसकन्द, ऐसी दृष्टि अनुभव सम्यक् हुआ नहीं, वहाँ तक तो उसकी दृष्टि राग के कर्तापने में है। वह कर्म से राग होता है, ऐसा भी नहीं है और दोनों मिलकर राग होता है; राग अर्थात् विकार, ऐसा भी नहीं है। अकेला अज्ञानी आत्मा अपने अज्ञानभाव से विकार का कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया? यह २०३ (कलश पूरा हुआ)। अब २०४। उसमें यह श्रुति की बात आयेगी।

गाथा - २०४

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथञ्चिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ।।१२-२०४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'वस्तुस्थितिः स्तूयते' [वस्तु] जीवद्रव्य के [स्थितिः] स्वभाव की मर्यादा [स्तूयते] जैसी है, वैसी कहते हैं। कैसी है? 'स्याद्वादप्रतिबन्धलब्ध-विजया' [स्याद्वाद] जीव, कर्ता है, अकर्ता भी है — ऐसा अनेकान्तपना, उसकी [प्रतिबन्ध] सावधानरूप से की गयी स्थापना, उससे [लब्ध] पाया है [विजया] जीवपना जिसने, ऐसी है। किस निमित्त कहते हैं? 'तेषां बोधस्य संशुद्धये' [तेषां] जो जीव को सर्वथा अकर्ता कहते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों की [बोधस्य संशुद्धये] विपरीत बुद्धि के छुड़ाने के निमित्त, जीव का स्वरूप साधते हैं। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि? 'उद्धतमोह-मुद्रितधियां' [उद्धत] तीव्र उदयरूप [मोह] मिथ्यात्वभाव से [मुद्रित] आच्छादित है [धियां] शुद्धस्वरूप-अनुभवरूप सम्यक्त्वशक्ति जिनकी, ऐसी है। और कैसी है? 'एषः आत्मा कथञ्चित् कर्ता इति कैश्चित् श्रुतिः कोपिता' [एषः आत्मा] चेतनास्वरूपमात्र जीवद्रव्य, [कथञ्चित् कर्ता] किसी युक्ति से अशुद्धभाव का कर्ता भी है, [इति] इस प्रकार [कैश्चित् श्रुतिः] कितने ही मिथ्यादृष्टि जीवों को ऐसा सुननेमात्र से, [कोपिता] अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता है। कैसा क्रोध होता है? 'अचलिता' जो अति गाढ़ा है, अमिट है। जिससे ऐसा मानते हैं — 'आत्मनः कर्तृतां क्षिप्त्वा' [आत्मनः] जीव का [कर्तृतां] अपने रागादि अशुद्धभावों का कर्तापना [क्षिप्त्वा] सर्वथा मेटकर, (न मानकर) क्रोध करते हैं। और कैसा मानते हैं — 'कर्म एव कर्तृ इति प्रवितर्क्य' [कर्म एव] अकेला ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड, [कर्तृ] रागादि अशुद्धपरिणामों का अपने में व्याप्य-व्यापक होकर कर्ता है, [इति प्रवितर्क्य] ऐसा गाढ़ापन करते हैं-प्रतीति करते हैं। सो ऐसी प्रतीति करते हुए कैसे हैं? 'हतकैः' अपने घातक हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि हैं।।१२-२०४।।

कलश - २०४ पर प्रवचन

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथञ्चिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ।।१२-२०४।।

आहाहा! '**वस्तु**' अर्थात् **जीवद्रव्य की स्थिति अर्थात् स्वभाव की मर्यादा जैसी है, वैसी कहते हैं।** वस्तुस्थिति स्वभाव की मर्यादा, आहाहा! जैसी है, वैसी कहते हैं। **कैसी है? 'स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया' जीव कर्ता है, अकर्ता भी है—** आहाहा! विशेष स्पष्टीकरण करेंगे। **कर्ता है, अकर्ता भी है....** ऐसा अनेकान्तपना है, उसकी सावधानरूप से... '**प्रतिबन्ध**' '**प्रतिबन्ध**' शब्द कहा है न? **सावधानरूप से की गई स्थापना,....** यथार्थरूप से जानकर की गयी स्थापना, उसके द्वारा '**लब्धं**' अर्थात् **उससे पाया है। 'विजया' जीतपना जिसने,...** जैनदर्शन में जैनमार्ग में जैन समझनेवाले ज्ञानी, वह अज्ञानभाव से मैं कर्ता था, ऐसा मानता था। राग का कर्ता मैं अज्ञानभाव से था। उस राग का कर्ता कर्म नहीं था। व्यवहाररत्नत्रय का भी कर्ता मैं अज्ञानरूप से परिणमता था, तब कर्ता था। ऐसे कथंचित् कर्ता भी मानता हूँ और स्वभाव का भान हुआ कि मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ, उस समय राग का अकर्ता हुआ। तो कर्ता, अकर्ता दोनों सिद्ध हो गये। समझ में आया? आहाहा! पर, द्रव्यकर्म की बात यहाँ नहीं। यहाँ तो मात्र विकार जो अन्दर है, उसका अज्ञानभाव से कर्ता है, ज्ञानभाव से कर्ता नहीं—ऐसे कथंचित् कर्ता-अकर्ता दोनों लागू पड़ते हैं। चन्दुभाई! क्या है? पूछना है? समझ में आया? क्योंकि इन्होंने बहुत पढ़ा है, बहुत वाँचन करते हैं, बहुत वाँचन है। आहाहा!

ऐसा अनेकान्तपना,... है। इस अनेकान्त का क्या अर्थ किया? कि ज्ञानी भी कथंचित् कर्ता है और कथंचित् अकर्ता है, ऐसा नहीं। मिथ्यादृष्टि अर्थात् द्रव्य के स्वभाव की जहाँ दृष्टि हुई नहीं तो वहाँ तक तो अज्ञानी राग का कर्ता है ही, विकार का कर्ता है ही। समझ में आया? स्वभाव का भान हुआ तो उसे व्यवहाररत्नत्रय आता है, परन्तु कर्ता नहीं होता, ज्ञाता रहता है। आहाहा! वह भी कर्ता नहीं होता, वह किस अपेक्षा से?

कर्तव्यरूप से, करनेयोग्य है, इस अपेक्षा से कर्ता नहीं है, परन्तु परिणमन में समकित को भी व्यवहार, राग होता है तो उसका कर्ता मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह ज्ञान की दृष्टि से (कहा है)। क्योंकि ज्ञान, पर्याय को जानता है न? ज्ञान द्रव्य को भी जानता है और पर्याय को भी जानता है। दृष्टि है, वह तो निर्विकल्प है और निर्विकल्प सामान्य को ही विषय करती है। उसे पर्याय का विषय नहीं है, भेद नहीं है। स्वयं निर्विकल्प है, उसका विषय निर्विकल्प अभेद है। उसके साथ हुआ ज्ञान द्रव्य को भी जानता है और पर्याय को भी जानता है। स्व-परप्रकाशक दोनों शक्ति है न? ज्ञान जानता है कि मेरे कर्तव्यरूप से राग मेरा है, ऐसा ज्ञानी नहीं मानता, परन्तु परिणमनरूप से मेरा कर्तव्य अन्दर मुझमें है, ऐसा ज्ञान जानता है। समझ में आया?

४७ नय में दो नय लिये हैं। कर्तानय, भोक्तानय। गणधर भी जब तक छद्मस्थ हैं तब तक कर्तव्यरूप से ज्ञानी को राग नहीं है, कर्तव्यरूप से—करनेयोग्य है, इस रूप से कर्तव्यरूप से (कर्ता) नहीं है, परन्तु परिणमनरूप से जितना राग है, उतना कर्ता है, ऐसा ज्ञान जानता है। अरे! ऐसी बातें हैं। मार्ग अलौकिक है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

'स्याद्वाद' जीव कर्ता है, अकर्ता भी है... ज्ञानी कर्ता भी है और अकर्ता है, यह यहाँ सिद्ध करना नहीं। यहाँ तो सामान्य रीति से जीव कर्ता भी है और अकर्ता भी, किस प्रकार से है, (यह सिद्ध करना है)। **ऐसा अनेकान्तपना, उसकी सावधानरूप से की गई स्थापना, उससे पाया है। 'विजया' जीतपना जिसने,....** जैनदर्शन ने यह वास्तविक तत्त्व कहकर विजय प्राप्त की है। आहाहा!

किस निमित्त कहते हैं? 'तेषां बोधस्य संशुद्धये' जो जीव को सर्वथा अकर्ता कहते हैं,... जीव को सर्वथा अकर्ता, अज्ञानभाव से भी अकर्ता कहते हैं। समझ में आया? है? **सर्वथा अकर्ता कहते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों की 'बोधस्य संशुद्धये' 'बोधस्य संशुद्धये'** बोध अर्थात् **विपरीत बुद्धि के छुड़ाने के निमित्त...** आहाहा! **जीव का स्वरूप साधते हैं। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि? 'उद्धतमोहमुद्रितधियां'** आहाहा! यहाँ आया, देखो! **तीव्र उदयरूप मिथ्यात्वभाव से... 'मुद्रित'** आनन्द भगवान स्वरूप स्वयं ढँक गया है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : तिरोभाव और आविर्भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय में भान हुआ तो आविर्भाव हुआ। भान नहीं था तो तिरोभाव किया जाता था, ऐसी बात है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

विपरीत बुद्धि के छुड़ाने के निमित्त जीव का स्वरूप साधते हैं। 'संशुद्धये' है न? **कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि? 'उद्धतमोह' मिथ्यात्वभाव से आच्छादित है,... 'धियां' 'धियां'** आहाहा! **'धियां'** का अर्थ—**शुद्धस्वरूप-अनुभवरूप सम्यक्त्वशक्ति जिनकी, ऐसी है।** शुद्ध भगवान पूर्ण शुद्ध है, पवित्र है, ऐसे अनुभवरूपी **'धि'** (अर्थात्) बुद्धि। **'धि'** अर्थात् बुद्धि। सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **सम्यक्त्वशक्ति जिनकी, ऐसी है।** क्या? ढँक गयी है। मिथ्यात्वभाव से ढँक गयी है, इस कारण अज्ञानी राग का कर्ता होता है। इस प्रकार से कर्ता न माने तो मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि तो है ही, परन्तु यह तीव्र मिथ्यादृष्टि हुआ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। हें?

सम्यक्त्वशक्ति जिनकी,... 'धियां', 'धियां' 'धि' जिसे कहते हैं। **'धि'** अर्थात् बुद्धि। **'धियां'** जिसकी बुद्धि, सम्यग्दर्शन ढँक गया है, सम्यग्दर्शन नहीं है। **'धियां'** अर्थात् सम्यग्दर्शन। मिथ्यात्व के कारण बुद्धि ढँक गयी है। आहाहा! समझ में आया? **और कैसी है? 'एष आत्मा कथंचित् कर्ता इति कैश्चित् श्रुतिः कोपिता'** आहाहा! **चेतनास्वरूपमात्र जीवद्रव्य...** यह **'एषः आत्मा'** की व्याख्या की। **'एषः आत्मा'** यह चैतन्यस्वरूपमात्र जीवद्रव्य **'कथंचित् कर्ता'** है। **किसी युक्ति से अशुद्धभाव का कर्ता भी है...** अज्ञानरूप से। अज्ञानरूप से कथंचित् कर्ता है, ऐसा भी छोड़ दिया, सर्वथा अकर्ता मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। समझ में आया? **अशुद्धभाव का कर्ता भी है...**

इस प्रकार कितने ही मिथ्यादृष्टि जीवों को ऐसा सुननेमात्र से... क्या कहते हैं? अरे! जीव विकार करे? जीव तो महाशुद्ध प्रभु है न, वह विकार करे? कर्म से विकार होता है। उसे कहते हैं कि नहीं, नहीं। तुझसे होता है। (ऐसा सुनते हैं तो) कोप करते हैं। हें?

मुमुक्षु : आत्मा राग करे? आत्मा कभी राग करे? यही चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता ही है न, खबर है न सब। पहले तो यह चलता है कि

राग कर्म ही करर्ता है, कर्म ही कराता है। कहा न, (संवत्) १९७१ के वर्ष में बहुत प्रश्न उठे। सभा बड़ी। १९७१। ६४ वर्ष हुए। कर्म से होता है, विकार कर्म से होता है। बिल्कुल झूठ बात है, कहा। कर्म परद्रव्य है, वह परद्रव्य जीव को स्वद्रव्य में विकार करे? उदय तो परद्रव्य है। उसे तो राग स्पर्श भी नहीं करता। स्पर्श नहीं करता, वह राग करावे, ऐसी बात नहीं है। सांख्य की भाँति माननेवाले जैन को यहाँ समझाते हैं। हैं? आहाहा! अज्ञानरूप से मिथ्यादृष्टिरूप से भी विकार का कर्ता कर्म है, मैं नहीं—ऐसा माननेवाले को समझाते हैं। जैन सम्प्रदाय में पड़े हुए लोगों को (समझाते हैं)। समझ में आया? ऐसा ही कहे न? पाठ में आया न? ज्ञानावरणीय कर्म। स्पष्ट पाठ है या नहीं? ज्ञानावरणीय शब्द आया तो ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को आवरण करता है। आता है या नहीं? घातिकर्म। घातिकर्म क्यों कहा? घाति जड़ घात करता है? घातिकर्म कहा न? परन्तु किस अपेक्षा? प्रभु! तुझे खबर नहीं। घातिकर्म आत्मा की पर्याय का घात करता है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया? तेरे अज्ञानभाव से तू तेरी पर्याय में विकार का कर्ता होता है और तेरे आत्मा का घात तुझे होता है। भावघाति का कर्ता तू होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, '**कैश्चित् श्रुतिः**' ऐसा **सुननेमात्र से...** उसमें तो ऐसा लिया है कि जैन भगवान की श्रुति ऐसी है। जैन भगवान की श्रुति ऐसी है कि अज्ञानभाव से राग का कर्ता है। क्योंकि वह श्रुति के ऊपर क्रोध करता है, नहीं। राग का कर्ता भगवान निर्मलानन्द शुद्ध चैतन्यप्रभु आनन्द है, वह और राग करे? परन्तु कौन राग करे, न करे? आहाहा! देवीलालजी! राग-द्वेष, विषय वासना में जिसे सुखबुद्धि है, उसमें जिसे सुखबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि राग का कर्ता होता है। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि भी राग का कर्ता नहीं, (ऐसा जो मानता है) उसके ऊपर जैनश्रुति का कोप है। उसके ऊपर श्रुत का कोप है। आहाहा! कोप है, आता है न? समयसार में (आता है)। आहाहा! उसके ऊपर भगवान की वाणी का कोप है। भगवान की वाणी कहती है कि अज्ञानी राग-द्वेष का कर्ता है। सर्वथा आत्मा अकर्ता है, ऐसा नहीं है। अज्ञानरूप से कर्ता है, भानरूप से कर्ता नहीं। ऐसी वाणी है, उसका तेरे ऊपर कोप आता है। आहाहा! श्लोक है, है न? आहाहा!

यहाँ यह शब्द नहीं लिया, यहा समुच्चय लिया है कि '**कैश्चित् श्रुतिः**' ऐसा शब्द लिया है। **कितने ही मिथ्यादृष्टि जीवों को ऐसा सुननेमात्र से...** ऐसा लिया। दूसरे को समझावे कि नहीं, कर्म से आत्मा में विकार होता ही नहीं। नहीं। अपने में होता है। कर्म से होता है, दूसरी बात नहीं। आत्मा राग का कर्ता है, (ऐसा सुनता है तो) कोप करता है। अरे! आत्मा राग का कर्ता है? शुद्ध आनन्द स्वरूप प्रभु शुद्ध, वह राग करे? विकार करे? ऐसे कोप करता है, अज्ञानी को कोप होता है। अज्ञानी को यह बात बैठती नहीं तो अन्दर गहराई में उसे अरुचि होती है। आहाहा! **कितने ही मिथ्यादृष्टि जीवों को ऐसा सुननेमात्र से...** आत्मा विकार करे, ऐसा शब्द जहाँ उसे कान में पड़े तो (क्रोध होता है कि), यह क्या कहते हैं? झूठ बोलते हैं। सुन, भाई सुन! शान्ति से प्रभु! तेरा अज्ञान जब तक है, तेरी चीज़ आनन्दनाथ प्रभु है... आहाहा! उसके स्वभाव की दृष्टि हुई नहीं, तब तक तो अज्ञानभाव से विकार का कर्ता तू ही है, कर्म नहीं और अकर्ता अज्ञानभाव से भी नहीं। कर्म नहीं और अज्ञानभाव से भी तू राग का अकर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ी ध्यान रखने की बात है, प्रभु! यह तो मार्ग, नाथ! अन्दर में वीतराग का मार्ग है, प्रभु! साधारण की हैसियत नहीं। यह तो परमात्मा तीन लोक के नाथ, जिनकी वाणी में आया कि अज्ञानभाव से कर्ता है। तब वह अज्ञानी सुननेवाला कोप करता है। अरे! आत्मा, वह राग का कर्ता होगा? परन्तु तुझे अज्ञानभाव है, तब तक तेरी दृष्टि ही वहाँ राग के ऊपर है, तू राग का ही कर्ता है। आहाहा! समझ में आया?

'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' यह तब कहा था। (संवत्) २०१३ के वर्ष, २१ वर्ष हुए। इन्दौरवाले बैठे थे। बंसीधरजी और वर्णीजी सब थे। 'कर्म बिचारे कौन' कर्म तो जड़ है, अजीव है, मिट्टी-धूल है। चन्द्रप्रभ भगवान की स्तुति में आता है। चन्द्रप्रभ की स्तुति है न? उसमें आता है। 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अग्नि पर घन पड़ते हैं, वह तो लोह प्रविष्ट हो तो। ऐसी की ऐसी अग्नि पर कोई घन नहीं मारता। उसी प्रकार अकेला आत्मा राग में एकत्व न करे तो उसे दुःख नहीं होता, परन्तु राग के साथ एकत्व करता है तो सिर पर अज्ञान के घन पड़ते हैं, दुःख के घन पड़ते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता है। देखा ? '**कोपिता**' अरे ! आत्मा राग करे ? विकार करे ? त्रिकाली स्वरूप निर्विकारी है, वह विकार करे ? भगवान कहते हैं कि अज्ञानभाव से विकार करता है। जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक मिथ्यादृष्टि स्वयं विकार करता है, कर्म नहीं। समझ में आया ? वहाँ उसका अत्यन्त क्रोध हो जाता है। देखा ? विकार आत्मा में डालते हैं ? विकार तो कर्म का कार्य है। ऐसे अत्यन्त क्रोध करता है। है न ? **अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता है।** आहाहा ! वापस '**कोपिता**' का अर्थ संक्षिप्त नहीं किया। **अत्यन्त क्रोध...** किया। कोप होता है। यह क्या बात करते हैं ? भगवान आत्मा, वह कहीं विकार करे ? अरे ! भाई ! सुन न, बापू ! भगवान आत्मा न करे परन्तु तुझे भगवान आत्मा का ज्ञान नहीं। आहाहा ! इसलिए अज्ञानभाव से तू राग का और विकार का कर्ता तू ही है। आहाहा ! समझ में आया ?

कैसा क्रोध होता है ? '**अचलिता**' अति गाढ़ा है। अमिट (अटल) है। आहाहा ! आत्मा को सर्वथा अकर्ता माननेवाले, अज्ञानभाव से भी राग का कर्ता नहीं, ऐसा माननेवाले को कहते हैं कि तू आत्मा ही अज्ञानभाव से विकार का कर्ता है, संसार का कर्ता है। संसार की दशा का कर्ता तू ही है। संसार के परिभ्रमण के भाव का कर्ता तू ही है। (ऐसा सुनकर) उसे कोप होता है। कैसा कोप होता है ? कि अमिट। मिट नहीं सके ऐसा। अमिट है न ? है ? आहाहा ! अमिट है। '**अचलिता**' है न ? '**अचलिता**'। चलित नहीं होता, चलित नहीं होता, चलित नहीं होता। अज्ञानभाव से कर्ता हो और माने कि मैं कर्ता नहीं। वह '**अचलिता**' टले नहीं, मिटे नहीं। आहाहा ! थोड़ी बात में भाव क्या है ? समझ में आया ?

पर्यायबुद्धि है, स्वभावबुद्धि हुई नहीं और तू कहे कि दोष का कर्ता आत्मा नहीं। भगवान कहते हैं कि, आत्मा दोष का कर्ता है। उस श्रुति का तुझ पर कोप आता है अथवा वह श्रुति सुनकर तुझे कोप होता है। आहाहा ! दोनों बातें हैं। अर्थ में ऐसा लिया है। भगवान की वाणी का कोप आता है, ऐसा अपने आता है। मूल शब्द, मूल समयसार के अर्थ में। खबर है न ! यहाँ ऐसा लिया है कि उसको सुनकर कोप होता है। आत्मा करे ? राग को करे ? निर्दोष प्रभु आत्मा दोष को करे ? वस्तु निर्दोष पवित्र प्रभु, वह अपवित्रता को करे ?

मुमुक्षु : वेदान्त ऐसा ही कहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न। एक वेदान्ती मिला था। वहाँ एक बाबा आया था न? राजकोट में बाबा आया था। हें? वह मानो कि जैन में ऐसा (कहनेवाले) कौन जगा? अध्यात्म की बातें? वहाँ तो क्रिया करना और राग करना और दया पालना, व्रत करना और ऐसा सब चलता है। यह और जैन में कौन है? लाओ न सुनने जाऊँ। वेदान्ती बाबा आया था, बेचरभाई के मकान में। बेचरभाई का वह मकान नहीं? (संवत्) १९९९ का चातुर्मास वहाँ था, १९९५ में उस ओर नानालालभाई, मोहनलालभाई के मकान में था। आया और पहली बात मैंने की, भाई! आत्मा की पर्याय अनित्य है। हें? अनित्य। भगा। जैन में और अध्यात्म की बात करनेवाले यह वे कौन हैं? वहाँ तो दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, ऐसी सब बातें चलती हैं। है? वह ऐसा माननेवाला, इसलिए बेचारा आया कि यह कौन? वहाँ जहाँ मैंने यह कहा पहला, बापू! आत्मा अनित्य है। नित्य भी है और अनित्य भी है। (बाबा को लगा) आत्मा अनित्य है? भगा। पर्याय किसकी है? कहा। आहाहा!

अपने भाई बाबा हुआ, नहीं? राजकोट का साधु। माधवानन्द भी नाम क्या था? मोतीलालजी व्याख्यान में आते थे न? (संवत्) १९८९, १९९५ में व्याख्यान में आते थे। रेल का बड़ा अधिकारी था। ७००-८०० वेतन तब था। फिर परमहंस होकर आया। हमारे व्याख्यान हमेशा सुनता परन्तु कुछ दिक्कत उठी या चाहे जो, फिर साधु हो गया, परमहंस। उसके बाद यहाँ आया। राजकोट या नहीं? नहीं। यहाँ आया था। पहले वहाँ आया था, पहले गोंडल आया था, तीन-चार साधु लेकर। गोंडल में उसका बड़ा आश्रम है। पहले हमारे पास व्याख्यान में आता था। फिर साधु हो गया। फिर यहाँ बहुत चर्चा हुई। वेदान्त तो सर्वथा शुद्ध मानता है न? अशुद्ध नहीं। स्वीकार किया था। कहा, एक बार सुनो।

आत्मा व्यापक है, ऐसा नहीं मानता था और व्यापक है, ऐसा तुम्हारे मानना है न? नहीं मानता और माना, यह क्या है? यह कोई पर्याय है या कोई ध्रुव है? तीन-चार साधु लेकर आया था। ऐसे तो मेरे प्रति उसे प्रेम था न? सम्प्रदाय में तो हमेशा आता था। परन्तु वैष्णव अर्थात् परमहंस हो गया। एक बात कहे। यदि आत्मा पवित्र है तो उसे

परमानन्द का स्वाद आना चाहिए। तो परमानन्द का स्वाद नहीं, वहाँ दुःख का स्वाद है तो वह दशा हुई, वह दशा है। वह दशा वेदान्त ने मानी नहीं। समझ में आया? और दूसरा ऐसा कहा था कि यदि वह दशा है और वेदान्त ने ऐसा तो उपदेश किया न कि सर्वथा आत्यन्तिक दुःख से मुक्ति (होओ)। ऐसा कहते हैं न वे लोग? सर्वथा आत्यन्तिक दुःख से मुक्ति। तब सर्वथा आत्यन्तिक दुःख से मुक्ति, ऐसा उपदेश किया तो उसकी पर्याय में कुछ दुःख है या नहीं? आत्यन्तिक दुःख से मुक्त होने का उपदेश उसने कैसे किया? यदि उसकी पर्याय में दुःख ही न हो, त्रिकाल में तो नहीं, परन्तु उसकी जो ऐसे पलटती है, उसमें दुःख न हो तो दुःख से मुक्त होना, यह क्या रहा? उपदेश क्यों किया? इसलिए उसकी पर्याय में दुःख है, राग है, विकार है, पलटती दशा है, अकेली ध्रुव स्थिति नहीं। बहुत चर्चा हुई थी, स्वीकार किया था। ... यह है अवश्य। कहा, ऐसा नहीं चलता, यहाँ तो तत्त्व जैसा है वैसा (प्रतिपादन होता है)। भूल है, वह पर्याय में है। भूल टालना और रहना वह ध्रुव में है? इसलिए यहाँ कहा कि 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' अज्ञानभाव से भूल मेरी है। आहाहा! कर्म के कारण भूल हुई है और राग किया है और कर्म के कारण चार गति में भटकता हूँ, ऐसा है नहीं है। आहाहा! बहुत लोग आवे न (इसलिए) बहुत चर्चा (हो गयी)।

यहाँ कहते हैं, क्रोध करता है। आहाहा! है? **अपने रागादि अशुद्ध भावों का कर्तापना सर्वथा मेटकर (न मानकर) क्रोध करते हैं।** आहाहा! है? **अपने रागादि अशुद्ध भावों का कर्तापना सर्वथा मेटकर...** ऐसा कहा। कौन? अज्ञानी। कर्तापने को सर्वथा छोड़कर **क्रोध करता है।** समझ में आया? राग, पुण्य, पाप। रागादि है न? शुभ-अशुभ राग, वासना, विकल्प सब। **अशुद्ध भावों का कर्तापना सर्वथा मेटकर...** अर्थात् कि यह बिल्कुल नहीं करता, ऐसा मानकर **क्रोध करता है।** आहाहा!

और कैसा मानते हैं—'कर्म एव कृर्त इति प्रवितर्क्य' अकेला ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड... आहाहा! देखो! ज्ञानावरणीय (शब्द) कैसा आया? यह प्रश्न वर्णीजी के साथ बहुत हुआ था। २१ वर्ष (पहले)। उन्होंने पुस्तक बनायी है न, उसमें डाला है। रतनचन्दजी थे न? (वे कहें), 'महाराज! कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की हीन दशा या अधिक दशा स्वयं से होती है, ज्ञानावरणीय से नहीं।' पुस्तक प्रकाशित की है।

मुमुक्षु : ज्ञानावरणीय कर्म कुछ करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है परन्तु यह पुस्तक की बात है। यहाँ है कहीं। चर्चा हो गयी, फिर जब में सात-आठ दिन बाद जमशेदपुर गया न? फिर यह लेख लिखा, क्या कहलाता है वह? टेप रिकॉर्डिंग। 'कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की हीन और अधिक दशा स्वयं से होती है, ज्ञानावरणीय कर्म से बिल्कुल नहीं।' समझ में आया? है कहीं, उसमें पुस्तक होगी कहीं। किसमें है, किसे खबर? बहुत पुस्तकें हैं।

मुखत्यार, सहारनपुर (ने) प्रश्न किया, 'कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि महाराज! ज्ञानावरणीय कर्म कुछ नहीं करता।' बात सच्ची। चर्चा हुई थी, हजारों लोग (थे)। सभा में पाँच-सात हजार लोग थे। यह इन्दौरवाले थे, बंसीधरजी। 'अपनी योग्यता से ज्ञान में हीनाधिकता होती है। महाराज! ज्ञान हीन होता है, वह स्वयं से होता है, अपनी योग्यता से होता है। कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञानावरणीय कर्म कुछ नहीं करता। महाराज! क्या यह बराबर है?'

वर्णीजी उत्तर (देते हैं), 'यह ठीक है। आप ही समझो, किस प्रकार ठीक है? यह बराबर नहीं। कोई भी कहे, हम तो कहते हैं कि अंगधारी कहे तो भी बराबर नहीं है।' ज्ञानावरणीय पर में कुछ करता नहीं और ज्ञान की हीन दशा हो जाती है? कहा, ज्ञानावरणीय बिल्कुल नहीं करता, वह तो जड़ पर कर्म है। अपनी भावघाति पर्याय की योग्यता से अपनी हीन दशा होती है, और अधिक दशा स्वयं से होती है, पर के कारण बिल्कुल नहीं। प्रकाशित हो गया है, हजार पुस्तक छपायी है। आहाहा! मूल तो यह विवाद तीनों सम्प्रदाय में पहले से है। कर्म से विकार होता है, कर्म से (होता है), कुछ कुछ कर्म का असर है। बिल्कुल असर न हो और हो?

यहाँ भगवान तो कहते हैं कि बिल्कुल असर नहीं। सेठ! कर्म-परद्रव्य का असर बिल्कुल नहीं है, क्योंकि परद्रव्य और स्वद्रव्य के बीच अत्यन्त अभाव है। आहाहा! अत्यन्त अभाव है, वहाँ परद्रव्य दूसरे के भाव को कैसे करे? जहाँ अभाव है, वह पर को किस प्रकार करे? आहाहा! समझ में आया? 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' यह भी भजन में आता है। 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' अपनी भूल

से स्वयं हैरान होता है, कोई कर्म ने भूल करायी है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, वह तो **क्रोध करता है।** आहाहा! **और कैसा मानते हैं—'कर्म एव कृर्त इति प्रवितर्क्य' अकेला ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड...** ज्ञान की हीन दशा ज्ञानावरणीय का उदय है तो ज्ञान की हीन दशा होती है। ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो तो ज्ञान की क्षयोपशम दशा विशेष होती है, बिल्कुल झूठ है, कहा। आहाहा! यह ज्ञानावरणीय नाम पड़ा है न? ज्ञान का आवरण, वह तो निमित्त का कथन है। आहाहा! अरे! अभी तो विकार की दशा में कौन कर्ता और अकर्ता की खबर नहीं होती। आहाहा! वहाँ रुक गया और अविकारी चिदानन्द प्रभु ध्रुव की दृष्टि करना और राग का कर्तापना छूट जाना... आहाहा! वह तो अलौकिक बात है, भाई! आहाहा!

अकेला... लिखा है न? **'कर्म एव'** शब्द पड़ा है न? **'कर्म एव'** अर्थात् अकेला (ऐसा अर्थ किया है)। कर्म ही, ऐसा। **'एव'** अर्थात् ही। कर्म **अकेला ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड रागादि अशुद्ध परिणामों का...** ज्ञानावरणीय ज्ञान को हीन करे, दर्शनावरणीय दर्शन की हीन दशा करे, मोहनीय आत्मा को मिथ्यात्व और राग, द्वेष उत्पन्न कराता है, अन्तराय कर्म वीर्य का घात करता है। नहीं? भगवान! (यह) बातें नहीं, बापू! क्या हो? आहाहा! यह आया है, उसका श्लोक यह है। ऐसा कि ज्ञानावरणीय ज्ञान का घात करता है। श्लोक है न? समयसार में श्लोक है। दर्शनावरणीय दर्शन का घात करता है निद्रा। और मोहनीय राग को करता है, आयुष्य... परघात पर का घात करता है, उपघात—पर से अपना घात होता है, ऐसा कहते हैं। फिर आचार्य ने स्वयं लिखा है, सांख्य की भाँति ऐसा जो उपदेश मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। कर्म जगाता है, कर्म सुलाता है, ऐसा पाठ है। यह उसका श्लोक है। आहाहा!

रागादि अशुद्ध परिणामों का अपने में व्याप्य-व्यापक होकर कर्ता है... क्या कहते हैं? कर्म व्यापक है और विकार व्याप्य है, ऐसा है।....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २०५

(शार्दूलविक्रीडित)

माऽकर्तारमयी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हता:
कर्तारं कलयंतु तं किल सदा भेदावबोधादध:।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ।।१३-२०५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—ऐसा कहा था कि स्याद्वाद स्वरूप के द्वारा जीव का स्वरूप कहेंगे। उसका उत्तर है—'अमी आर्हता: अपि पुरुषं अकर्तारं मा स्पृशन्तु' [अमी] विद्यमान जो [आर्हता: अपि] जैनोक्त स्याद्वादस्वरूप को अंगीकार करते हैं, ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव, वे भी [पुरुषं] जीवद्रव्य को, [अकर्तारं] रागादि-अशुद्धपरिणामों का सर्वथा कर्ता नहीं है, ऐसा [मा स्पृशन्तु] मत अंगीकार करो। किनके समान? 'सांख्या इव' जिस प्रकार सांख्यमतवाले, जीव को सर्वथा अकर्ता मानते हैं; उसी प्रकार जैन भी सर्वथा अकर्ता मत मानो। जैसा मानने योग्य है, वैसा कहते हैं—'सदा तं भेदावबोधात् अध: कर्तारं किल कलयन्तु तु ऊर्ध्वं एनं च्युतकर्तृभावं पश्यन्तु' [सदा] सर्व काल, द्रव्य का स्वरूप ऐसा है कि [तं] जीवद्रव्य को, [भेदावबोधात् अध:] शुद्धस्वरूप परिणमनरूप सम्यक्त्व से भ्रष्ट, मिथ्यादृष्टि होता हुआ, मोह-राग-द्वेषरूप परिणमता है, उतने काल, [कर्तारं किल कलयन्तु] मोह, राग, द्वेषरूप अशुद्धचेतनपरिणाम का कर्ता जीव है, ऐसा अवश्य मानो-प्रतीति करो। [तु] वही जीव, [ऊर्ध्वं] जब मिथ्यात्वपरिणाम छूटकर, अपने शुद्धस्वरूप सम्यक्त्वभावरूप परिणमता है, तब [एनं च्युतकर्तृभावं] छोड़ा है रागादि अशुद्धभावों का कर्तापन जिसने, ऐसी [पश्यन्तु] श्रद्धा करो-प्रतीति करो-ऐसा अनुभव करो। भावार्थ इस प्रकार है कि—जिस प्रकार जीव का ज्ञानगुण स्वभाव है, वह ज्ञानगुण, संसार अवस्था अथवा मोक्ष अवस्था में नहीं छूटता; उस प्रकार रागादिपना जीव का स्वभाव नहीं है तथापि संसार अवस्था में जब तक कर्म का संयोग है, तब तक मोह, राग, द्वेषरूप अशुद्धपने से विभावरूप, जीव परिणमता है और तब तक कर्ता है। जीव के सम्यक्त्वगुण के परिणमन के बाद ऐसा जानना—'उद्धतबोधधामनियतं' [उद्धत] सकल ज्ञेय पदार्थ को जानने के लिए उतावले, ऐसे [बोधधाम] ज्ञान का प्रताप

है [नियतं] सर्वस्व जिसका, ऐसा है। और कैसा है? 'स्वयं प्रत्यक्षं' आपको अपने आप प्रगट हुआ है। और कैसा है? 'अचलं' चार गति के भ्रमण से रहित हुआ है। और कैसा है? 'ज्ञातारं' ज्ञानमात्र स्वरूप है। और कैसा है? 'परं एकं' रागादि अशुद्धपरिणति से रहित, शुद्धवस्तुमात्र है।।१३-२०५।।

माघ शुक्ल ४, शनिवार, दिनांक-११-०२-१९७८, कलश-२०५, २०६, प्रवचन-२२९

(नोट : यह प्रवचन सी.डी. में अधूरा चालू होता है।)

किसे? सम्यग्दर्शन हुआ उसे। ज्ञान उद्धत हो गया। उद्धत अर्थात् उतावला। उतावला अर्थात् अपना ज्ञान और राग का ज्ञान करने में उसकी परिणति हो गयी। राग के कर्तापने की बुद्धि छूट गयी। राग रहा सही, परन्तु अपना और राग का ज्ञान करने में उद्धत हो गया, उतावला हो गया। समझ में आया? भगवान! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! यह कहीं साधारण कथा-वार्ता नहीं है। यह तो त्रिलोकनाथ भगवान सर्वज्ञ परमात्मा का तो अभी विरह पड़ा। आहाहा! उनकी यह बात है। आहाहा! यह कोई वाद-विवाद से पकड़ में आये, ऐसी नहीं, बापू! आहाहा!

कहते हैं कि जब सम्यक् गुण प्रगट हुआ। गुण अर्थात् पर्याय। गुण जो है, श्रद्धा-गुण तो त्रिकाल है, श्रद्धागुण त्रिकाल है और श्रद्धागुण की मिथ्यात्व पर्याय है, वह वर्तमान पर्याय-अवस्था है और श्रद्धागुण की सम्यग्दर्शन, सम्यक् पर्याय, वह भी वर्तमान पर्याय है। श्रद्धागुण त्रिकाल है। उसकी मिथ्याश्रद्धा और सम्यक्श्रद्धा, यह दो पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यहाँ समकित को गुण कहा गया है। आहाहा! क्योंकि जब राग-द्वेष को अवगुण कहा, तो राग-द्वेष भी है तो पर्याय, परन्तु अवगुण कहा तो समकित को गुण कहा, इस अपेक्षा से बात है।

मुमुक्षु : राग-द्वेष अवगुणरूप पर्याय है या गुणरूप पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अवगुणरूप पर्याय है। यह कहा न, कि अवगुण पर्याय का नाश (हुआ), तब सम्यक् पर्याय का गुण प्रगट हुआ, ऐसा कहा। क्योंकि है तो दोनों पर्याय, परन्तु उस अवगुण का अभाव हुआ तो यहाँ गुण कहा, ऐसा।

जीव के सम्यक्त्वगुण के परिणमन के बाद... देखा? परिणमन, परिणमन वह पर्याय हुई। श्रद्धागुण तो त्रिकाल है और सम्यग्दर्शन हुआ, वह तो परिणमन, पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? **बाद ऐसा जानना... 'उद्धतबोधधामनियतं' सकल ज्ञेय पदार्थ को जानने के लिये उतावले...** आहाहा! सम्यग्दर्शन होने के बाद तो ज्ञान तो सकल (ज्ञेय को) जानता है, बस! आहाहा! राग से लेकर सब ज्ञेय है। आहाहा! भले श्रुतज्ञान की पर्याय हो, परन्तु सकल को जानती है। समझ में आया? आहाहा! केवली प्रत्यक्ष जानते हैं, यह परोक्ष जानता है, परन्तु जानता है तो सकल को। समझ में आया? उद्धतबोध महिमा **ज्ञान का प्रताप है...** आहाहा! क्या कहते हैं? यह ज्ञान का ही प्रताप है कि जहाँ सम्यक्ज्ञान हुआ तो अपने को और रागादि को जानने में तैयार, जागृत हो गया, ऐसा ज्ञान का प्रताप है। आहाहा! समझ में आया? एक-एक शब्द में इतना भरा है।

उतावले ऐसे... 'बोधधाम' ज्ञान का धाम है वह तो। आहाहा! ज्ञान का प्रताप है वह तो। **'नियतं' सर्वस्व जिसका...** आहाहा! स्व को जाने और राग को, पर को जाने ऐसा ज्ञान का सम्यग्ज्ञान एकदम सर्वस्व ज्ञान का प्रताप प्रगट हुआ। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ज्ञाता-दृष्टा हो गया, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय आता है, भेद उपचार आता है, आता है परन्तु (उसका) ज्ञाता-दृष्टा हो गया। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? कर्ता नहीं रहा। ऐसा ज्ञानधाम—ज्ञान का प्रताप है। आहाहा! 'स्वपरप्रकाशक शक्ति हमारी, तातें (वचन) भेद भ्रम भारी, ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी, स्वरूपा पररूपा भासी' रागादि पर में (गये)। आहाहा! वे परज्ञेयरूप से राग को और आनन्द को, ज्ञान को स्वज्ञेयरूप से जानने का आत्मा का प्रताप प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया?

'बोधधाम' वह **ज्ञान का प्रताप है...** स्व-पर को जानना, वह अपना—ज्ञान का प्रताप है। सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, उसका यह प्रताप है। एकदम स्व और पर दोनों को जानता है। आहाहा! **'नियतं' सर्वस्व जिसका...** पूर्ण-सब जाने, कहते हैं। चाहे तो राग तीव्र आया हो या राग मन्द हो, रौद्रध्यान के परिणाम समकिती को आये। आहाहा! है? पंचम गुणस्थान तक रौद्रध्यान है। छठवें गुणस्थान में आर्तध्यान है, रौद्रध्यान नहीं। आहाहा! वह तो उसे जानता है, बस! आहाहा! समझ में आया? **ज्ञान**

का प्रताप है, सर्वस्व जिसका ऐसा है।

और कैसा है? 'स्वयं प्रत्यक्षं' आहाहा! देखो! **आपको अपने आप प्रगट हुआ है।** प्रत्यक्ष का अर्थ यह किया। किया है न? आहाहा! अपना ज्ञान हुआ, वहाँ राग की अपेक्षा भी जिसे नहीं है, प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। समझ में आया? मति-श्रुतज्ञान भी प्रत्यक्ष हो गया। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र में मन, इन्द्रिय से (होता है, ऐसा जो) कहा था, वह व्यवहार की अपेक्षा से है, यह निश्चय है। आहाहा! जिसमें मन और इन्द्रिय की अपेक्षा नहीं, ऐसा राग से भिन्न ज्ञान हुआ, वह ज्ञान प्रत्यक्ष हो गया। आहाहा! समझ में आया?

आपको अपने आप प्रगट... है न? **'स्वयं प्रत्यक्षं'** है न? स्वयं अर्थात् अपने को, प्रत्यक्ष अर्थात् अपने आप प्रगट हुआ। अपने को अपने आप प्रत्यक्ष हुआ है। कोई ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हुआ तो यह ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? राग से भिन्न जो ज्ञान प्रगट हुआ, वह अपने प्रताप से प्रत्यक्ष होकर प्रगट हुआ है। स्व को भी जानता है और पर को भी जानता है। जिसके जानने में पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से प्रत्यक्ष में ऐसा कहते हैं कि राग को जानता है, वह भी व्यवहार हुआ। वह तो अपना जो स्वपरप्रकाशक प्रत्यक्ष ज्ञान है, उसे जानता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है। राग तो पर है। समझ में आया? यह कहा था न एक बार? (संवत्) १९८३ के वर्ष में बड़ा प्रश्न हुआ था, संवत् १९८३। बड़ा प्रश्न हुआ था। एक कहे कि लोकालोक है तो केवलज्ञान है। ऐसा प्रश्न उठा। एक कहे कि केवलज्ञान अपने से है, लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान है, ऐसा नहीं है। वह केवलज्ञान स्वयं से है। लोकालोक है तो लोकालोक को जानता है, ऐसा नहीं है। अपनी जानने की सामर्थ्य अपने से है। लोकालोक की सत्ता है तो अपने में केवलज्ञान की सत्ता उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि राग को जानता है, तो राग को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। यहाँ तो अपना प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें बहुत। बनिये को पूरे दिन धन्धे के कारण समय नहीं मिलता, उसमें ऐसी सूक्ष्म बातें। धन्धा... धन्धा। ऐसा मार्ग है, प्रभु! सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! पूरे दिन धन्धे की

प्रवृत्ति, यह कमाना और यह स्त्री और यह पुत्र, बीस-बाईस घण्टे तो पाप में जाये, छह-सात घण्टे निद्रा ले (उसमें) समय कहाँ रहे? और निवृत्ति हो तो व्यवहार करने में लग पड़े। व्रत और तप। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि व्रत, तप का जो विकल्प आया है... आहाहा! उसे भी ज्ञान प्रत्यक्ष होकर अपने को और पर को जानता है, परन्तु वह प्रत्यक्ष जानता है। राग है तो राग को जानता है, ऐसा नहीं है। अपना स्वभाव ही ऐसा प्रत्यक्ष हो गया है। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है? 'अचलं' चार गति के भ्रमण से रहित हुआ है। ज्ञान, आहाहा! जहाँ भेदज्ञान हुआ, राग से भिन्न हुआ और यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ... आहाहा! उसे गति का भ्रमण बन्द हो गया। समकिती को अब परिभ्रमण है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह पहले आया था न? 'मुक्त एव' एक श्लोक में आया था। 'मुक्त एव' आया था न? पहले आया था। हें? 'मुक्त एव' १९८। १९८ कलश है। 'मुक्त एव'। १९८ कलश में है। आहाहा! **'अचलं' चार गति के भ्रमण से रहित हुआ है।**

और कैसा है? 'ज्ञातारं' वह तो **ज्ञानमात्रस्वरूप है।** ज्ञान की प्रधानता से कहा है। बाकी अनन्त शुद्ध गुणस्वरूप है। समझ में आया? यहाँ तो ज्ञाता कहना है न? राग का कर्ता नहीं; इसलिए **'ज्ञातारम्'** शब्द प्रयोग किया है। परन्तु ज्ञाता में तो एक ज्ञान ही आता है। अनन्त गुण का परिणमन करता है तो ज्ञाता रहता है। **ज्ञानमात्रस्वरूप है।** ज्ञानमात्र कहा। वह तो ज्ञानमात्रस्वरूप है। वहाँ राग का सम्बन्ध ही नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञानमात्र स्वरूप है। **और कैसा है? 'परं एकं' 'परं एकं'** आहाहा! **रागादि अशुद्ध परिणति से रहित...** परम अर्थात् रागादि अशुद्ध। **'एकं'** (अर्थात्) **शुद्ध वस्तुमात्र...** ऐसा। **'परं एकं'। 'परं'** रागादि अशुद्धि से (रहित) अकेला शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, अकेला ज्ञाता-दृष्टा हो गया। आहाहा! **रहित शुद्ध वस्तुमात्र...** अकेला पवित्र भगवान चिदानन्द प्रभु, वह एक रूप रह गया। जो साथ में राग का द्विविध था, वह द्विविध छूटकर एकरूप ज्ञान हो गया। अब राग का ज्ञान (और) अपना ज्ञान हुआ, वह अपना एकरूप ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! **'परं एकं' 'परं एकं'** अर्थात् अशुद्ध परिणति से रहित शुद्ध वस्तुमात्र है। लो, यह २०५ श्लोक पूरा हुआ। अब २०६ (श्लोक)।

कलश - २०६

(मालिनी)

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम्।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः
स्वयमयमभिषिंचंश्चिच्चमत्कार एव ।।१४-२०६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'इह एकः निजमनसि कर्तृभोक्त्रोः विभेदं विधत्ते' [इह] साम्प्रत विद्यमान है-ऐसा [एकः] बौद्धमत को माननेवाला कोई जीव, [निजमनसि] अपने ज्ञान में [कर्तृभोक्त्रोः] कर्तापना-भोक्तापना में [विभेदं] भेद [विधत्ते] करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि—वह ऐसा कहता है कि क्रिया का कर्ता, कोई अन्य है; भोक्ता, कोई अन्य है। ऐसा क्यों मानता है? 'इदं आत्मतत्त्वं क्षणिकं कल्पयित्वा' [इदं आत्मतत्त्वं] अनादिनिधन है जो चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य, उसको [क्षणिकं कल्पयित्वा] क्षणिक मानता है, अर्थात् जिस प्रकार अपने नेत्ररोग के कारण, कोई श्वेत शंख को, पीला देखता है; उसी प्रकार अनादिनिधन जीवद्रवय को मिथ्या भ्रान्ति के कारण, ऐसा मानता है कि एक समयमात्र में पूर्व का जीव, मूल से विनस जाता है; अन्य नया जीव, मूल से उपज आता है; ऐसा मानता हुआ मानता है कि क्रिया का कर्ता, अन्य कोई जीव है; भोक्ता अन्य कोई जीव है। ऐसा अभिप्राय मिथ्यात्व का मूल है। इसलिए ऐसे जीव को समझाते हैं — 'अयं चिच्चमत्कारः तस्य विमोहं अपहरति' [अयं चिच्चमत्कारः] किसी जीव ने बाल्यावस्था में किसी नगर को देखा था, कुछ काल जाने पर और तरुण अवस्था आनेपर उसी नगर को देखता है, देखते हुए ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि वही यह नगर है, जिस नगर को मैंने बालकपन में देखा था; ऐसा है जो अतीत-अनागत-वर्तमान शाश्वत ज्ञानमात्र वस्तु, वह 'तस्य विमोहं अपहरति' क्षणिकवादी के मिथ्यात्व को दूर करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि — जो जीवतत्त्व, क्षण विनश्वर होता तो पूर्व ज्ञान को लेकर जो वर्तमान ज्ञान होता है, वह किसको होवे? इसलिए जीवद्रव्य सदा शाश्वत है-ऐसा कहने से क्षणिकवादी प्रतिबुद्ध होता है। कैसी है जीववस्तु? 'नित्यामृतौघैः स्वयं अभिषिञ्चत्' [नित्य] सदा काल अविनश्वरपनारूप जो [अमृत] जीवद्रव्य का

जीवनमूल, उसके [औघैः] समूह द्वारा [स्वयं अभिषिञ्चत्] अपनी शक्ति से आप पुष्ट होता हुआ। 'एव' निश्चय से ऐसा ही जानिएगा; अन्यथा नहीं।।१४-२०६।।

कलश - २०६ पर प्रवचन

भरतक्षेत्र में क्षणिक (मान्यता धारक) बौद्धमत है न? इस भरतक्षेत्र के बौद्धमति का यहाँ प्रश्न है। यह बौद्धमत कहीं बढ़ता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? बौद्धमत भरतक्षेत्र में अभी है तो टीका में ऐसा लिया है कि क्षणिक की व्याख्या भरतक्षेत्र में बौद्ध है तो उसकी व्याख्या है। समझ में आया? भगवान के पास कोई बौद्ध नहीं है, वहाँ कहाँ है? यहाँ बौद्ध हो गया है।

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम्।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः
स्वयमयमभिषिंचंश्चिच्चमत्कार एव ।।१४-२०६।।

आहाहा! ऐसी चीज़ है तो भी सन्त ऐसा कहते हैं कि हम व्याख्या करते नहीं। यह टीका हमसे नहीं हुई। आहाहा! क्योंकि हम तो जाननेवाले हैं न! विकल्प आया, उसे भी जाना, टीका हो गयी, उसे भी (जाना), वह है तो जाना (ऐसा नहीं), उस समय की पर्याय स्वयं को और पर को प्रकाशित करे, ऐसे सामर्थ्य से प्रगट हुई है, पर की अपेक्षा बिना। आहाहा! यह तो थोड़ा कुछ टीका (करना) आवे और कुछ करना आवे तो हमने किया और हमने किया और हमने किया (होता है)। आहाहा! यह तो मार्ग ऐसा है, प्रभु! ऐसे सन्त, वे भी ऐसा कहते हैं, यह टीका हमने नहीं की, यह तो अक्षर से बनी है। आहाहा!

'**इह एकः निजमनसि कर्तृभोक्त्रोः विभेदं विधत्ते**' क्या कहते हैं? **साम्प्रत विद्यमान है, ऐसा बौद्धमत को माननेवाला...** बौद्धमत की व्याख्या करते हैं। वास्तव में तो जिसे पर्यायबुद्धि है, वह बौद्धमति है। आहाहा! समझ में आया? क्षणिक पर्याय पर, राग पर दृष्टि है, वह तो सब क्षणिक मानता है, त्रिकाली वस्तु है, उसे तो मानता नहीं।

समझ में आया? जिसकी क्षणिक पर्याय पर लीनता है और उस पर्याय का लक्ष्य जाता है राग के ऊपर, विकार के ऊपर। तो इतने में जिसकी लीनता है, पर्याय में रमता है और वही मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह जैन धराओ तो भी वह क्षणिक बौद्धमति है। आहाहा! समझ में आया? यह तो एक बौद्धमति का दृष्टान्त है।

बौद्धमत को माननेवाला कोई जीव अपने ज्ञान में कर्तापना-भोक्तापना में भेद करता है। क्या कहते हैं? कि कर्ता भिन्न जीव है और उसका फल (भोगनेवाला) भोक्ता भिन्न जीव है। दूसरी पर्याय है न? वह तो एक समय की पर्याय को ही मानता है। दूसरे समय में आत्मा ही दूसरा हो गया, ऐसा कहता है। आहाहा! जो पर्याय हुई, वह पर्याय भिन्न रही और जो भोगा... यहाँ दूसरी अपेक्षा लेनी है। निश्चय में तो जिस समय में राग करता है, उसी समय में भोक्ता है। समझ में आया? १०२ गाथा, समयसार। जिस समय में करता है, जिस समय में भोगता है। समझ में आया? परन्तु यहाँ सिद्ध करना है बौद्धिकमत, क्षणिकवाद। उसे कहा कि जो पर्याय करता है, वह पर्याय भोगती नहीं। बात तो उस पर्याय को भोगता है, यह सच्ची बात है, परन्तु यह तो कहता है आत्मा जो करता है, वह दूसरे समय में दूसरा आत्मा भोगता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक समय में आत्मा जो राग को करता है, वह आत्मा दूसरे समय में उसके फल को भोगता नहीं, (दूसरे समय में) दूसरा आत्मा है, ऐसा (बौद्ध) कहते हैं। समझ में आया? पीछे इतनी बात सिद्ध करनी है। नहीं तो वास्तव में तो आत्मा में जिस समय में विकार होता है, कर्तापना, उसी समय में उसका भोक्ता है। समझ में आया?

यहाँ तो जो पर्याय करती है, वह पर्याय भोगती नहीं, इसलिए दूसरा आत्मा माननेवाले की अपेक्षा से बात ली है। समझ में आया? समयसार में तो ऐसा आया है, आया है न? १०२ (गाथा)।

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा॥१०२॥

जो राग करता है, उसी समय राग को भोगनेवाला वह है। १०२ गाथा में है। समझ में आया? यह तो वस्तु का सिद्धान्त सिद्ध किया कि कर्ता और भोक्ता (दो भिन्न नहीं) कि कर्ता है, वह दूसरा है और (भोक्ता दूसरा है, ऐसा नहीं है)। वह तो कर्ता है, उसी

समय में भोक्ता है। यहाँ दूसरा कहना है कि जिस समय में राग करता है, उसका फल दूसरे समय में आता है तो दूसरे समय में भोगनेवाला दूसरा है, ऐसा कहना है। चन्दुभाई!

एक ओर ऐसा कहे कि जिस समय में कर्ता है, उसी समय में भोक्ता है। यहाँ कहते हैं कि जिस समय में कर्ता और दूसरे समय में भोक्ता, ऐसा माननेवाला, आत्मा दूसरा हो जाता है इसलिए झूठा है। पहला कर्ता आत्मा भिन्न है और भोक्ता दूसरा है, ऐसा यहाँ काल भेद लेना है। **भेद करता है।**

भावार्थ इस प्रकार है कि—वह ऐसा कहता है कि क्रिया का कर्ता कोई अन्य है, भोक्ता कोई अन्य है। ऐसा। राग की क्रिया करनेवाला कोई दूसरा है और उसका फल भोगनेवाला भविष्य में दूसरा आत्मा है, ऐसा कहते हैं। त्रिकाली नित्य प्रभु चित्चमत्कार का भान नहीं, उसे वर्तमान पर्याय में सब दिखता है, तो वह पर्याय करता है और बाद की पर्याय भोगता है, तो वह पर्याय जिसने की, वह भोगती नहीं, दूसरा भोगता है, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी ऐसा भेद करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **क्रिया का कर्ता कोई अन्य है, भोक्ता कोई अन्य है।**

ऐसा क्यों मानता है? 'इदं आत्मतत्त्वं क्षणिकं कल्पयित्वा' ओहोहो! है न? **'इदं आत्मतत्त्वं' अनादिनिधन है जो चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य,... 'इदं'** यह। यह कौन? कि अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य। अनादि अर्थात् आदि नहीं और अनिधन। अ-अन्त नहीं, निधन अर्थात् अन्त। अन-आदि और अन-अन्त। ऐसा अनादि-अनन्त प्रभु, **जो चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य, उसको... 'क्षणिकं कल्पयित्वा' क्षणिक मानता है अर्थात् जिस प्रकार अपने नेत्ररोग के कारण कोई श्वेत शंख को पीला देखता है...** श्वेत शंख तो सफेद ही है। पीलिया के रोगवाले को वह पीला दिखता है।

उसी प्रकार अनादिनिधन जीवद्रव्य को मिथ्या भ्रान्ति के कारण ऐसा मानता है... आहाहा! ९३ गाथा में वहाँ लिया न, 'पर्यायमूढा परसमया', प्रवचनसार। अकेली पर्याय ली, वह क्षणिक हो गया। वहाँ स्पष्ट है, ९३ गाथा है। 'पर्यायमूढा परसमया'। जैन में भी हो परन्तु पर्याय को ही मानता है, द्रव्य त्रिकाली भिन्न पर्याय के समीप पड़ा है, पर्याय के साथ है, उसकी नजर नहीं और एक समय की पर्याय पर जिसकी नजर है, वह पर्यायमूढ़ है। ९३ गाथा है। आहाहा! वह बौद्धमति है, भले नाम न धरावे। समझ में आया? लो, विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ५, रविवार, दिनांक-१२-०२-१९७८, कलश-२०६, प्रवचन-२३०

कलश २०६। यहाँ अन्य पर्याय कर्ता है और अन्य भोक्ता है, उसमें द्रव्य भी अन्य है, ऐसा जो मानता है, वह अभिप्राय मिथ्यात्व है। क्या कहते हैं? जिस समय की पर्याय कर्ता है, वह पर्याय, यहाँ तो भिन्न की बात करती है न? नहीं तो जिस समय कर्ता है, उसी समय भोक्ता है। १०२ गाथा। कल कहा था। यहाँ तो क्षणिकवाद का निषेध करने के लिये (कहते हैं कि) जिस समय राग किया, उसका फल वह पर्याय नहीं भोगती, बाद की पर्याय भोगती है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। अपेक्षित बात है। समझ में आया? नहीं तो १०२ गाथा में ऐसा कहा, जिस समय राग-विकार या निर्मल आनन्द जिस समय उत्पन्न हुआ, उस ही समय उसका वेदन है। राग का कर्ता हुआ, वह मिथ्यादृष्टि है। उसी समय राग का वेदन करनेवाला है। क्योंकि जहाँ राग का कर्ता होता है, वहाँ दुःख का वेदन उसी समय है। समझ में आया?

यहाँ दूसरी बात कहनी है। यहाँ तो क्षणिक एक समय की पर्याय राग करे और वह पर्याय न भोगे, दूसरे समय में तो वह आत्मा ही दूसरा हो जाता है, ऐसा कहते हैं। यह बात झूठी है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। आगे तो '**अभिषिञ्चन्**' कहेंगे। ऐसे तो धारणा में अनन्त बार आत्मा पूर्ण नित्य है, ऐसा लिया है। ग्यारह अंग पढ़ा, उसमें बात नहीं आयी? समझ में आया? ग्यारह अंग, नौ पूर्व की मिथ्यादृष्टिरूप से लब्धि हुई (उस समय) आत्मा नित्य है, ऐसा धारणा में तो आया था। वह यहाँ नहीं लेना। समझ में आया? नित्य का वेदन नहीं हुआ। समझ में आया? यह आगे कहेंगे, '**अभिषिञ्चन्**', '**स्वयं अभिषिञ्चन्**' अन्तिम शब्द है। बाद में अन्तिम दो लाईन है। आहाहा! अन्तिम दो लाईन है।

यहाँ तो कहते हैं कि एक क्षण की पर्याय, वह पर्याय दूसरे समय में नहीं रहती। तो वह पर्याय कर्ता है, वह भोक्ता नहीं है, यह बराबर है, परन्तु वह द्रव्य पर्याय का कर्ता नहीं, दूसरे समय वह द्रव्य भोक्ता, ऐसा नहीं मानते, द्रव्य ही दूसरा हो जाता है, यह बात झूठी है। ऐसा क्यों होता है? कि क्षणिक पर्याय पर जिसकी दृष्टि है, यहाँ तो बौद्ध का

दृष्टान्त है, क्षणिक पर्याय पर जिसकी दृष्टि है तो दूसरे समय में दूसरी पर्याय होती है, वहाँ उसकी दृष्टि क्षणिक पर है। परन्तु जिसकी दृष्टि क्षणिक पर्याय से हटकर, जिसकी पर्याय है, उसका अन्दर में राग की एकता में, पर्यायबुद्धि में 'राग, वह मैं'—ऐसा दिखता था और दूसरे समय में स्वभाव की एकता हुई तो ध्रुवता का भान हुआ, वेदन आया, तब ध्रुव की प्रतीति यथार्थ है। ऐसे तो ध्रुव है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, आत्मा नित्य है, छह द्रव्य नित्य है, ऐसी धारणा तो अनन्त बार की है। वह तो परलक्ष्यी वस्तु है, वह कोई वास्तविक तत्त्वदृष्टि आयी नहीं। देवीलालजी! सूक्ष्म बात है।

जिस क्षण में पर्याय उत्पन्न हुई और दूसरे समय में दूसरा ही आत्मा होता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि जिसकी पर्याय पर बुद्धि है, उसे ऐसा लगता है कि यह पर्याय है और दूसरे समय में मैं ही दूसरा हो जाता हूँ। परन्तु धर्मी जीव की दृष्टि... आहाहा! क्षणिक पर्याय में राग की एकताबुद्धि थी, पर्यायबुद्धि में (थी), उसका जब नाश होता है, तब उसी समय नित्य वस्तु है, ऐसा पर्याय में वेदन आया। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया?

यहाँ तो बौद्ध का दृष्टान्त दिया परन्तु क्षणिक पर्याय पर जिसकी दृष्टि है, वह बौद्धमति ही है। आहाहा! समझ में आया? '**अभिषिञ्चन्**' अभिषेक करेगा, ऐसा पाठ है। आत्मा ही अपना अभिषेक करेगा। पण्डितजी! '**अभिषिञ्चन्**' है न? इसका संस्कृत में (अर्थ) अभिषेक किया है। अभिषेक! अर्थात् राग की पर्याय का जहाँ लक्ष्य छूट गया, पर्याय के ऊपर बुद्धि थी, तब तो राग का ही वेदन था, परन्तु वह दृष्टि द्रव्य के ऊपर गयी, वेदन में, हों! ऐसे धारणा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो उस समय में अन्तर दृष्टि जहाँ गयी तो उसी समय में निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई। निर्मल पर्याय का उत्पाद करनेवाला भी द्रव्य और मलिन पर्याय का व्यय करनेवाला भी द्रव्य है, अभी ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

अभी १०१ गाथा लेने जाये तो वह नहीं मिलेगी। १०१ गाथा, प्रवचनसार। उपजता है वह उत्पाद के आश्रित उत्पन्न होता है; ध्रुव के आश्रित नहीं। आहाहा! प्रवचनसार, ज्ञेय का ऐसा स्वरूप है। छह द्रव्य की बात की है, परन्तु अभी तो अपने आत्मा पर लेना

है। वहाँ विषय तो छहों द्रव्य का है। और जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय ध्रुव की अपेक्षा नहीं रखती, और जो पर्याय व्यय होती है, वह उत्पाद की अपेक्षा नहीं रखती, ध्रुव की तो अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? बैठा, जरा जगह दो। डॉक्टर आते हैं न (रक्त लेने)। उन्हें कुछ वहम पड़ा है। अपने तो कुछ खबर नहीं। क्या है— ऐसा देखते हैं, दूसरा कुछ नहीं है। आहाहा! हें?

मुमुक्षु : जाना हुआ प्रयोजनवान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चाहे जो हो।

यहाँ क्या कहा, समझ में आया? इसलिए ऐसे जीव को समझाते हैं, लो! किसे? कि जिसकी एक समय की पर्याय पर दृष्टि है और वही मैं हूँ, दूसरे समय दूसरा हुआ, दूसरी पर्याय हुई परन्तु आत्मा दूसरा हो गया (—ऐसा नहीं है)। आहाहा! आत्मा नित्यानित्यस्वरूप है, आत्मा नित्यानित्यस्वरूप है। अकेला अनित्यस्वरूप नहीं, अकेला नित्यस्वरूप नहीं। कायम रहनेवाला है (और पलटता भी है)।

यह वेदान्त के साथ बड़ी चर्चा हुई थी। तुम्हारे वे आये थे न? मोतीलालजी! राजकोटवाले नहीं? वैष्णव। अपने व्याख्यान में आते थे। (संवत्) १९९५, ११९० में। बाहर तीन-तीन हजार लोग। बीच में आते थे, परन्तु घर में फेरफार हो गयो तो उन्होंने दीक्षा ले ली। परमहंस, साधु हो गये। फिर यहाँ आये थे, वहाँ गोंडल भी आये थे। वेदान्त (कहता है), एक स्वरूप है। कहा, एक स्वरूप है, ऐसी मान्यता नहीं थी और एक स्वरूप है, ऐसी मान्यता किसमें हुई? व्यापक नहीं मानते थे और फिर व्यापक माना तो वह किसमें माना? द्रव्य में या पर्याय में? समझ में आया? अन्तर तो पड़ा है न कि पहले मान्यता थी कि आत्मा व्यापक है, सर्व व्यापक है। परन्तु वह व्यापक है, ऐसा व्यापक में निर्णय हुआ या व्यापक की पर्याय में निर्णय हुआ? द्वैत हो गया, पर्याय और द्रव्य दो हुए। समझ में आया?

यहाँ एक बार रात्रि चर्चा में भी कहा था, 'आनन्दम् ब्रह्मणो रूपम्।' वह परमानन्द का शब्द है, एक परमानन्द स्तोत्र है, उसमें वहाँ यह शब्द है, दिगम्बर शास्त्र है— परमानन्द स्तोत्र। वहाँ 'आनन्दम् ब्रह्मणो रूपम्' वहाँ शब्द लिया है। यह आत्मा का

आनन्द है, वह ब्रह्म का रूप है। आत्मा का रूप ही अतीन्द्रिय आनन्द है। परन्तु किसे? है तो है, परन्तु किसे? जिसकी दृष्टि राग की पर्याय से हटकर आनन्द पर दृष्टि पड़ती है, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन पर्याय में आया, उसे 'आनन्दम् ब्रह्मणो रूपम्' है। क्या कहा? परमानन्द क्या कहा? परमानन्द स्तोत्र। एक स्वरूप सम्बोधन है, सब पुस्तकें हैं। यहाँ सब हैं, देखे हैं। 'आनन्दम् ब्रह्मणो रूपम्' परन्तु किसे? क्षणिक मानता है, उसे तो ऐसा रहता ही नहीं। समझ में आया? क्षणिक के ऊपर की दृष्टि उठाकर, दृष्टि तो पर्याय है, पर्यायरूपी दृष्टि तो रहेगी, परन्तु दृष्टि पर्याय से उठाकर, वह दृष्टि द्रव्य पर लगाना। नित्य भगवान आत्मा है, नित्य '**अभिषिञ्चन्**' ऐसा कहेंगे। अभिषेक करता है। मैं आनन्द का नाथ नित्य हूँ, ऐसा अभिषेक होता है। क्या कहा समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में, पहले जो क्षणिक बुद्धि थी, वह छूट गयी और द्रव्यबुद्धि 'आनन्दम् ब्रह्मणो रूपम्' ऐसा अनुभव हुआ तो यह नित्य का अभिषेक हुआ। अभिषेक अर्थात् नित्य की प्रगटता हुई। जो क्षणिक पर दृष्टि थी, वहाँ से हटकर नित्य पर दृष्टि गयी। समझ में आया? यह पर्याय पलटती होने पर भी वस्तु तो नित्य कायम है। वह यहाँ कहते हैं, देखो!

'**अयं चिच्चमत्कारः तस्य विमोहं अपहरति**' आहाहा! यहाँ आया है, आया? '**अयं चिच्चमत्कारः तस्य विमोहं अपहरति**' आहाहा! क्या कहते हैं? जिसे पर्यायबुद्धि है, उसकी पर्यायबुद्धि का नाश चित्चमत्कारबुद्धि होने पर नाश हो जायेगा। वह चित्चमत्कारिक चीज़ अन्दर है। आया? '**अयं चिच्चमत्कारः**' आहाहा! **किसी जीव ने बाल्यावस्था में किसी नगर को देखा था,...** भाषा तो चित्चमत्कार इतनी है। '**अयं**' यह चित्चमत्कार। यह पहले था, वही यह है, इतना दृष्टान्त देकर सिद्ध करना है। नहीं तो यह— '**अयं चिच्चमत्कारः**'। इतना सिद्ध करना है। उसे दृष्टान्त देकर कहते हैं।

किसी जीव ने बाल्यावस्था में किसी नगर को देखा था, कुछ काल जाने पर और तरुण अवस्था आने पर उसी नगर को देखता है, देखते हुए ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है... देखते हुए ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि वही यह नगर है... यह वह नगर है, मैंने बाल अवस्था में देखा था, वह यह नगर है। समझ में आया? आहाहा! जिस नगर को

मैंने बाल्यावस्था में देखा था, बस! **ऐसा है जो अतीत-अनागत-वर्तमान शाश्वत् ज्ञानमात्र वस्तु...** आहाहा! पहले जब मैं राग करता था, तब भी यह आत्मा था, रागरहित हुआ वह भी मैं ही आत्मा हूँ। वह यह है, यह है, यह है—ऐसा चित्चमत्कार, चैतन्य का चमत्कार पर्याय में अनुभव में आया। यह कहते हैं, देखो! क्या कहते हैं?

'तस्य विमोहं अपहरति', 'तस्य विमोहं अपहरति'। क्षणिकवादी के मिथ्यात्व को दूर करता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु अन्दर है परन्तु पर्याय में, राग में अनादि काल से बुद्धि है। जैन साधु हुआ, पंच महाव्रतधारी (हुआ) परन्तु क्षणिकबुद्धि में, पर्यायबुद्धि में रहा। अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' परन्तु वह सब पर्यायबुद्धि में था, उसे द्रव्यबुद्धि आयी नहीं। आहाहा! 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' उसमें आता है न? उसका अर्थ यह कि पंच महाव्रत आदि सब दुःखरूप है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' नित्य पर दृष्टि पड़े बिना आनन्द आया नहीं। समझ में आया? उस पर्याय पर दृष्टि रखकर पंच महाव्रत क्या, हजारों रानियाँ छोड़ी, त्यागी हुआ, जंगल में मुनि हुआ, परन्तु वह क्षणिक पर्याय से छूटकर अन्दर नित्यानन्द प्रभु चित्चमत्कार है, उसकी दृष्टि हुई नहीं। समझ में आया? आहाहा!

श्रीमद् २४(वें) वर्ष में कहते हैं न? श्रीमद्—

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो;
वनवास रह्यो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठ योग प्रयोग सुतार भयो;
जाप जपे तप त्योंहि तपे, उर से ही उदासी लही सबपै।
सब शास्त्रन के नय धारी हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न परयो।

यम-नियम, यम अर्थात् पंच महाव्रत, नियम अर्थात् अभिग्रह। ऐसे अभिग्रह धारण किये कि मैं भिक्षा लेने जाऊँ तो... समझ में आया? मोती, उस बाई ने मोती का क्या कहलाता है? साड़ी। साड़ला को क्या कहते हैं? साड़ी। मोती की साड़ी हो, मोती अन्दर

हो और मोतीचूर का लड्डू खाती हो। हें ? मोती उसका नाम हो, यह सब बात हो गयी है। उसके हाथ से लेना, वरना नहीं लेना, ऐसे अभिग्रह अनन्त बार धारण किये।

'यम नियम संयम' नियम यह अभिग्रह में जाता है। ऐसे नियम, हों! आहाहा! मोती नाम की बाई हो, मोतीचूर का लड्डू खाती हो, साड़ी में मोती रंगवाली हो, नाम भूल गये अपने ? साड़ी का नाम। वह हो तो मैं आहार लूँगा, नहीं तो नहीं लूँगा, ऐसे अभिग्रह अनन्त बार लिये। 'यम नियम संयम आप कियो' संयम लिया। इन्द्रियदमन किया, संयम—द्रव्यसंयम भी अनन्त बार लिया। समझ में आया ? 'यम नियम संयम आप कियो' आप कियो अर्थात् पुरुषार्थ से किया, ऐसा कहते हैं। कर्म मन्द पड़े, इसलिए किया, ऐसा नहीं है। स्वयं ऐसे शुभभाव किये हैं। 'यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो' त्याग बाहर का और वैराग्य अथाग... अथाग... अथाग... समझ में आया ? 'त्याग वैराग्य अथाग लियो, मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो, वनवास रह्यो' वन में-जंगल में अकेला रहा। आहाहा! परन्तु यह चीज़ क्या है ? यह तो अनन्त बार हुआ, यह कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया ?

'मुख मौन रह्यो दृढ आसन पद्म लगाय दियो, सब शास्त्रन के नय धारी हिये, मत मण्डन खण्डन बार अनन्त किये' ऐसा है और ऐसा नहीं, ऐसा है और ऐसा नहीं। 'सब शास्त्रन के नय धारी हिये' आहाहा! 'मत मण्डन खण्डन भेद लिये' श्रीमद् कहते हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, बाद की बात है। समझ में आया ? आत्मा का अनुभव हुआ, पश्चात् यह श्लोक हिन्दी में बनाया। वे तो गुजराती (थे)। श्रीमद् राजचन्द्र हैं तो गुजराती परन्तु हिन्दी में बनाया। अनुभव के बाद, सम्यक् अनुभव होने के बाद यह बनाया है। ऐसा सब तो अननत बार किया है, प्रभु!

'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो' क्षणिकबुद्धि थी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'अब क्यों न विचारत है मनसे, कछु और रहा उन साधन से' वह साधन (नहीं), दूसरा कोई साधन है। यह साधन-फाधन नहीं। समझ में आया ? नित्यानन्द का नाथ प्रभु अन्दर में प्रज्ञाछैनी साधन है। अपने प्रज्ञाछैनी आ गया है। प्रज्ञाछैनी का मूल अर्थ तो अनुभव है। प्रज्ञाछैनी। अनुभव किया है। अनुभव ही साधन है। बाकी

राग की क्रिया और अमुक-अमुक साधन, ऐसे तो अनन्त बार किये। 'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो, अब क्यों न विचारत है मन से कुछ और रहा उन साधन से, बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे' आहाहा! 'बिन सदगुरु कोई न भेद लहे...' फिर क्या भूल गया। 'मुख आगल है कह बात कहै' यहाँ प्रभु अन्दर स्थित है। 'मुख आगल है कह बात कहे' भगवान चैतन्य आनन्द में नित्य स्थित है। अन्दर में नित्य की दृष्टि की नहीं तो नित्य का आनन्द आया नहीं तो वह पंच महाव्रत के सब पालन-फालन दुःखरूप हुए। आहाहा! इसमें है या नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो' इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत और बारह व्रत और वह सब राग और दुःख है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह क्षणिकबुद्धि जहाँ टलती है... आहाहा! धारणा में नहीं। धारणा में, समझ में आया? ऐसे तो नित्य है, ऐसा जानने में आया नहीं? ग्यारह अंग में नहीं आया? यहाँ यह कहते हैं कि चित्चमत्कार। आहाहा! है न? **अतीत-अनागत-वर्तमान शाश्वत् ज्ञानमात्र वस्तु...** ध्रुव ज्ञान भगवान ध्रुव। ध्रुव को ध्येय (बनाकर) ध्यान में लेकर धीरज से... अपने बोल आये हैं। धीरज से धूणी धखा। यह गुजराती भाषा है। पर्याय को ध्रुव की ओर झुकाना... आहाहा! धीरज से, शान्ति से विकल्प से रहित होकर अन्तर में अनुभव में, दृष्टि में लेकर पर्याय में आनन्द की धूनी (धखा)। यह बाबा धूणी नहीं करते? वह अग्नि की धूनी है, यह आनन्द की धूनी लगाते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह अन्दर चित्चमत्कार हुआ। ज्ञान का चमत्कार। दुनिया के चमत्कार की बातें करे, वह सब खोटी। अमुक चमत्कार और अमुक चमत्कार। डाह्याभाई! यह चमत्कार नहीं? आहाहा! हें?

मुमुक्षु : यह तो गुप्त चमत्कार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुप्त चमत्कार है। यह शक्ति में है, परन्तु यहाँ तो प्रगट में आया। ऐसा कहा न? भाई! गुप्त है, गुप्त है, गुप्त है—यह किसे प्रतीति में आया? समझ में आया? यह है, भले गुप्त शक्तिरूप से है, परन्तु यह प्रतीति, अनुभव—वेदन में आये बिना यह गुप्तरूप है, ऐसी प्रतीति कहाँ से आयी? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! बात तो बौद्ध की कहते हैं परन्तु क्षणिक पर्यायबुद्धिवाले सब बौद्ध ही हैं। हैं?

मुमुक्षु : अभिप्राय में तो ऐसा ही है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका अभिप्राय तो एक ही है। आहाहा! हें?

मुमुक्षु : बौद्धमति तो गृहीत मिथ्यादृष्टि होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी गृहीत मिथ्यादृष्टि है, पर्यायबुद्धि में अपना मानता है। समझ में आया? सम्प्रदाय में सुनकर, हों! अनादि से अगृहीत है, वह तो है, अनादि से अगृहीत मिथ्यात्व है, वह तो है ही, परन्तु सम्प्रदाय में आकर पर्यायबुद्धि की पुष्टि की तो यह गृहीत मिथ्यात्व है। अगृहीत तो अनादि का है ही। उसमें कहीं नया नहीं पकड़ा, परन्तु अगृहीत उपरान्त जहाँ सम्प्रदाय में जहाँ-जहाँ जन्म लिया, वहाँ सम्प्रदाय की बुद्धि में राग और पर्यायबुद्धि हुई तो वह गृहीत मिथ्यात्व हो गया। समझ में आया? आहाहा! यहाँ यह कहा।

'तस्य विमोहं अपहरति' आहाहा! **क्षणिकवादी के मिथ्यात्व को दूर करता है।** कौन? चित्चमत्कार। जो यह आत्मा पहले था, वही मैं हूँ। भूतकाल में था, वही वर्तमान में हूँ। वर्तमान में हूँ, वही भविष्य में रहेगा, ऐसी वस्तु की नित्यता पर्याय में अनुभव में आयी, वह चित्चमत्कार हुआ। आहाहा! अभी तो कहा था न यहा? कि भाई! यह पैर जमीन के ऊपर चलते हैं न? तो पैर जमीन को छूता ही नहीं। यह चमत्कार नहीं? बाहर के चमत्कार का तुझे क्या काम है? और ज्ञान जानता है कि यह पैर है, वह नीचे जमीन को स्पर्शता नहीं, आत्मा हिलाता नहीं और पैर अपनी परमाणु की पर्याय से (चलता है)। इस पैर का आधार जमीन भी नहीं। जमीन के आधार से चलता है, ऐसा भी नहीं। इस परमाणु में आधार नाम का गुण है, तो अपने आधार से पर्याय से वहाँ गति करता है और वहाँ रहता है। वहाँ (जमीन के) आधार से रहा ही नहीं। हें?

मुमुक्षु : सब ऋद्धिधारी हो गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है। माने, न माने, वह तो स्वतन्त्र है। यह चमत्कार नहीं? दुनिया को यह बात बैठ सकती है। यह अँगुली छूती नहीं और यह ऊँचा होता है। आहाहा! यह चमत्कार नहीं द्रव्य का? वस्तु ही चमत्कारिक है। चाहे तो भगवान हो आत्मा या चाहे तो रजकण हो। आहाहा! एक समय में रजकण चौदह ब्रह्माण्ड की

गति करते हैं। नीचे सातवें नरक के तल में एक परमाणु हो, एक समय (अर्थात्) एक 'क' का असंख्यवाँ भाग, 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं। एक समय में नीचे से (परमाणु गति करे और) सिद्ध है, वहाँ चला जाये। किसी की अपेक्षा नहीं, किसी का आश्रय नहीं, किसी का आधार नहीं। धर्मास्तिकाय के कारण भी नहीं। धर्मास्तिकाय (के कारण से) तो तब कहलाये कि जब स्वयं से (गति) होती है, तब उसे निमितत कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह शरीर है, वह पाट को स्पर्शा ही नहीं। पाट के आधार से शरीर रहा ही नहीं। यह बात! यह चमत्कार नहीं? और वह भी इस चीज़ को जाननेवाले का चमत्कार है। इस चीज़ को तो खबर भी नहीं। हें? आहाहा! जाननेवाला नित्य प्रभु चमत्कारी! आहाहा! अपने में रहकर पर्याय के लक्ष्य में द्रव्य को लेकर पर्याय में आनन्द का वेदन चित्चमत्कार हुआ, उसमें क्षणिकवाद का, मिथ्यात्व का, विमोह का नाश किया। हैं?

'तस्य विमोहं अपहरति' क्षणिकवादी के मिथ्यात्व को दूर करता है। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी कठिन! हैं?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान! तू भी सच्चा है, परन्तु सच्चा हो न! तू भी प्रभु है, नाथ! आहाहा! तुझमें खामी / कमी है नहीं। पूर्णानन्द का नाथ है न तू! पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण सर्वज्ञता, पूर्ण सर्वदर्शिता, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... सर्व गुण से पूर्ण प्रभु है। आहाहा! चित्चमत्कार होकर उसके विमोह का नाश करता है। आहाहा! यह धारणा की बात नहीं। अन्दर चित्चमत्कार ज्ञान चमत्कार (विद्यमान है)। आहाहा!

पर्याय अपने में रहकर द्रव्य को जाने, गुण को जाने, अपने को जाने और पर को जाने। पर को स्पर्श किये बिना और अपनी पर्याय भी अपने द्रव्य को स्पर्श किये बिना... आहाहा! पर्याय में आनन्द का चित्चमत्कार का वेदन आया। आहाहा! यह चमत्कार नहीं? यह पर्याय है, सम्यग्दर्शन में आनन्द का वेदन हुआ, वह पर्याय द्रव्य-गुण को स्पर्शती नहीं और उस पर्याय में पर का ज्ञान हुआ तो पर को भी वह पर्याय स्पर्शी नहीं

और पर है तो यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! प्रभु! तेरी बात तो देख, भाई! आहाहा! यह चित्चमत्कार की दृष्टि होकर क्षणिकवाद का नाश कर देती है। पर्यायबुद्धि का नाश कर देती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! आहाहा!

कल रजनीश का आया है न, नहीं? अर र र! भाषण दिया है। कोई दरबार ने अंग्रेजी में मेरे प्रति लिखा है कि यहाँ जैन साधु की निन्दा हुई है, इसलिए तुम कुछ कदम उठाओ। भाई! यहाँ हमारे... और वह बाई ऐसा बोली कि व्यभिचार का जो विकल्प आता है, तो व्यभिचार कर लेना। अर र र! और वापस ऐसा मानते हैं कि मेरे अतिरिक्त कोई है नहीं। हिन्दुस्तान में वे हैं न अरविन्द। अरविन्द आश्रम है न बड़ा? उसकी भी निन्दा की है, वह भी नहीं, किसी का नहीं। जैन का नहीं, वह नहीं, सब झूठे हैं। और विकल्प का दबाना नहीं। विषयभोग का विकल्प आया तो दबाना नहीं। अर र र! ऐसा मार्ग प्रभु तू क्या करता है यह? आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं), कि गुण-गुणी के भेद का विकल्प, वह भी प्रभु पाप है। उसके बदले यह व्यभिचार करो तो निर्विकल्प हो जाओगे, (ऐसा वह कहता है)। आहाहा! अर र र! यह तो प्रभु चित्चमत्कार निर्विकल्प कब होगा? कि पर्याय के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर त्रिकाल पर दृष्टि करने से चित्चमत्कार में निर्विकल्प दृष्टि होती है। आहाहा! समझ में आया? इस निर्विकल्प दृष्टि को किसी पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि—जो जीवतत्त्व क्षण विनश्वर होता तो... क्षण-क्षण में नाश होता है। **पूर्व ज्ञान को लेकर जो वर्तमान ज्ञान होता है...** पूर्व के ज्ञानसहित वर्तमान का ज्ञान होता है, वह ज्ञान तो ध्रुव रहा। **वह किसे होता है?** क्या कहा, समझ में आया? **क्षण विनश्वर होता तो पूर्व ज्ञान को लेकर जो वर्तमान ज्ञान होता है, वह किसे होता है?** समझ में आया या नहीं? प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। आहाहा! आहाहा! **पूर्व ज्ञान को लेकर जो वर्तमान ज्ञान होता है, वह किसे होता है? इसलिए जीवद्रव्य सदा शाश्वत् है...** आहाहा! भगवान तो त्रिकाली शाश्वत् विराजता है। आहाहा!

परमाणु भी पारिणामिकभाव से द्रव्य शाश्वत् है। भले पर्याय पलटे। परमाणु द्रव्यरूप से तो शाश्वत् है। आहाहा! उस शाश्वत् की तो इसे (-परमाणु को) खबर नहीं।

उस शाश्वत् की इसे (जीव को) खबर पड़ती है। समझ में आया? वह परमाणु भी शाश्वत् है, यह परमाणु को खबर नहीं। वह शाश्वत् है, इसका ख्याल तो ज्ञान में आता है। किसे? कि, स्वयं नित्य को जाना, नित्य-कायम सदा है, उस दृष्टि से ज्ञान में सब परमाणु आदि शाश्वत् हैं, ऐसा जाना। आहाहा! पर्याय पलटती होने पर भी, वस्तु तो शाश्वत् है। आहाहा!

ऐसा कहने से क्षणिकवादी प्रतिबुद्ध होता है। देखो! यहाँ तो यह लिया। ऐसा सुनने से क्षणिकवादी प्रतिबुद्ध होता ही है। हें? पाँचवीं गाथा में कहा न? समयसार। '**जदि दाएज्ज**'। यों तो पहले ऐसा कहा, '**एयत्तविहत्तं**' (अर्थात्) स्वभाव की एकता और विभाव की पृथक्ता। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं**' दिखाऊँगा मैं, (ऐसा) कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। '**दाएहं अप्पणो सविहवेण**' यह मेरे वैभव से दिखाऊँगा। आहाहा! उसमें भी '**जदि दाएज्ज**' फिर दूसरा शब्द आया। पहले तो आया यह—'**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण**' मैं स्वभाव की एकता और विकल्प की पृथक्ता मेरे वैभव से दिखाऊँगा। तो '**दाएहं**' शब्द तो पहले आया था, फिर से '**दाएहं**' लिया, परन्तु '**जदि दाएज्ज**' यदि मैं दिखाऊँ तो '**पमाणं**'। '**जदि दाएज्ज**' दिखाऊँ तो प्रमाण करना—अनुभव से प्रमाण करना। यह बात है, ऐसा नहीं। आहाहा!

'**जदि दाएज्ज पमाणं**'। यह तीसरा पद है। तीसरे पद के दो टुकड़े। '**जदि दाएज्ज**' यदि दिखाऊँ (तो) '**पमाणं**'। आहाहा! अन्तर के आनन्द के अनुभव से प्रमाण करना। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! '**जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं**' मैं कोई व्याकरण के शब्द में भूत-भविष्य-वर्तमान फेरफार बोलने में आ जाये और तुझे उसका ख्याल हो तो वह ख्याल नहीं रखना। मेरी अन्तर की चीज़ अनुभव की कहता हूँ, वह ख्याल रखना। विभक्ति में ऐसा अन्तर पड़ा और यह भाषा और तुझे ज्ञान में हो, वह तू पढ़ा हो, व्याकरण (खबर हो) और तुझे ज्ञान में हो कि इस जगह शास्त्र में शब्द ऐसा चाहिए और यह बोले, तो ऐसा ध्यान नहीं रखना। '**चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं**' आहाहा! मैं आत्मा के आनन्द का अनुभव राग से भिन्न पड़कर जो बताता हूँ, उसे तू प्रमाण करना। दूसरी बात लेना नहीं।

यहाँ यह कहा, देखो! **ऐसा कहने से क्षणिकवादी प्रतिबुद्ध होता है।** वह तो तुरन्त... है? आहाहा! यहाँ तो ऐसी बात ली है। आहाहा! **कैसी है जीववस्तु? 'नित्यामृतौघैः स्वयं अभिषिञ्चन्'** आहाहा! कैसा है प्रभु आत्मा अन्दर? **'नित्य' सदाकाल अविनश्वरपनारूप...** आहाहा! है... है... है... है... है... है... सदा काल अविनश्वर वस्तु अन्दर है। निर्णय हुआ पर्याय में, परन्तु वस्तु है अविनश्वर—ऐसा निर्णय हुआ। अनित्य ने नित्य का निर्णय किया। समझ में आया? नित्य का निर्णय नित्य कैसे करे? समझ में आया? यह चिद्विलास में भाई ने लिया है, चिद्विलास। अनित्य नित्य का निर्णय करता है। चिद्विलास में बहुत सरस बात है। अनुभव की बहुत अच्छी (बातें की हैं)। अनुभव प्रकाश में, चिद्विलास में, भाई ने—दीपचन्दजी ने (बहुत बात की है।)

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **'नित्यामृतौघैः स्वयं अभिषिञ्चन्'। 'नित्य'** अर्थात् सदा काल भगवान आत्मा अन्दर विराजता है, अविनश्वर। और **'अमृत' जीवद्रव्य का जीवनमूल,...** आनन्दस्वरूप अमृत भगवान अन्दर है, इस जीव का जीवनमूल वह है। आहाहा! अमृत सिंचति। आहाहा! **जीवद्रव्य का जीवनमूल, उसके... 'ओघैः'** अर्थात् **समूह द्वारा...** आहाहा! जीवद्रव्य का कायमी टिकना, आनन्द का कायम रहना, ऐसा अमृत स्वरूप भगवान। अमृत के दो अर्थ हैं—कभी मरे नहीं ऐसा नित्य और अतीन्द्रिय आनन्द अमृत पर्याय में सींचता है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा का अभिषेक होता है, ऐसा कहते हैं। जो नित्य की मान्यता अनुभव में नहीं थी, धारणा में थी, नित्य का भान हुआ (वह) अभिषेक हुआ। राजन अभिषेक हुआ। आहाहा! राजा का अभिषेक करते हैं न? **'अभिषिञ्चन्'** का अर्थ अभिषेक होता है। संस्कृत में है। संस्कृत टीका है न? सबकी टीका है, परमाध्यात्म तरंगिणी है, संस्कृत। यह क्या कहा?

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु वर्तमान क्षणिक पर्याय का नाश करके त्रिकाली पर जहाँ दृष्टि पड़ती है, वहाँ नित्यानन्द अमृत प्रभु, अमृत का ओघ... ओहोहो! न नाश पावे ऐसा अमृत और अस्तिरूप से अनन्त अमृत आनन्द का समूह। आहाहा! उसके द्वारा **'स्वयं अभिषिञ्चन्'**। क्या कहते हैं? राग निमित्त था और पर की अपेक्षा आयी तो **'अभिषिञ्चन्'** नित्य का भान हुआ, ऐसा नहीं है। **'स्वयं अभिषिञ्चन्'** आहाहा! देवीलालजी! आहाहा! अपने नित्यानन्द प्रभु के अनुभव में स्वयं अभिसिंचन होता है।

किसी की—व्यवहार-फ्यवहार की अपेक्षा उसमें नहीं है। व्यवहार ऐसा आया, बहुत अच्छा व्यवहार किया तो यह अनुभव हुआ, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा! ऐसी भाषा है। उसके भाव ऐसे बहुत सूक्ष्म हैं।

मुमुक्षु : आप तो फरमाते हो कि धारणा में निश्चित करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : धारणा में विकल्प से निर्णय किया, तब तक अनुभव नहीं है।

मुमुक्षु : अनुभव तो बाद में करना पड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह बाद में... विकल्प में निर्णय किया, इसलिए अनुभव होता है—ऐसा नहीं है। पहले ऐसा निर्णय आता है। क्योंकि विपरीत बुद्धि होती है, इसलिए विकल्प में ऐसा निर्णय आता है कि यह आत्मा नित्यानन्द है, क्षणिक पर्याय है, अनुभव होता है तो आनन्द का होता है, यह राग का वेदन है, परन्तु वह विकल्पसहित निर्णय वास्तविक नहीं है। आहाहा!

वास्तविक निर्णय तो अनुभव करके जो निर्णय हुआ, (वह यथार्थ है)। अवग्रह, इहा, अवाय, धारणा होकर वस्तु को पकड़कर अवाय, अवग्रह—पकड़कर, ईहा—विचार-ज्ञान किया, अवाय—निश्चय हुआ, धारणा—तब यह आनन्द है, ऐसा धारणा हुई, वह निर्णय यथार्थ है।

मुमुक्षु : निर्विकल्प धारणा...

पूज्य गुरुदेवश्री : (उससे पहले की) धारणा को धारणा कहते नहीं। मतिज्ञान का भेद है न? आहाहा

मुमुक्षु : जो आत्मा का निर्णय किया, वही आत्मा फिर अनुभव में आयेगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह निर्णय विकल्प से किया, इसलिए नहीं। ऐसा विकल्प (सहित) पहले निर्णय आता है। अन्यमत से और विपरीत कहनेवाले से, विपरीतपना कैसा होता है, यह पलटाने के कारण ऐसा विकल्प आता है कि भगवान तो यह कहते हैं, अज्ञानी यह कहता है, परन्तु विकल्प से निर्णय हुआ, वह वास्तविक निर्णय नहीं है। आहाहा! वास्तविक निर्णय नहीं है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है।

मुमुक्षु : पक्का निर्णय नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पक्का निर्णय नहीं है। यहाँ आये थे न? बहुत वाँचन किया था, बहुत वांचन (था)। यहाँ आये और एक शब्द कहा, भाई! विकल्प जो राग उठता है और भगवान, दोनों भिन्न चीज़ है। आहाहा! बहुत साधुओं को मिले थे। तप, जप किये थे। अन्यमति की क्रिया होती है न? क्या कहलाती है? समझ में आया? योग। अन्यमति का बहुत किया था। शास्त्र पढ़े हुए। एक ही बात की, प्रभु! अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान राग के विकल्प से अत्यन्त भिन्न है तो एक रात... इस समिति में शाम से सवेरे तक ध्यान में घोलन करते... करते... करते... जहाँ सवेरा हुआ, वहाँ अनुभव करके खड़े हुए, एक रात्रि में सम्यग्दर्शन हुआ, यहाँ। फिर यह द्रव्यदृष्टि प्रकाश (प्रकाशित हुआ)। द्रव्यदृष्टि प्रकाश तो फिर हमारे इन भाई ने बनाया, इन शशीभाई ने और लालचन्दभाई ने दोनों ने इकट्ठे होकर बनाया। वे स्वयं कहीं... यह शशीभाई वैष्णव है, फिर इन्होंने बनाया। ये और अपने लालचन्दभाई, दोनों ने द्रव्यदृष्टि प्रकाश (बनाया)। नीचे नाम है।

मुमुक्षु : वैष्णव होता तो वह आज जैन हूँ, ऐसा कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पहिचान कराने के लिये। कुल से वैष्णव थे। मोढ़ है न मोढ़? गाँधी की जाति के हैं। भावनगर में यही वाँचन करते हैं और वाँचन करने जाते हैं, कोलकाता और मुम्बई वाँचन करने जाते हैं। आहाहा! वैष्णव हो या हरिजन हो, आत्मा के अनुभव के लिये जाति कहाँ बाधक है? हरिजन भी पाते हैं। आया न? रत्नकरण्ड श्रावकाचार (में आया है)। जैसे अग्नि ढँकी हुई है, वैसे बाहर में तो चाण्डाल शरीर, काला, मैला (हो परन्तु) अन्दर अनुभव, सम्यग्दर्शन हुआ है। ढाँकी हुई अग्नि है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में (आता है)। आहाहा! हरिजन हो तो क्या है?

उसके समूह द्वारा अपनी शक्ति से आप पुष्ट होता हुआ। भाषा देखो! **'स्वयं अभिषिञ्चन्'** आहाहा! आनन्द की धारा से आत्मा का अभिषेक आत्मा करता है। मैं नित्य हूँ, ऐसे आनन्द के अनुभव में मैं नित्य हूँ, ऐसा अभिसिंचन—अभिषेक हुआ। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भाई! परन्तु भाव तो जो है, वह है। क्या

करे ? समझ में आया ? '**स्वयं अभिषिञ्चन्**' आहाहा ! भाषा ऐसी है कि नित्य का भान हुआ तो कोई देव-गुरु-शास्त्र की अपेक्षा थी तो हुआ, कोई निमित्त की अपेक्षा से हुआ, कोई राग की मन्दता बहुत की तो उससे हुआ ?—कि नहीं। आहाहा ! '**स्वयं अभिषिञ्चन्**' **अपनी शक्ति से...** अपने स्वभाव की **शक्ति से आप पुष्ट होता हुआ।** अपने से स्वयं पुष्ट होता हुआ। अस्थिरता थी कि उसे ही—रागादि पर्याय को ही अपनी मानता था, (वह नाश हुई) पुष्टि हुई कि, नित्यानन्द प्रभु हूँ, ऐसा पुष्ट हुआ। आहाहा ! जैसे चना पानी में पुष्ट होता है, चना... चना पानी में पुष्ट होता है न ? परन्तु वह तो पोला चौड़ा है। यह क्या कहा ? चना जैसे कठोर होता है न ? चना वह पानी में पोचा होता है परन्तु वह पोचा पोला है, अन्दर कठिन नहीं है। यह तो कठिन पुष्ट होता है। आहाहा ! जैसे दूध... दूध लो न ! अग्नि नीचे हो और दूध पाँच सेर हो, उफान आवे, उफान, तो कहीं दूध बढ़ गया है ? वह तो पोला है। अग्नि और यह दूध होता है न ? उसमें उफान आता है। वह दूध बढ़ा नहीं। वह बहुत पोला हो गया है। इसी प्रकार अज्ञानी का ज्ञान पोला है। ज्ञानी का ज्ञान पुष्ट हुआ है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है। है ?

अपनी शक्ति से आप पुष्ट होता हुआ। आहाहा ! पर्याय में आत्मद्रव्य पर जोर लगाकर पर्याय में पुष्ट होता है। शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता—इत्यादि शक्ति की व्यक्तता पुष्ट होती है। समझ में आया ? आहाहा ! '**एव' निश्चय से ऐसा ही जानिएगा,...** ऐसा निश्चय से जानो कि, स्वयं अपने कारण से पुष्ट होता है। कोई राग की मन्दता की और व्यवहार बहुत किया, इसलिए निश्चय हुआ, यह बिल्कुल मिथ्यात्व का शल्य है। समझ में आया ? आहाहा ! '**एव' निश्चय से ऐसा ही जानिएगा, अन्यथा नहीं।** दूसरे प्रकार से आत्मा प्राप्त होता ही नहीं। निरपेक्ष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर की अपेक्षा बिना (होते हैं)। यह नियमसार में दूसरी गाथा में कहा। परमनिरपेक्ष। आहाहा ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मल प्रगट हुए, उसमें पर की बिल्कुल अपेक्षा नहीं। स्व का आश्रय (होकर) नित्य का भान हुआ है।

१७-१८ गाथा में लिया है न ? भाई ! १७-१८, समयसार। आत्मा की श्रद्धा हुई, अनुभव (हुआ) तो वह श्रद्धा ऐसी हुई, अनुभव तो हुआ, परन्तु अब मैं उसमें स्थिर

रहूँगा उतना कर्म का नाश होगा। है? १७-१८ गाथा। १७-१८ में है। श्रद्धा में ऐसा आया कि यह चीज़ ऐसी आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें मैं जितना अन्दर में स्थिर रहूँगा, उतना कर्म का नाश होगा। उस श्रद्धा में चारित्र ऐसा आया। श्रद्धा में (ऐसा आया)। यह व्रत, फ्रत और यह सब कोई चारित्र है ही नहीं। समझ में आया? १७-१८ गाथा में है कि जब आत्मा को अनुभव हुआ, पर्याय में आबाल-गोपाल को आत्मा ही ज्ञात होता है, सर्व जीव को पर्याय में आत्मा ही ज्ञात होता है, क्योंकि पर्याय का ज्ञान स्व-परप्रकाशक है तो पर्याय में स्व ही ज्ञात होता है, परन्तु राग के वश होकर, दृष्टि इस ओर नहीं, इसलिए उसे अनुभव में नहीं आता। और जब अनुभव में आया और श्रद्धा हुई तो वह श्रद्धा ऐसी हुई कि यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसके अन्दर मैं जितना स्थिर होऊँगा, वह चारित्र है, उतना कर्म का नाश होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रद्धा की परिणति है या ज्ञान की परिणति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिरता की परिणति। यह तो श्रद्धा की परिणति है परन्तु श्रद्धा की परिणति में श्रद्धा ने ऐसा माना।

मुमुक्षु : श्रद्धा का विषय तो एकान्त ध्रुव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय भले ध्रुव हो, परन्तु श्रद्धा का भान हुआ, उसके साथ ज्ञान भी हुआ या नहीं? श्रद्धा में तो स्व-पर भेद है ही कहाँ? परन्तु साथ में ज्ञान हुआ, वह ज्ञान ऐसा जानता है कि इस वस्तु को मैंने जो जाना, उसमें अन्दर आनन्द में मैं जितना लीन होऊँगा, वह चारित्र है। उससे मेरे कर्म का नाश होगा। हें? समझ में आया? तो इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है—**अपनी शक्ति से आप पुष्ट होता हुआ। ऐसा ही जानिएगा...** ऐसा ही जानिएगा। एकान्त (किया)। **अन्यथा नहीं।** दूसरे प्रकार से नहीं। (विशेष कहेंगे...) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २०७

(अनुष्टुप्)

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्।
अन्यः करोति भुंक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ।।१५-२०७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — क्षणिकवादी प्रतिबोधित किया जाता है — 'इति एकान्तः मा चकास्तु' [इति] इस प्रकार [एकान्तः] द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक के भेद बिना किये, सर्वथा ऐसा ही है-ऐसा कहना, [मा चकास्तु] किसी जीव को स्वप्नमात्र में भी, ऐसा श्रद्धान मत होओ। ऐसा कैसा? 'अन्यः करोति अन्यः भुंक्ते' [अन्यः करोति] अन्य प्रथम समय का उत्पन्न हुआ कोई जीव, कर्म का उपार्जन करता है; [अन्यः भुंक्ते] अन्य दूसरे समय का उत्पन्न हुआ जीव, कर्म को भोगता है — ऐसा एकान्तपना मिथ्यात्व है। भावार्थ इस प्रकार है — जीववस्तु, द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। इसलिए द्रव्यरूप से विचार करनेपर जो जीव, कर्म का उपार्जन करता है; वही जीव, उदय आनेपर भोगता है; पर्यायरूप से विचार करनेपर जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आनेपर उन परिणामों का अवस्थान्तर होता है; इसलिए अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है — ऐसा भाव, स्याद्वाद साध सकता है। जैसा बौद्धमत का जीव कहता है, वह तो महाविपरीत है। सो कौन विपरीतपना? 'अत्यन्तं वृत्यंशभेदतः वृत्तिमन्नाशकल्पनात्' [अत्यन्तं] द्रव्य का ऐसा ही स्वरूप है, सहारा किसका? [वृत्ति] अवस्था, उसका [अंश] एक द्रव्य की अनन्त अवस्था, ऐसा [भेदतः] कोई अवस्था विनश जाती है; अन्य कोई अवस्था उत्पन्नद्य होती है, ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है — ऐसे अवस्थाभेद का छल पकड़कर कोई बौद्धमत का मिथ्यादृष्टि जीव, [वृत्तिमन्नाशकल्पनात्] वृत्तिमान-जिसका अवस्थाभेद होता है, ऐसी सत्तारूप शाश्वत वस्तु का नाशकल्पना=मूल से सत्ता का नाश मानता है; इसलिए ऐसा कहना विपरीतपना है। भावार्थ इस प्रकार है कि बौद्धमत का जीव, पर्यायमात्र को वस्तु मानता है; पर्याय जिसकी है, ऐसी सत्तामात्र वस्तु को नहीं मानता है। इस कारण ऐसा मानता है सो महामिथ्यात्व है।।१५-२०७।।

माघ शुक्ल ६, सोमवार, दिनांक-१३-०२-१९७८, कलश-२०७, प्रवचन-२३१

कलश टीका २०७।

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्।
अन्यः करोति भुंक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ।।१५-२०७।।

क्षणिकवादी प्रतिबोधित किया जाता है—अर्थात् एकान्त से पर्याय को ही माननेवाले को समझाया जाता है। **'इति एकांतः मा चकास्तु' इस प्रकार द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक के भेद बिना किये...** क्या कहते हैं? द्रव्यार्थिक से द्रव्य नित्य है और पर्याय से अवस्था अनित्य है। दो भेद का स्वीकार नहीं करते हुए एकान्त का स्वीकार करना, वह मिथ्यात्व है। आगे लेंगे। अकेले द्रव्य का ही स्वीकार और पर्याय का स्वीकार न करे तो भी मिथ्यात्व है और अकेली पर्याय का ही स्वीकार करे और त्रिकाल को न स्वीकार करे तो वह भी मिथ्यादृष्टि है।

किसी जीव को स्वप्नमात्र में भी ऐसा श्रद्धान मत होओ। आहाहा! स्वप्न में भी ऐसी कल्पना न हो कि मैं एक पर्यायमात्र हूँ और त्रिकाली द्रव्य नहीं। द्रव्य त्रिकाल रहनेवाली चीज़ है, वह नहीं - ऐसा स्वप्नमात्र में भी न हो। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा कैसा? 'अन्यः करोति अन्यः भुंक्ते' अन्य प्रथम समय का उत्पन्न हुआ कोई जीव कर्म का उपार्जन करता है, अन्य दूसरे समय का उत्पन्न हुआ जीव कर्म को भोगता है - ऐसा एकान्तपना मिथ्यात्व है।** आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—जीव वस्तु द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। दो रूप है अकेली पर्यायरूप भी नहीं, अकेली द्रव्यरूप भी नहीं। क्षणिक बौद्धमति आदि अज्ञानी अनादि से पर्याय को ही मानते हैं और सांख्यमति जो वेदान्ती आदि अकेले द्रव्य को ही मानते हैं, पर्याय को नहीं मानते। वे कहते हैं कि आत्मा और आत्मा का अनुभव, यह तो दो हो गये। ऐसे दो नहीं। एक ही सर्व व्यापक है - यह भी मिथ्या है और पर्यायमात्र मानते हैं, वह दृष्टि तो अनादि से बौद्ध की तो है परन्तु अनादि अज्ञानी का भी पर्याय पर लक्ष्य है। क्योंकि प्रगट पर्याय है। वस्तु पर्याय के समीप में पर्याय की अपेक्षा से अप्रगट कहने

में आती है। पर्याय की अपेक्षा से। उसकी अपेक्षा से प्रगट है। आहाहा! समझ में आया? अव्यक्त कहा न? परन्तु अव्यक्त तो पर्याय की अपेक्षा से कहा है, द्रव्य की अपेक्षा से व्यक्त है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : एक का एक पदार्थ व्यक्त और एक का एक पदार्थ अव्यक्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक का एक पदार्थ व्यक्त और एक का एक पदार्थ अव्यक्त। आहाहा! यह कहते हैं, अभी दूसरे श्लोक में विशेष कहेंगे।

उस व्यक्त - प्रगट पर्याय का ही अनुभव अनादि से है और... नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार दिगम्बर जैन साधु होकर गया, पंच महाव्रतादि (पालन किये) परन्तु उसकी दृष्टि पर्याय पर ही है। बहुत सूक्ष्म बात, भगवान! उस पर्याय के समीप में पूर्ण असंख्य प्रदेशी वस्तु है, उस पर कभी दृष्टि की ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! रात्रि में थोड़ा कहा था और पहले भी कहा था। क्या? कि जो यह असंख्य प्रदेशी आत्मा है न? तो जो पर्याय है, वह प्रत्येक प्रदेश के ऊपर है।

मुमुक्षु : ऊपर के भाग में या नीचे के भाग में।

पूज्य गुरुदेवश्री : समस्त भाग में। दूसरा कहना है, यह बात तो कल कही थी। पहले बहुत कही थी कि पर्याय ऊपर के प्रदेश में ही है, यह नहीं, अन्दर प्रदेश असंख्य हैं, ऐसा नहीं। पर्याय तो अन्दर में जो यह है, वहाँ असंख्य प्रदेश का बिम्ब है तो प्रत्येक पर्याय प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है और यह जो पेट है अन्दर में असंख्य प्रदेशी जीव है, असंख्य प्रदेश का दल, तो ऊपर के प्रदेश की पर्याय है, इतना नहीं परन्तु प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय अन्दर में है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रत्येक पर्याय प्रदेश के ऊपर रहती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी-नयी उत्पन्न होती है।

मुमुक्षु : प्रदेश के ऊपर रहती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश के ऊपर रहे, अन्दर में न जाए। उस दिन कहा था, पर्याय ऊपर है, उसका अर्थ क्या? कि ये असंख्य प्रदेश हैं। शरीर-वाणी-मन एक ओर रखो, कर्म एक ओर रखो। असंख्य प्रदेश का पिण्ड है तो ऊपर-ऊपर के प्रदेश में पर्याय

है, ऐसा नहीं। अन्तर जो असंख्य प्रदेश का पिण्ड है अन्दर, उस प्रदेश में भी प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : असंख्य प्रदेशों में व्यापक।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापक, ऊपर। परन्तु ऊपर का अर्थ इसलिए कहा है। ऊपर का अर्थ क्या? कि प्रदेश असंख्य है तो प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है और अन्दर में ध्रुवता है।

मुमुक्षु : ऊपर से पर्याय का आवरण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय-फर्याय का आवरण नहीं। पर्याय है। आवरण-फावरण कुछ है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो पर्याय को ऊपर है, ऐसा कहते हैं तो ऊपर की व्याख्या क्या, इतनी बात है। इस शरीर को एक ओर रखो, कर्म एक ओर रखो। असंख्य प्रदेश का जो पिण्ड है तो ऊपर-ऊपर के प्रदेश पर पर्याय है - ऐसा नहीं, असंख्य प्रदेश का अन्दर दल है तो प्रत्येक प्रदेश के ऊपर पर्याय है। प्रत्येक प्रदेश के ऊपर पर्याय है तो उस पर्याय को अन्दर झुकाना। सूक्ष्म विषय है, प्रभु! आहाहा! यहाँ भी प्रदेश है न अन्दर। असंख्य (प्रदेश का) दल है, उस प्रत्येक प्रदेश के अन्दर ऊपर-ऊपर पर्याय है। ऊपर अर्थात्? यह असंख्य प्रदेश यहाँ हैं, उनके ऊपर पर्याय है, ऐसा नहीं। अन्दर जो असंख्य प्रदेश का दल है (उन सब पर पर्याय है)। समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आता? अधिक स्पष्ट कराने के लिये ऐसा कहते हैं। समझ में तो आता है। अधिक स्पष्ट कराने को कहते हैं।

यह ऊपर-ऊपर है, उसी प्रदेश की पर्याय है, ऐसा नहीं। अन्दर भी प्रदेश है, यह परमाणु है न? इस परमाणु में तो ऊपर-ऊपर पर्याय है। ऐसा विषय। यहाँ तो पर्याय और द्रव्य दोनों भिन्न हैं परन्तु किस प्रकार से है? - कि यह ऊपर-ऊपर पर्याय है, इतना ही नहीं परन्तु अन्दर प्रत्येक परमाणु भिन्न है, उस प्रत्येक परमाणु की पर्याय ऊपर-ऊपर है। इसकी ही ऊपर है, ऐसा नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश आत्मा में है, उस प्रत्येक

प्रदेश के ऊपर-ऊपर पर्याय है, अन्दर में ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। यह तो आता है न? पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है। अबद्धस्पृष्ट में (आता है)। अबद्धस्पृष्ट श्लोक आया न? अबद्धस्पृष्ट में। वह पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है, ऐसा पाठ है। अबद्धस्पृष्ट। (समयसार) १४-१५ गाथा में लिखा है। पण्डित जयचन्दजी ने बहुत स्पष्ट किया है कि वह सब पर्याय अनित्य है तो वह ऊपर-ऊपर रहती है, सामान्य में-ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। अब ऐसा विषय सूक्ष्म, क्या हो? हैं?

मुमुक्षु : दो भाग कर दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो भाग ही है। एक पर्याय का भाग और एक द्रव्य का भाग, ऐसे दो भाग हैं। दोनों के क्षेत्र भी भिन्न हैं।

मुमुक्षु : समुद्र में ऊपर-ऊपर तरंग उठती है, उसकी तरह....

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी का तो वहाँ दृष्टान्त दिया है कि जैसे जल में तेल... तेल कहते हैं न? (तेल की) बूँद गिरे तो वह तेल अन्दर प्रवेश नहीं करता, वह ऊपर-ऊपर रहता है परन्तु उस जल में ऊपर-ऊपर रहता है। इस स्थूल दृष्टान्त में क्या कहना? बाकी जल के जो प्रदेश हैं अन्दर में, उसके ऊपर-ऊपर पर्याय के हैं। समझ में आया? भाई! यह तो द्रव्यानुयोग का विषय है, सूक्ष्म है।

यह असंख्य प्रदेश का दल पूरा आत्मा है। यह कर्म, शरीर नहीं। वह चीज़ तो इसमें है ही नहीं। उससे तो भिन्न ही है, परन्तु यह असंख्य प्रदेश जहाँ-जहाँ है, वहाँ-वहाँ उन प्रदेश पर पर्याय है, नहीं कि असंख्य प्रदेश अर्थात् ऊपर-ऊपर की पर्याय, वही उसकी पर्याय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कल रात्रि में बहुत कहा था, यह पहले बहुत बार व्याख्यान में कहते हैं कि भाई! यह पर्याय ऊपर है और द्रव्य अन्दर है, उसका अर्थ क्या? आहाहा! उसका भावभासन होना चाहिए न? ऐसे के ऐसे मान लेने का अर्थ क्या? भाव में... आता है मोक्षमार्गप्रकाशक में? भावभासन। ज्ञान में यह ऐसा है, ऐसा भासन होना चाहिए न? तो यह पर्याय ऊपर है, उसका भासन क्या? और अन्दर में नहीं है, वह क्या? तो असंख्य प्रदेशी प्रभु आत्मा पूरा अन्दर है - शरीर, कर्म से सबसे भिन्न, तो वह सबसे भिन्न होने पर भी असंख्य प्रदेश जो हैं, प्रत्येक प्रदेश के

पिण्ड में जो है, वह अन्दर के जो प्रदेश हैं, उनमें भी ऊपर पर्याय है। डाह्याभाई! आहा! ऐसी बातें हैं। क्या कहा?

मुमुक्षु : कोई वस्तु हो, उसे कागज लपेटकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, ऐसा भी नहीं। वह तो ऊपर-ऊपर से हुआ। इसके लिये तो यह स्पष्ट किया जाता है। जैसे इस लकड़ी का ऊपर-ऊपर कहा, ऐसा नहीं। यहाँ तो लकड़ी में जो प्रत्येक परमाणु है, वह प्रत्येक परमाणु, वह (मात्र) ऊपर के परमाणु नहीं, अन्दर के परमाणु में भी ऊपर-ऊपर पर्याय है। आहाहा! ऐसी प्रत्यक्ष वस्तु है। समझ में आया?

यहाँ तो दूसरा कहना है कि क्षणिकवादी और बौद्धमति ऊपर-ऊपर जो पर्याय है, उसे ही मानते हैं, परन्तु पर्याय का आधार द्रव्य अन्दर पूर्ण ध्रुव समस्त स्थान में है, उसकी खबर नहीं है। ऐसा अनादि का पर्यायबुद्धिवाला नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, जैन साधु (होकर) निरतिचार पंच महाव्रत (पालन किये) मिथ्यात्वभाव में। उसकी भी पर्यायबुद्धि थी। आहाहा! ऊपर-ऊपर की पर्याय को ही मानता था। वह वहाँ तक मानता था कि इस प्रदेश में, प्रत्येक प्रदेश का दल है, उस प्रदेश ऊपर पर्याय है, ऐसा भी मानता था परन्तु उस पर्याय जितना ही मैं हूँ, बस! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह अकेली क्षणिक बौद्ध की बात नहीं है।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी का पूरा जोर पर्याय पर ही था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय पर ही अनादि का अज्ञानी का सब जोर है। पंच महाव्रत पालकर पूरा लक्ष्य, रुचि, प्रेम वहाँ जमा रहे कि मैं यह कुछ करता हूँ। वह चीज़ ही मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो क्षणिकवाद को न्याय से, पर्याय जो क्षणिक है उस पर्याय के पीछे अन्दर ध्रुवता पड़ी है, उस ध्रुव के ऊपर पर्याय तैरती है। समझ में आया? समयसार में आ गया है। १४वीं गाथा है। सामान्य ऊपर-ऊपर तैरता है। अबद्धस्पृष्ट। आहा! समयसार तो समुद्र है, एक-एक शब्द समुद्र, हों! एक-एक शब्द! आहाहा!

मुमुक्षु : समुद्र में डुबकी खाते हुए वापस तैरना आना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : डुबकी मारे तो भी उसे—तैराक को खबर है, अन्दर। यह सुना नहीं तुमने? समुद्र में मोती लेने जाता है। समुद्र में बहुत (मोती) पड़े हो न? किसी का जहाज टूटा हो, प्लेन टूट गया हो। नीचे रत्न पड़े हैं, नीचे बहुत पड़े हैं। उन्हें लेने मनुष्य नीचे जाता है न? सुना है न? तो वह एक भूंगली साथ में लेकर जाता है। वह भूंगली बाहर रहती है, वहाँ से हवा अन्दर आवे तो वहाँ गहरा जा सके, नहीं श्वांस लिये बिना मर जाए। यह क्या कहा? वह मोती लेने जाते हैं न वहाँ? एक तो अन्दर जरा प्रकाश भी चाहिए। इसलिए आँख में भी अन्दर थोड़ा प्रकाश रहता है, देखने के लिये। और हवा चाहिए, हवा बिना तो मर जाए। एक भूंगली ऐसी रखे कि ऊपर से हवा अन्दर आती है। ऊपर से अन्दर आती है और अन्दर जाए तो हवा के कारण श्वांस ले सकता है और प्रकाश के कारण देख सकता है कि यह मोती है, यह हीरा है। समझ में आया? अभी होता है। हमने तो सब बात सुनी है न!

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! अपनी पर्याय को अन्दर झुकाने से हीरा हाथ आता है। समुद्र पड़ा है प्रभु अन्दर। आहाहा! वर्तमान पर्याय को, इतना ही मैं हूँ—ऐसा नहीं मानकर, पर्याय जिसकी है, उसकी सत्ता में अन्तर्मुख होनेरूप पर दृष्टि पड़ती है, उसे द्रव्यदृष्टि कहते हैं, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं और उसे आनन्द का पता लगता है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान है, वहाँ पर्याय को अन्दर झुकाने से अतीन्द्रिय आनन्द का तल जो है, तल जो नीचे तल है, ध्रुव है,... आहाहा! (उसका) पता लगने से पर्याय में भी आनन्द आता है तो उस पर्याय में आनन्द आया।

कल तुम्हारा प्रश्न था न? चेतना क्यों कहा? ऐसा कि पहले ज्ञान कहा, फिर दृष्टि कहा, फिर चारित्र कहा, फिर और चेतना क्यों कहा? कल कलश में आया था। वहाँ आनन्द कहना है। क्या (कहा)? वहाँ चेतना का आनन्द कहना है। ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना - पर्याय के तीन भेद हैं न, पर्याय में? ज्ञानचेतना (अर्थात्) सम्यग्दर्शन में स्वरूप की एकाग्रता (हो), वह ज्ञानचेतना; अन्दर राग में एकाग्रता (हो), वह कर्मचेतना। कर्म अर्थात् जड़ की यहाँ बात नहीं और राग का फल भोगना, वह कर्मफलचेतना, राग का फल कर्मफलचेतना। समझ में आया? आहाहा!

एक बात तो दूसरी भी है। कहाँ का कहाँ आ जाता है मस्तिष्क में। शुद्धज्ञानचेतना, शुद्धकर्मचेतना और शुद्धकर्मफलचेतना - ऐसे तीन बोल प्रवचनसार में आये हैं। भाई! हैं? है न? अन्दर में आनन्दस्वरूप ध्रुव में जाते हैं, तब पर्याय में जो शुद्ध उपयोग हुआ, उस शुद्ध उपयोग को कर्मचेतना कहने में आया है। शुद्धकर्मचेतना। आहाहा! प्रवचनसार में है। आहाहा! शुद्धकर्मचेतना! आहा! है तो पर्याय परन्तु वह ध्रुव सन्मुख झुकने से जो आनन्द की शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, उसे भी कर्मचेतना कहने में आता है। राग को कर्मचेतना कहा, वह तो अशुद्ध चेतना की क्रिया के लिये कहा है। यह तो शुद्धकर्मचेतना। कर्म अर्थात् कार्य। शुद्ध चैतन्यवस्तु जो ध्रुव है, उसके अवलम्बन से, उसके आश्रय से, उसके ध्येय से, उसके लक्ष्य से पर्याय में जो शुद्धता प्रगट हुई, उस शुद्धता को भी शुद्धकर्मचेतना कहा जाता है। आहाहा! यशपालजी! सूक्ष्म बात है, भगवान! क्या हो? मार्ग कोई ऐसा है।

शुद्धकर्मफलचेतना। यह शुद्ध निर्मल परिणति जो प्रगट हुई, वह आनन्द का जो वेदन है, वह शुद्धकर्मफलचेतना है। है तो पर्याय। आहाहा! कर्म शब्द से यहाँ राग भी नहीं, जड़ भी नहीं। आहाहा! मात्र अपना कार्य शुद्धचैतन्य की दृष्टि से हुआ, उस कार्य को अनुभवना, वह शुद्धकर्मचेतना का अनुभव है, ऐसा कहना है। आहाहा! और उसका फल आनन्दरूप भोगना, उसे शुद्धकर्मफलचेतना कहा जाता है। बात ऐसी है, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा! और यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। अन्दर में स्वीकार आवे कि यह चीज़ ऐसी है। यह चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कर्मचेतना - कर्मफलचेतना के दो प्रकार हुए। समझ में आया? राग को वेदना, वह कर्मचेतना है, वह अशुद्धकर्मचेतना है। राग का, सुख-दुःख का वेदन, वह कर्मफलचेतना अशुद्ध चेतना है। आहाहा! है तो वह पर्याय और पर्याय के पीछे ध्रुव पड़ा है। वह पर्याय भी ऊपर है। आहाहा! असंख्य प्रदेश के दल में भिन्न (स्वरूप) है। कर्म है ही नहीं, छूते ही नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी भी तीन काल में स्पर्श नहीं करते। यह तो समयसार तीसरी गाथा में आ गया। अपने धर्म को चुम्बन करते हैं, पर

को चुम्बन नहीं करते। इतनी बात तो पर से भिन्न करने के लिये कही। अब फिर जब अन्दर में राग को कर्मचेतना कहने में आया है तो वह कर्मचेतना भी द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। समझ में आया? और फिर ऐसा लो कि शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसका अनुभव होकर जो शुद्ध परिणमन हुआ, वह शुद्ध चेतना, शुद्ध उपयोगरूपी चेतना-कर्मचेतना है, वह भी ऊपर-ऊपर पर्याय में है। भाई! बापू! (ऐसा है)। भगवान! तू कौन है? भाई! आहाहा!

आनन्द का वेदन (आया) वह शुद्धकर्मफलचेतना, वह भी पर्याय है। उस पर्याय के पीछे अन्दर में प्रत्येक स्थान में, असंख्य प्रदेश में जहाँ-जहाँ शुद्ध उपयोग उत्पन्न होता है, वह भी असंख्य प्रदेश में (होता है), कहीं ऊपर के प्रदेश में होता है, ऐसा नहीं, अन्दर-अन्दर सब प्रदेश में अन्दर उत्पन्न होता है। समझ में आया? आहाहा! उस पर्याय के पीछे अन्दर में ध्रुव दल पड़ा है। आहाहा! उसे यहाँ द्रव्यार्थिकनय का विषय-द्रव्यदृष्टि कहते हैं।

यहाँ आया न? द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। यहाँ आया न? **द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक के भेद बिना किये सर्वथा ऐसा ही है, ऐसा कहना किसी जीव को स्वप्नमात्र में भी ऐसा श्रद्धान मत होओ।** आहाहा! अभी यह विषय चलता है। यह तो अपने जानने की अपेक्षा से बात है, हों! कथनमात्र 'अन्दर पर्याय है' ऐसा कहना, ऐसी बात नहीं। वह तो वाचक है परन्तु अन्दर में पर्याय और द्रव्य - दो की स्थिति मानना, एक को मानना और एक को न मानना, ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है। क्योंकि पर्याय में तो कार्य होता है और द्रव्य में कार्य नहीं होता। कार्य पर्याय में होता है। राग का हो या शुद्धपरिणति, निश्चय शुद्धकर्मफल या कर्मचेतना (हो), वह सब पर्याय में है और पर्याय को ही मानना, परन्तु जिसे शुद्ध कर्मफलचेतना प्रगटी है और वह तो पर्याय को और द्रव्य को-दोनों को मानता है। समझ में आया? परन्तु जिसे अकेला राग का ही वेदन है—दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों—वहाँ ही जो सन्तुष्ट है, उसने पर्यायमात्र को आत्मा माना। आहाहा! अन्दर भगवान ध्रुवचैतन्य है।

जिस पर्याय में राग के कर्तृत्वरूप परिणमन है, वह पर्याय अन्दर में नहीं जा सकती। क्या कहा यह? जो पर्याय ऊपर है, उस पर्याय में राग का और दया, दान के

विकल्प का कर्ता है, वह पर्याय अन्दर में नहीं जा सकती, वह तो वहाँ रह गयी। समझ में आया? बाद की पर्याय उत्पन्न हुई और अन्दर प्रवेश किया, दोनों का एक ही समय है। आहाहा! क्या कहते हैं? समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : व्यय और उत्पाद दोनों एक ही समय में हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बराबर है। परन्तु जो पर्याय राग की ओर झुककर कर्तापने में परिणमी है, वह पर्याय अब अन्तर्मुख नहीं हो सकती। क्योंकि उस पर्याय का तो व्यय हो जाता है। अब व्यय होता है और जो नयी पर्याय उत्पन्न होती है, द्रव्य के आश्रय से वह उत्पन्न हुई और अन्दर झुकी। दोनों का एक ही समय कहने में आता है। आहाहा! यह क्या कहा, समझ में आया?

मुमुक्षु : अन्दर में झुकती हुई उत्पन्न होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में झुकने की जो पर्याय है, वह राग की पर्याय (जो) करता है, वह पर्याय अन्दर में नहीं झुक सकती। अब उस समय दूसरी पर्याय तो है नहीं। तब दूसरी पर्याय द्रव्य पर लक्ष्य करने से आती है... आहाहा! और वही पर्याय अन्दर झुकी, ऐसा कहने में आता है। ऐसा है, बापू! सूक्ष्म वस्तु है। तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने बाहर से कल्पित किया है। आहाहा! अनन्त काल में इसने वास्तविक स्थिति का अन्दर भासन नहीं किया। समझ में आया?

यहाँ कहा कि द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक दोनों। परन्तु उस पर्याय को ऐसा कहना कि पर्याय को भूतार्थ का आश्रय करना। परन्तु कौन सी पर्याय को? जो पर्याय राग के कर्तापने में (परिणमित हुई है) कर्मपर्याय-कर्मचेतना है, वह पर्याय तो अशुद्ध वहाँ रही, वह पर्याय अन्दर नहीं जा सकती। आहाहा! बाद की पर्याय उत्पन्न होकर अन्दर में झुकी और उत्पन्न हुई, दोनों का एक ही समय है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह कहना है कि पर्यायमात्र को मानना, वह भी एकान्त है और एकान्त द्रव्य को ही मानना, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह आया न? २०७ **किसी जीव को स्वप्नमात्र में भी ऐसा श्रद्धान मत होओ।** आहाहा!

ऐसा कैसा? 'अन्यः करोति अन्यः भुंक्ते' अन्य प्रथम समय का उत्पन्न हुआ

कोई जीव कर्म का उपार्जन करता है, अन्य दूसरे समय का उत्पन्न हुआ जीव कर्म को भोगता है—ऐसा एकान्तपना मिथ्यात्व है। भावार्थ इस प्रकार है—जीव वस्तु द्रव्यरूप है, पर्यायरूप (दोनों) है। इसलिए द्रव्यरूप से विचार करने पर जो जीव कर्म का उपार्जन करता है, वही जीव उदय आने पर भोगता है;... आहाहा! कैसी शैली की है, देखी? १०२ गाथा में तो ऐसा कहा है कि जिस समय में राग का कर्ता है, उसी समय भोक्ता है। अब यहाँ दूसरे प्रकार से कहना है। यहाँ तो संयोग से बात करनी है। क्या कहा, समझ में आया? समयसार की १०२ गाथा में (ऐसा कहा कि) जिस समय राग का कर्ता है, उसी समय भोक्ता है। उसमें समयभेद नहीं है। अब यहाँ तो समयभेद कहेंगे। यह सत्य है। वह भी सत्य है और यह भी सत्य है। यह किस अपेक्षा से? कर्म की अपेक्षा से। वह अपने भाव की अपेक्षा से कहा था। विकार का करना और विकार का भोगना दोनों का समय एक है। अब यहाँ कर्म की अपेक्षा लेनी है। आहाहा! है? देखो!

द्रव्यरूप से विचार करने पर जो जीव कर्म का उपार्जन करता है, वही जीव उदय आने पर भोगता है;... है? जीवद्रव्य की अपेक्षा से यह (बात है)। **पर्यायरूप से विचार करने पर जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है,...** देखा? **जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर...** यह जड़, अब जड़ की अपेक्षा यहाँ है। जो जड़ (कर्म) बँधा, उसका समय भिन्न है और उसका उदय आकर भोगने का समय भिन्न है। समझ में आया? है? देखो!

परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर उन परिणामों का अवस्थान्तर होता है;... दूसरी अवस्था भोगती है। यह जड़ की अपेक्षा यहाँ बात है। जिस समय में कर्म किया, उस कर्म का उदय आवे और भोगता है, यह तो कर्म की अपेक्षा से बात है, भाई! आहाहा! यह क्या कहते हैं? १०२ गाथा में कर्ता-कर्म (अधिकार में) जो कहा, वह तो उस समय में कर्ता और उसी समय में भोक्ता है, वह भाव की बात है। अब यहाँ तो जिस समय में कर्म बँधा, उस समय में कर्म का भोक्ता नहीं होता। समझ में आया? अरे! ऐसी अपेक्षाओं का पार नहीं होता। भगवान का मार्ग बहुत सूक्ष्म - गहन मार्ग है, प्रभु! लोगों ने ऊपर-ऊपर से मान लिया है, ऐसा नहीं। यह तो गहन विषय है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म का फल तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विषय नहीं है। यहाँ तो कर्म रजकण परवस्तु है, उसका फल उस समय में नहीं, इतना बताना है। समझ में आया? यहाँ आया न? कहाँ आया?

जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर उन परिणामों का अवस्थान्तर होता है; इसलिए अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है। जिस समय जड़ को किया, उस समय तो कर्ता है, बस! अब फिर उदय आया, तब ज्ञानावरणीय को भोक्ता है, यह समयभेद हो गया। संयोग को करना और भोगना यह समयभेद है, अपने भाव का करना और भोगना, उसमें समयभेद नहीं है। आहाहा! क्या कहा? उसके ख्याल में तो स्पष्ट आना चाहिए न? ऐसे का ऐसा मानना, यह कोई चीज़ है। आहाहा!

ज्ञान में अपनी निर्मल परिणति करे और भोगे, वह एक ही समय और विकार की परिणति करे और भोगे, वह भी एक ही समय। अब, जिस अवस्था से ज्ञानावरणादि कर्म बँधे, वह अवस्था कर्म के उदय काल में रही नहीं। उदय में दूसरी अवस्था भोगती है। वह पर-द्रव्यकर्म की अपेक्षा से बात है। समझ में आया? यहाँ तो बात ऐसी है। थोड़ा न्याय बदले तो पूरी वस्तु पलट जाती है, वस्तुस्थिति सिद्ध नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो कर्म की अपेक्षा ली है। एक ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि जिस समय कर्ता, उसी समय भोक्ता। वे ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि जिस समय कर्म बँधा, उस समय उसका भोक्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुनकर साथ में थोड़ा विचार भी करना। विचार करना। धीरे-धीरे कहते हैं। यथार्थरूप से तुलना होनी चाहिए न। समझ में आया? आहाहा!

जिस समय अवस्थान्तर कहा न? **जिस परिणाम अवस्था में...** ऐसा कहा न? **जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर उन परिणामों का अवस्थान्तर होता है;...** देखा? वह परिणाम नहीं रहते। उदय आवे, तब भोगने के परिणाम वे नहीं रहते, दूसरे परिणाम होते हैं। आहाहा! हीराभाई! ऐसी बात है। **इसलिए अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है।** देखो! है? जिस अवस्था ने

कर्म किया, उस अवस्था ने भोगा नहीं। उसका उदय आया, तब दूसरी अवस्था ने भोगा। समझ में आया? भाई! यहाँ तो जरा विचार करके अन्दर ऊहापोह करके अन्दर निर्णय करना चाहिए, ऐसा का ऐसा मान लेना, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसे ऊपर-ऊपर से तो अनन्त बार माना है। ग्यारह अंग भी पढ़ गया है। आहाहा! क्या कहा?

अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है।—ऐसा भाव स्याद्वाद साध सकता है। देखा? **ऐसा भाव स्याद्वाद साध सकता है।** कथंचित् वह पर्याय करती है और कथंचित् दूसरी पर्याय भोगती है, कर्म की अपेक्षा से; और विकार तथा अविकार की अपेक्षा से, अपने भाव की अपेक्षा से जिस समय जो भाव करता है, उसी समय उसका भोक्ता है। आहाहा! चन्दुभाई! आहाहा! ऐसा है, भाई! अब ऐसा (समझने के लिये) लोगों को निवृत्ति कहाँ हो? निवृत्ति ले (तो समझ में आये)। प्रवृत्ति के कारण... सेठ! पूरे दिन संसार की प्रवृत्ति, बीड़ी और तम्बाकू, आहाहा! यहाँ तो परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की यह तो वाणी है। सन्त, सर्वज्ञ की वाणी आढ़तिया होकर कहते हैं। आढ़तिया समझ में आता है? आहाहा!

ऐसा भाव स्याद्वाद साध सकता है। जैसा बौद्धमत का जीव कहता है, वह तो महाविपरीत है। आहाहा! जिस पर्याय ने किया और दूसरी पर्याय ने भोगा। यह तो कहता है कि जीव ही दूसरा हो गया। जिस पर्याय ने किया, वह जीव (और) दूसरी पर्याय ने (भोगा उसमें) वह जीव नहीं रहा, ऐसा कहते हैं - ऐसा नहीं है। पर्याय दूसरी हुई है। जीवद्रव्य तो वही है। आहाहा! समझ में आया? जिस पर्याय ने विकार किया, अवस्थान्तर होकर, उस कर्म के उदय काल में तो वह पर्याय रही नहीं, बन्ध काल के समय वह अवस्था थी। नया बन्ध पड़ता है, उस समय वह अवस्था है। अब बन्ध का जब उदय आया, तब तो वह (पर्याय) नहीं है। बन्ध नहीं अर्थात्? उस बन्धरूप न रहा वह तो उदय आया। बन्धरूप तो सत्तारूप वस्तु है। उदय आया वह तो सत्ता में से प्रगट हुआ। आहाहा! सत्ता के एक अंश में से प्रगट हुआ। आहाहा! उस समय जिस अवस्था से बँधा था, वह अवस्था से तो अभी है नहीं, उदय काल में तो दूसरी अवस्था भोगती है, जीवद्रव्य तो वही है। परिणाम दूसरा हुआ, परन्तु जीवद्रव्य दूसरा हो गया, ऐसा

क्षणिकमत कहता है। करने के काल का जीव दूसरा और भोगने के काल का जीव दूसरा, ऐसा कहता है। आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : जीव को क्षणिक मानता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षणिक ही माना है, पर्यायमात्र (ही माना है)। और वापस बौद्ध ऐसा कहते हैं कि एक समय का जीव है, वह दूसरे समय में संस्कार डालकर जाता है। परन्तु संस्कार डालकर जाता है तो संस्कार क्या है? खबर है न, यह तो वे लोग कहते हैं। संस्कार छोड़ जाता है। छोड़ जाता है अर्थात् समझे? डालता है। परन्तु दो भिन्न हैं, उसमें डाला किस प्रकार? आहाहा!

मुमुक्षु : नाश होनेवाली पर्याय संस्कार किस प्रकार डाले?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वे लोग मानते हैं। पहले समय में से दूसरे समय में स्मरण में तो आता है या नहीं? तो वे कहें, कहाँ से आयी? भिन्न चीज़ है न! तो कहते हैं कि पहले के संस्कार डाल गयी। परन्तु संस्कार कहाँ से डाल गयी? वह तो व्यय हो गयी और यह तो उत्पन्न हुई है। समझ में आया?

जैसा बौद्धमत का जीव कहता है, वह तो महाविपरीत है। सो कौन विपरीतपना। 'अत्यन्तं वृत्यंशभेदतः वृत्तिमन्नाशकल्पनात्' द्रव्य का ऐसा ही स्वरूप है, सहारा किसका? अवस्था, उसका अंश अर्थात् एक द्रव्य की अनन्त अवस्था, ऐसा... एक द्रव्य की अनन्त पर्यायें-अवस्थाएँ हैं। तो एक अवस्था जाती है और एक अवस्था उत्पन्न होती है, उसमें द्रव्य में क्या आया? द्रव्य दूसरा हो गया? समझ में आया? एक द्रव्य की अनन्त-अनन्त अवस्थाएँ। **कोई अवस्था विनश जाती है,...** देखा? और **अन्य कोई अवस्था उत्पन्न होती है,...** परन्तु वह तो द्रव्य की पर्याय की बात है। पर्याय एक उत्पन्न होती है और एक नाश होती है तो द्रव्य उत्पन्न हुआ, नाश हुआ - ऐसा कहाँ आया? आहाहा!

ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है; ऐसे अवस्थाभेद का छल पकड़कर... देखा? इस अवस्था भेद का छल पकड़कर। अवस्था भिन्न हो गयी न? भिन्न हो गयी, ऐसा छल पकड़कर द्रव्य अन्य हो गया, ऐसा मानते हैं। जैसे कि यहाँ आत्मा है, देह छूटे, छूटने

के पश्चात् जहाँ जाए वहाँ पर्याय भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न (हो जाते हैं)। यहाँ का मनुष्यपना है, उसमें ऐसा माने कि मैं ऐसा हूँ, वहाँ जाए तो दूसरा भव, भव ही दूसरा हो गया, पर्याय दूसरी हो गयी, संस्कार दूसरे हो गये, आसपास के द्रव्य, क्षेत्र, काल के संयोग दूसरे हो गये। इसलिए ऐसा माने कि मैं ही दूसरा हो गया। समझ में आया? यह तो पर्याय के संयोग में दूसरा हो गया, वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! यहाँ बँगले में, चालीस-चालीस लाख के, करोड़ के बँगले में पड़ा हो।

ब्रह्मदत्त (चक्रवर्ती को) लो। आहाहा! ऐसे हीरा का... क्या कहलाता है? पलंग। हीरा के पलंग में सोता था, ब्रह्मदत्त। और अन्त में मृत्यु काल में स्त्री को याद करता है, मेरी स्त्री... नाम क्या? हें? कुरुमति। कुरुमति। आहाहा! सातवें नरक में पाताल में गया। तैंतीस सागर। अब कहाँ वह क्षेत्र? कहाँ स्त्री? कहाँ संयोग? कहाँ शरीर? सब पलट गया। सब पलट गया अर्थात् द्रव्य दूसरा हो गया? आहाहा! एक समय पहले हीरा के पलंग में और चौदह-चौदह हजार देव (सेवा करे), रक्षक के देव थे। आहाहा! सात रत्न के सात हजार और ऐसे एक स्त्री रत्न के हजार उसके रक्षक थे। सब पड़ा रहा। सातवाँ नरक। आहाहा! सात सौ वर्ष उसकी स्थिति थी। सात सौ वर्ष के श्वास हैं, श्वास, उसके श्वास गिनो... चक्रवर्ती के कुछ सात सौ वर्ष नहीं थे, वह तो बाद में, परन्तु सात सौ वर्ष के श्वास गिनो तो एक-एक श्वास के फल में सातवें नरक में पल्योपम, अनेक पल्योपम उसे दुःख हुआ। क्या कहा, समझ में आया? क्या? धनजीभाई को खबर होगी। यह बात की थी, सब याद नहीं रहता। ग्यारह लाख छप्पन हजार... क्या कहा? सात सौ वर्ष रहे न, सात सौ वर्ष? तो उसके जितने श्वास हैं न, तो एक श्वास के फल में ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम के दुःख हैं। उस समय कहा था, पश्चात् कहीं सब याद रहता है? आहाहा! पूरी बात बदल गयी। स्थिति बदल गयी। भगवान ध्रुव तो अन्दर स्थित है। हैं? बाहर से इतना ही मानना और पूरा द्रव्य अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्थित है, उस पर दृष्टि न करना, वह पर्यायमूढ़ अज्ञानी है। उसे बौद्धमति कहो या पर्यायमूढ़ अज्ञानी कहो। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है; एक द्रव्य की अनन्त अवस्था, ऐसा भेद है

अर्थात् कोई अवस्था विनशती है, अन्य कोई अवस्था उपजती है... नरक की अवस्था उत्पन्न हुई, चक्रवर्ती की अवस्था का नाश हुआ। आहाहा! **एक द्रव्य की अनन्त अवस्था, ऐसा कोई अवस्था विनश जाती है, अन्य कोई अवस्था उत्पन्न होती है, ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है;...** यह तो अवस्था भेद है। द्रव्य के भेद हैं, ऐसा नहीं। परन्तु यह बहुत कठिन काम, बापू! द्रव्य वह क्या चीज़ अन्दर है? आहाहा! जैन सम्प्रदाय में ग्यारह अंग पढ़ा, पंच महाव्रत (पालन किये), हजारों रानियाँ छोड़ी, हजारों! और मुनिपना दीक्षा ली और निरतिचार पंच महाव्रत (पालन किये), हों! अट्ठाईस मूलगुण (पालन किये)। उसके लिये बनाया हुआ भोजन हो तो प्राण जाए तो भी न ले, ऐसी सख्त किया थी; परन्तु द्रव्यस्वरूप क्या है, उस ओर का झुकाव नहीं। आहाहा! द्रव्यार्थिकता विषय द्रव्य क्या है? सीख तो गया, द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। हैं? ग्यारह अंग पढ़ा तो उसमें यह बात नहीं आयी? परन्तु उस चीज़ का अन्दर पता नहीं लिया। आहाहा! है?

ऐसे अवस्थाभेद का छल पकड़कर कोई बौद्धमत का मिथ्यादृष्टि जीव... 'वृत्तिमन्नाशकल्पनात्' वृत्तिमान्—जिसका अवस्थाभेद होता है, ऐसी सत्तारूप शाश्वत् वस्तु का नाशकल्पना=मूल से सत्ता का नाश मानता है;... क्या कहते हैं? अवस्था का नाश होने से सत्ता का नाश हो गया, ऐसा वह मानता है। पर्याय का नाश होने से जो मूल वस्तु है, उसका नाश हो गया, ऐसा मानता है।

मुमुक्षु : द्रव्य ही कहाँ मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता कहाँ है? दृष्टि में मूल ध्रुव भगवान (को नहीं मानता)। आहाहा! ध्रुवतारे के (आधार से) जहाज चलता है। जहाज देखा है समुद्र में? वह समुद्र में चलता है। ध्रुवतारा एक स्थान में रहता है। उसके आधार से किस ओर जाना है (यह खबर पड़ती है)। ध्रुवतारा होता है। इसी प्रकार ध्रुव यह भगवान है, यह अन्दर ध्रुव है। ध्रुव के लक्ष्य से, ध्रुव के आश्रय से अन्दर शुद्ध परिणति होती है। आहाहा! समझ में आया? तो उसमें भी परिणति पलटती है परन्तु ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रहता है। आहाहा!

अर्थात् अक्षर के अनन्तवें भाग निगोद में क्षयोपशम है तो भी द्रव्य तो पूर्ण-

परिपूर्ण जैसा है वैसा ही है और केवलज्ञान होता है, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... तीन काल-तीन लोक को पर्याय जाने तो भी द्रव्य पर्याय से हीन हो गया है, पर्याय इतनी प्रगट हुई तो द्रव्य में कमी हो गयी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह द्रव्य किसे कहना? वह जरा... अक्षर के अनन्तवें भाग निगोद की पर्याय है तो वहाँ अल्प विकास है (इसलिए) द्रव्य विशेष पुष्ट है, ऐसा भी नहीं है और केवलज्ञान पूर्ण प्रगट हुआ तो वहाँ दशा—वस्तु की स्थिति हीन हो गयी, ऐसा नहीं है। वस्तु तो ऐसी की ऐसी त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु में कम-ज्यादा नहीं होता। पर्याय में कम-ज्यादा होने से वस्तु में कम-ज्यादा होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो क्या चीज़ है यह? यह चमत्कार नहीं?

केवल(ज्ञान) पर्याय उत्पन्न होती है महा, महा तो भी कहते हैं कि द्रव्य तो जैसा है वैसा है। पर्याय आयी कहाँ से? इतनी अधिक बाहर आयी तो भी द्रव्य ऐसा का ऐसा? और अक्षर के अनन्तवें भाग (ज्ञान रहा) तो भी द्रव्य ऐसा का ऐसा है? यह क्या है? देवीलालजी! आहाहा! यह चमत्कारिक वस्तु है। चैतन्य चमत्कारी, द्रव्य चमत्कारी, पर्याय चमत्कारी। वस्तु कोई अलौकिक है। कैसे होगी अन्दर से लो? अन्दर में अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप ध्रुव है, उसमें से अनन्त चतुष्टय व्यक्तरूप हुआ। केवली को अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द व्यक्त (हुए) तो वहाँ कहीं कम हुआ है? उसमें से इतनी सब पर्याय आयी तो भी उसमें कम नहीं हुआ? और जिसमें अक्षर के अनन्तवें भाग अल्प पर्याय रह गयी तो भी वहाँ द्रव्य में पुष्टि नहीं हुई? बहुत भरा है और अल्प बाहर आया, बहुत भरा है और बहुत बाहर आ गया, इसलिए कम हो गया। बापू! उस द्रव्य का स्वरूप ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे द्रव्य पर इसने कभी दृष्टि नहीं की। समझ में आया?

इस **मूल से सत्ता का नाश मानता है;...** देखा? वे भाई कहते थे न? बंशीधरजी (कहते थे) सत्ता नाश हो गया। पण्डितजी कहते थे। पर्याय की सत्ता का नाश हुआ, वहाँ सत्ता का नाश मानता है। सत्यानाश नहीं कहते? उसका सत्यानाश हो गया? वे कहते थे। यहाँ आये थे न? यहाँ आठ-दस दिन रह गये थे। वहाँ गये थे न? सम्मेदशिखर।

फिर यहाँ आकर रह गये थे, पन्द्रह दिन या महीना रह गये थे। यह (बौद्धमति जीव) पर्याय का नाश होने पर पूरी सत्ता का नाश मानता है।

जिसका अवस्थाभेद होता है, ऐसी सत्तारूप शाश्वत् वस्तु का नाशकल्पना=मूल से सत्ता का नाश मानता है; इसलिए ऐसा कहना विपरीतपना है। यह मानना विपरीतपना है। पर्याय बदलने पर द्रव्य में कम-ज्यादा हो गया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? और आत्मा की प्रगट पर्याय में भी कम-ज्यादा होता है, वह कहीं कर्म के कारण नहीं। समझ में आया? ज्ञान की हीन दशा हुई तो ज्ञानावरणीय कर्म के उदय का बहुत जोर है, इसलिए हीन हुई, ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय की योग्यता से कमी हुई है और अपनी पर्याय की योग्यता से वृद्धि हुई है। आहाहा! अब एक ओर कर्म के निमित्त से कुछ होता नहीं, ऐसा मानना; और पर्याय में कम-अधिक होवे तो द्रव्य में कुछ कम-अधिक होता नहीं, ऐसा मानना। यह क्या चीज़ है। हैं?

मुमुक्षु : अद्भुत आश्चर्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्भुत आश्चर्यकारी चीज़ ऐसी है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि बौद्धमत का जीव पर्यायमात्र को वस्तु मानता है,... बस! पर्याय के ऊपर दृष्टि है तो पर्यायमात्र को ही मानता है। पर्याय जिसकी है **पर्याय जिसकी है, ऐसी सत्तामात्र वस्तु को नहीं मानता है।** आहाहा! **इस कारण ऐसा मानता है, सो महामिथ्यात्व है।** आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २०८

(शार्दूलविक्रीडित)

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकै:
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परै:।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकै: शुद्धर्जुसूत्रे रतै:
आत्मा व्युज्झित एष हारवदहो नि:सूत्रमुक्तेक्षिभि: ।।१६-२०८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — एकान्तपने से जो माना जाये सो मिथ्यात्व है। 'अहो पृथुकै: एष: आत्मा व्युज्झित:' [अहो] भो जीव! [पृथुकै:] नाना प्रकार अभिप्राय है जिनका, ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं, उनको [एष: आत्मा] विद्यमान शुद्धचैतन्यवस्तु [व्युज्झित:] सधी नहीं। कैसे हैं एकान्तवादी? 'शुद्धर्जुसूत्रे रतै:' [शुद्ध] द्रव्यार्थिकनय से रहित*, [ऋजुसूत्रे] वर्तमान पर्यायमात्र में, वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप एकान्तपने में, [रतै:] मग्न हैं। 'चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य' एक समयमात्र में एक जीव, मूल से विनश जाता है; अन्य जीव, मूल से उत्पन्न होता है-ऐसा मानकर, बौद्धमत के जीवों को जीवस्वरूप की प्राप्ति नहीं होती है। तथा मतान्तर कहते हैं — 'अपरै: तत्रापि कालोपाधिबलात् अधिकां अशुद्धिं मत्त्वां' [अपरै:] कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसे हैं, जो जीव का शुद्धपना नहीं मानते हैं; सर्वथा अशुद्धपना मानते हैं। उन्हें भी वस्तु की प्राप्ति नहीं है, ऐसा कहते हैं — [कालोपाधिबलात्] अनन्त काल हुआ जीवद्रव्य, कर्म के साथ मिला हुआ ही चला आया है; भिन्न तो हुआ नहीं — ऐसा मानकर, [तत्रापि] उस जीव में [अधिकां अशुद्धिं मत्त्वां] जीवद्रव्य अशुद्ध है; शुद्ध है ही नहीं-ऐसी प्रतीति करते हैं जो जीव, उन्हें भी वस्तु की प्राप्ति नहीं है। मतान्तर कहते हैं — 'अन्धकै: अतिव्याप्तिं प्रपद्य' एकान्त मिथ्यादृष्टि जीव, कोई ऐसे हैं जो [अतिव्याप्तिं प्रपद्य] कर्म की उपाधि को नहीं मानते हैं, 'आत्मानं परिशुद्धिं ईप्सुभि:' जीवद्रव्य को सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानते हैं; उन्हें भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं। कैसे हैं एकान्तवादी? 'नि:सूत्रमुक्तेक्षिभि:' [नि:सूत्र] स्याद्वादसूत्र बिना, [मुक्तेक्षिभि:] सकल कर्म के क्षयलक्षण मोक्ष को चाहते हैं; उनके

---

* यहाँ पर 'द्रव्यार्थिकनय से रहित' पाठ के स्थान में हस्तलिखित एवं पहली मुद्रित प्रति में 'पर्यायार्थिकनय से रहित' — ऐसा पाठ है, जो भूल से आ पड़ा मालूम पड़ता है।

प्राप्ति नहीं है। उसका दृष्टान्त — 'हारवत्' हार के समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सूत के बिना, मोती नहीं सधता है–हार नहीं होता है; उसी प्रकार स्याद्वादसूत्र के ज्ञान बिना, एकान्तवादों के द्वारा आत्मा का स्वरूप नहीं सधता है–आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं होती है; इसलिए जो कोई आपको सुख चाहते हैं, वे स्याद्वादसूत्र के द्वारा, जैसा आत्मा का स्वरूप साधा गया है, वैसा मानिएगा।।१६–२०८।।

माघ शुक्ल ७, मंगलवार, दिनांक-१४-०२-१९७८, कलश-२०८, प्रवचन-२३२

२०८ है न? कलश टीका २०८ (कलश)।

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकै:
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परै:।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकै: शुद्धर्जुसूत्रे रतै:
आत्मा व्युज्झित एष हारवदहो नि:सूत्रमुक्तेक्षिभि: ।।१६–२०८।।

बहुत मत प्रयोग करते हैं। **एकान्तपने से जो माना जाये सो मिथ्यात्व है...** यह तो सूत्र कहा। अब एकान्तपने की व्याख्या क्या? '**अहो पृथकै: एष: आत्मा व्युज्झित:**' **भो जीव!** '**पृथुकै:**' अर्थात् **नाना प्रकार...** विपरीत **अभिप्राय है जिनका ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव...** अनेक प्रकार के विपरीत मिथ्यात्व भाव हैं। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव अनेक प्रकार में किस-किस प्रकार से मानता है, वह कहते हैं। '**पृथुकै:**' है न? '**पृथुकै:**'। ऐसा एकान्त माननेवाले को, एकान्त ही मानता है। कोई पर्याय ही मानता है, कोई द्रव्य ही मानता है। कोई त्रिकाली आत्मा अशुद्ध है, ऐसा कोई मानता है, कोई त्रिकाल शुद्ध है परन्तु पर्याय में अशुद्धि नहीं मानता—(ऐसे) अनेक प्रकार के अभिप्राय विपरीत मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

'**एष: आत्मा**' '**एष: आत्मा**' यह आत्मा **शुद्ध चैतन्यवस्तु....** है। '**व्युज्झित:**' **सधी नहीं।** एकान्त अभिप्रायवाले को आत्मा शुद्ध वस्तु चैतन्य है, उसे साध सके नहीं। आहाहा! प्रसिद्ध नहीं कर सके। आहाहा! उसमें पहले एक दृष्टान्त देते हैं। **कैसे हैं एकान्तवादी?** '**शुद्धर्जुसूत्रे रतै:**' क्या कहते हैं? वर्तमान पर्याय को विषय करनेवाला

ऋजुसूत्रनय, बस। उसमें जो रत है, वह वर्तमान पर्याय (जो कि) ऋजुसूत्रनय का विषय है, वही चीज़ है, बस! (ऐसा मानते हैं)। समझ में आया? आगे कहेंगे। अन्दर दूसरा अर्थ करेंगे। यह एक परन्तु दूसरा भी अर्थ है। उसने वस्तु को जो उपाधि लगायी त्रिकाल तो वह अशुद्ध हो जाती है। वर्तमान ऋजुसूत्र है, उसे माने तो शुद्ध है, ऐसा (कहते हैं)। त्रिकाल रहनेवाला है, ऐसा कहना, वह अशुद्ध है। त्रिकाल की उपाधि लागू पड़ गयी। क्या कहा, समझ में आया?

यहाँ अर्थ दूसरा किया है परन्तु अर्थकार ने-मूल समयसार में यह अर्थ है। यहाँ दूसरा अर्थ है। तीन काल मानने जाए तो अशुद्ध ही रहेगा। आत्मा अशुद्ध ही है, कभी शुद्ध हुआ नहीं। पर्याय जितनी अशुद्ध है, वही है परन्तु अर्थ में-संस्कृत टीका में दूसरा लिया है और कलश-टीका में (दूसरा अर्थ लिया है)।

है... एक वर्तमान ऋजुसूत्र बस, वही चीज़ है। उसे त्रिकाल लागू करोगे तो उपाधि हो गयी। समझ में आया? एक वर्तमान है, बस! उसे मानना। उसे त्रिकाल मानना, वह तो उपाधि हो गयी। तीन काल, वह तो उपाधि है—ऐसा अज्ञानी का अन्दर गहरे-गहरे अभिप्राय है। समझ में आया? वर्तमान पर्याय में जिसकी क्रीड़ा है, ज्ञानादि की या रागादि की क्रीड़ा में जो है, उसे आत्मा इतना ही लगता है कि यह आत्मा इतना है। उसे 'त्रिकाली है' ऐसी धारणा में बात आ गयी है, परन्तु त्रिकाली विषय है, उसे दृष्टि में लिया नहीं। समझ में आया? आत्मा नित्य है, ऐसा शास्त्र पढ़ा है, ग्यारह अंग पढ़ा तो उसमें यह सब नहीं आया? परन्तु उस वर्तमान पर्याय में त्रिकाली द्रव्य का जो ज्ञान होना चाहिए, जो सन्मुख होकर प्रतीति (होनी चाहिए), ज्ञान में भास होकर प्रतीति होनी चाहिए, वह चीज़ नहीं हुई तो उसने त्रिकाली आत्मा को माना ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत (गहरा) विषय है। आहाहा!

रात्रि में तो थोड़ा कहा था न वह? '**गुणपर्ययवत् द्रव्यम्**' अकेली पर्याय को माने तो द्रव्य तो '**गुणपर्ययवत् द्रव्यम्**' है, तो उसने भी आत्मा '**व्युज्झितः**' दृष्टि में से छोड़ दिया और वह पर्याय है, वह पर से होती है, ऐसा माने तो भी उसने पर्याय को नहीं माना। पर्याय स्वतन्त्र उस समय में मेरी (हुई है), उस पर्याय-गुणसहित द्रव्य है, तो वह पर्याय उसकी है, पर की नहीं, तो पर से (पर्याय) मानी तो उसने पर्याय नहीं मानी।

समझ में आया? ऐसा कि अपनी पर्याय में विकार होता है, तो वह कर्म से होता है, ऐसा माननेवाले को वर्तमान पर्याय है, स्वतन्त्र उत्पाद है, उस उत्पाद और व्ययसहित, गुणसहित द्रव्य नहीं माना। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! वैसे तो अनन्त बार पढ़ा है, ग्यारह अंग पढ़ा, वहाँ नहीं (आया)? ग्यारह अंग पढ़ा 'सब शास्त्रन के नय धारी हिये, मत मण्डन खण्डन भेद लिये, वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न पर्यो।' आहाहा! उसे प्राप्त करने की पद्धति कोई अलौकिक है। उस पर्याय में बिल्कुल पर्याय जितना माने, उसका अर्थ कि द्रव्य ध्रुव है, उस ओर इसका झुकाव नहीं हुआ। समझ में आया? यह कहा न?

ऋजुसूत्र—सीधे वर्तमान पर्याय को ही माने, वह ऋजु-सीधा, सरल। ऐसा। है? ऋजुसूत्र है न? '**शुद्धर्जुसूत्रे रतैः**' '**शुद्ध**' शुद्ध का अर्थ **द्रव्यार्थिकनय से रहित...** त्रिकाल से रहित वर्तमान पर्याय में रत है, वह ऋजुसूत्रनय में रत है, उसने आत्मा को छोड़ दिया। समझ में आया? आहाहा! ऋजुसूत्रनय तो वर्तमान परिणाम को ही मानता है न? समझ में आया? और एकान्त पर्याय, ऋजुसूत्रनय का विषय सीधा (लेकर) उसे त्रिकाल लागू पाड़ना, वह वर्तमान पर्याय है, ऐसी कोई त्रिकाली चीज़ है, ऐसी उपाधि लगाना वह मिथ्यात्व, अज्ञान है, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया?

'**शुद्धर्जुसूत्रे रतैः**' आहाहा! वह तो वर्तमान पर्याय में (जो कि) ऋजुसूत्रनय का विषय वर्तमान परिणाम है, बस! उसमें ही रत है। आहाहा! परन्तु उस पर्याय में स्वज्ञेय जानने की ताकत है, ऐसी पर्याय में वर्तमान पर्याय जितनी ही मानी, परन्तु उस पर्याय में त्रिकाली को जानने की ताकत है, उससे सहित परिणाम को नहीं माना। समझ में आया? आचार्य को कहना है, ऋजुसूत्र अर्थात् वर्तमान सीधा दिखाई दे इतना, बस! आड़ा-टेढ़ा वह त्रिकाल और शुद्ध ध्रुव (द्रव्य) है और वह सब उपाधि क्या? ऐसा अज्ञानी की अन्तर मान्यता में ऐसा शल्य पड़ा है। समझ में आया? ऋजुसूत्र, है न? '**रतैः**' **वर्तमान पर्यायमात्र में वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप एकान्तपने में मग्न हैं।** यह ऋजुसूत्र। और जिसकी पर्याय है, वह चीज़ क्या है, उस पर इसकी दृष्टि नहीं है। समझ में आया? यहाँ ऋजुसूत्रनय वर्तमान पर्याय को ही जानता है, मानता है, बस।

मुमुक्षु : ऋजु का अर्थ द्रव्यार्थिकनय से रहित ऐसा शुद्ध का अर्थ किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न ? यह तो फिर अर्थ किया कि ऋजुसूत्र द्रव्यार्थिकनय से रहित। अकेला द्रव्यसहित ऋजुसूत्र माने तब तो यथार्थ है। त्रिकाली द्रव्यसहित पर्याय को माने तो यथार्थ है, परन्तु त्रिकाली द्रव्य को न मानकर, वर्तमान पर्याय को ही माना तो द्रव्यार्थिकनय से रहित ऋजुसूत्र, वह पर्याय (मानी)। समझ में आया ? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह अलौकिक बात है। आहाहा! इसने कभी अन्तर में पता लिया ही नहीं। इसने वास्तविक पर्याय को भी नहीं माना। क्योंकि वास्तविक पर्याय को माने तो पर्याय का विषय द्रव्य है, वह तो इसके स्वभाव में आता ही है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय-द्रव्य का प्रकाश अन्दर होता ही है, परन्तु पर्याय को ही यथार्थ रीति से नहीं मानी। वर्तमान अंश है, बस इतना। (उस पर्याय) अंश में अन्दर जानने की ताकत है, वह सब बात छोड़ दी। समझ में आया ? इसलिए उस ऋजुसूत्र में-वर्तमान (अंश) जितना (मानता है)। वर्तमान है न ? देखो न, ऋजुसूत्र की व्याख्या की है। **वर्तमान पर्यायमात्र में वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप....** यही वस्तु है, बस! आहाहा! अन्दर गुण त्रिकाल है और द्रव्य त्रिकाल है। गुण भी त्रिकाल है न ? गुण और द्रव्य त्रिकाल है और यह तो इस समय की पर्यायमात्र है, उसे माना परन्तु त्रिकाली गुण ध्रुव है, (उसे नहीं माना)।

चिद्विलास में एक प्रश्न लिया है। चन्दुभाई! गुण परिणमते हैं या द्रव्य परिणमता है ? ऐसा प्रश्न लिया है। चिद्विलास में (लिया है), भाई! बात हो गयी थी। गुण नहीं, द्रव्य परिणमता है। गुण तो अनन्त हैं, तो एक-एक गुण परिणमे और द्रव्य न परिणमे तो ऐसी चीज़ नहीं है। द्रव्य परिणमते हुए गुण परिणमते हैं, ऐसा (लिया है)।

यहाँ क्या कहते हैं ? कि पर्याय में द्रव्य का ज्ञान होता है तो द्रव्य परिणमता है तो ध्रुव का भी ज्ञान हुआ और वर्तमान पर्याय का भी ज्ञान हुआ। तो, वह तो निर्विकल्प ज्ञान हुआ। आहाहा! राग के अवलम्बन के अतिरिक्त वह पर्याय और ध्रुव, कायम रहनेवाले गुण। वे गुण और पर्याय, परन्तु यह परिणमता कौन है ? गुण नहीं। समझ में आया ? द्रव्य परिणमते हुए गुण परिणमते हैं। आया है न चिद्विलास में। बताया था, चिद्विलास में है, भाई! दीपचन्दजी कृत है, उसमें है, यहाँ चर्चा हो गयी है।

जिसने वर्तमान को माना तो यह परिणमन किसका है ? द्रव्य परिणमे तो परिणमता

है, उस द्रव्य को उसने माना नहीं। आहाहा! डाह्याभाई! जिसके ऊपर पर्याय है, किसके ऊपर है, उसे माना नहीं। समझ में आया? यह पर्याय सत्ता, द्रव्यसत्ता के ऊपर पर्याय है न? तो वह पर्याय किसकी है और किसका परिणमन होकर यह परिणमन हुआ है? उस द्रव्य को उसने माना नहीं। आहाहा! पर्याय ऋजुसूत्र, बस! वर्तमान। पर्याय के **एकान्तपने में मग्न हैं।** बस! आहाहा! वह तो वर्तमान पर्याय में (मग्न है), चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पर्याय है, बस! उसमें मग्न है। आहाहा! परन्तु वह पर्याय जिसका परिणमन है, द्रव्य का ही परिणमन है, वह द्रव्य की पर्याय है। गुणपर्ययवत् द्रव्यम्, वह द्रव्य की पर्याय है। उस द्रव्य पर दृष्टि नहीं की। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : द्रव्य का परिणमन है परन्तु द्रव्य तो परिणमता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य परिणमता है, यह व्यवहारनय से परिणमता है, ऐसा कहने में आता है। द्रव्यार्थिकनय से तो द्रव्य है, परन्तु परिणमता है, वह द्रव्य परिणमता है—ऐसा कहा जाता है। द्रव्य तो द्रव्य है, ध्रुवरूप है परन्तु पर्याय है, वह द्रव्य की है; इसलिए द्रव्य परिणमता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! किस अपेक्षा से, जो बात चलती हो, उस अपेक्षा से यहाँ तो बात चलती है। हैं? आहाहा! ऐसे तो गुण भी परिणमते नहीं, वे तो ध्रुव हैं। और ऐसा कहते हैं कि, द्रव्यगच्छई। द्रव्य किसे कहते हैं? – कि जो द्रवे.. द्रवे.. द्रवे.. द्रवे.. जैसे पानी किसे कहते हैं? – कि जिसमें तरंग उठे, द्रवे। ऐसे द्रव्य किसे कहते हैं? – कि जिसमें से पर्याय द्रवे, उठे। द्रव्य सिद्ध करना हो तो किस प्रकार सिद्ध करे? समझ में आया? पर्याय स्वयं द्रव्य में एकमेक नहीं है। यह निश्चय से तो द्रव्य से हुई नहीं। आहाहा! ऐसी बात! समझ में आया?

(समयसार) ३२० गाथा में लिया है न? जयसेनाचार्य की टीका, नहीं? कि ध्यान जो है, वह द्रव्य से यदि अभिन्न होवे तो ध्यान की पर्याय का नाश होता है तो वस्तु का नाश हो जाएगा। क्या कहा, समझ में आया? ३२०, जयसेनाचार्यदेव की टीका, समयसार। राग तो नहीं, यह तो ध्यान जो मोक्ष का मार्ग ध्यान,... आहाहा! वह ध्यान की पर्याय भी द्रव्य में अभेद नहीं है। भाई! समझ में आया? यदि अभेद होवे तो ध्यान की पर्याय का तो नाश होता है। पर्याय का नाश होता है और अभेद होवे तो द्रव्य का भी नाश हो जाए। इसीलिए पर्याय भी द्रव्य से कथंचित् भिन्न है, वहाँ तो ऐसा लिया है।

वहाँ ऐसा लिया है, कथंचित् भिन्न लिया है, बाकी है तो सर्वथा भिन्न, परन्तु जरा शिष्य को बात कठिन पड़े।

मुमुक्षु : सर्वथा भिन्न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका अस्तित्व भिन्न है। अस्तित्व भिन्न है, क्षेत्र भिन्न है, काल भिन्न है, भाव भिन्न है।

मुमुक्षु : एक अपेक्षा से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, एक अपेक्षा नहीं, सर्वथा ऐसा ही है। कथंचित् तो क्यों कहा कि पर्याय इसकी है, इतना बताने के लिये कथंचित् भिन्न है, ऐसा कहा। बाकी है तो निश्चय से सर्वथा भिन्न। नहीं तो दो धर्म सिद्ध नहीं होंगे। सामान्य और विशेष दोनों सर्वथा भिन्न हैं। विशेष, विशेष से है; सामान्य, सामान्य से है। ऐसी बात एक-दूसरे की अपेक्षा रखोगे तो सिद्ध नहीं होगी।

मुमुक्षु : ऐसा सिद्ध करना हो तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सिद्ध करना है न...

मुमुक्षु : एक वस्तु है...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक वस्तु परन्तु कब? किस प्रकार? कि वह तो पर से भिन्न करने के लिये एक वस्तु है, ऐसा कहना है। परन्तु उसके दो भाग करना हो तो दोनों भिन्न, स्वतन्त्र है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वरूप भिन्नता से काम चल जाता है तो प्रदेश भिन्नता क्यों कहें?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश भिन्न है, यह जरा सूक्ष्म पड़ेगा। पर्याय का अंश जो है, वह जितने क्षेत्र में से उत्पन्न हुआ, तो उसका कोई क्षेत्र है या नहीं? या पर्याय क्षेत्र के बिना (हुई है?) द्रव्य का क्षेत्र ध्रुव है और पर्याय का क्षेत्र इतना भिन्न अध्रुव है। यह तो कहा न, संवर का अधिकार है, वहाँ तो विकार लिया है, परन्तु ८९ गाथा में कहा न? चिद्विलास ८९ पृष्ठ। पर्याय का क्षेत्र पर्याय से है। द्रव्य का क्षेत्र उस पर्याय से भिन्न है। अरे... अरे! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ऐसा भी आता है न कि पर्याय का क्षेत्र है वह द्रव्य-गुण का है, वह पर्याय का है, ऐसा भी शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से? - वह तो पर से भिन्न करने के लिये। कहा न पहले? पर से भिन्न करने के लिये, परन्तु इन दोनों को भिन्न करने के लिये वह नहीं है। ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो न्याय के काँटे में एक भी न्याय बदले तो पूरा तत्त्व बदल जाता है। पृथक् लक्षण है, ऐसा तो कहा न? जिनके प्रदेश भिन्न हैं, उन्हें पृथक् लक्षण से परद्रव्य कहा, परन्तु अपने गुण और पर्याय या द्रव्य और पर्याय दोनों में अतद्भावरूप अन्यत्व है। यह कहा न? प्रवचनसार मूल श्लोक में है, टीका भी है। द्रव्य, वह गुण नहीं। यह तो बाद में, और द्रव्य-गुण का बारीक-सूक्ष्म पड़ जाएगा। परन्तु गुण, वह पर्याय नहीं और पर्याय, वह द्रव्य नहीं। वहाँ तो गुण, वह द्रव्य नहीं और द्रव्य, वह गुण नहीं, ऐसा पाठ संस्कृत में लिया है। क्योंकि गुण की संज्ञा गुण है, द्रव्य की संज्ञा द्रव्य है। गुण अनन्त हैं, द्रव्य एक है। संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन - चार से गुण और द्रव्य भिन्न है।

मुमुक्षु : प्रदेश से अभेद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश से अभेद है, यह कहा न?

मुमुक्षु : सत्ता से भी अभेद है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों की सत्ता एक है। गुण और द्रव्य की सत्ता तो एक ही है परन्तु लक्षण, संख्या, प्रयोजन, नाम / संज्ञा (अर्थात्) नाम से तो भिन्न है। यह तो वीतराग का स्याद्वाद मार्ग है, बापू! बहुत अलौकिक है, तो फिर पर्याय का नाम—संज्ञा, लक्षण, संख्या और प्रयोजन भिन्न है। द्रव्य और गुण की सत्ता के प्रदेश एक हैं। द्रव्य और गुण की सत्ता के प्रदेश एक हैं तथापि संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन से भिन्न है। पर्याय का क्षेत्र और गुण का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! अरे! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! मूल अन्दर तत्त्व की गहराई को पहुँचे बिना यह सम्यग्ज्ञान इसे नहीं होगा और सम्यग्ज्ञान के बिना अन्दर में दृष्टि निर्मल नहीं होगी। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य और पर्याय की लक्षण भिन्नता और प्रयोजन भिन्नता क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का प्रयोजन गुणाश्रय है। गुणाश्रय द्रव्य है, ऐसा कहा न? द्रव्याश्रयागुणा। परन्तु द्रव्य का आश्रय गुण, ऐसा नहीं है। और पर्याय में ऐसा नहीं है, अपेक्षा से पर्याय द्रव्याश्रित है, उसकी अपेक्षा से पर्याय, पर्याय के आश्रय से है। षट्कारक लिये। यह तो कहा न?

प्रत्येक द्रव्य की एक समय की पर्याय में षट्कारक का स्वयंसिद्ध परिणमन स्वयं से होता है। बात तो हुई थी, नहीं? वहाँ, वर्णीजी के साथ। इक्कीस वर्ष पहले बड़ी चर्चा (हुई थी)। सब पण्डित बैठे थे। पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा बतायी थी। देखो! जीव की विकृत अवस्था भी पर के कारक की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से विकृत अवस्था पर्याय में षट्कारक से स्वयं से होती है, जिसका द्रव्य-गुण कारण नहीं, क्योंकि द्रव्य-गुण तो शुद्ध है, शुद्ध (होवे वह) अशुद्ध में कारण कैसे होगा? और पर्याय है, उसमें परद्रव्य कारक नहीं, (क्योंकि) परद्रव्य भिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। जब एक समय की विकृत अवस्था भी द्रव्य-गुण की अपेक्षारहित होती है... यह तो १०१ गाथा में कहा न? उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! १०१ (गाथा), प्रवचनसार। तीन अंश सत् है न? और सत् अहेतु है, उसे सिद्ध करने के लिये दूसरे हेतु की आवश्यकता नहीं है। अहेतु है, ऐसी बात है। जब विकृत अवस्था को भी द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, निमित्त की अपेक्षा नहीं; षट्कारक से है, तो निर्मल पर्याय की बात क्या करनी? आहाहा! निर्मल पर्याय भी एक समय में षट्कारक के परिणमन से सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई है। आहाहा!

'**भूदत्थमस्सिदो**' कहने में आया, भूतार्थ का आश्रय। परन्तु आश्रय का अर्थ (यह है कि) पर्याय उस ओर झुकी है। दूसरे पदार्थ में तो वह चीज़ है नहीं। यहाँ तो ज्ञानप्रधान कथन है न...! तो पर्याय द्रव्यसन्मुख झुकी है, वह ताकत तो पर्याय की है, कहीं द्रव्य की ताकत से अन्दर झुकी है, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म है, बापू! क्या हो? यह निर्मल पर्याय भी अपने षट्कारक से (हुई है), वह भी उस समय जिस समय होनेवाली है, उस समय (हुई है), आगे-पीछे नहीं, आगे-पीछे नहीं। जिस समय की जो पर्याय (होने की हो), उस काल में वहाँ षट्कारक से परिणमन होकर होती है। आहाहा! कर्ता द्रव्य है, ऐसा भी उसमें नहीं है। वह तो पर्याय कर्ता, पर्याय कार्य, पर्याय करण-साधन,

पर्याय पर्याय को रखती है, पर्याय से पर्याय (होती है), पर्याय के आधार से पर्याय है। ऐसी वस्तु की स्थिति है, भाई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि इतनी पर्याय को ही द्रव्य मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? ऋजुसूत्र कहा न? पर्यायमात्र को अंगीकार करनेरूप। **पर्यायमात्र में वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप एकान्तपने में मग्न हैं।** पाठ तो इतना है - '**शुद्धर्जुसूत्रे रतैः**' वर्तमान परिणाम में रत, बस! दूसरा आगे-पीछे देखने जाऊँगा तो उपाधि लगेगी। तीनों काल लागू पड़ेंगे तो उपाधि लगेगी। इसलिए अपने तो अकेले वर्तमान परिणाम। वह मिथ्यादृष्टि का एकान्त है। भाई!

'**चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य**' बस! इस परिणाममात्र में अपना स्वरूप जाननेवाला (ऐसा मानता है कि) **एक समयमात्र में एक जीव मूल से विनश जाता है,...** यह पर्याय, वही जीव है, वह नाश होता है। **अन्य जीव मूल से उत्पन्न होता है...** मूल से उत्पन्न होता है! आहाहा! **ऐसा मानकर बौद्धमत के जीवों को जीवस्वरूप की प्राप्ति नहीं है।** लो! आहाहा! यह तो बौद्ध का दृष्टान्त दिया है, परन्तु जिसकी दृष्टि पर्यायमात्र की है, वे सब बौद्ध ही हैं। आहाहा! पर्याय के साथ रहा हुआ पूरा द्रव्य, भगवान पूर्णानन्द अनन्त-अनन्त रत्नाकर का समुद्र। उसे चैतन्य रत्नाकर कहा न? मोक्षमार्ग की पर्याय को जब रत्नत्रय कहा तो वह तो चैतन्य रत्नाकर है। वस्तु चैतन्य रत्नाकर है। रत्न का आकर - समुद्र है वह तो। ओहोहो! यह दृष्टि अज्ञानी ने छोड़ दी और वर्तमान को माना।

अब दूसरी बात, दूसरा मतान्तर (कहते हैं) '**अपरैः तत्रापि कालोपाधिबलात् अधिकां अशुद्धिं मत्वा**' इन्होंने यह अर्थ किया है, संस्कृत में दूसरा अर्थ है। **कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसे हैं जो जीव का शुद्धपना नहीं मानते हैं,...** वह तो तीनों काल अशुद्ध है, बस! है? **शुद्धपना नहीं मानते हैं, सर्वथा अशुद्धपना मानते हैं।** '**कालोपाधिबलात्**' उसका अर्थ किया। '**काल उपाधि बलात्**' यह तीन काल की उपाधि के बल से वह अशुद्ध ही है, ऐसा। शुद्ध नहीं। और संस्कृत टीका में भाई जयचन्दजी ने अर्थ किया, उसमें ऐसा कहा कि एक समय में तीन काल लागू पाड़ने जाता है, वह उपाधि है। वर्तमान के अतिरिक्त तीन काल, ऐसा कहो तो भूत और भविष्य (कहने पर) उपाधि आ गयी, ऐसा अज्ञानी मानता है। तीनों काल, वह तो काल

की अपेक्षा से बात है परन्तु वस्तु तो त्रिकाल टिकती चीज़ है, उसमें यह भूत और भविष्य हैं, ऐसे भेद भी उसमें कहाँ है ? वह तो टिकता ध्रुव, ध्रुव टिकता तत्त्व अनादि-अनन्त है।

मुमुक्षु : स्वीकार ही कहाँ आया है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहा न, तीन काल-ऐसा कहना वह कहाँ अन्दर है ? परन्तु समझाने के लिये क्या कहना ? पर्याय एक समयमात्र है और द्रव्य त्रिकाली है, ऐसा कहे न ? द्रव्य है, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्य त्रिकाली है और ऋजुसूत्रनय का विषय वर्तमान एक समय की पर्याय है। समझाना होवे तो किसे समझावे ? अरे! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते है, वर्तमान समय में जो वस्तु है, वह भविष्य में रहेगी, पूर्व में थी, वह कहाँ ? यहाँ तो है ही, बस यह ध्रुव है, ध्रुव है। पश्चात् उसे समझाने के लिये ऐसा कहा जाता है कि यह ध्रुव त्रिकाली रहता है। आहाहा! समझ में आया ? यह ध्रुव है, वह तीनों काल रहता है, इसीलिए इसकी दृष्टि करूँ, ऐसा उसमें है ? पर्याय एक समय रहती है और ध्रुव त्रिकाल रहता है। इसलिए त्रिकाल रहता है, इसलिए मैं उसकी दृष्टि करूँ, ऐसा है ? यह तो वर्तमान पर्याय है, वह त्रिकाल टिकती चीज़ ध्रुव है, उसका आश्रय लेती है, उसका अवलम्बन लेती है। बस! उसे यहाँ तीन काल रहनेवाली चीज़ है, इसलिए ध्रुव है, ऐसे भेद वहाँ नहीं है। आहाहा! ऐसा है, भाई!

'**कालोपाधिबलात्**' कहा न ? '**कालोपाधिबलात्**' का अर्थ इतना किया कि तीनों काल में रहनेवाली यह शुद्धता, वही मैं, ऐसा अर्थ किया। और संस्कृत में ऐसा अर्थ किया कि एक समय की स्थिति को तीन काल लागू पाड़ना, वह उपाधि है। डाह्याभाई! दोनों में न्याय का विवाद नहीं है। '**कालोपाधिबलात् अधिकां अशुद्धिं मत्वा**' देखा ? **कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसे हैं जो जीव का शुद्धपना नहीं मानते हैं, सर्वथा अशुद्धपना मानते हैं। उन्हें भी वस्तु की प्राप्ति नहीं है...** आहाहा! कर्म के निमित्त का झुकाव, उसका अशुद्ध है, उसे नहीं मानता। अशुद्धता न माने तो अशुद्धता के पीछे शुद्धता है, उसे तो मानता ही नहीं। समझ में आया ? पर्याय में अशुद्धता है, ऐसा न माने तो शुद्धता त्रिकाली है, ऐसा तो उसकी मान्यता में कहाँ से आवे ? आहाहा!

अबद्धस्पृष्ट के भावार्थ में पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है कि अबद्धस्पृष्ट है, ऐसा है, परन्तु पर्याय है, ऐसा ज्ञान लक्ष्य में रखकर यह लक्ष्य में लेना। है अर्थ, भावार्थ में है, १४वीं गाथा। अबद्धस्पृष्ट। पाँच बोल हैं न? और १५वीं गाथा में भी पाँच बोल हैं। उसमें ऐसा लिया है कि ज्ञान का अर्थ करके बहुत सरस अर्थ किया है। इन्होंने जो टीका की है, ऐसी टीका तो... जहाँ चाहिए वहाँ, जिस प्रकार से चाहिए उस प्रकार से वस्तु सिद्ध की है। एकदम अबद्धस्पृष्ट को सामान्य कहने में आया तो, उसे पर्याय है, इतना लक्ष्य ज्ञान में होना चाहिए। पश्चात् यह बात। भाई! अर्थ में है, खबर है? है, अब सब निकालने कहाँ जाएँ? सब खबर है। कहाँ है, कैसे है, सब (खबर है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अनन्त काल हुआ जीव द्रव्य कर्म के साथ मिला हुआ ही चला आया है, भिन्न तो हुआ नहीं - ऐसा मानकर उस जीव में... 'अधिकां अशुद्धिं मत्वा' 'अधिकां अशुद्धिं मत्वा'** देखा? **जीव द्रव्य अशुद्ध है, शुद्ध है ही नहीं... 'अधिकां अशुद्धिं'** का अर्थ यह। **'अधिकां'** अर्थात् अशुद्धता को ही माननेवाला, ऐसा। और ३१वीं गाथा में कहा न? भाई, ३१। अधिकं। **'णाणसहावधियं'** वहाँ **'अधिकं'** का अर्थ भिन्न है। जहाँ जिस जगह (जो हो, वह अर्थ होता है)। ३१वीं गाथा में ऐसा लिया, **'जो इंदिय जिणित्ता णाणसहावधियं मुणदि आदं।'** जो इन्द्रिय को जीतकर। जीतकर का अर्थ उस इन्द्रिय को वश करना और ब्रह्मचर्य (पालना) ऐसा नहीं। इन्द्रिय अर्थात् जड़, भाव और इन्द्रिय का विषय - स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव-गुरु-शास्त्र और देव-गुरु की वाणी, वह सब इन्द्रिय है। आहाहा! इन तीनों को जीतकर अर्थात् तीनों की ओर का लक्ष्य छोड़कर **'जो इंदिय जिणित्ता'** का इतना अर्थ हुआ। पश्चात् कहा, **'णाणसहावधियं मुणदि आदं।'** उससे ज्ञानस्वभावस्वरूप को भिन्न जानना। वहाँ **'अधिकं'** का अर्थ भिन्न (होता है)। समझ में आया? दूसरा पद है यह। आहाहा!

मुमुक्षु : **'अधिकं'** अर्थ परिपूर्ण किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कहा है, परिपूर्ण भी कहा है। यहाँ भिन्न जानने का अर्थ कि यह जब अपूर्ण है तो भिन्न है वह परिपूर्ण है ही। परिपूर्ण है, अधिक है, भिन्न है, ऐसा उसका अर्थ होता है। आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहना है, यहाँ '**अधिकं**' अशुद्धता को '**अधिकं**' मानी है भिन्न। वहाँ ज्ञानस्वभाव '**अधिकं**'। पर्याय से और अशुद्धता से भिन्न पूरा तत्त्व है, उसे वहाँ '**णाणसहावधियं मुणदि आदं।**' (कहा)। आहाहा! समझ में आया? किस जगह किस अपेक्षा से बात है (यह समझना चाहिए)। बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। आहा! स्याद्वादमार्ग है, यह फुदड़ीवाद नहीं है, स्याद्वाद का अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार से भी निश्चय होता है और निश्चय से निश्चय होता है; निमित्त से भी उपादान में होता है, उपादान से उपादान में होता है, ऐसा स्याद्वाद नहीं है। हैं? आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो निमित्त कहलाये नहीं। तब तो निमित्त कहा, वह खोटी बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खोटी बात। आहा! यह तो वस्तु का जैसा स्वभाव है, उस प्रकार उसे पर्याय को, द्रव्य को, स्याद्वादरूप से जानना, इसका नाम स्याद्वाद है। समझ में आया?

मतान्तर कहते हैं... दूसरा '**अन्धकैः अतिव्याप्तिं प्रपद्य**' आहाहा! **एकान्त मिथ्यादृष्टि जीव कोई ऐसे हैं जो... 'अतिव्याप्तिं प्रपद्य' कर्म की उपाधि को नहीं मानते हैं,...** अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा मानता है '**आत्मानं परिशुद्धिं ईप्सुभिः**' है? **जीव द्रव्य को सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानते हैं;...** वह भी मिथ्या है। आहाहा! समझ में आया? यह एक मतान्तर लिया है। सर्व काल शुद्ध है, पर्याय भी सर्व काल शुद्ध है, ऐसा नहीं। पर्याय अनादि से संसार में अशुद्ध है। आहाहा! द्रव्य और गुण शुद्ध है, परन्तु पर्याय तो अनादि से अशुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? है?

जीव द्रव्य को सर्व काल... और **सर्वथा...** सर्वथा। कथंचित् अशुद्ध और कथंचित् शुद्ध माने, वह दूसरी बात है। द्रव्य शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है, यह कथंचित् हुआ। परन्तु यह तो सर्वथा शुद्ध है, (ऐसा मानता है)। पर्याय भी शुद्ध ही है, ऐसा मानता है। वह बिल्कुल मिथ्या बात है। आहाहा! यहाँ तो अभी तेरहवें गुणस्थान तक भी असिद्ध भाव कहा है, वहाँ भी इतनी मलिनता है, उतना उदयभाव कहा न? चौदहवें में भी असिद्ध भाव कहा न? सिद्ध भाव नहीं। हैं? आहाहा! चौदहवें गुणस्थान में भी अभी उदयभाव की इतनी मलिनता है। नहीं तो असिद्ध कहा है, चौदहवें में भी असिद्ध है, सिद्ध नहीं। इतनी अन्दर विकृत अवस्था पर्याय में है। आहाहा! चार प्रतिजीवी गुण वहाँ निर्मल नहीं

है। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान, अनन्त चतुष्टय, भाव मोक्ष है, परन्तु अभी द्रव्य मोक्ष हुआ नहीं। पर्याय में अभी इतनी प्रतिजीवी गुण की विकृत अवस्था चौदहवें तक भी है। आहाहा! समझ में आया? यह तो कहे, सर्वथा शुद्ध ही है। आहाहा! समझ में आया? चौदहवें तक भी अशुद्ध है। आहाहा! पर्याय की बात नहीं है। है?

सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानते हैं; उन्हें भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं है। आहाहा! गजब बातें! अनेक नय की अपेक्षा आती हैं, बापू! आहाहा! आत्मा में अशुद्धता तीन काल में नहीं है, वह द्रव्य। परन्तु पर्याय में अशुद्धता चौदहवें गुणस्थान तक है। है या नहीं? असिद्ध भाव कहा न? तो असिद्ध भाव किसलिए कहा? सिद्ध भाव नहीं। निर्मल पर्याय जो चाहिए, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मार्ग गम्भीर है, भाई! अन्दर वास्तविक तत्त्वज्ञान और सम्यग्दर्शन, वह चीज़ कोई अलौकिक है, वह कोई साधारण बात (नहीं है)। आहाहा! सब पहलुओं से मिथ्यात्व का भाव छूटकर (सम्यग्दर्शन होता है)। मिथ्यात्व अनन्त प्रकार का है। ऐसा लिखा है न, उस बन्ध अधिकार में! मैं इसे जिलाता हूँ, एक मिथ्यात्व का एक भाग है, ऐसा लिखा है, भाई! है न? है न खबर? ऐसा कि जिस जीव को जिला सकता हूँ, यह भी एक मिथ्यात्व का भाग है। पूरे मिथ्यात्व में तो बहुत भाग हैं। समझ में आया? समयसार, बन्ध अधिकार में कहते हैं कि मैं इसे जिला सकता हूँ, जीवन दे सकता हूँ, उसे मार सकता हूँ, उसे अनुकूल संयोग दे सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ अर्थात् अनुकूल संयोग। वह भी एक मिथ्यात्व का भाग है। आहाहा! मिथ्यात्व के प्रकार तो अनन्त हैं, उसमें का यह एक भाग है। आहाहा! समझ में आया? है, अन्दर लिखा है। आहाहा!

उन्हें भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं है। कैसे हैं एकान्तवादी? आहाहा! यहाँ तो रात्रि में कहा था न? उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् - प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं समय-समय में है। अब अपना उत्पाद-व्यय समय-समय में स्वयं से होता है, तब तो वह द्रव्य है। अब वह पर्याय दूसरे से होवे तो उसमें पर्याय पर से हुई। उसमें पर्याय मानी नहीं। आहाहा! जैसे यह अशुद्ध पर्याय मानी नहीं, वैसे उसने पर्याय मानी नहीं। पर के कारण मुझे ऐसा हुआ है अथवा दूसरे द्रव्य को पर के कारण ऐसा होता है। तो उसका

गुणपर्ययवत् द्रव्यम् रहा नहीं। तो उसने भी पर्याय नहीं मानी। आहाहा! सूक्ष्म है, भगवानदासजी! वहाँ से वे... क्या कहलाते हैं?

मुमुक्षु : समझना तो पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना पड़ेगा, भाई! वहाँ का वहाँ घुसकर... ऐसे तो हम बहुत बार कहते हैं न? नौकरी करे तो पचपन वर्ष में छोड़ देते हैं।

मुमुक्षु : वह तो सरकारी नौकरी होवे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सुना है, अपने तो कहाँ...? सरकार में भी बीस वर्ष में नौकरी करे और पैंतीस वर्ष हो जाए... और तुम्हारे तो, साठ हो, सत्तर हो तो भी मेल नहीं मजदूरी करने में। सब राग की मजदूरी है न? सेठ! यह पचपन में नौकरी करता है न? सुना है। बीस वर्ष की उम्र में नौकरी में लगे, पैंतीस वर्ष नौकरी करे तो पचपन वर्ष में (छोड़ दे)। इस व्यापारी को कहीं मेल है कि कितने काल तक व्यापार करना और पश्चात् निवृत्ति लेना? आहाहा! वह तो यह निर्णय करने के लिये निवृत्ति की बात है, हों! हैं? आहाहा!

कैसे हैं एकान्तवादी? 'निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः' स्याद्वाद सूत्र बिना... 'मुक्तेक्षिभिः' सकल कर्म के क्षयलक्षण मोक्ष को चाहते हैं; उनके प्राप्ति नहीं है। आहाहा! स्याद्वादमार्ग है, प्रभु! द्रव्य से शुद्ध है, पर्याय से अशुद्ध है। पर्याय एक समय रहती है, वस्तु त्रिकाल रहती है, ऐसा स्याद्वादमार्ग है। एक समय की पर्याय है तो द्रव्य परन्तु एक समय रहती है और द्रव्य त्रिकाल है, तो पर्याय भी त्रिकाल रहती है और अशुद्ध एक समय की पर्याय है तो द्रव्य भी अशुद्ध है, यह रतनचन्दजी कहते हैं, अभी अखबार में आया था। प्रवचनसार में नौवीं गाथा में है न? शुभ से परिणमते शुभ है, अशुभ से परिणमते अशुभ है। आता है न नौवीं गाथा? प्रवचनसार। वहाँ ऐसा कि शुभ से परिणमता है, तब पूरा आत्मा शुभरूप परिणम जाता है। अशुभ से परिणमता है, तब पूरा आत्मा अशुभरूप परिणम जाता है, ऐसा कहते थे। रतनचन्दजी मुख्तार है न? ऐसा नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है। समझ में आया? पर्याय में शुभ होता है, तो पर्याय में तन्मय है। शुभपना पर्याय में तन्मय है। द्रव्य के साथ तन्मय है, ऐसा नहीं है। आहाहा! लोग अभी

बहुत अर्थ बदलते हैं, कुछ के कुछ। मिथ्यात्व के अनेक प्रकार हैं, उनमें बहुत प्रकार में से कुछ न कुछ कोई अटके हैं। आहाहा!

यहाँ एक प्रकार कहा। ऐसा स्याद्वाद... है? **स्याद्वाद सूत्र बिना...** जैसे वह हार होता है न हार? हार में डोरा है न? पूरा डोरा होता है, तब प्रत्येक मोती रहता है न? मोती, मोती के काल में मोती है परन्तु डोरा तो सबमें है न? इसी प्रकार ध्रुव सबमें है, पर्याय एक समय की है, मोती की भाँति। दोनों को यथार्थ मानना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? **'हारवत्' हार के समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सूत के बिना मोती नहीं सधता है...** है? आहाहा! ९९ गाथा में दिया है न? भाई! प्रवचनसार, ९९ गाथा में इस हार का दृष्टान्त दिया है। मोती के स्थान में मोती है। हार में ऐसे डोरा सलंग हैं। दोनों बराबर मानना चाहिए। पर्याय के स्थान में पर्याय के काल में पर्याय है, आगे-पीछे नहीं। वहाँ प्रवचनसार ९९ में पाठ है- आगे-पीछे। जिस समय में पर्याय होनी है, उस समय में होगी। उस हार में जहाँ मोती है, वहाँ ही मोती है। वह मोती आगे-पीछे है, ऐसा नहीं है और जहाँ-जहाँ मोती है, वहाँ-वहाँ मोती है। इसी प्रकार पर्याय भी जहाँ-जहाँ है, वहाँ-वहाँ ही है और सूत्र उसमें सलंग है। इसी प्रकार ध्रुव सलंग है, पर्याय में। आहाहा! समझ में आया?

इसके लिये तो, भाई! थोड़ी निवृत्ति लेकर अमुक दृष्टि करके शास्त्र का स्वाध्याय करना चाहिए। अपनी पकड़ रखकर स्वाध्याय करे तो यह भासित नहीं होता। यह प्रवचनसार में आता है न? ज्ञान अधिकार पूरा होकर ज्ञेय अधिकार लेते हैं, तब कलश में कहते हैं कि स्वरूप के लक्ष्य से आगम का अभ्यास करना चाहिए। आहाहा! यह तो अभ्यास नहीं होता और ऊपर से जरा घण्टे भर निवृत्ति लेकर जो सुना हो, धारण किया हो, उसे मानकर हो गया मानो! अरे! बापू! मार्ग अलग, नाथ! आहाहा! हारवत् कहा न? वहाँ ९९ में भी ऐसा कहा। जहाँ-जहाँ मोती है, वहाँ-वहाँ मोती है, आगे-पीछे नहीं। आगे-पीछे करने जाएगा तो हार टूट जाएगा। इसी प्रकार द्रव्य में पर्याय जिस समय में होनी हो, उसी समय में होगी। आगे-पीछे नहीं। पहले होनेवाली थी, वह बाद में हुई, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य टूट जाएगा, द्रव्य का नाश हो जाएगा, पर्याय आगे-पीछे करने जाएगा तो। आहाहा!

यह क्रमबद्ध...! यहाँ के सामने लोगों को, पण्डितों को पाँच विवाद है। एक क्रमबद्ध का, एक व्यवहार से निश्चय होता है इसका, एक निमित्त से उपादान में होता है, ऐसे पाँच विवाद हैं। आहाहा! पाँचों विवाद एक झटके में उड़ जाते हैं। जिस समय जो पर्याय होनी है, वह मोती के स्थान पर वह है। यह क्रमबद्ध हुआ। क्रमबद्ध हुआ तो उस समय में सामने जो निमित्त है, उसकी भी क्रमबद्ध में उसकी पर्याय वहाँ रही। निमित्त से उसमें कुछ आया, ऐसा नहीं है। व्यवहार के काल में व्यवहार क्रम में आया है परन्तु व्यवहार के काल में व्यवहार से निश्चय है, ऐसा नहीं। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' (बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा ४७)। जिस समय में आश्रय लिया है वह निश्चय हुआ, उस समय व्यवहार बाकी है, वह व्यवहार हुआ। उसमें व्यवहार से निश्चय होता है, यह बात रही नहीं। निमित्त से उपादान में होता है, यह बात रही नहीं और आगे-पीछे पर्याय होती है, यह भी रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ९९ गाथा में बहुत विस्तार है।

'हारवत्' हार के समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सूत के बिना मोती नहीं सधता है... देखो! है न? **हार नहीं होता है, उसी प्रकार स्याद्वादसूत्र के ज्ञान बिना...** आहाहा! ध्रुव और पर्याय की अपेक्षा के ज्ञान बिना **एकान्तवादों के द्वारा आत्मा का स्वरूप नहीं सधता है...** विकृत पर्याय पर से होती है, ऐसा कहने में वस्तु सिद्ध नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड तो द्रव्य है। अन्दर द्रव्य में अशुद्धता नहीं आ जाती, परन्तु अशुद्ध बिल्कुल न माने, उसे मोक्षमार्गप्रकाशक में दो जगह कहा है कि शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य है - ऐसा कहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक। क्योंकि अशुद्ध पर्याय जब अनादि-सान्त थी, उस पर्याय को-अंश को न माने तो पूरा द्रव्य जो है, वह तो पूरा होता नहीं। पर्याय को निकाल डाली तो सत् का अंश रहा नहीं और सत् तो त्रिकाली पर्याय-गुण का पिण्ड, वह द्रव्य है। समझ में आया? डाह्याभाई! न्याय से बात है। यह भी भगवान का मार्ग है, बापू! यह कहीं हठ करने का मार्ग नहीं है। क्या कहा?

स्याद्वादसूत्र के ज्ञान बिना एकान्तवादों के द्वारा आत्मा का स्वरूप नहीं सधता है - आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं होती है;... आहाहा! पर्याय भी है, अशुद्ध भी है। पर्याय

से भी एकान्त शुद्ध ही मान ले तो अशुद्धता मिटाने का प्रयत्न व्यर्थ जाता है। समझ में आया? वेदान्त कहता है न कि सर्वथा शुद्ध है। तो कहते हैं, सर्वथा शुद्ध है तो उसे उपदेश क्यों दिया? एक व्यापक है, ऐसा निर्णय करो। तो अशुद्धता, विपरीतता उसके पास है। तुमने उपदेश दिया एक व्यापक है। अशुद्धता टाली, ऐसा तुम्हारी दृष्टि से हुआ। वहाँ भी पर्याय सिद्ध हो गयी। समझ में आया? वहाँ द्वैत सिद्ध हो गया, द्रव्य और पर्याय द्वैत सिद्ध हो गया। आहाहा!

इसलिए जो कोई आपको सुख चाहते हैं,... आहाहा! देखो! जिसे आनन्द की अभिलाषा है... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे अभिलाषा है... आहाहा! **वे स्याद्वाद सूत्र के द्वारा जैसा आत्मा का स्वरूप साधा गया है, वैसा मानिएगा।** आहाहा! त्रिकाली वस्तु भी है, वर्तमान पर्याय है, त्रिकाल शुद्ध है, वर्तमान अशुद्ध है, पर्याय जितना आत्मा नहीं और त्रिकाली द्रव्य में पर्याय नहीं। पर्याय, पर्याय के काल में है, वस्तु त्रिकाल में है ऐसी जैसी वस्तु की स्थिति है, वैसी सुख के अभिलाषी (जीव) को, सच्चे सुख के अभिलाषी को ऐसा है - ऐसा स्याद्वाद मानना पड़ेगा, तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाएगी और जो दृष्टि जाएगी, वह दृष्टि पर्याय है। समझ में आया? पर्याय की भी प्रतीति हो गयी। तो जैसा है, वैसा मानने से अन्तर सम्यग्दर्शन होगा और सुख की प्राप्ति होगी। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २०९

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सञ्चिन्त्यताम्।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः।।१७-२०९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'निपुणैः वस्तु एव सञ्चिन्त्यतां' [निपुणैः] शुद्धस्वरूप अनुभव में प्रवीण हैं—ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव, उनको [वस्तु एव] समस्त विकल्प से रहित, निर्विकल्प सत्तामात्र चैतन्यस्वरूप, [सञ्चिन्त्यतां] स्वसंवेदनप्रत्यक्ष से अनुभव करनेयोग्य है। 'कर्तुः च वेदयितुः युक्तिवशतः भेदः अस्तु वा अभेदः अस्तु' [कर्तुः] कर्ता में [च] और [वेदयितुः] भोक्ता में [युक्तिवशतः] द्रव्यार्थिकनय-पर्यायार्थिकनय का भेद करनेपर, [भेदः अस्तु] अन्य पर्याय करती है; अन्य पर्याय भोगती है, पर्यायार्थिकनय से ऐसा भेद है तो होओ—ऐसा साधनेपर, साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं है; [वा] अथवा, द्रव्यार्थिकनय से [अभेदः] जो जीवद्रव्य, ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता है, वही जीवद्रव्य, भोक्ता है—ऐसा [अस्तु] भी है तो ऐसा भी होओ; इसमें भी साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं है। 'वा कर्ता च वेदयिता वा मा भवतु' [वा] कर्तृत्वनय से [कर्ता] जीव, अपने भावों का कर्ता है [च] तथा भोक्तृत्वनय से [वेदयिता] जिसरूप परिणमता है, उस परिणाम का भोक्ता है—ऐसा है तो ऐसा ही होओ; ऐसा विचार करनेपर शुद्धस्वरूप का अनुभव तो नहीं है; कारण कि ऐसा विचारना, अशुद्धरूप विकल्प है। [वा] अथवा अकर्तृत्वनय से जीव, अकर्ता है [च] तथा अभोक्तृत्वनय से जीव, [मा] भोक्ता नहीं है। [भवतु] कर्ता-भोक्ता नहीं है तो मत ही होओ—ऐसा विचार करनेपर भी, शुद्धस्वरूप का अनुभव नहीं है; कारण कि 'प्रोता इह आत्मनि क्वचित् भर्तुं न शक्यः' [प्रोता] कोई नयविकल्प, उसका विवरण—अन्य करता है; अन्य भोगता है-ऐसा विकल्प अथवा जीव, कर्ता है—भोक्ता है—ऐसा विकल्प अथवा जीव, कर्ता नहीं है—भोक्ता नहीं है—ऐसा विकल्प, इत्यादि अनन्त विकल्प हैं तो भी उनमें से कोई विकल्प, [इह आत्मनि] शुद्धवस्तुमात्र है जीवद्रव्य, उसमें [क्वचित्] किसी भी काल में, [भर्तुं न शक्यः]

शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप स्थापने को समर्थ नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई अज्ञानी, ऐसा जानेगा कि इस स्थल में ग्रन्थकर्ता आचार्य ने, कर्तापन—अकर्तापन; भोक्तापन—अभोक्तापन, बहुत प्रकार से कहा है, सो इसमें क्या अनुभव की प्राप्ति बहुत है? समाधान इस प्रकार है कि समस्त नयविकल्पों के द्वारा, शुद्धस्वरूप का अनुभव सर्वथा नहीं है। उसको (स्वरूप को) मात्र जनाने के लिए ही शास्त्र में बहुत नय-युक्ति से दिखलाया है। तिस कारण 'नः इयं एका अपि चिच्चिन्तामणिमालिका अभितः चकास्तु एव' [नः] हमें [इयं] स्वसंवेदनप्रत्यक्ष, [एका अपि] समस्त विकल्पों से रहित, [चित्] शुद्धचेतनारूप [चिन्तामणि] अनन्त शक्तिगर्भित [मालिका] चेतनामात्र वस्तु की [अभितः चकास्तु एव] सर्वथा प्रकार प्राप्ति होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्विकल्पमात्र का अनुभव, उपादेय है; अन्य विकल्प समस्त, हेय हैं। दृष्टान्त ऐसा — 'सूत्रे प्रोता इव' जिस प्रकार कोई पुरुष, मोती की माला को पोना जानता है, माला गूँथता हुआ अनेक विकल्प करता है, सो वे समस्त विकल्प झूठे हैं; विकल्पों में शोभा करने की शक्ति नहीं है। शोभा तो मोती मात्र वस्तु है, उसमें है। इसलिए पहिननेवाला पुरुष, मोती को माला जानकर, पहिनता है; गूँथने के बहुत विकल्प जानकर नहीं पहिनता है; देखनेवाला भी मोती की माला जानकर, शोभा देखता है; गूँथने के विकल्पों को नहीं देखता है; उसी प्रकार शुद्धचेतनामात्र सत्ता, अनुभव करनेयोग्य है; उसमें घटते हैं जो अनेक विकल्प, उन सबकी सत्ता, अनुभव करनेयोग्य नहीं है।।१७-२०९।।

माघ शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक-१६-०२-१९७८, कलश-२०९, प्रवचन-२३३

(कलशटीका) २०९ कलश है, या नहीं? २०८ हो गया न?

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सञ्चित्यताम्।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः।।१७-२०९।।

आहाहा! क्या कहते हैं? कि सम्यग्दृष्टि अथवा धर्मदृष्टिवन्त प्राणी को क्या करना? और धर्मी को क्या होता है? शुरुआत में, हों! '**निपुणैः वस्तु एव संचिन्त्यतां**'

'निपुणैः' शुद्धस्वरूप अनुभव में प्रवीण हैं ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव,... उन्हें यहाँ निपुण कहा गया है। शुद्ध चैतन्य वस्तु भगवान परिपूर्ण परमात्मस्वरूप। यहाँ वस्तु कही है न? वस्तु कहेंगे। क्योंकि उसमें बस्ती, अनन्त गुण बसे—रहे हैं। परिपूर्ण। वस्तु, बस्ती-वस्तु। वस्तु में बस्ती—अनन्त गुण बसे हैं, ऐसी वस्तु, उसके लिये कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूप अनुभव में निपुण है। आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप भगवान सूक्ष्म स्वभाव परिपूर्ण प्रभु के सन्मुख होकर अनुभव में प्रवीण-निपुण है जो। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव, उनको समस्त विकल्प से रहित निर्विकल्प सत्तामात्र चैतन्यस्वरूप... वस्तु की व्याख्या की। राग के सर्व विकल्प से रहित निर्विकल्प चीज़मात्र वस्तु, जिसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण बसे हुए हैं, रहे हुए हैं, उसकी बस्ती है। आहाहा! ऐसी वस्तु '**संचिन्त्यताम्**' आहाहा! है? **निर्विकल्प सत्तामात्र चैतन्यस्वरूप...** '**संचिन्त्यताम्**' आहाहा! '**संचिन्त्यताम्**' सम्यक् प्रकार से प्रत्यक्ष आनन्द का अनुभव करना, वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया? लो, ऐसा है। चेतनस्वरूप वस्तु '**संचिन्त्यताम्**' वस्तु तो पूर्ण स्वरूप है, ऐसा '**संचिन्त्यताम्**' सम्यक् प्रकार से संचेतन—वेदन करो। आहाहा! जिस वेदन में राग और निमित्त की भी अपेक्षा नहीं, ऐसी चीज़ जो भगवान आत्मा निर्विकल्प चैतन्य प्रभु का वेदन करो। '**संचिन्त्यताम्**' आहाहा! यह मोक्षमार्ग एक है। समझ में आया?

अनुभव करनेयोग्य है। स्वसंवेदनप्रत्यक्ष से अनुभव करनेयोग्य है। कौन? वस्तु। कौन? वस्तु। कौन? चैतन्यस्वरूप वस्तु। आहाहा! वह '**संचिन्त्यताम्**'। उसका प्रत्यक्ष अनुभव करनेयोग्य वह वस्तु है। आहाहा! लाख बात और अनन्त बात चाहे जिस प्रकार आवे, परन्तु अन्त में उसका योगफल तो यह है। योगफल कहते हैं न? वस्तु भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त एक-एक गुण परिपूर्ण, ऐसे अनन्त गुण से भरपूर प्रभु, अभेद, निर्विकल्प, उसके सन्मुख होकर प्रत्यक्ष वेदन करो। यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?...

'**कर्तृः च वेदयितुः युक्तिवशतः भेदः अस्तु अथवा अभेदः अस्तु**' आहाहा! क्या

कहते हैं ? पर्यायनय से जो राग का कर्ता है, वह पर्याय भोक्ता नहीं। जो पर्याय करती है, वह पर्याय भोगती नहीं, अन्य पर्याय भोगती है। और द्रव्यनय से जो कर्ता है, वह भोक्ता है। हो, जानपने के लिये हो, यह बात। समझ में आया ? आहाहा! क्या कहा ? **'कर्तृः च वेदयितुः युक्तिवशतः'** न्याय के वश होकर। पर्यायनय से जो पर्याय करती है, वह पर्याय वेदती नहीं। और द्रव्यार्थिकनय से जो द्रव्य कर्ता है, वही भोक्ता है। ऐसी युक्तिवश से ऐसा हो। आहाहा!

'युक्तिवशतः भेदः अस्तु अथवा अभेदः अस्तु' आहाहा! यह द्रव्य है, वह कर्ता है, वही भोक्ता है, ऐसा अभेद हो, परन्तु ये सब तो विकल्प हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आनन्द ज्ञानधाम, आनन्ददल प्रभु में वृत्ति उठती है। वृत्ति उठती है, उसमें विकल्प का उत्थान होता है। आहाहा! कहते हैं कि, है न ? **द्रव्यार्थिकनय पर्यायार्थिकनय का भेद करने पर अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है, पर्यायार्थिकनय से ऐसा भेद है तो होओ; ऐसा साधने पर साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं है;...** आहाहा! साध्य जो ध्येय द्रव्य है, उसकी सिद्धि तो इस कारण से होती नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा ध्येय, सम्यग्दर्शन में ध्येय तो प्रभु परिपूर्ण परमात्मा स्वयं ध्येय है। उस ध्येय में यह एक विकल्प है, उससे कोई साध्य सिद्धि नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? व्रत, तप और भक्ति, वह तो मुक्ति का कारण नहीं, परन्तु यह तो वस्तु की स्थिति जानने में जो विकल्प उठते हैं, वह भी मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? मार्ग भाई! ऐसा है। आहा! यहाँ तो कहते हैं, युक्ति-न्याय के वश होकर, (जो) पर्याय करती है, वह पर्याय नहीं भोगती, वह द्रव्य कर्ता है, वह द्रव्य भोक्ता है, इन सब युक्तिवश से अन्यमति से भिन्न जैसी चीज़ है, वैसा जानने में विकल्प आता है। समझ में आया ? परन्तु उससे क्या ? आहाहा!

मुमुक्षु : साध्य की सिद्धि नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : साध्य की सिद्धि, द्रव्यसिद्धि, उसमें आत्मा की सिद्धि नहीं होती, मुक्ति नहीं होती। आहाहा! है ?

अथवा द्रव्यार्थिकनय से जीवद्रव्य कर्म का कर्ता है, वही जीवद्रव्य भोक्ता है।

अभेद है न? अभेद आया। आहाहा! यह भेद लिया। जो पर्याय करती है, वह पर्याय भोगती नहीं, दूसरी भोगती है, यह भेद हुआ; और द्रव्य कर्ता है, वही द्रव्य भोगता है, यह अभेद आया। आहा! ऐसा हो, वस्तु हो, भले। इस प्रकार से ज्ञान करो। **तो ऐसा भी होओ; इसमें भी साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं है।** आहाहा! जो द्रव्य राग का कर्ता है, वही द्रव्य भोक्ता है, हो। अभेदनय से ऐसा ज्ञान में जानने में आता है, परन्तु वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

'वा कर्ता च वेदयिता वा मा भवतु' आहाहा! आत्मा राग का कर्ता नहीं, अकर्ता है और राग का भोक्ता नहीं, अभोक्ता है, हो। यह भी ज्ञान करने के लिये हो। आहाहा! है? **कर्तृत्वनय से जीव अपने भावों का कर्ता है तथा भोक्तृत्वनय से जिसरूप परिणमता है, उस परिणाम का भोक्ता है...** परिणमता है न? ऐसा भी हो। **ऐसा विचार करने पर...** आहाहा! **शुद्धस्वरूप का अनुभव तो नहीं है,...** आहाहा! समझ में आया? अकर्ता और अभोक्ता। आत्मा राग का कर्ता नहीं और राग का भोक्ता नहीं, ऐसा हो। वह जानने के लिये विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

कारण कि ऐसा विचारना अशुद्धरूप विकल्प है। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को कठोर पड़े, क्या हो? एकान्त कहकर लोग तूफान... तूफान... स्वयं के साथ (करे), अरर! प्रभु! तू कौन है? यहाँ तो कहते हैं कि राग का कर्ता नहीं, भगवान स्वभाव की दृष्टि से और भोक्ता भी नहीं, स्वभाव की दृष्टि से—ऐसे विकल्प से भी तुझे क्या लाभ है? समझ में आया? आहाहा! राग का कर्ता है और भोक्ता अन्य है और द्रव्य कर्ता है और वह द्रव्य भोक्ता है, उससे भी तुझे क्या लाभ हुआ? और आत्मा राग का कर्ता नहीं—अकर्ता है और अभोक्ता है, उससे भी तुझे क्या लाभ हुआ? वह तो विकल्प है। आहाहा! **ऐसा विचारना अशुद्धरूप विकल्प है।** आहाहा!

मुमुक्षु : यह अशुद्धरूप विकल्प कहा तो कोई शुद्धरूप विकल्प है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध हूँ, यह भी एक विकल्प है। १४३ (गाथा में) नहीं आया? कर्ता-कर्म अधिकार की १४३ (गाथा)। मैं शुद्ध हूँ, वहाँ तो ऐसा कहा कि व्यवहारनय का तो हम निषेध करते आये ही हैं। है? अर्थ में है। है न, ख्याल है उसे। १४३, कर्ता-

कर्म अधिकार, पण्डित जयचन्द्रजी लिखते हैं, व्यवहारनय का तो हम निषेध करते आये हैं परन्तु यहाँ तो आत्मा शुद्ध है और अबद्ध है, एक है और पवित्र है, ऐसे विकल्पों का भी हम तो यहाँ निषेध करते हैं। हैं? आहाहा! भाई! मार्ग निवृत्तस्वरूप अन्दर अलग है। आहाहा! समझ में आया? एकान्त लगे परन्तु क्या करे? दूसरा कोई मार्ग नहीं, मार्ग तो यह है। एकान्त क्यों लगता है? कि व्यवहार से निश्चय हो तो अनेकान्त। यहाँ तो कहते हैं, ऐसे विकल्प से भी अनुभव नहीं होता। आहाहा!

प्रभु! पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें अनन्त-अनन्त वीर्य दल पड़ा है। आहाहा! वीर्य नाम का गुण है। वस्तु आयी न? वस्तु-वस्ती। वस्तु में वस्ती रही हुई है। यह भगवान की वस्ती है। आहाहा! महाराजा भगवान, उसकी यह वस्ती है। अध्यात्म पंच संग्रह में परमात्मा की व्याख्या की है, वहाँ की है। अध्यात्म पंच संग्रह है न? दीपचन्दजी कृत बहुत बड़ा ग्रन्थ है। अध्यात्म पंच संग्रह में लिखा है कि भगवान परमात्मा की अनन्त आनन्द आदि वस्ती है। उसकी राजधानी में इतनी वस्ती है। आहाहा! परमात्म पुराण आता है न? हें? ले गये थे यहाँ से?

मुमुक्षु : बहिनश्री कहती हैं, परिवार।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परिवार है। तुम वाँचने ले गये थे? यहाँ से ले गये थे, खबर है, अभी ले गये थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तू तो वीतरागस्वरूप है न, नाथ! और वीतरागस्वभाव से तू परिपूर्ण भरा है। आहाहा! उसमें ऐसे विकल्प से तुझे वीतराग का अनुभव हो, यह वस्तु का स्वरूप नहीं। समझ में आया? आहाहा! **अशुद्धरूप विकल्प है।**

अथवा अकर्तृत्वनय से जीव अकर्ता है... देखो! यह भी विकल्प है। स्वभाव अकर्ता है। अकर्ता नाम का आत्मा में एक गुण है। अकर्ता नाम का एक गुण है तो, इस कारण से राग का अकर्ता है। आहाहा! अभोक्ता नाम का भी आत्मा में एक गुण है। आहाहा! इस कारण से राग का अभोक्ता हो। है? **अकर्तृत्वनय से जीव अकर्ता है तथा अभोक्तृत्वनय से...** जीव अभोक्ता है अर्थात् **भोक्ता नहीं है...** ऐसा। कहना तो यह है।

कर्ता-भोक्ता नहीं है तो मत ही होओ;... आहाहा! इस अपेक्षा से भगवान आत्मा दया, दान, के विकल्प तो ठीक, परन्तु यह विकल्प जो उठते हैं, उनका कर्ता-भोक्ता भी नहीं। आहाहा! लोगों को ऐसा मार्ग कठिन पड़ता है। अनन्त काल अभ्यास दूसरा और यह पूरा अभ्यास दूसरा। आहाहा! बाहर के विकल्प में सन्तुष्ट होकर अनादि से पड़ा है, ... यह क्या कहा? ऐसा विकल्प आता है, उसमें सन्तोष हो जाता है कि हमने बहुत किया। आहाहा! हें? आहाहा! अपने कहाँ संसार के विकल्प करते हैं? यह तो आत्मा के विकल्प हैं न! अकर्ता है और अभोक्ता है तथा कर्ता है और भोक्ता है, जो पर्याय करे वह भोक्ता नहीं, जो द्रव्य करे, वह भोक्ता। स्वभावदृष्टि से अकर्ता और अभोक्ता। हम तो आत्मा के विचार करते हैं न! परन्तु वह भी विकल्प में रुक जाता है।

मुमुक्षु : अटकने के स्थान बहुत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत, अटकने के स्थान बहुत हैं। आहाहा!

अभोक्तृत्वनय से जीव भोक्ता नहीं है कर्ता-भोक्ता नहीं है तो मत ही होओ; ऐसा विचार करने पर भी... देखो! ऐसा विचार करने पर भी, **शुद्धस्वरूप का अनुभव नहीं है,...** आहाहा! यह भी एक राग की वृत्ति का उत्थान है। उत्थान-उत्पन्न (करता है), अन्दर में है नहीं, परन्तु यह विकल्प की उत्पत्ति-उत्थान करता है, वस्तु में नहीं है। तो कहते हैं कि इस विकल्प से भी आत्मा का अनुभव नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : विचार तो ज्ञान की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार के साथ विकल्प है न! यह लिया है। यह पहले आ गया है। विचार, मनन, चिन्तन सब विकल्प है, ऐसा आया। अकेली ज्ञान की पर्याय के साथ वह विकल्प लिया है। आ गया है, पहले आ गया है। आहाहा! और एक अपेक्षा से नियमसार में 'चिन्तनीय' शब्द पड़ा है। वहाँ वह चिन्तनीय निर्विकल्प है। भाषा किस जगह कौन सी... समझ में आया? यहाँ जो कहा था वह तो विचार विकल्पवाला है और वहाँ जो 'चिन्तनीय' शब्द है, प्रायश्चित्त अधिकार में लिया है, नियमसार। आत्मा का चिन्तवन करना। चिन्तन, वह विकल्प नहीं, वहाँ चिन्तवन अर्थात् एकाग्रता है।

मुमुक्षु : चिन्तनीय प्रायश्चित...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, खबर है न। सब ज्ञान में अन्दर वर्तता है। आहाहा! आहाहा! प्रभु का मार्ग अलौकिक है, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा विचार करने से भी तुझे (क्या लाभ)? आत्मा राग का कर्ता नहीं और भोक्ता नहीं, ऐसा स्वभाव है। है तो ऐसा ही स्वभाव, परन्तु ऐसे विकल्प में रुके वह तुझे कोई अनुभव का कारण नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। (ऐसा विचारने पर भी) **अनुभव नहीं है, कारण कि 'प्रोता इह आत्मनि क्वचित् भर्तुं न शक्यः' कोई नय विकल्प,... 'प्रोता'** अर्थात् **कोई नय विकल्प, उसका विवरण—अन्य कर्ता है, अन्य भोगता है ऐसा विकल्प, अथवा जीव कर्ता है—भोक्ता है ऐसा विकल्प,...** इत्यादि अनन्त विकल्प हैं। आहाहा! गजब बात है, भाई! मार्ग प्रभु का... आहाहा! अब इसमें ऐसा कहे, विकल्प से लाभ नहीं होगा? ऐसे विकल्प से लाभ नहीं होगा? तो यह व्रत, तप करें, इतना करें, अपवास करें, व्रत करे, दया पालें, ब्रह्मचर्य पाले। बापू! यह तो स्थूल विकल्प है। जिस पुण्य-पाप के अधिकार में स्थूल विकल्प, स्थूल कहा है। है? स्थूल संक्लेश परिणाम को छोड़ता है, परन्तु स्थूल विशुद्ध परिणाम को छोड़ता नहीं, ऐसा पाठ है। पुण्य-पाप अधिकार में है। आहाहा! शुभभाव को स्थूल कहा, यशपालजी! आहाहा! पुण्य-पाप अधिकार में है। आचार्य ने गजब (कहा है)! आहाहा! सन्तों ने तो करुणा से कहा है, करुणा से विकल्प आया है। अरे रे! तुम कहाँ हो, प्रभु! कहाँ से कहाँ गये? और कहाँ हो तुम? भाई! आहाहा! करुणा करके खेद करते हैं। आहाहा! खेद है कि तुम जहाँ हो, वहाँ आते नहीं और नहीं हो, वहाँ घूमा करते हो। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है या नहीं? सेठ! सेठ थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु...

मुमुक्षु : आप जैसे समझानेवाले हों तो क्यों नहीं समझ में आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे सेठ तो यहाँ बहुत समय से पड़े हैं, तुम तो किसी दिन थोड़े से आते हो, पन्द्रह दिन या आठ दिन। फिर यह कहे कि भाई से भाग ले लूँगा। परन्तु भाग नहीं मिलता, बापू! आहाहा! भगवान! तू कहाँ अधूरा और अपूर्ण है कि तेरी चीज़ पर से ली जावे।

यह भगवान तो निर्विकल्पस्वरूप वीतराग पिण्ड है, अनन्त गुण का पिण्ड परन्तु

निर्विकल्प अभेद है। आहाहा! ऐसे में ऐसे विकल्प से तुझे क्या लाभ है? कहते हैं। आहाहा! है? (ऐसा विकल्प, इत्यादि अनन्त विकल्प हैं तो भी उसमें से कोई विकल्प) मैं राग का कर्ता नहीं, मैं राग का भोक्ता नहीं, ऐसे विकल्प से भी तुझे क्या लाभ है? समझ में आया? यह भी वृत्ति का उत्थान है। आहाहा! वह विषकुम्भ है। आहाहा! भगवान अमृतकुम्भ है, आनन्दकन्द प्रभु है, उससे उल्टा विकल्प है, वह तो जहर है। आहाहा! अमृत का सागर भगवान अन्दर अनीन्द्रिय है, उससे विकल्प है, वह तो अनीन्द्रिय अमृत से विपरीत है। भगवान जब अमृतस्वरूप है तो राग है, वह जहर स्वरूप है। आहाहा! कठिन लगे। कठोर भाषा में...? किसी समय ऐसा कहा था न कि पुण्य है, वह विष्टा है। ऐ... इसकी आलोचना। अरे! बापू! विष्टा तो जड़ है, कुत्ते भी खाते हैं और यह तो जहर है। बापू! भाई! आहाहा! उसकी टीका (आलोचना) करे। भगवान! कहाँ पड़ा है? प्रभु!

यह तो वह सूकर का दृष्टान्त एक बार दिया था। उत्तराध्ययन का पहला अध्ययन है कि ज्ञानियों ने विकल्प छोड़ दिये हैं, उन्हें अज्ञानी पकड़ते हैं। मनुष्य ने विष्टा छोड़ दी, उसे सूकर खाता है। बहुत वर्ष पहले की बात है। आहाहा! यहाँ तो विष्टा का तो खाद भी होता है। खातर समझे? खाद... खद। और कौवे की विष्टा का खाद भी नहीं होता। यह आया न? इन्द्र सरीखे भोग। 'चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्र सरीखे भोग, कागविट सम मानत है ज्ञानीजन लोक।' कौवे की विष्टा तो खाद में भी काम नहीं आती। कौव! मनुष्य की विष्टा, हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस की विष्टा खाद में काम आती है। आहाहा! 'कागवीट सम मानत है' इन्दौर में है। वह इन्दौर में काँच का (मन्दिर) है न? वहाँ है, हमने बताया था। कहा, देखो! भाई! ये क्या लिखा है? काँच के मन्दिर में (लिखा हुआ है)। 'चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्र सरीखे भोग, कागवीट सम मानत है, ज्ञानीजन लोक' आहाहा! कहो, सेठ! यह तुम्हारे पैसे-फैसे धूल को कहते हैं, कागवीट समान है। नहीं? आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ तो विकल्प का कहना था। विकल्प है, वह भी एक जहर है। आहाहा! आता है, ज्ञानी को भी जब तक वीतराग न हो, तब अशुभ से बचने को, शुद्ध

की दृष्टि होने पर भी, शुद्ध के ध्येय में अनुभव होने पर भी अन्तर स्थिरता जमती नहीं, पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण से, हों! तो वहाँ अशुभ से बचने को शुभ आता है, परन्तु है तो विषकुम्भ। आहाहा! विषकुम्भ है तो करता क्यों है? वह आये बिना रहता नहीं। सुन तो सही! आहाहा!

यहाँ कहते हैं **इत्यादि अनन्त विकल्प हैं...** देखा? **तो भी उनमें से कोई विकल्प, शुद्ध वस्तुमात्र है, जीवद्रव्य उसमें किसी भी काल में शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप स्थापने को समर्थ नहीं है।** आहाहा! बहुत अच्छी बात ली है। हें? आहाहा! एक पर्याय करती है, दूसरी भोगती है, यह द्रव्य कर्ता है, यह द्रव्य भोक्ता है, यह विकल्प तो स्थापनायोग्य है ही नहीं, परन्तु आत्मा राग का अकर्ता है और राग का अभोक्ता है, ऐसे कोई विकल्प अनुभव के लिये स्थापनायोग्य नहीं है। आहाहा! भाई! यह तो जिसे आत्मा की पड़ी है, उसकी बात है। उसे दुनिया क्या माने और दुनिया क्या कहे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अनन्त विकल्प हैं तो भी उनमें से कोई विकल्प, शुद्ध वस्तुमात्र है, जीवद्रव्य उसमें... 'क्वचित्' किसी भी काल में... 'क्वचित्'** का (अर्थ) काल लिया है। **'क्वचित्'** अर्थात् किसी काल में। आहाहा! **'भर्तुं न शक्यः' शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप स्थापने को समर्थ नहीं है।** आहाहा! किसी काल में। पाप से बचने के लिये पुण्य आया, परन्तु वह स्थापनायोग्य नहीं है। आहाहा! अनुभव करने में वह सहायता करे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **'भर्तुं'** शब्द पड़ा है न? **'भर्तुं न शक्यः'** अर्थात् कि **स्थापने को समर्थ नहीं है।** सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में यह विकल्प मदद करेंगे, यह स्थापनायोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भाषा समझ में आये ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : चिन्तन, मनन सब उड़ाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चिन्तन, मनन विकल्प है। जैसा चिन्तवन कहा है न, उस नियमसार में? वह चिन्तवन तो वस्तु की अन्तर एकाग्रता (स्वरूप है)। वह विकल्प नहीं, यह नहीं। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान शुद्ध चैतन्य विज्ञानघन में एकाग्रता अर्थात् आनन्द की पर्याय और सम्यक् की पर्याय प्रगट होती है, उसे यहाँ चिन्तवन कहा है। आहाहा!

शब्द होते हैं परन्तु किस जगह कौन से शब्द का अर्थ (क्या है), यह जरा विचारना चाहिए, ऐसा का ऐसा पकड़कर चले यह नहीं चलता। आहाहा! समझ में आया?

अनुभवरूप... देखा? **शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप स्थापने को समर्थ नहीं है।** यह तो संस्कृत देखने के लिये देखा, हों! कितना है? १४३? आहाहा! मेरे में अन्तर आयेगा। गुजराती है यह? कहाँ है? किस ओर? (समयसार) १४२ (गाथा के उपोदघात में) है। देखो! आया। **परन्तु उससे क्या?** संस्कृत में यह आया—'**ततः किम्**'। यह। '**ततः किम्**' उससे क्या? भाई! उससे क्या? आहाहा! नीचे अर्थ है। उससे क्या? गुजराती में आया—तेथी शु? तू यहाँ तक आया कि अबद्ध है और शुद्ध है और एकरूप है, तो उससे क्या? उससे तुझे क्या लाभ हुआ? आहाहा! समझ में आया? '**ततः किम्**' आहाहा! कितनी टीका, कितना डाला है! आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प की चरमसीमा आ जाये फिर अनुभव हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके कारण नहीं होता। वह—विकल्परहित, यह इसकी सीमा। यह तो स्पष्ट करने के लिये पूछा। यह तो यहाँ कहा न। अनन्त विकल्प हैं, उसमें कोई भी स्थापने को समर्थ नहीं है कि इससे मदद मिलेगी, यहाँ (तक) आया कि बहुत कषाय की मन्दता है, यहाँ तक आया कि अबद्ध है, शुद्ध है, एकरूप है। पर्याय से व्यवहार का तो निषेध करते आये हैं, परन्तु साथ में अब हम निश्चय का निषेध करते हैं। (अर्थात्) निश्चय के पक्ष का विकल्प। पक्षातिक्रान्त चीज़ है। आहाहा! '**ततः किम्**' उससे क्या? यहाँ तक आया तो भी उससे क्या? समझ में आया? बापू! प्रभु का मार्ग बहुत अलौकिक है। अभी फेरफार हो गया है। अभी तो चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा हो गया है। हें? बहुत चोर इकट्ठे हों, (फिर) कोतवाल को (दण्डे)। बापू! मार्ग तो यह है। हें?

उसमें आया है, मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में श्वेताम्बर का अधिकार है, वहाँ (आया है)। यह लोग मारते हैं। विरोध हो, उसे मारने (आवे)। अरे! बापू! भगवान के समय इन्द्रों को खबर नहीं कि यह सब विरोधी हैं? किसी ने मारा है? हें? ऐसा हो? भगवान है। उसकी पर्याय में भूल है तो क्या? उसके प्रति विरोध और द्वेष बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान में विरोध हिंसा कही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कही है, परन्तु किस अपेक्षा? अन्दर राग ऐसा आता है, विरोध करनेवाले दुश्मन को क्या ... करूँ, ऐसा। (विरोधी का अर्थ) यह। विरोधी अर्थात् विरोधी है, उसे मारना, ऐसा है वहाँ? यह तो उसके युद्ध में मरता है और समकिती है, उसे राग ऐसा द्वेष आता है। इस अपेक्षा से उसे विरोधी हिंसा होती है, इतना। परन्तु विरोधी को मारना, (ऐसा नहीं)। अन्दर विरोध का विकल्प आया है, बस! वह दोष है। परन्तु आता है, समकिती की भूमिका में है। बड़ा राज होता है, चक्रवर्ती का राज। आहाहा! परन्तु उस चक्रवर्ती का राज, ९६ हजार स्त्री, यह नौ निधान, यह चौदह हजार देव एक क्षण में छोड़ दिया... एकदम...! आहाहा! अकेले चले गये, नग्न (होकर) जंगल में चले गये। आहाहा! अन्तर के अनुभव के लिये, स्थिरता (के लिये)। दृष्टि तो है, सम्यग्दर्शन तो है, परन्तु विशेष अनुभव के लिये (चले गये)। आहाहा! ९६ हजार स्त्रियाँ चोटियाँ खीचें। जंटिया समझे? बाल तोड़े।

शान्तिनाथ पुराण में आता है। शान्तिनाथ पुराण है न? उसमें भगवान जब दीक्षा लेते हैं, तब रानियाँ आती हैं, बाल नोंचती हैं। महाराज! यह क्या किया तुमने? (तब कहते हैं) अरे! स्त्रियों! मैं वहाँ रुका था, वह तुम्हारे कारण नहीं, मुझे राग था। तो वह राग अब मर गया है। अब तुम्हारा सुननेवाला कोई नहीं। तुमको ऐसा लगे कि तुम्हारे लिये मैं यहाँ रहा था, ऐसा नहीं था। प्रभु! मुझे राग था, मेरी आसक्ति थी। आहाहा! वह आसक्ति मुझे नाश हो गयी है। अब तुम्हारा रोना और बिलखना कौन सुनेगा? बहिन! आहाहा! शान्तिनाथ पुराण में बात आती है। आहाहा! आचार्यों के कथन तो...! कोई कथा हो, परन्तु वस्तुस्थिति का वर्णन है न! हैं? चारों अनुयोग में सत् का वर्णन है न! आहाहा!

यहाँ क्या कहते हैं? **शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप स्थापने को समर्थ नहीं है।** यह विकल्प से अनुभव का लाभ होगा और समकित होगा, (ऐसा) किसी प्रकार स्थापित नहीं किया जा सकता। आहाहा! समझ में आया? तब वहाँ ऐसा कहा न, पंचास्तिकाय में—भिन्न साध्य-साधन भाव। वह तो भिन्न साधन का ज्ञान कराया, भाई! यहाँ तो कहते

हैं कि यह विकल्प भी जहाँ स्थापनायोग्य नहीं, वहाँ और ऐसा कहे कि भिन्न साधन, राग साधन हो और निश्चय वीतरागभाव साध्य। उसका अर्थ ऐसा नहीं है। जिसे अपने स्वरूप का राग से भिन्न अनुभव का साधन प्रगट हुआ, वहाँ आगे जो राग बाकी है, उसे साधन का आरोप दिया है। साधन का आरोप दिया। जैसे (जहाँ) निश्चय सम्यग्दर्शन है, वहाँ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग है, उसे व्यवहार समकित का आरोप दिया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है, भाई! इसमें वादविवाद करने से कहीं पार आवे, ऐसा नहीं। किसके साथ वाद करेगा? बापू! और वह भी सामनेवाले को झूठा सिद्ध करने के लिये कुछ है? यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है, बापू! समझ में आया?

कोई विकल्प स्थापने को समर्थ नहीं। **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई अज्ञानी ऐसा जानेगा कि इस स्थल में ग्रन्थकर्ता आचार्य ने कर्तापन, अकर्तापन, भोक्तापन, अभोक्तापन बहुत प्रकार से कहा है, सो इसमें क्या अनुभव की प्राप्ति बहुत है?** बहुत (सरस) कलश चला है। **समाधान इस प्रकार है कि समस्त नय विकल्पों के द्वारा शुद्धस्वरूप का अनुभव सर्वथा नहीं है।** है? कथंचित् कुछ मदद करे। नवलचन्दभाई! चरमसीमा राग। आहाहा! ऐसा स्वरूप ही है, प्रभु! तुझे आग्रह हो, इसलिए कहीं वस्तुस्थिति बदल जायेगा? आहाहा! **सर्वथा नहीं।** भाषा देखो! **नय विकल्पों के द्वारा शुद्धस्वरूप का अनुभव सर्वथा नहीं है।** अहाहाहा! **उसको (स्वरूप को) मात्र जनाने के लिये ही शास्त्र में बहुत नय-युक्ति से दिखलाया है।** उसका ज्ञान कराने के लिये बताया है। जो अज्ञानी दूसरे प्रकार से कहते हैं, वेदान्त या सांख्या या उनसे भिन्न यथार्थ वस्तु का ज्ञान कराने के लिये ऐसा कर्ता और अकर्ता (भोक्ता) और अभोक्तता बताया है। ज्ञान (कराने) जानने के लिये। अनुभव के लिये यह कोई विकल्प काम नहीं करते। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि सर्वज्ञ ने कहे हुए मार्ग से दूसरे प्रकार से कहते हैं, इसलिए उसका निराकरण करने के लिये कर्ता-अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता की व्याख्या भगवान ने, आचार्यों ने कही है। समझ में आया? परन्तु उस विकल्प से वहाँ अनुभव होगा, (ऐसा नहीं कहना है)। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु!

समस्त नय विकल्पों के द्वारा शुद्धस्वरूप का अनुभव सर्वथा नहीं है। उसको

(स्वरूप को) मात्र जनाने के लिये ही शास्त्र में बहुत नय-युक्ति से दिखलाया है। तिस कारण... 'नः इयं एका अपि चिच्चिन्तामणिमालिका अभितः चकास्तु एव' हमें स्वसंवेदनप्रत्यक्ष, समस्त विकल्पों से रहित,... आहाहा! '**नः**' अर्थात् **हमको...** है वहाँ, हों! '**नः**' अर्थात् निषेध नहीं वहाँ। '**नः**' अर्थात् हमको। ऐसा शास्त्र में आता है। '**नः**' अर्थात् हमको। आहाहा! '**नः' हमें स्वसंवेदनप्रत्यक्ष,...** अपना आत्मा स्व, सं-प्रत्यक्ष वेदन। स, सं, वेदन। अपना प्रत्यक्ष वेदन। वह **स्वसंवेदनप्रत्यक्ष, समस्त विकल्पों से रहित,... 'एका अपि'** है न? आहाहा! हमको तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष, सर्व विकल्प से रहित, '**चिच्चिन्तामणि**' आहाहा! शुद्ध चेतनारूप प्रभु पूर्ण चिन्तामणि। यह धूल की चिन्तामणि। चिन्तवन करे वह दे, चिन्तामणि जो चिन्तवन करे वह दे, वह तो बाहर की धूल दे। वह चिन्तामणि रत्न होता है न? वह क्या दे? आहाहा! वे कल्पवृक्ष हैं न? कल्पवृक्ष, जुगलिया के। जो चाहे वह दे, ऐसा नहीं वहाँ। वहाँ तो है, वह होता है। वहाँ तो कहाँ सब था? दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं न? जो है, वह दे। उसमें हो, वह दे न! यह कहे, अमुक लाओ यहाँ से, (ऐसा नहीं होता)।

मुमुक्षु : उस कल्पवृक्ष के पास जाकर लड्डू माँगे तो दे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ लड्डू थे? आहाहा! यह कितने ही कहते हैं, वहाँ जो चिन्तवन करे, वह दे। परन्तु क्या? अन्दर हो वह फल दे या न हो वह कहाँ से दे? उसका भी अर्थ करने में बड़ा अन्तर, बहुत अन्तर। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, वह तो जनाने के लिये कहा था। हमने तो **अनन्त शक्तिगर्भित....** देखो! चिन्तामणि कहा न? **अनन्त शक्तिगर्भित....** भगवान आत्मा में गर्भित अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। उसके पेट में, भाव में। आहाहा! समझ में आया? चिन्तामणि लिया न? अर्थात् **अनन्त शक्तिगर्भित.... 'मालिका'** माला अर्थात् **चेतनामात्र वस्तु...** ऐसा। **चेतनामात्र वस्तु की... 'अभितः चकास्तु एव'।** आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य जो टीका करनेवाले। तीर्थंकर जैसा काम कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने पंचम काल में किया। अमृतचन्द्राचार्य गणधर जैसा काम पंचम काल की अपेक्षा से (किया है)। आहाहा! यह कहते हैं। आहाहा!

अनन्त शक्तिगर्भित चेतनामात्र वस्तु... 'अभितः चकास्तु एव' सर्वथा प्रकार प्राप्ति होओ। यहाँ तो बस एक ही बात है। आहाहा! कथंचित् विकल्प भी प्राप्त हो और और कथंचित् स्वभाव भी प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! कोई ऐसा कहता है कि 'सर्वथा' शब्द तो जैन में होता ही नहीं। किस अपेक्षा से? यह तो नित्य है या अनित्य, एक है या अनेक है वस्तु, उसमें कथंचित् है। परन्तु द्रव्यार्थिकनय से नित्य है, उसमें कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है, ऐसा है? द्रव्य से तो नित्य ही है। पर्याय से अनित्य ही है। आहाहा! वहाँ 'ही' है। यह तो पूरे द्रव्य की व्याख्या करने के लिये कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है (ऐसा कहा जाता है)। समझ में आया? यहाँ यह कहा, हमको सर्वथा यह ही प्राप्त हो। आहाहा! देखो! यह दिगम्बर सन्तों की अन्दर की धखती धूणी! हें? आहाहा! हम तो अन्तर्मुख प्रभु भगवान हैं, उसे हम प्राप्त करें, बस! बाकी कोई चीज़ हमको है नहीं। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि निर्विकल्पमात्र का अनुभव उपादेय है,... लो, बहुत संक्षिप्त किया। निर्विकल्पमात्र का अनुभव, वह आदरणीय है। **अन्य विकल्प समस्त हेय हैं।** आहाहा! गजब (बात)! वस्तुस्थिति व्यवहार, व्यवहार के स्थान में है, परन्तु है हेय। व्यवहार से भी निश्चय होता है, ऐसा है नहीं, भाई! आहाहा! समझ में आया? हमको तो निर्विकल्पमात्र अनुभव उपादेय है। आहाहा! **अन्य विकल्प समस्त हेय हैं।** अन्य विकल्प समस्त। दया, दान, भक्ति के विकल्प तो हेय है ही, परन्तु यह बद्ध, अबद्ध और कर्ता-अकर्ता के विकल्प भी हमको हेय है। आहाहा! समझ में आया?

दृष्टान्त ऐसा—'सूत्रे प्रोता इव' जिस प्रकार कोई पुरुष मोती की माला को पोना जानता है,... पिरोना, पिरोना। मोती की माला को सुई के डोरे में, सूत के डोरे में पिरोवे। **माला गूंथता हुआ अनेक विकल्प करता है...** उस समय। है न? **सो वे समस्त विकल्प झूठे हैं,...** आहाहा! **विकल्पों में शोभा करने की शक्ति नहीं है।** आहाहा! उस माला पहनने की शक्ति में शोभा है। माला बनाने के विकल्प की कोई शोभा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **माला गूंथता हुआ अनेक विकल्प करता है सो वे समस्त विकल्प झूठे हैं, विकल्पों में शोभा करने की शक्ति नहीं है।** विकल्प में, जो यह माला पहनकर जो शोभा दिखती है, वह कहीं विकल्प में शोभा की सामर्थ्य नहीं है। आहाहा!

समझ में आया? **शोभा तो मोतीमात्र वस्तु है,...** आहाहा! समझ में आाय? चक्रवर्ती का एक होता है न? चक्रवर्ती का एक बड़ा हार होता है, उसे ही होता है, बड़ा पूरे शरीर प्रमाण (होता है), अरबों रुपये की कीमत का। कुछ नाम देते हैं। भूल गये। हार होता है, हार। उसकी शोभा है। हार कैसे गूँथा और कैसे हुआ और कैसे किया, उसकी शोभा है वहाँ? आहाहा!

दृष्टान्त दिया है न? माल लेने गये, माल। बर्फी, पेड़ा (लेने गये)। भाव पूछा, क्या भाव है? कि चार रुपये सेर। अभी तो चाहे जो हो, खबर नहीं। पहले हमारे दो आना सेर पेड़ा था। साठ वर्ष पहले। अभी तो महंगा होगा। यहाँ तो भाव पूछे, तोले न? बराबर तोला है? पूछे, निश्चित करे। कांटा (होता है न)? इस ओर माल नीचे दगा करे। इस ओर नीचे लाख रखे, इसलिए उतना माल कम तुले। फिर वह तुलावे बराबर, सही है? परन्तु उसे खाते समय यह विकल्प काम नहीं करते। ऐसे लेने के समय (विकल्प) हो, खाने के समय फिर नहीं होते। उसी प्रकार जानते समय ऐसे विकल्प हों, परन्तु अनुभव (के समय), खाते समय अनुभव के विकल्प नहीं होते। समझ में आया? आहाहा! है न?

विकल्पों में शोभा करने की शक्ति नहीं है। शोभा तो मोतीमात्र वस्तु है, उसमें है। मोती में शोभा है। **इसलिए पहिननेवाला पुरुष मोती की माला जानकर पहिनता है, गूँथने के बहुत विकल्प जानकर नहीं पहिनता है,...** आहाहा! है? **देखनेवाला भी मोती की माला जानकर शोभा देखता है,...** देखो! देखनेवाला भी मोती की माला की शोभा देखता है। उसे कैसे गूँथा, ऐसा वहाँ देखता है? **गूँथने के विकल्पों को नहीं देखता है; उसी प्रकार शुद्ध चेतनामात्र...** शुद्ध चेतनामात्र भगवान पूर्णानन्द मूर्ति प्रभु, आहाहा! **सत्ता अनुभव करनेयोग्य है,...** उसकी चैतन्यमात्र सत्ता, वही अनुभव करनेयोग्य है। **उसमें घटते हैं जो अनेक विकल्प...** यह कर्ता-अकर्ता, भोक्ता आदि। **उन सबकी सत्ता अनुभव करनेयोग्य नहीं है।** बहुत सरस कलश था। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २१०

(रथोद्धता)

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ।।१८-२१०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड का कर्ता, जीव है या नहीं? उत्तर इस प्रकार है कि—कहने को तो है; वस्तुस्वरूप विचारनेपर, कर्ता नहीं है। ऐसा कहते हैं—'व्यावहारिकदृशा एव केवलं' झूठा व्यवहारदृष्टि से ही 'कर्तृ' कर्ता 'च' तथा 'कर्म' किया गया कार्य, 'विभिन्नं इष्यते' भिन्न-भिन्न हैं। जीव, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म का कर्ता—ऐसा कहने के लिए सत्य है; कारण कि युक्ति ऐसी कि रागादि अशुद्धपरिणामों को जीव करता है, रागादि अशुद्धपरिणामों के होते समय, ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलद्रव्य परिणमता है, इस कारण कहने के लिए ऐसा है कि ज्ञानावरणादि कर्म, जीव के किये। स्वरूप का विचार करनेपर, ऐसा कहना झूठा है; कारण कि 'यदि निश्चयेन चिन्त्यते' [यदि] जो [निश्चयेन] सच्ची व्यवहारदृष्टि से [चिन्त्यते] देखा जाये, क्या देखा जाये? 'वस्तु' स्वद्रव्य परिणाम, परद्रव्य परिणामरूप वस्तु का स्वरूप, जो 'सदा एव कर्तृ कर्म एकं इष्यते' [सदा एव] सर्व ही काल [कर्तृ] परिणमता है जो द्रव्य और [कर्म] द्रव्य का परिणाम, [एकं इष्यते] एक है अर्थात् कोई जीव अथवा पुद्गलद्रव्य, अपने परिणामों के साथ व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है; इसलिए कर्ता है, वही कर्म है क्योंकि परिणाम, उस द्रव्य के साथ, व्याप्य-व्यापकरूप है-ऐसा [इष्यते] विचार करनेपर, घटित होता है-अनुभवत में (ज्ञान में) आता है। अन्य द्रव्य का, अन्य द्रव्य कर्ता; अन्य द्रव्य का परिणाम, अन्य द्रव्य का कर्म—ऐसा तो अनुभव में (ज्ञान में) घटता नहीं; कारण कि दो द्रव्यों का व्याप्य-व्यापकपना नहीं है।।१८-२१०।।

माघ शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक-१७-०२-१९७८, कलश-२१०, प्रवचन-२३४

कलश २१०, २१० है न?

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ।।१८-२१०।।

आहाहा! **यहाँ कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड का कर्ता जीव है कि नहीं?** जो कर्म बँधते हैं न, उन कर्म के परिणाम का कर्ता जीव है या नहीं? कर्म, वह परिणाम है, पुद्गल परिणाम है। कर्म एक परमाणु जड़ की परिणति—पर्याय है, तो कर्म परमाणु के परिणाम ज्ञानावरणादि, उन्हें आत्मा करता है या नहीं करता? ऐसा प्रश्न है।

उत्तर इस प्रकार है कि कहने को तो है,... कहनेमात्र है। आहाहा! **वस्तुस्वरूप विचारने पर कर्ता नहीं है।** वस्तु की स्थिति की मर्यादा विचारने पर, कर्म के परिणाम का जीव कर्ता नहीं है। आहा! यहाँ राग-द्वेष होते हैं, उस प्रमाण में कर्म की अवस्था होती है तो निमित्त से ऐसा कहने में आया कि, ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता आत्मा है। यह व्यवहार—झूठी दृष्टि से कहा गया है। आहाहा! हें?

मुमुक्षु : धर्म के काम में झूठा क्यों करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठा (अर्थात्) निमित्त है, और होता है, इतना ज्ञान कराने को (कहा है)। यहाँ जीव राग-द्वेष करता है तो वास्तव में तो राग-द्वेष के परिणाम उसका कर्म है और अज्ञानी आत्मा उसका कर्ता है। इतना निमित्त पाकर कर्म के परमाणु अपनी योग्यता से परिणमन करते हैं। ज्ञानावरणादि कर्म हैं, वे अपनी योग्यता से उस समय पर्याय होने के कारण से अपने कारण से वे परिणमन करते हैं। परन्तु इस (जीव के परिणाम) निमित्त हैं, इसलिए व्यवहार से, झूठे व्यवहार से कहने में आया। आहाहा! समझ में आया?

जैसे स्थूल दृष्टान्त लें, बेलन होता है न? बेलन से रोटी होती है न? तो उस बेलन के परिणाम भिन्न हैं और रोटी के परिणाम भिन्न हैं, परन्तु झूठी व्यवहारदृष्टि से ऐसा कहा जाता है कि... बेलन कहते हैं न? बेलन से रोटी होती है। वह झूठे व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो मूल पाठ में दृष्टान्त दिया है। उसका श्लोक है। शिल्पी। कारीगर जो है न? कारीगर। सोनी, लुहार, सुतार, बुनकर। वणकर समझे? कपड़ा बुनता है। क्या कहते हैं? जुलाहा। बुनकर। सोनी, लो! सोनी गहने बनाता है, जेवरात (कहते हैं)? जेबरात के परिणाम करता है, ऐसा व्यवहार से वह निमित्त है, इसलिए कहा गया है, झूठी दृष्टि से। आहाहा! समझ में आया? सोनी गहने बनाता है, ऐसा निमित्त का लक्ष्य कराने को, ज्ञान कराने को झूठी व्यवहारदृष्टि से, सोनी गहने बनाता है, बुनकर कपड़े बुनता है, ऐसा निमित्त का ज्ञान कराने के लिये (कहने में आता है)। निमित्त, वह पर चीज़ है और पर के परिणाम पर से होते हैं, अपने परिणाम अपने से होते हैं, ऐसा निश्चय से विचारने पर तो पर से परिणाम हुए, यह झूठी दृष्टि से कहने में आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सोनी को मजदूरी देना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दे कौन? सेठ! यह पैसा है न? पैसे के परिणाम हैं, ऐसे जाने के, उस परिणाम का कर्ता वह पैसे के परमाणु हैं। तुम देते हो, ऐसा कहना वह तो झूठी दृष्टि से है, ऐसा कहते हैं। सेठ! उसे बहुत व्यापार बड़ा करोड़ों (है न)? तो सबको दे और मजदूरी दे न... आहाहा! बीड़ियाँ बाँधे न... कौन (बाँधे)?

मुमुक्षु : मजदूरी तो देनी ही चाहिए न, नहीं तो किसका काम करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : काम कौन करे? बापू! भगवान! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! यह तुम्हारी टाईल्स। टाईल्स है न तुम्हारे? क्या कहलाता है वह? 'थाणा... थाणा', थाणा में (कारखाना) है। वहाँ हम उतरे थे न। टाईल्स का बड़ा व्यापार है। पोपटभाई के पुत्र हैं, पोपटभाई! दोनों भाई आये हैं। ये करोड़ोंपति है। धूल के पति! आहाह! क्या कहा?

मुमुक्षु : धूल के भले, शाक-भाजी और रोटियाँ तो होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शाक-भाजी और रोटियाँ उससे नहीं मिलती। वे परमाणु भी जिसके पास आनेवाले हैं, 'खानेवाले का नाम परमाणु में है', ऐसा आता है न? इसका अर्थ कि जो परमाणु इसके पास आनेवाले हैं, वे आयेंगे। इसकी इच्छा है, इसलिए आयेंगे, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन तो इससे सूक्ष्म है। यहाँ तो अभी अज्ञानता की बात करते हैं। आहाहा!

अज्ञानरूप से भी शिल्पी अपने... पाठ ऐसा है, इसलिए विवाद करते हैं, पाठ में ऐसा है न कि, शिल्पी करता है, ऐसा शब्द है। पाठ, मूल पाठ है। ये तो लोग रत्नचन्दजी यह कहते हैं, देखो! करता तो है, तन्मय नहीं होता। पाठ ऐसा है। परन्तु वह तो कर्ता है, यह तो व्यवहारनय, झूठी दृष्टि से कहने में आया है। पाठ ऐसा है, मूल पाठ है, हों! शिल्पी करता है, परन्तु तन्मय नहीं होता, ऐसा पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य का मूल श्लोक है। आहाहा! क्या हो? प्रभु! मार्ग बहुत बदल गया। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन तो कहीं रह गया। अभी तो अज्ञानी कर्म के परिणाम करता है। आत्मा बाँधे, ऐसा भोगे, ऐसा कहा जाता है या नहीं? यह झूठी दृष्टि से कहा जाता है। परद्रव्य के परिणाम आत्मा किस प्रकार करे? आहाहा! समझ में आया? यह बुनकर कपड़े को बुनता है, बुनता है, कहते हैं न? वह कैसे बुने। आहाहा! क्योंकि प्रत्येक पदार्थ की उस-उस समय में जन्मक्षण-परिणमन की उत्पत्ति का काल है। आहाहा! वहाँ-वहाँ वे परिणाम उत्पन्न होते हैं, पूर्व की पर्याय भी कैसे करे? और पर तो करे ही कैसे? आहाहा! तत्त्व का वस्तुस्वरूप ऐसा है, ऐसी स्थिति व्यवहार से भी श्रद्धा में न आवे... आहाहा! व्यवहारश्रद्धा! निश्चयश्रद्धा तो सम्यग्दर्शन में पर की श्रद्धा का यहाँ ख्याल भी नहीं, परन्तु पहले श्रद्धा में, यह परिणाम इस परिणाम का कर्ता नहीं, एक द्रव्य के पर्याय-परिणाम (का कर्ता दूसरा द्रव्य नहीं)।

शिल्पी, हथौड़ा ले। हथौड़ा कहते हैं न? हथौड़ा लिया, ऐसा पाठ है। हथौड़ा ग्रहण करता है, परन्तु तन्मय नहीं होता, ऐसा पाठ है, मूल पाठ है, उसका श्लोक है। कारीगर उपकरण को ग्रहण करता है, परन्तु तन्मय नहीं होता। इसका अर्थ कि ग्रहण करता ही नहीं। वह तो निमित्त से कथन है। आहाहा! लिया, कौन ले? भाई! अँगुली

के परिणाम से यह शीशपेन ऊँचा हुआ, ऐसा कहने में तो निमित्त का-झूठे व्यवहार से कथन है। बाकी इसके परिणाम का कर्ता वह द्रव्य है और अँगुली के परिणाम का कर्ता परमाणु है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : जीव ने क्या किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव ने राग परिणाम किये। यहाँ तो पहली अज्ञानी की समुच्चय बात लेनी है न?

अज्ञानी जीव राग का कर्ता होता है। आहाहा! ज्ञानी तो राग का कर्ता भी नहीं। यह विकल्प आता है, उस समय अपने स्वभाव की दृष्टि है तो स्व का ज्ञान करने में पर्याय में स्व-पर जानने की सामर्थ्य से पर को जानता है, ऐसा कहने में आया। आहाहा! राग जो आया, उसका अज्ञानभाव से कर्ता आत्मा है, यहाँ तो पहले यह सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि उसके परिणाम हैं। परिणामी द्रव्य के परिणाम हैं। यहाँ तो वहाँ तक लेते हैं, द्रव्य परिणमता है, उसका द्रव्य परिणमता है। परिणाम उसके, पर्याय उसकी है, यह बताते हैं। आहाहा! क्या हो? भाई! सब है, है ऐसा है। आहाहा! यह सोनी हथौड़ा ग्रहण करता है और हथौड़ा द्वारा करता है, ऐसा झूठे व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! यह ग्रहण कर सकता ही नहीं। हथौड़ा उठा सकता ही नहीं। ओहोहो! ऐसे (ऊँचा) होता है तो उस परिणाम का कर्ता अँगुली भी नहीं, सोनी के आत्मा के भी परिणाम नहीं। आहाहा! उस-उस काल में उस-उस परमाणु की वह पर्याय स्वयं से होती है तो कर्ता वह परमाणु और वह परिणाम उसका कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ शिल्पी लिया है (परन्तु) सब लेना। शिल्पी, कारीगर ऐसा पाठ, मूल पाठ में है। सोनी हो, लुहार हो, सुतार हो। सुतार लकड़ी घड़ता है तो ऐसा कहते हैं कि इस हथौड़े से घड़ता है... हथौड़ा हो, क्या हो? ऐसा कहना वह व्यवहार है। बाकी तो सुतार अपने राग परिणाम को करता है। आहाहा! और राग का फल भोगता है। निश्चय में तो ऐसा है। ऐसा श्लोक है। शिल्पी का श्लोक है कि, शिल्पी अपने राग को करे और शिल्पी अपने राग को, दुःख को भोगे। परन्तु पर को करे और पर का फल भोगे,

ज्ञानावरणीय का बन्ध करे और ज्ञानावरणीय का फल आत्मा भोगे, वह तो व्यवहार का, झूठी दृष्टि का कथन है। आहाहा! समझ में आया?

दया पालने में पर की पर्याय आत्मा करता है, वह तो निमित्त से झूठे व्यवहार से कहने में आता है। मात्र दया पालने का भाव है, वह उसके परिणाम हैं तो अज्ञानी उसका कर्ता और वह परिणाम उसका कर्म है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! अन्तर के समय-समय के परिणाम भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **कहने को तो है, वस्तुस्वरूप विचारने पर कर्ता नहीं है। ऐसा कहते हैं—'व्यावहारिकदृशा एव केवलं'** वह तो व्यवहार कहने में, केवल व्यवहार से कथन है। **झूठा व्यवहारदृष्टि से ही 'कर्तृ' कर्ता... 'कर्म' किया गया कार्य...** कर्ता भिन्न और कार्य भिन्न, यह झूठे व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा रोटी खाता है, ऐसा कहना, वह झूठे व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! बाकी रोटी की पर्याय स्वयं से होती है, वह खाने के परिणामवाले से रोटी के टुकड़े होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो धीर के काम हैं, बापू! आहाहा! यह तो जिसे आत्मा का हित करना हो... आहाहा! उसकी बात है। पहले तो अज्ञान से सिद्ध करते हैं। आहाहा! है न?

कर्ता और कर्म। व्यवहार से कार्य किया, ऐसे झूठे व्यवहार से कहने में आता है। परन्तु **'विभिन्नम् इष्यते'** देखा? परन्तु **भिन्न-भिन्न हैं।** आहाहा! वह सोनी हथौड़ी से घड़ता है, ऐसा कहना वह तो व्यवहार से, झूठे व्यवहार से है, बाकी भिन्न-भिन्न है। हथौड़ी के परिणाम और घड़ने में जो चीज होती है, उसके परिणाम, दोनों भिन्न हैं और सोनी के परिणाम भी भिन्न हैं। तो सोनी के परिणाम से वहाँ हथौड़ी उठी और ग्रहण की, वह सोनी के परिणाम उसके कर्ता हैं, यह तो व्यवहार से है; निश्चय से ऐसा नहीं है। **'विभिन्नं इष्यते'** सत्यदृष्टि से **'विभिन्नं इष्यते'** झूठी दृष्टि से कहने में आया। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत, बापू! सम्यग्दर्शन ही अभी बहुत सूक्ष्म चीज़ है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो अभी व्यवहार से परपरिणाम का कर्ता व्यवहार से कहा, वह भी है नहीं, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया? छह प्रकार से ज्ञानावरणीय कर्म बँधता है न? छह प्रकार से। पण्डितजी! यह। इन्हें कण्ठस्थ है। निन्हव (आदि) छह बोल आते हैं न? उन छह बोल के परिणाम हुए तो ज्ञानावरणीय कर्म बँधा, वह व्यवहार—झूठी दृष्टि से कहने में आया है। निश्चय से उन छह बोल के परिणाम का कर्ता अज्ञानी जीव है और उसका ही कर्म-कार्य है। छह प्रकार से जो आवरण बँधते हैं, उन छह भाव का कार्य अज्ञानी का कार्य है और अज्ञानी ही उसका कर्ता है। कर्ता-कर्म '**विभिन्नं इष्यते**' पर से भिन्न जानना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह तो सत्य आवे तो सत् की जो वस्तुस्थिति है, वह तो प्रसिद्ध होती है न! देखा?

'विभिन्नं इष्यते' जीव ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म का कर्ता ऐसा कहने के लिए सत्य है;... कहनेमात्र है। आहाहा! **कारण कि युक्ति ऐसी है...** क्यों कहने में आता है, यह अब लेते हैं। **रागादि अशुद्ध परिणामों को जीव करता है,...** राग-द्वेष, विषयवासना आदि के परिणाम अज्ञानी अपने मानकर करता है, यह बराबर है। बराबर का अर्थ, उन परिणाम का कर्ता अज्ञानी है, ऐसा बराबर है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह व्यवहार झूठा नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। अज्ञानी का व्यवहार ज्ञानी की अपेक्षा से झूठा है, परन्तु उसकी अपेक्षा से झूठा नहीं। उसकी अपेक्षा से अज्ञानी के परिणाम कर्ता, कर्म उसके उसमें हैं, यह बात इस अपेक्षा से सिद्ध करनी है। ज्ञानी की अपेक्षा से भिन्न है, वह बात अलग है। यहाँ तो अज्ञानी अपने राग का कर्ता है, दया, दान, व्रत, भक्ति के जैसे परिणाम करे, उसका वह कर्ता और उसका वह कर्म और उस समय कर्मबन्धन हो, उसका आत्मा कर्ता और कर्म, ऐसा पर के साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसा है, प्रभु! क्या हो? सत्य तो सत्य रहेगा। वह किसी का उल्टा मानने से कहीं सत्य बदल नहीं जायेगा। आहाहा! हम तो सबके (काम) कर देते हैं.... आहाहा!

कारण कि युक्ति ऐसी कि रागादि अशुद्ध परिणाम... देखो! यह पुण्य और पाप के भाव अशुद्ध परिणाम हैं। आहाहा! वह **जीव करता है,...** वे जीव के परिणाम हैं, वे

कोई जड़ के परिणाम नहीं। आहाहा! एक ओर जहाँ स्वभाव की दृष्टि चले, वहाँ कहते हैं कि विकार का कर्ता कर्म है और कर्म व्यापक और विकार परिणाम व्याप्य। यह दूसरी दृष्टि है। वह तो स्वभाव के ज्ञाता-दृष्टा (पने के परिणमन में), मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं क्या करूँ? राग करने की मुझमें कोई शक्ति नहीं, गुण नहीं, स्वभाव नहीं तो उस राग का कर्ता मैं नहीं। सम्यग्दृष्टि इस प्रकार अपने को जानता है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यहाँ यह बात सिद्ध नहीं करना। वहाँ सिद्ध करते समय ऐसा कहे कि राग पुद्गल है, पुद्गल कर्ता है, पुद्गल स्वामी है। आहाहा!

यह शुद्ध चैतन्य वस्तु, भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसकी दृष्टि में आया, आहाहा! पूर्ण स्वभाव शुद्ध पवित्र का पिण्ड प्रभु, वह जहाँ दृष्टि में आया, वहाँ विकारी परिणाम का कर्ता वह आत्मा कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ वहाँ समझना वही।' यहाँ ऐसा कहते हैं कि कर्ता वही है। तो फिर ज्ञानी भी राग का कर्ता है? ऐसा सिद्ध नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह दोपहर में आयेगा। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का कर्ता भी धर्मी नहीं। करानेवाला नहीं, अनुमोदन करनेवाला नहीं। आहाहा! यह राग होता है, परन्तु ज्ञानी के ध्येय में तो आत्मा है। आहाहा!

जागता जीव ज्ञायकभाव स्थित है न, प्रभु! आहाहा! बहिन की यह भाषा है न? जागता जीव उभो (ध्रुव) है न! वचनामृत में है। ज्ञायकभाव ध्रुव है न! आहाहा! ऐसी दृष्टि जहाँ हुई तो जरूर उसे आत्मा प्राप्त होगा। आहाहा! और चैतन्य के परिणाम से प्राप्त न हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? और राग से प्राप्त हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! ऐसा स्वरूप।

वहाँ तो सब कारीगर लिये हैं। यह तो नामा लिखनेवाला भी कारीगर कहलाता है न? कलम से लिखता है। कलम कर्ता और अक्षर उसके परिणाम, ऐसा भी नहीं है और कर्म का करनेवाला जो परिणाम राग और राग के परिणाम कर्ता और यह कलम चलती है, वह उसका कार्य, ऐसा है नहीं। कलम समझ में आता है? समझ में आया? सुतार, लुहार, कुम्हार लो! कुम्हार। कुम्हार भी कारीगर है न? कुम्हार घड़े को बनाता है, ऐसा कहना वह झूठी व्यवहारदृष्टि से है। अज्ञानी कुम्हार अपने परिणाम का कर्ता है।

आहाहा! घड़े को बनाने का भाव, उस भाव का कर्ता अज्ञानी है। आहाहा! ज्ञानी कुम्हार हो, समकिती कुम्हार होता है न? तो वह घड़े के परिणाम का कर्ता तो नहीं, परन्तु राग आता है, उस परिणाम का कर्ता भी धर्मी तो नहीं। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति की मर्यादा ऐसी है। यह कोई भगवान ने की है, ऐसा है? भगवान ने तो जैसी है, वैसी जानी है, वैसी कही, वैसी है। बस? आहाहा! ये कहा न?

ऐसा कैसे कहने में आता है, ऐसा कहते हैं। **रागादि अशुद्ध परिणामों को जीव करता है, रागादि अशुद्ध परिणामों के होते...** समय व्यवहार कहने में यह कारण है, ऐसा क्यों कहा? कि ज्ञानावरणीय कर्म जीव करता है, ऐसा व्यवहार, झूठी दृष्टि से कहने का हेतु क्या है? कारण क्या? आहाहा! कि **रागादि अशुद्ध परिणामों के होते...** समय, देखा? उस समय। **ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलद्रव्य परिणमता है,...** उस समय पुद्गल परिणमता है। आहाहा! परिणमता है स्वयं के कारण से, आहाहा! परन्तु समय एक हुआ न? यहाँ राग किया, वहाँ ज्ञानावरणीय बँधा, मोहनीय बँधा इत्यादि। तो वह एक समय में ऐसे साथ में है। आहाहा! होते समय। ज्ञानावरणादि, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य सब लेना। आहाहा! **पुद्गलद्रव्य परिणमता है, इस कारण कहने के लिए ऐसा है...** देखा? कहने के लिये क्यों है? व्यवहार से कहने के लिये क्यों है? यह सिद्धान्त कहा। आहाहा! जब रागादि परिणाम, पुण्य-पाप, दया, दान के परिणाम होते हैं, उसी समय पुद्गल कर्मरूप परिणमता है तो एक समय देखकर उसने किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? कहा न?

कहने के लिए ऐसा है... ज्ञानावरणीय कर्म जीव ने किया। कहने के लिये क्यों? कि रागादि के समय परमाणु बँधते हैं, समय तो एक है। समय एक है। यहाँ राग किया और वहाँ मोहनीय बँधा। यहाँ ऐसे परिणाम हुए और वहाँ भविष्य का आयुष्य बँधा तो इतना उस समय में देखकर उसने किये, ऐसा झूठे व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसा कहने का हेतु क्या? इतना कि एक समय है न? दोनों का समय तो एक ही है। आहाहा! जिस समय में उसने ज्ञानावरणीय बँधे, ऐसे भाव किये। भाव का कर्ता होकर अज्ञानी ने (भाव किये), उसी समय में ज्ञानावरणीय बँधता है। भले वे परमाणु

अपनी पर्याय की योग्यता के काल में बँधते हैं, वहाँ अपना स्वकाल है। परन्तु यह समय और यह समय दोनों एक होने के कारण इसने बँधे, ऐसा निमित्त से झूठे व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! देखो तो सही मार्ग प्रभु का! परमागम क्या कहता है? समझ में आया? परमागम व्यवहार किसे कहता है और निश्चय किसे कहता है? परमार्थ निश्चय किसे कहता है? अशुद्ध निश्चय किसे कहता है? आहाहा!

शुद्ध परिणाम का कर्ता-कर्म, वह भी उपचार से है। यह पहले आ गया है। कर्ता और कर्म ऐसे दो भाग पड़ गये न? शुद्ध परिणाम का कर्ता आत्मा है, यह भी उपचार से है। व्याख्यान में पहले आ गया है। कहाँ है? कहाँ है पहला? इस ओर है कहीं, इस ओर है, इस पृष्ठ पर। खबर है परन्तु पृष्ठ कहीं याद रहते हैं, बापू! कितना है? पचास पृष्ठ पर है, हिन्दी। (कलश-४९) वही परिणाम द्रव्य से किय हुआ है, यह उपचारमात्र से है। आहाहा! **जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है, वही परिणाम द्रव्य से किया हुआ है, वैसे अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं...** आहाहा! है? हिन्दी में पचासवें पृष्ठ पर है, छठवीं-सातवीं लाईन है, बीच में छठवी-सातवीं लाईन है। मेरी गुजराती (पुस्तक में) तो यहाँ है। **जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है,...** देखा? यह भी कर्ता उपचार से और **वही परिणाम द्रव्य से कराया हुआ है, वैसे अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं...** अपने परिणाम का कर्ता आत्मा है, ऐसा कहना, वह उपचार है, परन्तु पर का कर्ता तो उपचार से भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! क्या हो?

(यहाँ कहते हैं, अशुद्ध परिणाम होते समय) **कर्म जीव के ने किये। स्वरूप का विचार करने पर ऐसा कहना झूठा है;...** आहाहा! **कारण कि 'यदि निश्चयेन चिन्त्यते', 'यदि निश्चयेन चिन्त्यते' जो...** निश्चय अर्थात् सच्ची। निश्चय का अर्थ किया वापस। सच्ची व्यवहारदृष्टि। वह झूठी व्यवहारदृष्टि थी। आहाहा! निश्चय अर्थात् **सच्ची व्यवहार दृष्टि से देखने में आवे,** क्या देखने में आवे? स्वद्रव्यपरिणाम-परद्रव्यपरिणामरूप वस्तु का स्वरूप, तो... **सच्ची व्यवहारदृष्टि से देखा जाये, क्या देखा जाये? स्वद्रव्य परिणाम परद्रव्य परिणामरूप वस्तु का स्वरूप, तो 'सदा एव कर्तृ कर्म एकं इष्यते'** देखा?

सच्ची व्यवहारदृष्टि। इतना भेद हुआ न? परिणाम जीव ने किये और परिणाम जीव का कार्य, यह भी व्यवहारदृष्टि से है, सच्ची व्यवहारदृष्टि से। वह झूठी व्यवहारदृष्टि थी। आहाहा! क्या कहा? कि आत्मा अपने परिणाम का कर्ता और परिणाम आत्मा का कर्म। चाहे तो शुद्ध हो या अशुद्ध हो। अशुद्ध अज्ञानी के, शुद्ध ज्ञानी के, परन्तु वह भी उपचारमात्र से है। आहाहा! उपचार अर्थात् आरोप। वह भी व्यवहारनय से है। परन्तु वह कैसा व्यवहारनय? सच्चा व्यवहार। आहाहा! निश्चय का अर्थ यह किया। ऐसी बात है।

'निश्चयेन' सच्ची व्यवहारदृष्टि से देखा जाये, क्या देखा जाये? स्वद्रव्य परिणाम परद्रव्य परिणामरूप वस्तु का स्वरूप, तो 'सदा एव कर्तृ कर्म एकं इष्यते' स्वद्रव्य के परिणाम और परद्रव्य के परिणाम, अपने-अपने कर्ता-कर्म है, पर के साथ तो कुछ सम्बन्ध नहीं है। है? **'सदा एव' सर्व काल में...** आहाहा! तीनों काल, तीन लोक में सर्व काल। आहाहा! **परिणमता है जो द्रव्य...** यह निश्चय अर्थात् सच्ची व्यवहारदृष्टि। **परिणमता है जो द्रव्य...** देखो! परिणमता है जो द्रव्य। द्रव्य परिणमता है। पर्याय लेनी है इस अपेक्षा से। आहाहा! **परिणमता है जो द्रव्य और कर्म अर्थात् द्रव्य का परिणाम... 'एकम् इष्यते' एक है अर्थात् कोई जीव अथवा पुद्गलद्रव्य अपने परिणामों के साथ व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है,...** लो! क्या कहा यह? ऐसा क्यों कहा? कि सच्ची व्यवहारदृष्टि से कि यह परिणाम, कर्म व्याप्य और आत्मा व्यापक अथवा पुद्गलादि प्रत्येक में, यहाँ आत्मा लेना। आत्मा व्यापक है और परिणाम व्याप्य है, ऐसा व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध अपने में और अपने में है, ऐसी सच्ची व्यवहारदृष्टि से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से तो वस्तु, वस्तु है। आहाहा! परिणाम का कर्ता कहना, वह सच्ची व्यवहारदृष्टि है। आहाहा! पर के परिणाम का कर्ता कहना, वह झूठी व्यवहारदृष्टि से है। आहाहा! अब ऐसी बात कहाँ है? मूल चीज़ की मर्यादा क्या है, वह बताते हैं। वह किसी ने कल्पित की हो और मान ली हो, तत्प्रमाण कहीं वस्तु की मर्यादा होती है?

सर्व काल **परिणमता है जो द्रव्य...** देखो! यह सिद्धान्त। जो परिणमता है, वह द्रव्य कर्ता और परिणमन हुआ, वह उसका कर्म, बस! तीनों काल यह सिद्धान्त। परमाणु में, आत्मा में, छहों द्रव्यों में जो पलटता है, परिणमता है, बदलता है—ऐसा द्रव्य कर्ता

है और बदला, परिणाम हुए, वह उसका कर्म, कार्य, बस! इसके अतिरिक्त किसी पर के साथ कोई सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया? अपने में भी इतना भेद डालना, वह सच्ची व्यवहारदृष्टि है। आहाहा! निश्चय से तो परिणाम परिणाम का कर्ता है। द्रव्य को कर्ता कहना, वह सच्ची व्यवहारदृष्टि है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! तत्त्व की दृष्टि। अभी तो पर से भिन्न, पर के परिणाम उस समय में होते हैं।

यह हाथ देखो ऐसे हिलता है तो यहाँ उस समय उसका विकल्प है और उस समय यह हाथ ऐसे हुआ तो झूठी व्यवहारदृष्टि से कहने में आया (कि) उसने अँगुली हिलायी। सच्ची व्यवहारदृष्टि से देखो तो अँगुली के परिणामरूप से परिणमनेवाला परमाणु है और परिणाम उसका कर्म है। यह लिखने की पर्याय उसका कार्य है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! बड़ी उथल-पुथल हो, ऐसा है।

यह कहे, अपने व्यवहाररत्नत्रय करेंगे तो निश्चय पायेंगे। आहाहा! अभी तो निश्चय जिसे आत्मा का अनुभव है, आनन्द का स्वाद आया हो, ऐसी दृष्टि में पूरा आत्मा आनन्दमय है, ज्ञान की पर्याय में भान हुआ, पर्याय का वेदन (हुआ) तो पूरा आत्मा ज्ञानमय है, ऐसा अनुभव में आता है। समझ में आया? आहाहा! वह भी निश्चय से तो वह द्रव्य परिणाम का कर्ता नहीं, परिणाम परिणाम का कर्ता है। समझ में आया?

षट्कारक की तो कल बात चली न? प्रत्येक द्रव्य के एक समय के परिणमन में षट्कारक का परिणमन होने से पर्याय होती है। पर्याय का कर्ता पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, पर्याय का करण-साधन पर्याय, पर्याय अपने में रखी, पर्याय से पर्याय हुई, पर्याय के आधार से पर्याय हुई। एक समय की पर्याय में षट्कारक है। आहाहा! विकृत या अविकृत। समझ में आया? आहाहा! वह विकृत परिणति कर्म से नहीं हुई, द्रव्य-गुण से नहीं हुई। अब अविकृत परिणमन, सम्यग्दर्शन परिणाम। यह दर्शनमोह का अभाव हुआ तो वे परिणाम हुए, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! और समकित के परिणाम द्रव्य ने किये, ऐसा भी निश्चय में नहीं है। समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन के काल में व्यवहार, राग आता है तो उसका भी कर्ता नहीं। उसे जानता है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। वास्तव में तो उस सम्बन्धी अपना ज्ञान है, उसे ही जानता है। आहाहा!

समझ में आया? व्यवहार और निश्चय के बड़े घोटाले। कहीं पता नहीं लगता। आहाहा! है न?

'एकम् इष्यते' एक है अर्थात् कोई जीव अथवा पुद्गलद्रव्य अपने परिणामों के साथ व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है,... क्या कहते हैं? कोई भी जीव अथवा पुद्गल अपने परिणाम के साथ व्याप्य-व्यापक है। आहाहा! परिणाम द्रव्य के साथ व्याप्य-व्यापक हैं, पर के साथ कोई व्याप्य-व्यापक है ही नहीं। आहाहा! शास्त्र में ऐसा आवे, ईर्यासमिति में देखकर चलना। आवे न? वह सब व्यवहार के कथन हैं। बात तो (ऐसी है) कि उन्हें प्रमाद के परिणाम नहीं, इतना बतलाना है। आहाहा! पैर के परिणाम आत्मा करे? राग के परिणाम का कर्ता भी ज्ञानी नहीं तो फिर पैर ऐसे ऊँचे-नीचे करने का कर्ता आत्मा है, यह तो है ही नहीं। आहाहा! क्या हो? यह तो बापू! वीतराग का मार्ग है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों ने परमागम में यह कहा। परमागम की दृष्टि क्या है? और परमागम का हुक्म क्या है? यह इसे जानना चाहिए न? समझ में आया? इसमें कहीं किसी की सिफारिश काम में नहीं आती। सिफारिश को क्या कहते हैं? आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है वहाँ... आहाहा!

एक-एक द्रव्य अपने-अपने परिणाम में व्याप्य-व्यापक है, **इसलिए कर्ता है;...** किस कारण से? अपने परिणाम के साथ व्याप्य-व्यापक होने के कारण से, इसलिए कर्ता है। व्यापक कर्ता, परिणाम कर्म; इसलिए कर्ता। किसलिए कर्ता है? कि अपने-अपने साथ व्याप्य-व्यापकरूप से परिणमता है, इसलिए कर्ता। व्यापक और व्याप्य अपने में है, इस कारण से कर्ता कहा जाता है और वही कर्म। अपने व्याप्य-व्यापकरूपी कर्ता और वही कर्म। व्यापक, वह कर्ता और व्याप्य, वह कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। आहाहा! **क्योंकि परिणाम उस द्रव्य के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है;...** आहाहा! आहाहा! यह भाषा बोलने में आती है, भाषा, उसकी पर्याय का कर्ता वह भाषा है। भाषावर्गणा व्यापक है और परिणाम—पर्याय हुई, वह व्याप्य है। आहाहा! आत्मा उसका कर्ता है ही नहीं। अरे रे! आहाहा! कहो, यह वकील कोर्ट में दलील करते होंगे न? रामजीभाई ने दलील नहीं की होगी वहाँ? यह जज है, जज थे, अहमदाबाद में जज (थे), रिटायर

हो गये। रिटायर हैं न अब तो? अहमदाबाद में कोर्ट में जज थे। सब व्याख्यान में आते थे वहाँ अहमदाबाद में जज-बज, वकील सब बड़े-बड़े व्याख्यान में सब आवे, परन्तु यह बात बहुत सूक्ष्म पड़े, सूक्ष्म। क्या हो? आहाहा! अभ्यास नहीं, हें?

मुमुक्षु : जज को भी सूक्ष्म पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : जज को क्या, जज तो लौकिक के जज हैं या यहाँ के? डाह्याभाई! आहाहा! यह डॉक्टर हैं। इनका पुत्र हुआ है? ताराचन्दभाई जज थे? ऐसा। इनके पिता थे और यहाँ आते थे। व्याख्यान ऐसा सरस आवे तो आँख में से आँसू बहते जाते ताराचन्दभाई को। खबर है न। व्याख्यान में ऐसी शैली आती हो, अन्दर से जब धारा (आती हो)। बैठे हों ऐसे। स्तम्भ के सहारे वहाँ बैठते थे। आँसू की धारा बहती। रोवे। आहाहा! यह क्या चीज़ है और कैसे (प्राप्त हो)? ताराचन्द को प्रेम था। आहाहा! जज थे? यह अपने को खबर नहीं। व्यापारी होंगे (ऐसा लगता था)।

यहाँ यह कहते हैं, कि प्रत्येक परमाणु, वह एक-एक परमाणु और एक-एक आत्मा, निगोद के एक शरीर में अनन्त आत्मायें, उसमें एक आत्मा के परिणाम और दूसरे आत्मा के परिणाम के बीच कर्ता-कर्म नहीं है। और इतने में अनन्त तैजस, कार्मण के रजकण पड़े हैं तो एक-एक तैजस-कार्मण परमाणु के परिणाम, उस परमाणु के परिणाम परमाणु व्यापक होकर करता है। वह जीव व्यापक होकर करता नहीं। आहाहा! ऐसा है, बापू! सूक्ष्म बहुत। लोगों को ऐसा लगे...

परिणाम उस द्रव्य के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है; ऐसा विचार करने पर घटित होता है... देखा? यथार्थ ज्ञान करने पर व्याप्य-व्यापकपना एक-एक द्रव्य में अपने में है, पर के साथ व्याप्य-व्यापकपना है नहीं। आहाहा! भाषा बोल सके नहीं, आत्मा खा सके नहीं, आहाहा! आत्मा अक्षर लिख सके नहीं। क्या?

मुमुक्षु : पुस्तक खोल सके नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोल सके नहीं, पृष्ठ ऐसे ऊँचे कर सके नहीं। आहाहा! यह सब जज है। अभिमानी थे। ये डाह्याभाई!?

मुमुक्षु : करने का अभिमान।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान। बहुतों में बड़े जज थे, वहाँ अहमदाबाद में बहुत कोर्ट है न? कोर्ट के बहुत वकील व्याख्यान में आते। अरे! बापू! मार्ग अलग है, प्रभु, भाई! आहाहा! किसी व्यक्ति के अनादर के लिये नहीं। यह तो वस्तु की स्थिति यह है। हें? आहाहा!

अनुभव में आता है। देखो! क्या कहते हैं? प्रत्येक पदार्थ व्यापक विस्तार पाकर परिणमता है और वे परिणाम उसका कर्म और वह कर्ता, ऐसा विचार में, अनुभव में आता है। अनुभव अर्थात् ज्ञान में भासित होता है। समझ में आया? अनुभव का अर्थ तो बहुत चलता है। दो परमाणु, चार परमाणु एकरूप होते हैं न? एक, दो, चार वह अनुभवते हैं, ऐसा शास्त्र में पाठ है। उसे भी अनुभवते हैं ऐसा पाठ है। क्या कहा? एक परमाणु में दो गुण स्निग्धता है, दूसरे में चार गुण स्निग्धता है, तो यहाँ चार गुण हुए, स्वयं से हुए हैं, परन्तु दोनों एकरूप हुए, ऐसा अनुभवते हैं। समयसार में पहले आता है। जड़ की अनुभूति, नहीं? जड़ में भी अनुभूति है। वह अनुभूति अर्थात् उसरूप होना। आहाहा! भगवान आत्मा की अनुभूति में आनन्द का स्वाद आना, वह अनुभूति है। आहाहा! और वह अनुभूति अर्थात् होना, बस! आहाहा! ऐसी चीज़ है।

घटित होता है—अनुभव में आता है। इसका अर्थ (कि) ज्ञान में जानने में आता है, ऐसा। पर के परिणाम उसका कर्म और वह उसका कर्ता, ऐसा अनुभव में आता है, उसका अर्थ मेरे ज्ञान में ऐसा आता है। आहाहा! समझ में आया? अपने परिणाम कर्म और अपने परिणाम का आत्मा कर्ता, ऐसा ज्ञान में आता है। आहाहा! **अन्य द्रव्य का अन्य द्रव्य कर्ता, अन्य द्रव्य का परिणाम अन्य द्रव्य का कर्म...** कर्म अर्थात् कार्य। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य और दूसरा द्रव्य उसका कर्ता, **ऐसा तो अनुभव में घटता नहीं;...** आहाहा! ऐसा तो हमारे ज्ञान में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हमारे ज्ञान में ऐसा तो हमको भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह (गाथा) ३७२ में कहा न, कुम्हार घड़ा करता है, ऐसा हमको तो दिखता नहीं। घड़ा तो मिट्टी से होता है, ऐसा हमको तो दिखता है। आहाहा! समझ में आया?

वह (अज्ञानी) कहे, एकान्त हो जाता है। कथंचित् कर्ता भी कहो, कथंचित्

अकर्ता कहो। ऐसा नहीं है। स्व के परिणाम—राग का कर्ता कथंचित् है, वह भी अज्ञानभाव में। यह पहले आ गया न, अपने आ गया। 'भेदाअवबोध' भेदज्ञान से पहले, भेदज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन होने से पहले राग मेरा कार्य और राग मेरा कर्ता ऐसा जानो। अज्ञानभाव से जानो। आहाहा! और भेदज्ञान ऊर्ध्व करो, फिर जब भेदज्ञान हुआ, राग से भिन्न हुआ, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी सम्यग्दर्शन में भिन्न हुआ, तब से तू... आहाहा! अकर्ता जान। पहले आ गया है। समझ में आया? भेदज्ञान से पहले, यदि तू जैन को मानता हो तो, ऐसा लिया न? जैन को माननेवाला स्याद्वाद मानो। अर्थात् भेदज्ञान होने से पहले विकार का कर्ता तू है, ऐसा जान। विकार कर्म से होता है, ऐसा मत जानो। आहाहा! और भेदज्ञान होने के पश्चात् **'ऊर्ध्व', 'ऊर्ध्व'** शब्द पड़ा है, पश्चात्... आहाहा! समकिती को व्यवहार, राग की क्रिया आती है। उसे ही व्यवहार कहते हैं। अज्ञानी को व्यवहार है कहाँ? निश्चय बिना व्यवहार होता ही नहीं। आहाहा! निश्चय है, उसे व्यवहार का अकर्ता मानो, भेदज्ञान होने के बाद। आहाहा! जैन के मतवाले, माननेवाले, जैन की आज्ञा मानते हैं तो यह आज्ञा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मास्टर लड़के को पढ़ा सकता है। नहीं? पण्डितजी! अच्छा मास्टर हो तो लड़के को अच्छा ज्ञान हो। साधारण मास्टर हो तो कम हो, ऐसा है?

मुमुक्षु : गुरु तो उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देता है? उपदेश उपदेश से चलता है। आहाहा! और उसे ज्ञान होता है, वह उसकी पर्याय से होता है (या) वाणी से होता है? वाणी के परिणाम या उसके ज्ञान के परिणाम, दोनों भिन्न चीज़ है। आहाहा!

अन्य द्रव्य का परिणाम अन्य द्रव्य का कर्म—ऐसा तो अनुभव में घटता नहीं;... देखो! ज्ञान में तो आता नहीं, हमारे ज्ञान में तो (आता नहीं)। आहाहा! **कारण कि दो द्रव्यों का व्याप्य-व्यापकपना नहीं है।** आहाहा! आत्मा व्यापक होकर कर्म की पर्याय का व्याप्य करे, ऐसा नहीं होता। कर्म व्यापक होकर जीव के परिणाम व्याप्य करे, ऐसा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह व्याप्य-व्यापकपना दो द्रव्यों में घटित नहीं होता। एक द्रव्य में घटित होता है। यह उपचार से। द्रव्य कर्ता और परिणाम कर्म, यह

भी उपचार से है। यथार्थ में तो परिणाम, परिणाम का कर्ता है। द्रव्य तो ध्रुवरूप से है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु जब ऐसा लेना हो, यहाँ तो आया न, परिणमता है, आया न? **परिणमता है जो द्रव्य...** ऐसा आया न? पर्याय उसकी है, इस अपेक्षा से। ध्रुव तो ध्रुव है। ध्रुव परिणमे कहाँ? परिणमती है तो पर्याय। तो पर्याय का कर्ता पर्याय है निश्चय से तो। आहाहा! ऐसा हमारे ज्ञान में आता है, ऐसा यहाँ आचार्य कहते हैं। (जैसा) आता है, वैसा हम कहते हैं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २११

(नर्दटक)

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ।।१९-२११।।*

श्लोकार्थ — 'ननु किल' वास्तव में 'परिणामः एव' परिणाम ही 'विनिश्चयतः' निश्चय से 'कर्म' कर्म है, और 'सः परिणामिनः एव भवेत्, अपरस्य न भवति' परिणाम, अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है; अन्य का नहीं (क्योंकि परिणाम, अपने-अपने द्रव्य के आश्रित हैं; अन्य के परिणाम का, अन्य आश्रय नहीं होता); और 'कर्म कर्तृशून्यं इह न भवति' कर्म, कर्ता के बिना नहीं होता, 'च' तथा 'वस्तुनः एकतया स्थितिः इह न' वस्तु की एकरूप (कूटस्थ) स्थिति नहीं होती (क्योंकि वस्तु, द्रव्य-पर्याय स्वरूप होने से, सर्वथा नित्यत्व बाधासहित है); 'ततः' इसलिए 'तत् एव कर्तृ भवतु' वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्म का कर्ता है (यह निश्चित सिद्धान्त है)।।१९-२११।।

माघ शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक-१८-०२-१९७८, कलश-२११, प्रवचन-२३५

कलश टीका, २११ कलश है।

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ।।१९-२११।।

क्या कहते हैं? **'ननु किल' वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म है,...** क्या

* पण्डित श्री राजमलजी की टीका में आत्मख्याति का यह श्लोक, अनुवाद करने से रह गया है; अतः हिन्दी समयसार के आधार से उक्त श्लोक, अर्थसहित यहाँ दिया गया है।

कहते हैं ? बात तो यह चली आती है कि जीव कर्म के परिणाम को करता नहीं। जीव राग को करे। वह राग उसका परिणाम और उसका वह कर्म। उस समय कर्म जो बँधते हैं, वे कर्म परमाणुओं का वह कर्म परिणाम है। वह परिणाम अर्थात् कर्म। पुद्गल के रजकण हैं, वे ज्ञानावरणादिरूप होते हैं, वह परिणाम उन परमाणु का परिणाम—कर्म है। ऐसी बात। यहाँ तो यह अन्दर का दृष्टान्त दिया। इस प्रकार से बाहर की चीज़ तो कहीं रह गयी। जो यहाँ राग के परिणाम जीव करे, वह परिणाम उस जीव का कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। उस समय कर्म बँधते हैं, उस परिणाम का कार्य जीव का नहीं है। आहाहा! उसी समय में, जिस समय राग और द्वेषादि परिणाम हुए, उसी समय में वहाँ सामने कर्म बँधते हैं, परन्तु वह कर्म के परिणाम पुद्गल के परिणाम कर्मरूप हुए हैं, वह कर्मरूप पर्याय हुई, परिणाम (हुए), वह पुद्गल का कार्य है, आत्मा का कार्य नहीं। अरे! ऐसी बातें। समझ में आया ? जब अन्दर में इस प्रकार है तो बाहर की बात तो क्या करना ? ऐसा कहते हैं। है ? २११।

वास्तव में परिणाम... परिणाम अर्थात् कर्म की पर्याय, वह परिणाम। यहाँ जीव का राग वह जीव की पर्याय, वह परिणाम। वह परिणाम वही **'विनिश्चयतः' निश्चय से कर्म है...** कर्म अर्थात् कार्य। आहाहा! समझ में आया ? जीव ने यहाँ राग किया या द्वेष किया, इसलिए कर्म बँधे, (ऐसा नहीं है)। वह कर्म के परिणाम का कार्य पुद्गल कर्म का है, आत्मा का नहीं। दूसरे प्रकार से, जीव जो धर्म परिणाम करता है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान के परिणाम, वह जीव का कार्य है। उस समय कर्म का अभाव होता है, वह कार्य जीव का नहीं। समझ में आया ? दर्शनमोह का या चारित्रमोह का (अभाव हुआ, वह जीव का कार्य नहीं)। दर्शन, ज्ञान के परिणाम जीव ने अपने आश्रय से किये तो वे परिणाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वह आत्मा का कार्य है, परन्तु उस समय में कर्म का अभाव हुआ, वह आत्मा का कार्य नहीं है। आहाहा! वह कर्म का अभाव (हुआ), वह पुद्गल का कार्य है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया ?

परिणाम—परिणाम अर्थात कोई भी निर्मल परिणाम या समल परिणाम, कर्म परिणाम या शरीर के परिणाम। यह शरीर है, देखो! तो शरीर के यह जो परिणाम होते

हैं, वह कर्म है, कर्म अर्थात् कार्य। किसका? वह परमाणु का; आत्मा का नहीं। समझ में आया? आत्मा का (कार्य) तो इच्छा की, वह उसका कार्य अथवा उस काल में इच्छा का ज्ञान किया, वह उसका कार्य है, परन्तु यह शरीर की क्रिया (हुई), वह कार्य आत्मा का नहीं है। आहाहा! पूरे दिन यह सब करते हैं न? तुम्हारे टाईल्स का और क्या डालते हैं? क्या कहलाता है वह, नहीं? टाईल्स में। हें? रंग छिड़के और दूसरा कुछ कहलाता है न वह? भात पाड़ने के लिये। डिजाईन—भात पाड़ने के लिये डालते हैं न कुछ? सब देखा था न एक बार जामनगर में। जामनगर में एक बड़ा अपना वढ़वाण का? टाईल्स का बड़ा धन्धा। कारखाना है। वहाँ दूध पीया था, वहाँ सब टाईल्स भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। छापी हुई ऐसे अमुक प्रकार की। वढ़वाण के हैं वे अपने स्थानकवासी। परन्तु ऐसे प्रेमी, इसलिए वहाँ दूध पीया था। जामनगर!

यह यहाँ कहते हैं, आहाहा! यह छांट ऐसे जो पड़े अन्दर में, वह परिणाम—कार्य उस परमाणु का है। यह तुम्हारे घर की बातें चलती हैं। आहाहा! बड़ा कारखाना है वहाँ—जामनगर। भिन्न-भिन्न प्रकार की टाईल्स में यहाँ दूसरी छाँट, यहाँ दूसरी छाँट, यहाँ दूसरी छाँट (ऐसी) सात-आठ प्रकार की सब देखी थी वहाँ। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि, कोई भी परमाणु या कोई भी आत्मा उस समय के जो परिणाम परमाणु के या आत्मा के होते हैं, वे परिणाम ही उस जीव का और जड़ का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? यह पहला सिद्धान्त कहा।

मुमुक्षु : काम करना या हाथ जोड़कर बैठे रहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हाथ जोड़े और हाथ छोड़े कौन? हाथ जोड़ने की इस स्थिति के परिणाम का कर्ता तो परमाणु है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह बात तो सिद्धान्त की है, अमल में कैसे लाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धान्त जिस प्रकार से है, उस प्रकार से अमल में लाया जाता है या दूसरे प्रकार से अमल में लाया जाता है? ऐसा कि, यह तो सिद्धान्त हुआ कि आत्मा अपने परिणाम करे, पर के नहीं। परन्तु अब उसका कार्य (क्या)? परन्तु दूसरा कौन सा कार्य है? अज्ञानी राग और द्वेष के कार्य को करे, ज्ञानी ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम

को करे, बस! यही उसका सिद्धान्त है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

यहाँ परिणाम (अर्थात्) विद्यालय के लड़कों का परिणाम आता है, वह नहीं। परिणाम अर्थात् उस-उस द्रव्य के उस क्षण के पर्यायरूपी भाव, उसे यहाँ परिणाम कहते हैं। वह परिणाम उस-उस द्रव्य का कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा! समझ में आया? है?

मुमुक्षु : कल तो आप कहते थे उपचार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक को दो के बीच कहना हो तब। वह तो पर से भिन्न करते समय उसके परिणाम का कर्ता वह है, ऐसा कहना है। फिर उनके दो के भेद करना हो तो परिणाम कर्म और आत्मा कर्ता, यह भी उपचार है। धर्म के परिणाम का कर्ता आत्मा और परिणाम धर्म उसका कार्य, यह भी उपचार है। यहाँ तो अभी पर से भिन्न करने की (बात है)। आहाहा! क्षण में और पल में मैं करूँ.... मैं करूँ.... मैं करूँ.... आहाहा! समझ में आया?

यह सेव होते हैं, सेव, पापड, वडी। महिलायें बहुत होशियार हों, वे ऐसा मानती हैं कि मेरे हाथ से वडी बहुत अच्छी होती है।

मुमुक्षु : वह तो हल्का हाथ हो तो होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी हल्का नहीं, हाथ कहाँ इसके बाप का था? अभिमान करे कि हमारे हाथ से वड़ी अच्छी होती है। वड़ी कहते हैं न? पापड़, सेव... सेव। सेव बनाते हैं न? वे पाटिया के ऊपर बटकर (बनाते हैं)। खाट पर पाटिया डाला हो। बहुत होशियार हो... धूल भी होता नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारी एक भी बात आप नहीं मानते।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी एक-एक बात सब देखी है। सब नजर से देखी है वहाँ परीक्षा भी की है, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, यहाँ यह कहते हैं, देखो! **परिणाम ही निश्चय से कर्म है,...**

कर्म अर्थात् कार्य। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा में उस क्षण में होनेवाले उसके परिणाम—पर्याय वह कर्म अर्थात् कार्य कहा जाता है। उस-उस द्रव्य का वह कार्य है, ऐसा सिद्धान्त है। आहाहा! भाषा तो सादी है, परन्तु भाव (गम्भीर है)। यह भाव तो बहुत बार आ गये हैं, यह कहीं बहुत सूक्ष्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अब आता है, और '**सः परिणामिनः एव भवेत्, अपरस्य न भवति**' वह **परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है,...** आहाहा! देखो! विकार का आश्रय आत्मा है, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : अशुद्धनिश्चयनय से कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति है न यह? पुण्य-पाप के परिणाम का आश्रय जीव है। वह जीव '**परिणामिनः**' वह परिणामी जीव, उसका वह परिणाम है। क्योंकि परिणामी के आश्रय से परिणाम होते हैं। आहाहा! समझ में आया? है न? '**सः परिणामिनः एव भवेत्**' वह तो **परिणाम अपने आश्रयभूत...** देखो! विकार को भी परिणाम गिनकर जीव के आश्रय से होते हैं, ऐसा कहा है। आहाहा! कर्म के कारण नहीं। जीव में विकार होता है, वह परिणाम परिणामी का है। परिणामी अर्थात् पदार्थ, वह उसका परिणाम है। क्यों? वह परिणाम परिणामी के आश्रय से हुआ है। निमित्त के आश्रय से हुआ नहीं। आहाहा! पुण्य और पाप, दया और दान, काम, क्रोध भाव हो या हिंसा, झूठ आदि यह काम करूँ, यह भाव—परिणाम, परिणामी का; परिणामी अर्थात् द्रव्य, उस उस द्रव्य के आश्रय से वह परिणाम होते हैं। आहाहा! समझ में आया? अब यहाँ कहते हैं कि तुम दो इकट्ठे मानो तो तुम्हारा अनेकान्त कहलाये। एक ही मानो तो एकान्त कहलाये, ऐसा वे लोग कहते हैं। यहाँ कहते हैं, एकान्त है, वही सम्यक् है। आहाहा! सम्यक् अर्थात् सत्य।

'**सः परिणामिनः एव भवेत्**' देखा? वह **परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही... 'एव'** है न? '**एव भवेत्**'। आहाहा! विकार के परिणाम परिणामी आत्मा के आश्रय से ही है। आहाहा! इसी तरह धर्म के परिणाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि धर्म के परिणाम परिणामी अर्थात् आत्मा के आश्रय से ही है। आहाहा! समझ में आया? इसका बड़ा विवाद है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का करे। अभी एक वह आर्यिका है न? वह भी

यहाँ के विरुद्ध का बहुत डालती है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न करे, यह नहीं है। एकान्त है। करता है। वह भी सुननेवाले भी कैसे? दिगम्बर के सुननेवाले उसके जैसे। कुछ विचार करते हैं कि यह क्या कहती हैं? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का करे। न करे तो यह कर्म के कारण विकार होता है, ऐसा कहते हैं। कर्म के परिणाम का आश्रय परमाणु। कर्म की अवस्था होने में उस परिणाम का आश्रय वह पुद्गल उसका आश्रय है, राग आश्रय नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

छह कारण से ज्ञानावरणीय बँधता है। उन छह कारण के परिणाम का कर्म कर्ता परिणामी। वह छह प्रकार के परिणाम जो ज्ञानावरणीय के बन्धन में निमित्त हैं, उन परिणाम का आश्रय आत्मा और उस काल में ज्ञानावरणीय जो बँधता है, तो उन ज्ञानावरणीय परिणाम का आश्रय उसके परमाणु हैं। आहाहा! यह तो सीधी-सादी भाषा है, इसमें कहीं बहुत सूक्ष्म नहीं है। दो बातें हुईं। कौन सी दो बात? कि परिणाम, वह कार्य है—यह एक बात। और वह परिणाम परिणामी के आश्रय से है, यह दो बात। दो सिद्धान्त हुए। आहाहा!

यह बीड़ी सुलगाते हैं न? सेठ! बीड़ी... बीड़ी। तो कहते हैं कि वे परिणाम जो ऐसे हुए बीड़ी के परिणाम, वह उसका कार्य है, बीड़ी के रजकण का और वे परिणाम उस रजकण के आश्रय से हुए हैं। इस अँगुली के आश्रय से हुए हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अब यह डॉक्टर इंजेक्शन देते हैं न? नाड़ी देखते हैं न यह नाड़ी? वह रग आवे रग, डालने के लिये। ऐई! खोजते हैं या नहीं? कहते हैं कि, ऐसे जो खड्डा पड़ा, वह परिणाम उस परमाणु का कार्य है, अँगुली का नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन काम।

मुमुक्षु : धन्धा कैसे चलेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा कौन करता है? अभिमान करता है। सेठ! हम करते हैं। बहुत किया है न अभिमान। साईकिल में घूम-घूमकर फिर पैसे इकट्ठे किये हैं, ऐसा सुना है। यह स्वयं साईकिल पर जाते थे। पैसे के परमाणु यहाँ आवें, वह परिणाम उस

पैसे का कर्म है और वह परिणाम, उस पैसे के रजकण के आश्रय से हुए हैं। दूसरे ने वहाँ पैसे पैदा किये और लाया है और रखे हैं, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! हें? ....परन्तु वह तो प्रत्येक को अनादि से है न! आहाहा! ऐसा मार्ग!

दो बोल हुए। कौन से दो बोल हुए? कौन से दो बोल हुए? बोले गये अभी, अभी बोले गये। यह नहीं... नहीं... नहीं। इसका ध्यान नहीं है। बात की अभी कह गये कि एक परिणाम जो प्रत्येक द्रव्य का है, वह उसका कार्य है—एक बात। और वह परिणाम परिणामी के आश्रय से है, यह दूसरी बात। ऐसा का ऐसा चला आता है, भाषा तुम समझो कि मानो हम समझते हैं और ऐसा और ऐसा चला आता है। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : यह भाव पकड़ते हैं, कहना नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारा बचाव करते हैं। आहाहा! स्त्री है, उसका जो आत्मा है, उसे जो राग हुआ, उस राग का परिणाम, वह कर्म है और वह राग का परिणाम कर्म, वह उसके आत्मा के आश्रय से हुए है। उसके पति के आश्रय से राग हुआ है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो दो सिद्धान्त हैं। आहाहा! यह कारखाना सब चलाते हैं न? वह कारखाना की जो पर्याय होती है, वह परिणाम उस कारखाने के रजकण का कर्म अर्थात् कार्य है। कहो, वजुभाई! यह वजुभाई का कारखाना याद आया। आये थे न वहाँ? आहाहा! कहो, समझ में आया? ... भारी, मशीन ऐसे चले, वह आदमी खड़ा हो, वह ऐसे चलावे तो कहते हैं कि, वह मशीन चलने के परिणाम हैं, वे कार्य हैं। किसका? कि उस परमाणु के आश्रय से हुआ है। दूसरे की अँगुली के आश्रय से हुआ नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप ही तत्त्व का है। अब उसे जहाँ-तहाँ अभिमान... अभिमान... अभिमान... 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खीचे' आहाहा!

दो बोल हुए। यहाँ विकार का आश्रय भी आत्मा लिया। आत्मा तो द्रव्य-गुण से शुद्ध है। परन्तु इसका अर्थ यह कि उस द्रव्य की पर्याय द्रव्य के आश्रय से हुई है, इतना। वह कोई पर के आश्रय से हुई है, (ऐसा नहीं है)। इतना। क्या कहा यह? विकार है,

वह द्रव्य-गुण में तो है नहीं। तब द्रव्य-गुण के आश्रय से विकार हो, वह किस प्रकार? परन्तु उसका अर्थ कि वह द्रव्य-गुण का लक्ष्य तो उसे वहाँ है नहीं, उसका लक्ष्य पर के ऊपर है, तो भी वे द्रव्य के परिणाम द्रव्य से—उससे हुए हैं, ऐसा। क्या कहा, समझ में आया?

द्रव्य-गुण जो है, वह तो शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है। अब उसमें से राग उत्पन्न होता है, वह तो दुःख है। दुःख का आश्रय कौन? कि, आत्मा। आत्मा तो आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है।

मुमुक्षु : वह तो अज्ञानी को।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तो भी अज्ञानी को भी वह दुःख का आश्रय है, ऐसा कहना है। जिसमें आनन्द है, वह आत्मा। अर्थात् वह उसकी चीज़ है न अखण्ड? ऐसा गिनना है। आहाहा! वास्तव में तो वह परिणाम जो राग के या दुःख के होते हैं, उनका कर्ता और आश्रय वे परिणाम ही हैं, परन्तु यहाँ वे परिणाम परद्रव्य के आश्रय से नहीं हुए, इतना सिद्ध करने के लिये अपने आश्रय से हुए हैं, ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अधिकरण....

पूज्य गुरुदेवश्री : आधार। नहीं तो अधिकरण तो पर्याय स्वयं ही है। आहाहा!

दो। **(अन्य के परिणाम का अन्य आश्रय नहीं होता);...** देखो! आत्मा के राग के और धर्म के परिणाम का आश्रय पर नहीं है। आहाहा! देव-गुरु और धर्म की वाणी, वह आत्मा के धर्म के परिणाम उनके आश्रय से हुए, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुनते हुए शब्द कान में पड़ने पर उसे जो ज्ञान के परिणाम होते हैं, वे परिणाम उस-उस आत्मा का कर्म है, वह वाणी का कार्य नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। समझ में आया? वह वाणी की पर्याय कान में पड़ी, इसलिए यहाँ ज्ञान के परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। उस परिणाम का कार्य उस-उस आत्मा का है, और वह आत्मा के आश्रय से हुए परिणाम हैं, वाणी के आश्रय से या भगवान को देखा, इसलिए उनके आश्रय से वे परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। भगवान की प्रतिमा के दर्शन होने पर जो शुभभाव हों, वह

शुभभाव उस जीव का कर्म है और वह शुभभाव जीव के आश्रय से होता है, वह प्रतिमा के आश्रय से नहीं।

मुमुक्षु : निमित्त तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त का अर्थ ही यह है कि कार्य उससे नहीं होता। उसका अर्थ तब निमित्त कहा गया।

मुमुक्षु : गुरु के आश्रय से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु के आश्रय से भी उसके धर्म के परिणाम नहीं होते, ऐसा तो यहाँ कहते हैं। तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हों, देव चँवर ढोरते हों परन्तु उसके आश्रय से इसके शुभभक्ति के परिणाम होते हैं? नहीं, नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। तब भी अपने आश्रय से यदि शुभभाव हो तो फिर यह मन्दिर-बन्दिर किसलिए बनाते हो? ऐसा कोई कहे। पुस्तक के आश्रय से भी ज्ञान होता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : तो फिर आप किसलिए वाँचते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन वाँचता है? यह भाषा के परिणाम तो भाषा के कारण हुए और यहाँ परिणाम जो होते हैं, वे आत्मा के आश्रय से हुए, इसके (—पुस्तक के) आश्रय से हुए नहीं। आहाहा! यह पुस्तक है, इससे यहाँ ज्ञान के परिणाम हुए नहीं, यह जानने के परिणाम वह आत्मा का कर्म है और वह परिणाम परिणामी का है, इसका (पुस्तक का) नहीं। आहाहा! समझ में आया? दो (बोल) हुए।

तीसरा बोल। **और 'कर्म कर्तृशून्यं इह न भवति' कर्म कर्ता के बिना नहीं होता,...** कार्य—परिणाम कर्ता के बिना नहीं होता। तीसरा बोल। दो बोल हुए न? कि परिणाम, प्रत्येक आत्मा के वर्तमान परिणामरूपी परिणाम, वह उसका कार्य है और वह कार्य उसके द्रव्य के आश्रय से हुआ है—दो बात। और तीसरी बात—अब वे परिणाम कर्ता के बिना नहीं होते। समझ में आया? आहाहा! है? '**कर्म कर्तृशून्यं इह न भवति**' वह कर्म अर्थात् परिणाम कर्ता के बिना नहीं होते। आहाहा! कर्ता उसके द्रव्य को सिद्ध करना है न? वास्तव में तो उसकी पर्याय ही कर्ता है। रागादि की पर्याय ही कर्ता है,

गुण-द्रव्य कहाँ कर्ता है? परन्तु उसका अवलम्बन है न वहाँ? द्रव्य का अवलम्बन है न उसे अपने विकार में? इतना बस। आश्रय करना अर्थात् वहाँ द्रव्य-गुण का आश्रय करता है तो विकार (होता है), ऐसा यहाँ नहीं लेना, परन्तु उसकी पर्याय में उसके अवलम्बन से होता है, अर्थात् द्रव्य के अवलम्बन से होता है। उसकी अपनी-अपनी पर्याय का वास्तव में तो अवलम्बन है।

मुमुक्षु : 'वास्तव' में शब्द ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वास्तव में का अर्थ है। वह यह कहना है, इसके लिये तो स्पष्टीकरण किया। उसकी सत्ता का वहाँ अवलम्बन है, परसत्ता का अवलम्बन नहीं, इतनी बात। है? यह अपेक्षा है। आहाहा! यह तो लॉजिक—न्याय है। एक भी न्याय बदले तो पूरा तत्त्व बदल जाये। यह तो सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने देखे वे सब न्याय हैं। आहाहा! होशियार मनुष्य हो, इसलिए यह दुकान का सब काम व्यवस्थित कर सकता है, यह बात एकदम झूठी है, ऐसा कहते हैं। हें?

मुमुक्षु : नौकर ठोठ रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौकर ठोठ हो तो भी काम नहीं होता, वह ठोठ है, इसलिए नहीं होता, ऐसा नहीं है। पर का काम अच्छा नहीं होता, वह यह ठोठ नौकर है, इसलिए अच्छा नहीं होता, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : रखना कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन रखे और कौन छोड़े? आहाहा! कठिन बातें, बापू! यह तो सब सिद्धान्त है। एकदम सिद्धान्त है। आहाहा!

प्रत्येक पदार्थ की वर्तमान दशा, वह वह उसका परिणाम, वह उसका कार्य और वह कार्य उसके द्रव्य के आश्रय से होता है और उस परिणाम के कर्ता बिना परिणाम नहीं हो सकता। आहाहा! '**कर्तृशून्यं इह न भवेत**' प्रत्येक पदार्थ के परिणाम में कर्म वह स्वयं कार्य होने पर भी, वह परिणाम कर्ता के बिना नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह तीसरा बोल हुआ।

चौथा बोल। यह गाथा (कलश) मुद्दे की रकम की है। चौथा बोल। **वस्तु की**

एकरूप (कूटस्थ) स्थिति नहीं होती... यह क्या कहते हैं ? कि लोगों को ऐसा लगता है कि यह अग्नि आयी, इसलिए यह पानी गर्म हुआ। तो कहते हैं, नहीं। यह गर्म पानी के परिणाम, वह कर्म है और वह कर्म कार्य है, वह पानी के आश्रय से हुआ; अग्नि के आश्रय से नहीं। एक बात। और वह परिणाम कर्ता के बिना नहीं होता, इसलिए वे पानी के परमाणु ही उसके कर्ता हैं, दो बात। तब (कोई) कहे कि, (पानी) पहले एकदम ठण्डा था और अग्नि आकर एकदम गर्म हुआ। पहली ठण्डी अवस्था था, अग्नि आकर गर्म हुआ (तो कहते हैं), वस्तु की स्थिति एकरूप नहीं रहती, इसलिए गर्म हुआ है। अग्नि आयी इसलिए गर्म हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वस्तु की स्थिति—अवस्था एकरूप नहीं रहती। स्थिति—अवस्था क्षण-क्षण में बदलती है, इसलिए वह पानी गर्म हुआ, ऐसा दिखता है, परन्तु अग्नि के कारण पानी गर्म हुआ, ऐसा हम देखते नहीं और ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

लकड़ी है, एक लकड़ी। अब इसे ऐसे दूसरा जलाता है। तब कहते हैं कि यह अवस्था है, वह क्या है ? वह परिणाम है, कार्य है। किसके आश्रय से (हुए) ? वे लकड़ी के आश्रय से (हुए)। ऐसे अँगुली की, इसलिए नहीं। दो (बातें हुईं)। तीसरा, कर्ता बिना वह पर्याय हुई नहीं। तीन। तब कहते हैं कि पहले सीधी अवस्था थी और यह हुई (वह किस प्रकार हुई) ? उसकी स्थिति एकरूप नहीं होती इसलिए। दूसरे समय में दूसरी होने का कार्य हो, इसलिए वह होती है। आहाहा! समझ में आया ?

यह लकड़ी है, देखो! अब यह नीचे थी और ऐसे ऊँची हुई। तो कहते हैं कि वह परिणाम है उसके, वह उसका कर्म है, वह परमाणु के आश्रय से कर्म है और कर्ता के बिना वे परिणाम होते नहीं। और वे परिणाम हुए, पहले नहीं थे और ऐसे हुए, उसका कारण (क्या) ? कि वस्तु की स्थिति एकरूप नहीं होती। भिन्न-भिन्न स्थिति होती है इसलिए भिन्न-भिन्न स्थिति दिखती है। वह पर के निमित्त से भिन्न-भिन्न स्थिति है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? कहो, चिमनभाई! यह क्या तुम्हारे सब स्टील का कारखाना.. ?

मुमुक्षु : गुरुदेव! यहाँ कोई इनकार नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसे निर्णय करना पड़ेगा या नहीं ? ऐसा कहते हैं कि

यहाँ कोई इनकार नहीं करे, परन्तु वहाँ जाये वहाँ... कहाँ जाये और कौन आवे? आहाहा! ऐसी बात इसे निश्चित करनी पड़ेगी, भाई!

मुमुक्षु : ध्यान रखने के लिये तो मुम्बई से आये हैं और आप उसकी ना कहते हो तो हमारे करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस-उस समय के वे परिणाम अभी होते हैं, वे परिणाम उस-उस द्रव्य का कार्य है और वे परिणाम उस द्रव्य के आश्रय से हुए हैं। यहाँ की सुनने के आश्रय से नहीं होते और वे परिणाम कर्ता के बिना नहीं होते, उसका आत्मा उस परिणाम का कर्ता है। तब कहे, वहाँ स्थिति दूसरी थी और यहाँ (दूसरी) हुई उसका (क्या)? तो कहते हैं, वह तो उसकी स्थिति एकरूप नहीं रहती, इसलिए दूसरे परिणाम हुए। समझ में आया? वहाँ मुम्बई में थे, तब दूसरे परिणाम थे और यहाँ दूसरे परिणाम हैं, इसलिए यहाँ के कारण कुछ असर है? यहाँ का कुछ असर वहाँ है? कि, वह कर्म यहाँ का है? कि नहीं। क्योंकि सिथति एकरूप नहीं रहती, दूसरी स्थिति हुई है। इसलिए दूसरी स्थिति हुई है, इसलिए पर के निमित्त से हुई, इस बात में कुछ दम नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

घर में बैठे थे, (तब) परिणाम कुछ थे और मन्दिर में आये और भगवान के दर्शन हुए और परिणाम दूसरे हुए। तब कहते हैं कि उन परिणाम में यह कुछ कारण है या नहीं वे? नहीं। उसकी स्थिति एकरूप नहीं होती, इसलिए दूसरी स्थिति, दूसरे परिणाम हुए हैं। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसी बातें हैं। हैं?

मुमुक्षु : परिवर्तन हुआ, वह पर्याय में हुआ या द्रव्य में?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में हुआ। वह द्रव्य ने किया—ऐसा कहा जाता है। है तो पर्याय का। पर्याय में ही कर्ता सब है। यह तो बात हो गयी न! महासिद्धान्त यह कि प्रत्येक छह द्रव्य हैं वे द्रव्य और गुण तो कूटस्थ ध्रुव है। अब उनकी पर्याय जो समय-समय में होती है, वह पर्याय पर्याय की कर्ता, पर्याय उसका कार्य, पर्याय पर्याय का कार्य। एक समय में छह बोल पर्याय में लागू पड़ते हैं। यह सिद्धान्त यदि निर्णय करे तो पर के साथ कुछ सम्बन्ध (न रहे), उसके कारण से होता है, यह बात है नहीं।

द्रव्य-गुण के कारण भी पर्याय का षट्कारक का परिणमन नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

वर्णीजी के साथ यही बड़ी चर्चा हुई थी न! बड़ा विवाद उठा। क्योंकि वे लोग तो ऐसा माने, कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण विकार होता है। वहाँ एकदम रखा। एक भाई ने बराबर पकड़ा, फूलचन्दजी ने। सब सुननेवाले हाँ करते थे। फूलचन्दजी ने कहा, स्वामीजी ऐसा कहते हैं, आत्मा में विकृत अवस्था होती है, वह कर्म के कारण नहीं। निश्चय से षट्कारकरूप से परिणमन पर्याय का है, इसलिए पर के कारक की अपेक्षा नहीं, इसलिए हुए हैं। समझ में आया? सेठिया को कहाँ भान भी था? जय नारायण! और सिर पर बैठा हो उसकी हाँ करे। निर्णय करने की (कहाँ निवृत्ति है)? पैसे में ना करे कि, तुम्हारे पिता को मेरे पिता ने उस भव में पाँच लाख दिये हैं। (तो कहे), नहीं। सेठ! हें?

मुमुक्षु : निर्णय करानेवाले न मिलें तो कैसे करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो यह कहते हैं कि निर्णय के परिणाम तो स्वयं के हैं, बापू! आहाहा! निर्णय करने के परिणाम का कार्य तो इसका अपना है। कहो, नवरंगभाई! आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : डॉक्टर को बीमार को देखना या नहीं देखना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डॉक्टर रहे। आहाहा! भाव करे, इस भाव का कर्म तो इस जीव का है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसे गुरुदेव! दो द्रव्य की भिन्नता करे, इसे सम्यग्दर्शन होगा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी भिन्नता से एक मिथ्यात्व में एक भाग का अभाव होगा। मिथ्यात्व के बहुत प्रकार में से।

मुमुक्षु : प्रवचनसार में कहते हैं कि दो द्रव्य के दो स्वरूपअस्तित्व भिन्न जाने, उसे सम्यग्दर्शन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से एक ही प्रकार नहीं, वापस राग से लाभ होता है,

ऐसी मान्यता अन्दर रहे (तो) शल्य रह गया। उसमें कहा है, बन्ध अधिकार में, समयसार में। इस जीव को मैं बचा सकता हूँ, मार सकता हूँ, यह मिथ्यात्व है। तब वहाँ लिखा है कि एक मिथ्यात्व का यह एक भाग है। ऐसा लिखा है। समयसार, पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ किया है। पूरा मिथ्यात्व है, उसमें मिथ्यात्व के तो बहुत प्रकार हैं, उसमें का यह एक भाग है। समझ में आया? यथार्थरूप से राग से भिन्न पड़ जाये तो हो गया, तो उसे सब छूट गया। आहाहा!

मुमुक्षु : राग से भिन्न पड़ा कब कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर से अनुभव का आनन्द आवे, तब कहलाये। राग का स्वाद है, वह पलटकर आनन्द का स्वाद आवे, तब भेदज्ञान हुआ कहलाये, तब उसका कार्य हुआ। तथापि वह परिणाम उसका कर्म है और वह परिणाम—भेदज्ञान के परिणाम का कर्ता जीव है, उसके आश्रय से हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यह तो गम्भीर बात है, बापू! सम्प्रदाय में तो यह दया पालो, करो यह, व्रत करो, जाओ! सब उल्टी गड़बड़-गड़बड़ है। आहाहा! क्या हुआ यह चौथा बोल?

वस्तु की एकरूप स्थिति अर्थात् कूटस्थ स्थिति नहीं होती... परिणाम बदले, यह संयोग निमित्त आया और यहाँ परिणाम बदले, इसलिए तुमको ऐसा लगता है कि इस निमित्त से बदले हैं। ऐसा नहीं है। उसकी स्थिति एकरूप नहीं रहती, इसलिए वे बदले हैं। समझ में आया? लो! जोर से बोलो, धीरे से बोलो। कहते हैं कि वह धीरे से बोलो जो भाषा निकली है, वह पर्याय परमाणु के आश्रय से निकली है। तब कहे कि पहली पर्याय ऐसी नहीं थी और यह हुई, इसलिए धीरे से बोलो यह आत्मा ने जाना, इसलिए हुई या नहीं? कि नहीं। वह परमाणु की स्थिति दूसरे समय में दूसरी होने की थी, स्थिति फेरफार होने की है, इसलिए हुई है। आहाहा! देखो तो सही सिद्धान्त!

मुमुक्षु : यह लोग दलील करते हैं कि परिणमन स्वभाव की हम कहाँ ना करते हैं? परिणमता है। गुण परिणमता है, वह निमित्तकृत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही झूठी है, यह यहाँ कहते हैं? इसलिए कहते हैं।

मुमुक्षु : परिणमन में हमको दिक्कत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन पर्याये न स्थिति बदली वह स्थिति बदलने के कारण से बदली है।

मुमुक्षु : परिणमन का नियामक निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियामक आत्मा है।

मुमुक्षु : तो परिणाम सापेक्ष हुआ, निरपेक्ष नहीं रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। निरपेक्ष (है)। निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं। हो निमित्त।

मुमुक्षु : .... सकारो बनाऊँ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बन सकता नहीं तीन काल में। सकोरा कौन बनावे? और घट कौन बनावे?

मुमुक्षु : दलील ऐसी करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते हैं न, कहते हैं। मिट्टी का सकोरा बनाना हो तो बनाया जा सकता है, घट बनाना हो तो बनाया जा सकता है। यह तो अपने 'खानिया चर्चा में' है। 'खानिया चर्चा'। कपड़ा लाया परन्तु दर्जी अभी न सिले तो कपड़ा पड़ा रहे। सिलने का भाव हो तब कपड़े का कार्य होता है। देखो! उसके कारण होता है या नहीं? यह बात ही खोटी है। कपड़े का ढ़ेर आदि कार्य जब होने का था, तब वह कार्य उस कपड़े के परमाणु से हुआ है, सुई से नहीं, मशीन से नहीं। यह खानिया चर्चा में डाला है। उन सामनेवालों द्वारा। फूलचन्दजी के सामने। देखो! यह कपड़ा सिलने को दिया, परन्तु वह अभी विवाह के काम में था तो कपड़ा पड़े रहे। वह कब होगा? कि उसका भाव हो, तब कपड़े का ढ़ेर होगा। यह बात अत्यन्त झूठी है। उस कपड़े में से ढगला या पहनने का होने का जो समय था, वह समय आने पर स्वयं से होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जिस समय में होने का था, उस समय में वही होता है, वह इस सिद्धान्त में कहाँ आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से निकला। एक ही समय में होता है, उस समय होता है।

मुमुक्षु : परिणाम हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम कहो।

मुमुक्षु : यही परिणाम होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परिणाम होते हैं।

मुमुक्षु : यह इसमें कहाँ आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कर्म इसका है इसलिए।

मुमुक्षु : वह तो कर्म एक, परन्तु ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही आवे।

मुमुक्षु : यह इस सिद्धान्त में से ऐसा निकलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निकलता है। स्थिति में अन्तर क्यों कहा ? कि उसके परिणाम का जो काल है, उस प्रकार से दूसरा आया। यह स्थिति के अन्तर से आया है, पर के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : वही परिणाम...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही परिणाम हो, वह जो होने के काल में जो होनेवाला वह यह इसमें निकलता है। 'स्थिति' शब्द इसलिए प्रयोग किया है। बदला क्यों ? कि उस-उस काल में स्थिति होने की नहीं थी और स्थिति बदली उस काल में .... तब हुआ। आहाहा! कठिन है, दुनिया से तो कठिन है भई! पूरी बात ही। श्रद्धा में बड़ा अन्तर, पूर्व-पश्चिम (का अन्तर है)। आहाहा! देखा ?

वस्तु की एकरूप स्थिति... नहीं, इसलिए पलटा है और पलटने का काल उसका उस प्रकार का उस समय का था, इसलिए पलटा है। आहाहा! जन्मक्षण गिना है। ज्ञेय का स्वभाव-१०२ गाथा में। ज्ञेय अर्थात् छह द्रव्य का ऐसा स्वभाव है कि उसकी पर्याय, उसके जन्मक्षण में उत्पत्ति के काल में ही वह उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! कितने नियम रखना है! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, इसने एक दया के भाव किये और वहाँ सातावेदनीय बँधी। तो

कहते हैं, इस परिणाम से साता वेदनीय बँधी या वह सातावेदनीय के परिणाम का कर्म है, वह परमाणु का है या इस दया के भाव का है? आहाहा! फोटो खींचते हैं सामने, लो! सामने सिंह चला जा रहा है। सिंह के फोटो खींचते हैं, सैंकड़ो सिंह होते हैं और खींचते हैं। तो ये फोटो के रजकण वहाँ से आते हैं? और यहाँ रजकण में वे निमित्त हुए, इसलिए यहाँ फोटो खिंचा है? कि नहीं। यह बात! वे रजकण वहाँ हैं, इसके फोटो खिंचने के परिणाम—कर्म वह रजकण के परमाणु हैं, उसके आश्रय से हुए हैं, सामने के आश्रय से नहीं। ऐसा ही खिंचता है, वह तो अपनी परमाणु की पर्याय की योग्यता से ऐसा खिंचता है। सामने के कारण से नहीं। अब यह बात कब बैठे? आहाहा! वह जरा ऐसा करे, वह अन्दर दिखता है तो भी उसके कारण से वहाँ फोटो नहीं खिंचा। कहते हैं। आहाहा! उस क्षण के वे परमाणु उसरूप परिणामरूपी कर्म को किया, इसलिए वह फोटो उस प्रकार से खिंचा है। लो, सेठ! तुम्हारा पुत्र है न फोटो खींचनेवाला? आहाहा! परन्तु उसे सुनने का प्रेम हुआ है। फोटो खींचता है। आहाहा! और वहाँ के रजकण (यहाँ) आवे, तब तो वह सूख जाये। क्या कहा?

अफ्रीका में सिंह के झुण्ड होते हैं, सैंकड़ों सिंह, सैंकड़ों। इसलिए फोटो, फिल्म बनाने जाते हैं। यह पाँच-पाँच, दस-दस लाख की एक बड़ी मोटर होती है और आड़े लोहे के सरिया होते हैं। यहाँ काँच होता है। इसलिए वह सिंह आवे तो सरिये तक आ सकता है, अन्दर नहीं घुस सकता। अन्दर नहीं आ सकता। ऐसी बड़ी (मोटर होती है)। सैकड़ों सिंह और छोटे बच्चे चले जा रहे हों। वहाँ तो सैकड़ों खिंचे। वहाँ से परमाणु आते हैं? और उनके कारण यहाँ फोटो के परमाणु-फिल्म बनती है? वहाँ तो बहुत फिल्म बनाते हैं। वे भागे तो भी ऐसे बनाते हैं। बड़ी फिल्म। एक सेकेण्ड में क्या कहते हैं? अपने यहाँ बनाते हैं न अभी? तीन मिनिट में नहीं कुछ कहा? आठ सौ का खर्च। यहाँ फिल्म बनायी न? भाई ने—कान्तिभाई मोटाणी (ने बनायी है)। कान्तिभाई मोटाणी। एक घण्टे —६९ मिनिट, ऐसा कुछ कहा। अभी बीस हजार खर्च किये। मोटाणी (ने)। मैंने पूछा, तीन मिनिट फिल्म बनायी, उसका (खर्च) कितना? कि आठ सौ रुपये। तीन मिनिट के आठ सौ। फिल्म के। तो यहाँ के परमाणु वहाँ जाते हैं? आहाहा! भारी कठिन बातें हैं। यह तो निमित्त है। निमित्त है, इसलिए वहाँ कुछ उसके कारण से होता

नहीं। तब तो निमित्त कहा जाता है। आहाहा! वहाँ के परमाणु उस समय उस परिणाम एकरूप रहने की स्थिति नहीं थी। इसलिए पहली स्थिति दूसरी थी, दूसरी स्थिति इस काल में होने की वह स्थिति बदलकर हुई है। आहाहा!

दुनिया के साथ तो सब विवाद उठे। पण्डित भी विवाद उठाते हैं न? कोई परद्रव्य का कुछ नहीं करता, (ऐसा माने) वह दिगम्बर जैन नहीं, जाओ! ठीक बापू! आहाहा! यह इन्दौर में पण्डितों के बीच चर्चा हुई थी। पचास पण्डितों के बीच। परद्रव्य का नहीं कर सकता, ऐसा माननेवाले दिगम्बर जैन नहीं हैं। कर सकता है। लो, ठीक! यहाँ इनकार करते हैं। दिगम्बर धर्म यह इनकार करता है। एक द्रव्य के परिणाम दूसरे द्रव्य से नहीं होते। आहाहा! ऐसी बात है।

होती नहीं। क्या कहा? **वस्तु की एकरूप स्थिति (अर्थात् कूटस्थ स्थिति) नहीं होती (क्योंकि वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व बाधासहित है);...** वह बदलती है। वह नित्य वस्तु है, वह बदलती है, वह बदलने का परिणमन स्वभाव है। नित्य तो नित्य ही है। आहाहा! परन्तु परिणमन में बदलने का अपने कारण से, पर्याय के स्वभाव के कारण से बदलती है। इसलिए निमित्त आकर बदलता तुझे दिखता है, वह तुझे झूठा (दिखता है)। यहाँ एक व्यक्ति कहता था कि हम यहाँ बैठे हैं, उसमें ऐसे परिणाम होते हैं, जहाँ भगवान की यात्रा करने जायें, वहाँ हमारे परिणाम कैसे होते हैं? और तुम कहते हो कि पर से कुछ होता नहीं। समझ में आया? बापू! परन्तु वहाँ तू गया, वहाँ जो परिणाम हुए, उन परिणाम का उसका काल था, उस स्थिति का। इस कारण वे परिणाम हुए हैं, भगवान से नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन काम पड़े।

यह पुस्तक है। कहा न? पुस्तक को वन्दन करे, लो! यह पुस्तक (शास्त्र को) वन्दन करने के परिणाम इसके कारण हुए हैं? पुस्तक के कारण (हुए हैं)? पुस्तक,, पुस्तक के परिणाम का कर्ता है। वह जो वन्दन करता है, उसके परिणाम का कर्ता तो वह जीव है। यह पुस्तक तो निमित्त है। इसलिए पुस्तक से उसे वन्दन करने के परिणाम हुए? बिल्कुल नहीं। आहाहा! यह पठन दूसरे प्रकार का है, सेठ! यह दूसरा प्रकार है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, आहाहा! सर्वज्ञदेव की स्कूल है यह तो। यह तो सर्वज्ञदेव की स्कूल है। इसे दूसरी सब पढ़ाई भूलकर यह करना पड़ेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु की स्थिति एकरूप नहीं रहती हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकरूप न ही रहे। क्या कहा?

मुमुक्षु : वस्तु की स्थिति एकरूप नहीं रहती हो तो ध्येय किसे बनावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे बनाना है? पर्याय पर्याय का ध्येय है। पर्याय को परमार्थ से तो द्रव्य-गुण का भी आश्रय नहीं। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! धर्म की पर्याय हो, उसका ध्येय भले द्रव्य (हो), परन्तु वह पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। ध्येय का अर्थ मात्र लक्ष्य किया इतना। परन्तु लक्ष्य बदला, वह भी पर्याय की सामर्थ्य से बदला है, द्रव्य की सामर्थ्य से नहीं। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! वीतरागमार्ग, जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का मार्ग कहीं है नहीं ऐसा। किसी स्थान में, जगह (नहीं है)। अभी सब फेरफार-फेरफार हो गया है। आहाहा! परिणाम का उसका वह-वह काल है, जन्मक्षण है, इसलिए वह परिणाम होता है। पर का लक्ष्य किया, इसलिए वहाँ परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

घर में परिणाम थे स्त्री के लक्ष्य से और भगवान के दर्शन में गया, तब दूसरे परिणाम हुए। इसलिए परिणाम भगवान के कारण हुए हैं, ऐसा नहीं है। और स्त्री के समय जो राग के परिणाम हुए, वे स्त्री के कारण हुए हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व बाधासहित है; इसलिए... 'तत् एव कर्तृ भवतु' वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप... आहाहा! यह योगफल। प्रत्येक वस्तु आप स्वयं। स्वयं **अपने परिणाम अर्थात् पर्यायरूप कर्म का कर्ता है...** कर्म अर्थात् कार्य। अपने पर्यायरूपी कार्य की कर्ता है। **(यह निश्चय सिद्धान्त है)**। आहाहा! यह तो गुजराती समझ में आये ऐसा है, यह तो सादी भाषा है। आहाहा!

चार सिद्धान्त कहे कि प्रत्येक द्रव्य का परिणाम है, उसे कर्म—कार्य कहा जाता है—एक बात। वह कार्य उस द्रव्य के आश्रय से है, पर के आश्रय से नहीं—दो बात। वह कार्य कर्ता के बिना नहीं होता, इसलिए करनेवाला उसका द्रव्य है—यह तीसरी बात। और वह फेरफार लगता है, निमित्त आकर तुझे फेरफार लगता है तो वह तो

उसकी स्थिति का फेरफार है, इसलिए फेरफार होता है। यह तो समझ में आये ऐसा है। यह तुम्हारी टाईल्स-फाईल्स का कुछ कर नहीं सकता, ऐसा सब इसमें आता है। आहाहा! यह एक श्लोक हुआ। एक श्लोक में कितना भर दिया है! आहाहा!

वे कहते हैं कि ज्ञानावरणीय का क्षय हुआ, इसलिए केवलज्ञान होता है। शास्त्र में नहीं कहते? चार कर्म का नाश होने पर केवलज्ञान होता है। यहाँ इनकार करते हैं। उसके कारण से नहीं। केवलज्ञान के परिणाम होने के काल में स्वयं के कारण से वह अपना कर्म और कार्य है। उसका केवलज्ञान का बहुत आश्रय लेना हो तो वह आत्मा है। कर्म का हटना हुआ, इसलिए केवलज्ञान हुआ—ऐसा नहीं है। आहाहा! यह वह कहीं (बात है)! ज्ञान के अन्दर जो हीन और वृद्धि दशा दिखती है, वह ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है, इसलिए हीन दशा दिखती है और ज्ञानावरणीय का कुछ क्षयोपशम, इसलिए यहाँ क्षयोपशम विशेष दिखता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह बड़ी चर्चा तब वर्णीजी के साथ हुई थी और उसमें भी (पुस्तक में भी) लिखा है न कि कम-ज्यादा ज्ञानावरणीय कर्म बिना स्वयं से होता है, ऐसा कानजीस्वामी कहते हैं। नहीं, ज्ञानावरणीय कर्म के कारण कम-ज्यादा होता है। यहाँ इनकार करते हैं। ज्ञान का घटना या बढ़ना वह परिणाम स्वयं का कार्य है, उसके कार्य का कर्ता द्रव्य है। एकरूप स्थिति नहीं, इसलिए वह होता है। आहाहा! और कर्ता के बिना नहीं होता, उसका कर्ता स्वयं है, हीन और अधिक का। कर्म नहीं। ज्ञानावरणीय कर्म हटा, इसलिए यहाँ क्षयोपशम हुआ और अन्दर उदय विशेष रहा, इसलिए यहाँ क्षयोपशम घटा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी बात है। विशेष कहेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २१२

(पृथ्वी)

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम्।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ।।२०-२१२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—जीव का स्वभाव ऐसा है कि सकल ज्ञेय को जानता है। कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा जानेगा कि ज्ञेयवस्तु को जानते हुए, जीव के अशुद्धपना घटित होता है। उसका समाधान ऐसा है कि अशुद्धपना नहीं घटित होता है, जीववस्तु का ऐसा ही स्वभाव है, जो समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है। यहाँ से लेकर ऐसा भाव कहते हैं—'इह स्वभावचलनाकुलः मोहितः किं क्लिश्यते' [इह] जीव, समस्त ज्ञेय को जानता है-ऐसा जानकर, [स्वभाव] जीव का शुद्धस्वरूप, उससे [चलन] स्खलितपना जानकर, [आकुलः] खेद-खिन्न हुआ मिथ्यादृष्टि जीव, [मोहितः] मिथ्यात्वरूप अज्ञानपना के अधीन हो [किं क्लिश्यते] क्यों खेद-खिन्न होता है? कारण कि 'यतः स्वभावनियतं सकलं एव वस्तु इष्यते' [यतः] जिस कारण [सकलं एव वस्तु] जो कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य इत्यादि है; वह सब [स्वभावनियतं] नियम से, अपने स्वरूप है-ऐसा [इष्यते] अनुभवगोचर होता है। यही अर्थ प्रगट करके कहते हैं—'यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं बहिर्लुठति' [यद्यपि] यद्यपि प्रत्यक्षरूप से ऐसा है कि [स्फुटत्] सदा काल प्रगट है [अनन्तशक्तिः] अविनश्वर चेतनाशक्ति जिसकी—ऐसा जीवद्रव्य, [स्वयं बहिः लुठति] स्वयं समस्त ज्ञेय को जानकर, ज्ञेयाकाररूप परिणमता है-ऐसा जीव का स्वभाव है, 'तथापि अन्यवस्त्वन्तरं' [तथापि] तो भी [अन्यवस्त्वन्तरं] एक कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य, 'अपरवस्तुनः न विशति' किसी अन्य द्रव्य में प्रवेश नहीं करता है; वस्तुस्वभाव ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य, समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है, ऐसा तो स्वभाव है परन्तु ज्ञान, ज्ञेयरूप नहीं होता है; ज्ञेय भी, ज्ञानद्रव्यरूप नहीं परिणमता है—ऐसी, वस्तु की मर्यादा है।।२०-२१२।।

माघ शुक्ल १२, रविवार, दिनांक-१९-०२-१९७८, कलश-२१२, प्रवचन-२३६

कलशटीका, २१२ है।

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम्।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ।।२०-२१२।।

क्या कहते हैं? **जीव का स्वभाव ऐसा है कि...** यह जीव जो है आत्मा, उसका स्वभाव जानना-ज्ञान, ज्ञान है। ज्ञान उसका स्वभाव है। इस जड़ में वह स्वभाव नहीं। यह शरीर तो मिट्टी है। वह जीव का स्वरूप और स्वभाव, स्व-भाव जानना—प्रज्ञा, वह उसका स्वभाव है। वह पर को **सकल ज्ञेय को जानता है।** जानने में यह जानने में तो वस्तु आवे। सर्प है, यह बिच्छू है, यह कोयला है। ज्ञान पर को जाने, इससे कहीं अशुद्ध हो जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञान ज्ञान में रहकर पर को जानता है, वह अशुद्ध नहीं। पर को जानने से अशुद्ध हो जाता है, ऐसा कितने ही अज्ञानी मानते हैं। पर को जानना, अपने को छोड़कर पर को (जानना), वह तो अशुद्ध हो गया। पर को और स्व को जानने का उसका स्वभाव है, वह अशुद्धता नहीं। समझ में आया?

कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा जानेगा कि ज्ञेय वस्तु को जानते हुए जीव के अशुद्धपना घटित होता है। हमें पर को जानना, वह तो आत्मा में मलिनता हो जाती है, ऐसा मानता है। ऐसा नहीं है, वह तो ज्ञान का स्वभाव है। आहाहा! दृष्टान्त देंगे, दिया है। कलई का दृष्टान्त है, कलई का। खड़ी समझ में आता है? खड़ी समझते हैं। सेठ! खड़ी... खड़ी... सेटिका। कलई होती है न? दीवार पर सफेद करते हैं। 'सेटिका' शब्द है, अपने उसमें सेटिका है। वह कलई दीवार को सफेद करती है, ऐसा कहना। यह कहते हैं कि व्यवहार है। दीवार तो दीवाररूप रही हुई है। कलई की सफेदी जो है, वह सफेदी सफेदी में रही हुई है। उस सफेदी से दीवार सफेद नहीं हुई।

ध्यान रखना, न्याय आता है, धीरे... धीरे। यह कलई है, वह सफेद है। वह

सफेद हुई, वह कलई में रहकर सफेद हुई है। वह कलई की सफेदी दीवार में प्रविष्ट नहीं है। दीवार की दशा उस कलई की पर्याय में आयी नहीं और कलई की पर्याय दीवार की पर्याय में प्रविष्ट नहीं है। पर्याय समझ में आता है। उसकी वर्तमान दशा। तो कलई की जो दशा है, वह सफेद हुई है, तो दुनिया ऐसा कहती है कि दीवार सफेद हुई है। यदि दीवार सफेद हुई हो तो सफेदी जब नाश हो जाये, तब दीवार का नाश होना चाहिए। दीवार सफेद नहीं, सफेद तो कलई हुई है वहाँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अग्नि पानी को गर्म होने में निमित्त होता है तो वह अग्नि पानी को स्पर्शी नहीं है। यह बात कठिन (पड़ती है)। वस्तुस्थिति कोई ऐसी है। पानी की बूँद के रजकणों को अग्नि के रजकण स्पर्श नहीं करते। छूते नहीं, समझते हो न? अड़ते नहीं—हमारी गुजराती भाषा में। आहाहा! क्योंकि वह पानी वस्तु और अग्नि है, वह दो चीज़ है, वे अपनी-अपनी चीज़ में रही हुई है और उस चीज़ की दशा पर को स्पर्श नहीं करती। स्पर्श करे कब कहलाये? कि दोनों एक हो जायें। तो दोनों तो एक होते नहीं। आहाहा! दोनों एक हुए नहीं। आहाहा! ऐसा है। हें?

मुमुक्षु : यह बात सबको बैठनी चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : बैठानी पड़ेगी। सब हैरान होकर मर जाते हैं। ऐसे के ऐसे। सेठ! वहाँ तुम्हारे करोड़-फरोड़ रुपये यहाँ मदद नहीं करते।

मुमुक्षु : वहाँ मदद नहीं करे, अन्यत्र कहीं मदद करेंगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मदद नहीं करते। रुपये की पर्याय रुपये में रही। यह शरीर की पर्याय शरीर में रही, आत्मा की पर्याय में शरीर की पर्याय नहीं आती और शरीर की पर्याय में आत्मा की पर्याय नहीं जाती।

यह दो अँगुलियाँ हैं, देखो! तो इस अँगुली की अवस्था, उसमें इस अँगुली की अवस्था में यह अवस्था नहीं जाती। तब यह स्वपने है और परपने नहीं। तब उसका अस्तित्व टिक रहा है। न्याय से, लॉजिक से, तत्त्व क्या है, इसे समझना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया? यह अँगुली इस अँगुली को छूती नहीं, स्पर्शती नहीं। क्योंकि इसकी जो पर्याय—अवस्था है, वह इसके अस्तित्व में है और इसकी पर्याय है, वह इसके

अस्तित्व में है। इसका अस्तित्व इस अस्तित्व को नहीं स्पर्श करता और इसका अस्तित्व इसे नहीं छूता नहीं स्पर्शता। आहाहा! ऐसा है, भाई! तत्त्व-पदार्थ विज्ञान कोई अलौकिक है। यह विज्ञान अभी सरकार जो कहती है, वह अलग, यह तो विज्ञान का विज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

यह कहते हैं कि जैसे वह कलई है... आहाहा! वह दीवार का सफेद नहीं करती। वह तो अपनी सफेदी की अवस्था का ऐसा विस्तार दिखता है। दीवार तो दीवाररूप रही है। दीवार की पर्याय की अवस्था में सफेद पर्याय घुस नहीं गयी—प्रवेश नहीं किया। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ आत्मा पर को जानता है, वहाँ पर की अवस्था की पर्याय में यह पर्याय प्रविष्ट नहीं हुई। आहाहा! इसे तत्त्व की खबर नहीं (कि) क्या तत्त्व है। जानने की पर्याय पर को जानते हुए पर को जानने की पर्याय में प्रविष्ट नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह 'पर्याय' शब्द ही हमने सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अर्थात् अवस्था। परी-आय, परी-आय। परी उपसर्ग है। समस्त प्रकार से बदलना, पलटना। वस्तु है, वह कायम रहकर वर्तमान दशा में पलटा खाती है, इसका नाम पर्याय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो सब अध्यात्म बातें हैं, अनन्त काल में इसने सुनी नहीं। बाकी यह सब यह किया और वह किया। आहाहा!

सोना है न सोना? सोना की साँकल, साँकल, चैन कहते हैं? पूरे सोने की चैन है, वह सोना है। अब उसमें जो मकोड़ा है, उस प्रत्येक मकोड़ा सोना है, तो वह पीला उसका गुण है। सोना कायम रहकर, पीला भी कायम रहकर उसकी अवस्था जो बदलती है, सोने में से कड़ी हो, कुण्डल हो, कड़ी, कुण्डल, अँगूठी (हो), वह सब उसकी अवस्थायें कही जाती हैं। अवस्था अर्थात् पर्याय कही जाती है। पर्याय अर्थात् बदलती अवस्था कही जाती है।

मुमुक्षु : सोनी उसकी इच्छा अनुसार उसमें से जो आकार करना हो वह करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठ बात है। ऐसी बात है। सोनी की इच्छा प्रमाण

सोने का गहना करे। नहीं, बिल्कुल झूठी बात है। वह सोनी अपनी वर्तमान अवस्था में वहाँ रहे। आत्मा आत्मा की पर्याय में, शरीर शरीर की अवस्था में रहता है। वह पर की घढ़ने की अवस्था में उसकी पर्याय प्रविष्ट नहीं होती कि वह पर को घढ़े। आहाहा! ऐसी बात! नहीं तो उसका स्वयं भिन्न अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। इसका अस्तित्व, पदार्थ का अस्तित्व पर से भिन्न स्वयं अस्तित्व है, वह सिद्ध नहीं होता। पर के कारण हो तो अपना अस्तित्व कहाँ गया। आहाहा! लॉजिक से, न्याय से कुछ समझेगा या नहीं? सूक्ष्म बात है, भाई! दुनिया से तो दूसरा प्रकार है। यह तो सब दुनिया की खबर नहीं? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो! **समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है। यहाँ से शुरु करके ऐसा भाव कहते हैं—'इह स्वभावचलनाकुलः मोहितः किं क्लिश्यते'** अरे! **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है ऐसा देखकर जीव का शुद्धस्वरूप, उससे स्खलितपना जानकर...** क्या कहते हैं? भगवान ज्ञानस्वरूप प्रज्ञा, चैतन्यबिम्ब, चैतन्यप्रकाश का बिम्ब है। जैसे यह सूर्य परमाणु के प्रकाश का बिम्ब है, उसी प्रकार यह चैतन्यप्रकाश का बिम्ब है। वह पर को जानते हुए उसे—अज्ञानी को शंका पड़ जाती है कि पर का जानना (हो), वहाँ मुझे अशुद्धता हो जाती है। परन्तु पर को जानने की पर्याय तुझमें रहती है, उसमें जाती नहीं और वह चीज़ है, वह तेरी जानने की पर्याय में आती नहीं।

ज्ञान ने अग्नि है, ऐसा जाना। ज्ञान की अवस्था ने अग्नि है, ऐसा जाना, तो अग्नि की पर्याय में ज्ञानपर्याय प्रविष्ट है? अग्नि की पर्याय में ज्ञानपर्याय प्रविष्ट हो तो ज्ञानपर्याय गर्म हो जाये और अग्नि की पर्याय गर्म है, वह ज्ञान की पर्याय में आ गयी है? ज्ञान आया है। उस सम्बन्धी का ज्ञान, वह तो अपना है। सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : ग्राह्य-ग्राहक सम्बन्ध किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ है नहीं ग्राह्य-ग्राहक सम्बन्ध। ग्राह्य-ग्राहक सम्बन्ध अपने में ही है, पर के साथ कुछ नहीं है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है अर्थात् कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! तत्त्व का विषय।

यह आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञानस्वरूप है। यहाँ यह कहते हैं कि, इस ज्ञान में

पर जानने में आवे, इसलिए वह ज्ञान की पर्याय वहाँ अन्दर में गयी है? समझ में आया? और पर जानने में आया इसलिए, वह अवस्था यहाँ ज्ञान में आ गयी है? आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, बापू! यह तत्त्व है, यह तो तत्त्वज्ञान का विषय है। तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। लोगों को मिला नहीं। स्थूलरूप से सब मिलकर... आहाहा!

यह जड़ लक्ष्मी है, उसे ज्ञान जाने, उस ज्ञान की पर्याय में लक्ष्मी आ गयी है अन्दर? और लक्ष्मी की पर्याय में यह ज्ञान की पर्याय वहाँ प्रविष्ट है? ज्ञान की पर्याय में उस ज्ञेय की अवस्था का अभाव है और ज्ञेय की अवस्था में ज्ञान अवस्था का अभाव है। अरे! समझ में आया? स्वपने है और परपने नहीं। यह तो महासिद्धान्त हैं, बापू! दुनिया से पूरा अलग प्रकार है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **जीव का शुद्धस्वरूप, उससे स्खलितपना जानकर खेद-खिन्न हुआ मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वरूप अज्ञानपना के अधीन हो क्यों खेद-खिन्न होता है?** अरे! क्या करता है तू यह? आहाहा! भगवान! तेरा स्वभाव तो जानना है न! जैसे अग्नि का स्वभाव उष्ण है, नमक का—लवण का स्वभाव खारा है। कलई का स्वभाव सफेद है; उसी प्रकार तेरा स्वभाव जानना है। आहाहा! तो वह जानते हुए, पर को जानते हुए तेरा ज्ञान अशुद्ध हो जाता है, यह भ्रम तुझे कहाँ से हो गया? ऐसा कि, यह पर आया न जानने में? पर आया न? ऐसा। पर आया नहीं, जानना तेरा तुझसे हुआ है। उसमें उसको अशुद्धता कैसे लगती है? कि यह पर यहाँ आया न? अग्नि यहाँ ज्ञात हुई, इसलिए अग्नि यहाँ आ गयी। अग्नि कहाँ (आयी है)? अग्नि अग्नि में है। तेरा जानना जानने में है। आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : बुखार ज्ञात होती है, तब दुःख होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुखार ज्ञात होती है, इसलिए नहीं। बुखार का ज्ञान करना, वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है, परन्तु वह ठीक नहीं, ऐसा इसे लगता है, उसका उसे दुःख है, वह तो द्वेष का दुःख है। बुखार की दशा तो इस शरीर में, जड़ में हुई। आत्मा में हुई है? आत्मा गर्म है? आत्मा तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की अरूपी चीज़ है। निरंजन निराकार अरूपी चैतन्य भगवान है। उसमें यह रूपी बुखार उसमें प्रविष्ट हो जाता

है ? बुखार। बुखार के परमाणु की पर्याय को ज्ञान जाने और ज्ञान (उसे) जानते हुए ज्ञान अशुद्ध हो गया, ऐसा भी नहीं है।

दूसरी बात, यह बुखार के परमाणु को जानते हुए ज्ञान दुःख को वेदता है, ऐसा भी नहीं। वह तो बुखार की पर्याय देखने पर इसे (ऐसा) हो जाता है कि मुझे यह उष्ण हो गया, मैं उष्ण हो गया, ऐसा करके उसे दुःख लगता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! लॉजिक, न्याय। न्याय में नि-धातु है। न्याय है न? उसमें नि धातु है। नि अर्थात् ? जो वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा ज्ञान, नि अर्थात् ज्ञान को ले जाना। इस प्रकार से वस्तु को निश्चित करना—निर्णय (करना)। आहाहा! फुरसत कहाँ। पूरे दिन संसार की होली। कमाना और भोग... आहाहा!

मुमुक्षु : खाना चाहिए न ? खाने के लिये तो करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाने का करता है ? वह तो खाने की क्रिया जड़ की है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जीभ को इस चूरमे का लड्डू या मोसम्बी, वह पानी जीभ को स्पर्श नहीं करता। जीभ पानी को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! बापू! वस्तु का अस्तित्व स्वयं से है, पर के कारण नहीं और पर का अस्तित्व उससे है, उसका अस्तित्व उसके कारण से है। आहाहा! तीसरी गाथा में आता है न ? भाई! सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो सब निर्णय हो गयी वस्तु की स्थिति है, परन्तु अभी बहुत गड़बड़ हो गयी है। सम्प्रदाय में गड़बड़ हो गयी है तो फिर अन्यत्र कहाँ है ? आहाहा! है ?

मुमुक्षु : यह गड़बड़ आपने मिटा दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीसरी गाथा है न ? समयसार। वहाँ ऐसा कहा है न कि प्रत्येक पदार्थ अपने में रहे हुए गुण और पर्यायरूपी धर्म; धर्म अर्थात् इसने धार रखी हुई चीज़ है, वस्तु ने धार रखे हुए गुण और पर्याय है, उसे धर्म कहते हैं। धर्म अर्थात् यह कल्याण हो, वह अभी प्रश्न नहीं। यह गुण और पर्याय को धार रखा हुआ जो द्रव्य ,वह स्वयं अपने धर्म को चूमता है, स्पर्शता है, छूता है। परन्तु वह द्रव्य दूसरे द्रव्य के धर्म को चूमता नहीं। आहाहा! गजब बात है। पानी गर्म ऐसे शरीर में डाले तो कहते हैं कि

गर्म पानी की पर्याय शरीर को स्पर्शी ही नहीं, छुई ही नहीं। ऐई !हें ?

मुमुक्षु : चमड़ी जल जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चमड़ी अपनी पर्याय से (गर्म) होती है, पानी से नहीं। यह डॉक्टर सब इंजेक्शन देते हैं, वह इंजेक्शन शरीर को छूता भी नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। परन्तु सब अभिमानी डॉक्टर मानो, ऐसा दूँ, ऐसा करूँ। इंजेक्शन दे, तब खून निकाले। यह खून निकालने के लिये हमारे यहाँ आते हैं न ? कि इस जगह रग है। इस बार कठोर पड़ा लाये तब। दो-तीन बार डाला तो भी खून नहीं निकला। भाई, बापू! बहुत सूक्ष्म बात है। भाई! तत्त्वदृष्टि ऐसी सूक्ष्म है कि यह इंजेक्शन इसे स्पर्शता ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सुई तो छुई न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुई छूती नहीं। सुई का अस्तित्व अपने में रहा है और खून का अस्तित्व खून के कारण से अपने से रहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो खून निकला कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर है, वह अपनी पर्यायरूप से इस प्रकार से होनेवाला था तो निकला है। आहाहा! गजब, दुनिया से कठिन पड़े। सब एल.एल.बी. और एम.ए. के पूंछड़े पढ़े हों, यह डॉक्टर, उसमें भी हाथ नहीं आवे वहाँ। रामजीभाई एल.एल.बी., और एम.ए., यह। इसमें कहाँ यह आया था तुम्हारे वहाँ ? आहाहा!

कहते हैं, यह वस्त्र नाक को स्पर्श नहीं करता। क्योंकि वस्त्र का अस्तित्व उसमें रहा हुआ है और इसका अस्तित्व इसमें रहा हुआ है। इसके अस्तित्व में उसका अस्तित्व स्पर्श नहीं करता। आहाहा! और उसका अस्तित्व इसे स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह तो कुछ... तत्त्व की अस्तित्वता, मौजूदगी, हयाती किस प्रकार से है, उसकी यह बात है, प्रभु! आहाहा! अरे! दुनिया से अलग प्रकार है, दुनिया की खबर नहीं ?

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा का स्वभाव ही 'ज्ञ' है, 'ज्ञ' कहो, ज्ञायक कहो, सर्वज्ञ कहो, वह इसका स्वरूप ही त्रिकाल है। उसके अन्तर के अवलम्बन से पर्याय में—अवस्था में सर्वज्ञता आती है। जो अन्दर में था, वह बाहर आता है। वह भी एक

व्यवहार है, परन्तु वह पर्याय अन्दर में थी, वह आती है, शक्ति थी, उसमें से प्रगट होती है। जैसे छोटी पीपर में चौसठ पहरी चरपराहट भरी होती है तो इसे घोंटने से वह चौंसठ पहरी जो भरी हुई है, वह बाहर आती है। यह छोटी पीपर घिसते हैं न? वह चौंसठ अर्थात् रुपया। रुपया रुपया, सोलह आना। उस पीपर में सोलह आना, रुपया-रुपया चरपराहट, चरपराई भरी है। वह चरपराई घोंटने का निमित्त और चरपराई बाहर आती है। वह प्राप्त की प्राप्ति है, वह है, उसमें से आती है। कुँए में से हौज में आता है। इसी प्रकार अन्दर में है, वह बाहर आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर आपने व्यवहार क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार है। ऐसा क्यों कहा? कि द्रव्य से पर्याय हुई, वह व्यवहार है, ऐसा कहना है। सूक्ष्म बात है, बापू! सब खबर है। वह द्रव्य में से पर्याय आयी, शक्ति में से आयी—ऐसा कहा न? यह व्यवहार है। उस पर्याय की स्वतः सामर्थ्य से स्वयं पर्याय हुई है। शक्ति तो एक सरीखी है, तथापि पर्याय भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, उसका कारण क्या? जो द्रव्य और गुण है, वह तो अन्दर एकरूप त्रिकाल है, अब उसमें से इसके कारण से आवे, ऐसा यदि कहो तो सबकी पर्याय सरीखी आनी चाहिए। न्याय समझ में आता है? वस्तु है, वह तो शक्ति अनन्त गुण से भरपूर तत्त्व है। वह शक्तिवाला तत्त्व है, उसमें से पर्याय आवे तो शक्तिवाला तत्त्व तो एकरूप पूर्ण है और पूर्ण में से पर्याय आवे तो उसके जैसी समान पूरी आना चाहिए और हीनाधिक आती है, उसका कारण क्या? यह क्या कहा तुमने? ऐसा कि जो दूसरे चार धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आदि (द्रव्य) हैं, या परमाणु है, उनकी पर्याय होती है तो वह पर्याय तो उनमें सरीखी होती है, इसलिए वह तो द्रव्य में से सरीखी आती है। ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है।

मुमुक्षु : द्रव्य में से आवे तो वहाँ शुद्ध आवे और यहाँ अशुद्ध आवे, इसका क्या कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब स्वतन्त्र है। यहाँ पर्याय आवे, वह स्वतन्त्र। यहाँ आवे वह स्वतन्त्र। यहाँ तो ऐसा है कि भिन्न-भिन्न आती है, इसलिए द्रव्य-गुण में से नहीं, तो वहाँ तो सरीखी आती है, ऐसा कहते हैं ये। है न, यह तो ख्याल है न, तुम्हारे प्रश्न मुझे

खबर नहीं? समझ में आया? तब तर्क दिया था। यहाँ सब पण्डित इकट्ठे हुए थे न? (संवत्) २००३ के वर्ष में ३३ बड़े पण्डित बाहर से आये थे। बनारस के पढ़े हुए सब (आये थे)। विद्वत् परिषद इकट्ठी की थी। वह एक महेन्द्र है, वह नहीं मानता था, सर्वज्ञ को न माने तो उसने कहा था कि देखो! भाई! एक परमाणु में जो यह भिन्न-भिन्न प्रकार आते हैं, वह स्वयं से पर्याय आती है, पर से नहीं। यदि पर से हो, द्रव्य से हो तो भी नहीं। क्योंकि द्रव्य है, वह वस्तु सामान्यरूप एक स्थिति है और एक स्थिति में से पर्याय तो एक सरीखी आनी चाहिए एक सरीखी स्थिति नहीं, इतने सिद्धान्त से समझो कि वह पर्याय पर्याय से होती है। तब चर्चा चली थी। (संवत्) २००३ के वर्ष। ३१ वर्ष हुए। बहुत पण्डित यहाँ इकट्ठे हुए थे न? बुलाये थे। विद्वत् परिषद बुलायी थी। हम कहाँ सर्वत्र बाहर घूमने जायें, सबको यहाँ बुलाया था। आहाहा! वह एक सर्वज्ञ को नहीं मानता था। वह तो वर्तमान में जो कुछ हो, उसकी विशेषता जिसे विशेष हो, वह सर्वज्ञ। ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा का स्वभाव ही सर्वज्ञ है। जैसे पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है। चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया—सोलह आना—पूरी। प्रगट होने पर भी पूरी चौंसठ पहरी चरपराहट प्रगट होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में ज्ञानस्वभाव... ज्ञानस्वभाव... ज्ञानस्वभाव... पूरा भरा है। उसे ज्ञायकभाव कहा, ज्ञ—स्वभावी कहो, सर्वज्ञस्वभावी कहो, वह एक ही वस्तु है। ऐसे सर्वज्ञस्वभाव में अन्तर एकाग्र होने पर, जैसे वह चौंसठ पहरी शक्ति छोटी पीपर में है, उसे घोंटने के निमित्त से बाहर आती है। उसी प्रकार यहाँ अन्तर में शक्ति है, उसमें अन्तर एकाग्रता होने से बाहर आती है। आहाहा! ऐसी बात! बात-बात में दुनिया से सब अन्तर। समझ में आया? पूरी दुनिया की खबर नहीं?

भगवान तो ऐसा कहते हैं, सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर्याय द्रव्य में से आती है। द्रव्यम् गच्छति, नहीं आया? सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में आता है न? क्रमबद्ध में। द्रव्य है, वह द्रवता है, वह पर्याय उस-उस तत्त्व की है, ऐसा करके क्रमबद्ध सिद्ध किया है। परन्तु वह तो उसकी पर्याय को सिद्ध करने पर उसकी पर्याय है, ऐसा सिद्ध करना है। जीव की पर्याय जीव की है, अजीव की पर्याय अजीव की है। द्रवता है, द्रव्य द्रवता है, वह उसकी पर्याय है, ऐसा कहा है, परन्तु द्रवता है, वह पर्याय

भी स्वतन्त्र है। द्रव्य में से आती है, ऐसा कहना, वह भी भेद से बात है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म इसमें।

स्वतन्त्र द्रव्य की पर्याय और गुण-द्रव्य को जब तक जाने नहीं, तब तक इसकी पराधीनता मिटती नहीं और स्वतन्त्र अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने तो इसके द्रव्य पर लक्ष्य जाये, वह भी पर्याय के जोर से लक्ष्य जाये, वह पर्याय के जोर से जाये, वह पर्याय निर्मल है, स्वयं के कारण से। आहाहा! प्रवचनसार १०१ गाथा का कहा नहीं? चैतन्यवस्तु भगवान परिपूर्ण परमात्मास्वरूप। यह तो बहुत वर्ष से चलता है। ४३ वर्ष तो यहाँ हुए। चालीस और तीन। पैंतालीस वर्ष में यहाँ आये थे, ८८ हुए। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरुदेव! बात अटपटी लगती है कि अन्दर में से बाहर आवे और वापस कहो कि व्यवहार, तो फिर निर्णय क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाहर आने का अर्थ क्या? कि अन्दर शक्ति थी, वह ऐसी है, ऐसा इतना बतलाने के लिये। परन्तु आयी है स्वयं के कारण से। आहाहा! भाषा तो ऐसी ही आवे न? कि पर्याय नहीं थी और हुई कहाँ से? ऐसा। कि द्रव्य में शक्तिरूप से थी। सूक्ष्म बात है। कहाँ का कहाँ चला जाता है!

यह आत्मा वस्तु है, उसमें यह ज्ञानगुण स्वभाव है। उसमें यह पर्याय आनेवाली है। ऐसी योग्यता अन्दर पड़ी ही है। भगवान तो जानते हैं कि यह पर्याय बाहर आयेगी, वहाँ तो गुणरूप है परन्तु उसका एक अंश है, वह यह बाहर आयेगा, ऐसा भगवान के ज्ञान में ज्ञात होता है। अरेरे! ऐसा महँगा धर्म। वह दया पालना और व्रत करना सीधा-सट्ट था। मर जायेगा, भटकेगा। तत्त्व की वस्तु जैसी है, उसका अभी ज्ञान और यथार्थ प्रतीति नहीं करे, वहाँ धर्म कहाँ था? धूल में। भक्ति करे और मन्दिर बनावे, करोड़ों रुपये खर्च करे उसमें धर्म कहाँ था वहाँ? आहाहा!

धर्म अर्थात् आत्मा का स्वभाव भगवान ज्ञान, आनन्द, वह स्वभाव पर्याय में आता है, ऐसा कहना एक अपेक्षित बात है। क्योंकि उस प्रकार की (पर्याय) आयी इसलिए उसमें से आयी, ऐसा कहने में आया, बाकी पर्याय स्वतन्त्र है, ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं। ओहोहो!

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण में से नहीं आती, पर्यायशक्ति में से पर्याय आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायशक्ति कहाँ से ली है? उसी पर्याय में से पर्याय, उसी पर्याय में से पर्याय (होती है)। आहाहा! बहुत लम्बा करने जायें तो... दुनियावाले को पागल जैसा लगे। सब खबर है। आहाहा!

हमारी दुकान वहाँ थी। सत्रह वर्ष की उम्र से बाईस वर्ष, पाँच वर्ष धन्धा किया था। उगाही करने जाते थे तो हमको तो उस समय छोटी उम्र, परन्तु दुकान हमारी इसलिए सेठ... सेठ कहे, हमको सबको छोटी सत्रह वर्ष की उम्र से सेठ कहते थे। दुकान का धन्धा था, पिताजी की दुकान थी। माल लेने जायें तो (ऐसा कहे), आओ सेठ, आओ सेठ, आओ सेठ। अब सेठ का क्या था? आहाहा! यह सब धन्धा-बन्धा पाप के भाव थे। समझ में आया? आहाहा! तब फिर पैसे आते थे न? तो उस समय किसी समय अकेले ही गये हों और रास्ते में कोई चोर मिले तो? फिर वह छतरी होती है न। छतरी। रुपये हों, उन्हें सलिया में ऊपर डालें। क्या कहा? छतरी का सलिया होता है न? ऐसे साधारण धूप हो तो खोलकर रखें परन्तु वे सलिया होते हैं न? उसमें रखें तो कोई चोर आ जाये तो (खबर न पड़े)। जेब-बेब खोजे तो उसमें हो नहीं, हो वहाँ (ऊपर सलिया में)। परन्तु कभी ऐसा कोई मिला नहीं। हमारी छाप सब ऐसी ही थी न! तब रुपये ही थे न, तब कहाँ नोट-बोट थे? रोकड़ा थे। ऊपर डाल दें, सलिया में ऊपर डाल दें। इसलिए छतरी रखते ऐसे और ऐसे। कहते हैं, कि यह सब खोटी बात है। छतरी के ऊपर रहा है, वह रुपया खोटी (बात है)। रुपये की पर्याय छतरी के आधार से रही है। यह खोटा (झूठ बात है)। आहाहा!

नियम से अपने स्वरूप (प्रत्येक चीज़) है... ऐसा लेना। देखा? परमाणु या आत्मायें प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूप से है। परस्वरूप से नहीं और परस्वरूपपने होती नहीं। आहाहा! यह सिद्धान्त पूरा बड़ा। '**स्वभावनियतं**' है न? **नियम से अपने स्वरूप है ऐसा अनुभवगोचर होता है।** देखो! ज्ञान में तो ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि प्रत्येक वस्तु अपने कारण से है। आहाहा! यह पुस्तक है, वह इसके आधार से है, ऐसा हमको दिखता नहीं—ऐसा कहते हैं। इसका स्वयं का ही आधार का स्वभाव है, इसलिए अपने

आधार से वहाँ रही है। पागल कहे या नहीं? दुनिया पागल है, दुनिया को तत्त्व की खबर नहीं। समझ में आया? क्या कहा यह?

जो कोई जीवद्रव्य... और पुद्गलवस्तु **इत्यादि है वह सब... 'स्वभावनियतं'** आहाहा! **नियम से अपने स्वरूप है ऐसा...** ज्ञान में ज्ञात होता है। अनुभवगोचर अर्थात् यह। आहाहा! कुम्हार घड़े को स्पर्श नहीं करता और घड़ा होता है, वह मिट्टी से होता है। कुम्हार का हाथ मिट्टी को स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! यह वह कोई बात! एक के अस्तित्व में दूसरे का अस्तित्व वहाँ आता नहीं। आये बिना स्पर्श करता है, यह कहाँ से हुआ? आहाहा! प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव नियम है कि अपने द्रव्यरूप से है, शक्तिरूप से है। शक्तिरूप से-गुणरूप से है और उसकी वर्तमान पर्यायरूप से है, बस। यह स्वभाव नियम है। स्वभाव की निश्चय स्थिति ही यह है। आहाहा! कहो!

यह कपड़ा है, देखो! ऐसा होता है। कहते हैं, उसे अँगुली ने किया नहीं। अँगुली उसे स्पर्शती ही नहीं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप से है, तो उसके स्वरूप से वह है, इसके स्वरूप से यह है। इसके कारण ऐसा हुआ है, ऐसी बात है नहीं। झांझरीजी! ऐसी बातें हैं। यह तो पदार्थविज्ञान का विज्ञान है, बापू! आहाहा! और यह स्थिति इस प्रकार से स्वतन्त्र है, ऐसा जब तक न माने, तब तक भ्रमणा है। आहाहा!

इस शब्द में सब आ जाता है— **'स्वभावनियतं इष्यते'** यहाँ से लेना। जगत के सब पदार्थों में जो उसका—गुण-पर्याय का स्वभाव है, तत्प्रमाण **'इष्यते'** अर्थात् जानना चाहिए। अनुभवगोचर होता है, ऐसा ही है। आहाहा! यह तो कलई की गाथा के बाद का श्लोक है। कलई दीवार को सफेद नहीं करती। वह तो स्वयं सफेद हुई है ऐसे। दीवार तो दीवाररूप रही है। दीवार के अस्तित्व में सफेदपने का अस्तित्व—मौजूदगी अन्दर प्रविष्ट नहीं है। लॉजिक से, न्याय से तो पकड़ में आये, ऐसा है। आहाहा! यह तो अलग प्रकार का विद्यालय है। एम.ए. और मेट्रीक के भाषण करने आवे तो एक घण्टा चला जाये। यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ, अनुभव से सिद्ध हुआ, लॉजिक से सिद्ध हो सके ऐसा (तत्त्व है)। आहाहा!

मुमुक्षु : कलई तो कलई में रही परन्तु दीवार न हो तो फैले किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन फैला है ? फैलाई है, स्वयं से फैलाई है। इस प्रकार से फैली है अपने कारण। सफेदपना रहा है, वह स्वयं के कारण से वहाँ रहा है। दीवार के कारण वहाँ सफेदपना रहा है, ऐसा नहीं है। कहो!

मुमुक्षु : स्तम्भ को छूकर रहा है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। इस स्तम्भ को स्पर्श कर ऊपर का रहा है, बिल्कुल झूठ। उस उस परमाणु (में) स्वयं में अधिकरण नाम का गुण है, आधार नाम का (गुण है), उस आधार गुण के कारण से स्वयं अपने से वहाँ रहा है। बापू! अलग प्रकार है। अनन्त तत्त्व कब कहलाये ? कि अनन्त तत्त्व अपने स्वभाव और गुण-पर्याय में हों, पर के आधार से नहीं, तब तो उनका अपना स्वरूप अपने से सिद्ध होता है। आहाहा! कहो, चिमनभाई! स्टील-फील को छूते नहीं, वहाँ स्टील होती है सब। कलश होता है और अमुक होता है और अमुक होता है। एक बार वहाँ इनके उस कारखाने में गये थे। बड़ा स्टील का कारखाना है, कांप में। स्टील का लोटा ले जाओ। हमें क्या करना है ?

मुमुक्षु : आपका हाथ छुए तो हमारा माल झट बिक जाये, कमाई बहुत हो, इसलिए आप ले जाओ, इसलिए नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों को ऐसा है कि महाराज के चरण हों, फिर पैसेवाले हो जाये। धूल भी नहीं। आहाहा! किसकी पर्याय कहाँ आना-जाना, वह तो अपने स्वतन्त्र उसके स्वभाव के नियम अनुसार होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : नजर से दिखता है और खोटा माने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस नजर से यह दिखता है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। घड़ा कुम्हार से होता नहीं, ऐसा हमको नजर से तो ऐसा दिखता है, ऐसा आचार्य तो कहते हैं। आता है ? ३७२ गाथा। घड़े की पर्याय मिट्टी से हुई है। मिट्टी है, वह बदलकर अपने अस्तित्व में पर्याय में घटरूप से हुई है, वह कुम्हार के अस्तित्व से वहाँ उस घटरूप से हुई है, ऐसा हम तो देखते नहीं। आहाहा! साधारण लोगों को तो ऐसा लगे, बेचारे ने कभी सुना न हो। क्या कहते हैं यह ? यह किस प्रकार की बात ? मूल अभी सत्य पदार्थ

का वस्तुस्वरूप सब गड़बड़ में चढ़ गया है। धर्म के नाम से ही गड़बड़ में चढ़ गया है। पर की दया पाल सकता हूँ, पर को मार सकता हूँ, यह बिल्कुल झूठी बात है। समझ में आया? पर को मारने की पर्याय हुई है, उसे इस पर्याय ने वहाँ किया है? पर्याय तो वहाँ स्पर्श नहीं करती। आहाहा! दया का भाव, राग आया; इसलिए वहाँ जीव की दया पल जाती है? उसकी पर्याय तो वहाँ है। उसकी अवस्था उसके कारण से वहाँ हुई है। दया का भाव, राग यहाँ हुआ है, वह उसके कारण हुआ नहीं तथा इसके कारण वहाँ जीव बचा नहीं। वह तो उसका आयुष्य था, तत्प्रमाण वहाँ बचता है। आहाहा! गजब, बात-बात में अन्तर भाई यह तो।

यह शब्द है (उसमें) पूरे श्लोक का सार है। **वह सब... 'स्वभावनियतं इष्यते'।** प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा में, रजकण या आत्मा में, प्रत्येक '**स्वभावनियतं**' अपने स्वभाव में रहे हुए हैं, ऐसा अनुभवगम्य होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! हम दुकान चला सकते हैं और दुकान बराबर चलाते हैं, बिल्कुल झूठ बात है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। कहो, चिमनभाई! आहाहा!

प्रत्येक क्षण की अवस्था अर्थात् हालत, जड़ या चैतन्य की स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध स्वयं से होती है। उस पर्याय को—अवस्था को दूसरी अवस्था स्पर्श नहीं करती। यह अवस्था उसे स्पर्श नहीं करती। आहाहा! नहीं तो अपना अस्तित्व स्वयंसिद्ध वह हुआ रह सकता ही नहीं। आहाहा! ऐसा पदार्थ का ज्ञान है। है? ऐसा अनुभवगम्य होता है, ऐसी भाषा है। हम तो ऐसा जानते हैं, ऐसा आचार्य कहते हैं। कलई सफेद होकर रही है वह अपने में रही है; दीवार को स्पर्शी नहीं। आहाहा! सब्जी का-मिर्ची का चरपरापन इस जीभ को स्पर्शता नहीं और चरपरा दिखता है। वह तो ज्ञान का स्वभाव है कि यह क्या चीज़ है, ऐसा जानता है, बस। उस चरपराई को ज्ञान स्पर्शता नहीं। ज्ञान अपने में रहकर, यह चरपराई है, ऐसा जानता है। जानता है, इसलिए ज्ञान मलिन हो गया, ऐसा नहीं है। तथा वह चरपराई है, इसलिए चरपराई का यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। यहाँ ज्ञान हुआ है, वह स्वयं से हुआ है, उसकी चरपराई है, वह उससे वहाँ रही है। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! तत्त्व की दृष्टि में आना... आहाहा! सत्य है, उसे सत्यरूप से

जानना, असत्यरूप से माना है, उसे छोड़ देना... आहाहा! तब तो यह तत्त्व के, सत्त्व के सत्य को यथार्थ माना कहलाये। आहाहा! समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो आत्मा में जो कुछ राग-द्वेष होता है, वह कर्म को स्पर्शता नहीं और कर्म है, वह राग-द्वेष को स्पर्शता नहीं। ऐसा वस्तु का नियम है, ऐसा हम जानते हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? दो आया न? दो आया या नहीं? **कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य...** परमाणु। अपनी पर्याय और द्रव्य-गुण में रहा हुआ अस्तित्व है, ऐसा हमको ज्ञात होता है, उसका अस्तित्व कहीं बाहर में दूसरे में प्रविष्ट है, ऐसा हम तो देखते नहीं। यह कलई दीवार को सफेद करती है, ऐसा हम तो देखते नहीं।

मुमुक्षु : एक परमाणु दूसरे परमाणु को मिले तो पुद्गलास्तिकाय कहलाये न!

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : पुद्गलास्तिकाय कैसे कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्तित्व है, उसके बहुत परन्तु व्यवहार अस्तिकाय कहें हैं। निश्चय से तो एक परमाणु वह द्रव्य है। एक परमाणु, वह निश्चय पुद्गल है। अधिक परमाणुओं का पिण्ड, वह व्यवहार पुद्गल है। आता है? नियमसार में आता है। नियमसार में आता है। इस प्रकार आता है, सब खबर है न! एक-एक परमाणु को निश्चय से पुद्गल कहते हैं। पूरण-गलन अवस्था, इसलिए। अधिक परमाणु के पिण्ड को व्यवहार पुद्गल कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी कहते हैं, हमको कोई स्कन्ध दिखता ही नहीं। एक-एक परमाणु दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक परमाणु और उसकी पर्याय स्वयं से भिन्न ज्ञात होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत समय चाहिए, थोड़ा अभ्यास चाहिए भाई यह तो। यह तो अनन्त काल में किया नहीं, ऐसी चीज़ है। आहाहा! बाकी अभिमान कर-करके मर गया। इसका किया और मैंने इसका किया, इसका किया। आहाहा! स्त्री के शरीर को इन्द्रिय स्पर्शती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! क्या कहते हैं यह? आहाहा!

इस शरीर की इन्द्रियाँ इसके अस्तित्व में रही हुई अवस्था, द्रव्य-गुण, उसकी अवस्था शरीर की अवस्था में जाती नहीं कि शरीर को स्पर्श करे। आहाहा!

मुमुक्षु : स्पर्श इन्द्रिय का ज्ञान किसी को स्पर्श करे तो होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल खोटी बात है। कहा न, स्वभावनियमं। यह ज्ञान, ज्ञान से हुआ है, ऐसा स्वभावनियमं जड़ और पुद्गल का है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है, बापू! क्या हो? तत्त्वदृष्टि वास्तविक पदार्थ का ज्ञान बहुत अलौकिक है। अभी तो सब गड़बड़ चली है। आहाहा! विज्ञानवालो ने गड़बड़ कर दी। यहाँ से ऐसे ले गये और सूर्य में ले गये और चन्द्र में ले गये और वहाँ से मिट्टी लाये और अमुक लाये... कहते हैं न? वहाँ से मिट्टी ले आये। कहाँ भान है इसे कुछ? क्या है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **यही अर्थ प्रगट करके कहते हैं**—क्या कहते हैं? **'यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं बहिर्लुठति' यद्यपि प्रत्यक्षरूप से ऐसा है कि सदाकाल प्रगट है अविनश्वर चेतनाशक्ति...** यहाँ अब जीव लिया है न? पर को जानने के अवसर में चैतन्यशक्ति अपने में रहकर पर को जानती है, वह कहीं मलिनता नहीं है। वह तो पर को और अपने को जानने के स्वभाव से स्वयं पर को जानता है, ऐसा कहने में आता है। बाकी वास्तव में तो वह अपनी जानने की पर्याय को जानता है। आहाहा! अरे! बात-बात में अन्तर, बापू!

मुमुक्षु : खराब समाचार सुनते ही ज्ञान बिगड़ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, बापू!

ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा वह पर को जानता है, इसलिए पर में प्रवेश किया, इसलिए जानता है—ऐसा नहीं है। यह प्रश्न (संवत्) १९८४ में हुआ। १९८४ के वर्ष राणपुर चातुर्मास था। एक है, भावसार था? खत्री... खत्री। नारणभाई के घर के इस ओर। है? रुगनाथ खत्री। वह व्याख्यान में आवे। १९८४ की बात है। कितने वर्ष हुए? हैं? पचास हुए। चौतीस है न यह और सोलह (पचास हुए)। व्याख्यान में हमारी तो पहले से प्रसिद्धि है न! उसने प्रश्न रखा था कि महाराज! आप कहते हो कि पर को

जाने। तो पर में प्रवेश किये बिना किस प्रकार जाने? यह प्रश्न किया था। उसे तो वेदान्त सिद्ध करना था न? वेदान्त। एक ही वस्तु है, ऐसा उसे सिद्ध करना था। वेदान्त, एक ही आत्मा व्यापक कहता है न? बिल्कुल झूठ है। अर्थात् ऐसा कि यह आत्मा पर को जाने तो पर में प्रवेश किये बिना कैसे जाने? ऐसा प्रश्न था। कहा, प्रवेश किये बिना जानता है। अग्नि को आत्मा जाने तो ज्ञान ने अग्नि में प्रवेश किया है? यह अग्नि है, उसे ज्ञान जानता है तो ज्ञान ने अग्नि में प्रवेश किया है? तथापि अग्नि का ज्ञान स्वयं से स्वयं जानता है। उसमें प्रवेश करे तो ही उसे जाने, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! यह तो बहुत प्रश्न उठे हैं और बहुत लोग (आते हैं)। सम्प्रदाय में तो यह सत्य चीज़ है नहीं। वाडा बाँधकर बैठे हैं। वह कहे दया पालो, वह कहे व्रत करो, वह कहे भगवान की भक्ति करो। जाओ, मरकर... स्वतत्त्व की क्या स्थिति है? पर की स्थिति क्या है, उसे वास्तविक जाने बिना सम्यग्ज्ञान होता ही नहीं और सम्यग्ज्ञान बिना स्वरूप की रमणता—चारित्र होता नहीं। आहाहा! है?

एक दूसरी बात है कि, उसमें अनन्त शक्ति है। समझ में आया? आत्मा में अनन्त शक्ति है, परन्तु ऐसी कोई शक्ति नहीं कि पर को स्पर्शे, ऐसा कहना है। आत्मा में अनन्त शक्ति है, परन्तु कोई ऐसी शक्ति नहीं कि पर को करे। समझ में आया? आहाहा! अनन्त शक्ति है। **अविनश्वर चेतनाशक्ति जिसकी ऐसा जीवद्रव्य...** ज्ञान भगवान ज्ञानस्वरूप पर में प्रवेश किये बिना स्वयं उस ज्ञेय का स्वरूप जैसा है, उसके स्वरूप से स्वयं ज्ञान अपने से परिणमता है और जानता है। आहाहा! इसमें तो तुम्हारे वहाँ लोहे में हाथ आवे, ऐसा नहीं है। टाईल्स में है कहीं? पूरे दिन... टाईल्स में टाईल्स है, पत्थर। आहाहा!

तीन लोक का नाथ चैतन्यप्रभु अन्दर, कहते हैं कि पर को जानते हुए उसकी पर्याय जानने की पर्याय पर में प्रविष्ट हुई है? और जो ज्ञात होता है, वह ज्ञेय यहाँ ज्ञान में प्रविष्ट है? आहाहा! पर में प्रवेश करे और जाने, तब तो अनन्त है, वह अनन्तरूप से रहे ही नहीं। आहाहा! स्वयं अपने में रहकर पर को स्पर्श किये बिना पर का ज्ञान करता है, वह पर का ज्ञान नहीं है, वास्तव में तो स्व का ज्ञान है। आहाहा! है?

स्वयं समस्त ज्ञेय को जानकर ज्ञेयाकाररूप परिणमता है... जैसा वह ज्ञेय है, उसके स्वभावरूप स्वयं अपनेरूप से परिणमता है। जैसे अग्नि हो तो यहाँ ज्ञान अग्नि को

जाननेरूप परिणमे, अग्नि को जाननेरूप अर्थात् अग्नि जो ज्ञेय स्वरूप है, उसका यहाँ ज्ञान स्वयं से अपने रूप से परिणमता है। वह अग्नि के कारण यहाँ ज्ञान का जानना होता है, ऐसा नहीं होता। आहाहा! भारी कठिन काम। 'वाडा बाँधकर बैठे रे, अपना पंथ करने को सब' परन्तु तत्त्व क्या है, उसकी मर्यादा न जाने, तब तक उसे धर्म नहीं होता। आहाहा! है?

'तथापि अन्यवस्त्वन्तरं' तो भी एक कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य... 'अपरवस्तुनः न विशति' किसी अन्य द्रव्य में प्रवेश नहीं करता है;... देखा? आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु में प्रवेश नहीं करता, तब अपना अस्तित्व भिन्न रखता है। ऐसे आत्मा का ज्ञान पर में प्रवेश नहीं करता और वह ज्ञेय ज्ञान में प्रवेश नहीं करता, तब ज्ञान और ज्ञेय का अस्तित्व सिद्ध होता है। आहाहा! अन्तिम कहेंगे। देखो! **किसी अन्य द्रव्य में प्रवेश नहीं करता है; वस्तुस्वभाव ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है...** देखा? सबको जाने, हों! तीन काल, तीन लोक को। **ऐसा तो स्वभाव है, परन्तु ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता है,...** यह योगफल आया। जाननेवाला ज्ञेय को जाने तो भी ज्ञान ज्ञेयरूप होता नहीं, और **ज्ञेय भी ज्ञान द्रव्यरूप नहीं परिणमता है...** है? ज्ञेय द्रव्यरूप परिणमता नहीं। आहाहा! **ज्ञेय भी ज्ञान द्रव्यरूप नहीं परिणमता है...** आहाहा!

बिच्छू को जानते हुए, बिच्छू है, वह कहीं इस ज्ञानरूप होता नहीं, ज्ञान में प्रविष्ट होता नहीं और तो भी बिच्छू का ज्ञान स्वयं को उसे स्पर्श किये बिना ज्ञान होता है। तो वह ज्ञान ज्ञेय में जाता नहीं और ज्ञेय ज्ञान में आता नहीं। आहाहा! अब एक घण्टे में ऐसे सब सिद्धान्त (आवे)। **ऐसी वस्तु की मर्यादा है।** लो! इस प्रकार वस्तु का नियम और मर्यादा है। कोई किसी को स्पर्शता नहीं और अपना अस्तित्व रखता है। इस प्रकार से जब तक ज्ञान न करे, तब तक उसका ज्ञान झूठा है। (विशेष कहेंगे...)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २१३

(रथोद्धता)

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत्।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः
किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ।।२१-२१३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — अर्थ कहा था, उसे गाढ़ा करते हैं — 'येन इह एकं वस्तु अन्यवस्तुनः न' [येन] जिस कारण से [इह] छह द्रव्यों में कोई [एकं वस्तु] जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य सत्तारूप विद्यमान है, वह [अन्यवस्तुनः न] अन्य द्रव्य से सर्वथा नहीं मिलता-ऐसी, द्रव्यों के स्वभाव की मर्यादा है। 'तेन खलु वस्तु तत् वस्तु' [तेन] तिस कारण से, [खलु] निश्चय से [वस्तु] जो कोई द्रव्य, [तत् वस्तु] वह अपने स्वरूप है-जिस प्रकार है, उसी प्रकार-'अयं निश्चयः'—ऐसा तो निश्चय है, परमेश्वर ने कहा है, अनुभवगोचर भी होता है। 'कः अपरः बहिः लुठन् अपि अपरस्य किं करोति' [कः अपरः] ऐसा कौन द्रव्य है, जो [बहिः लुठन् अपि] यद्यपि ज्ञेयवस्तु को जानता है तो भी, [अपरस्य किं करोति] ज्ञेयवस्तु के साथ, सम्बन्ध कर सके? अर्थात् कोई द्रव्य नहीं कर सके। भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुस्वरूप की मर्यादा तो ऐसी है कि कोई द्रव्य, किसी द्रव्य के साथ एकरूप नहीं होता है। इसके उपरान्त भी जीव का स्वभाव, ज्ञेयवस्तु को जाने—ऐसा है तो रहो, तो भी धोखा तो कुछ नहीं है। जीवद्रव्य, ज्ञेय को जानता हुआ, अपने स्वरूप है।।२१-२१३।।

माघ शुक्ल १३, सोमवार, दिनांक-२०-०२-१९७८, कलश-२१३, प्रवचन-२३७

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत्।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः
किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ।।२१-२१३।।

अर्थ कहा था, उसे गाढ़ा करते हैं—'येन इह एकं वस्तु अन्यवस्तुनः न' जिस कारण से छह द्रव्यों में... छह द्रव्य है न? छह द्रव्य हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश। यह '**एकम् वस्तु**' छह द्रव्यों में एक वस्तु। **जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य सत्तारूप विद्यमान है,...** अपनी सत्ता से उसकी अस्ति है। प्रत्येक द्रव्य की अपनी सत्ता से अस्ति है। पर की पर्याय की सत्ता से अपनी अस्ति नहीं। अर्थात् कि परद्रव्य की सत्ता से उसकी अस्ति है। उसे दूसरा द्रव्य उसकी सत्ता की अस्ति में क्या करे? आहाहा!

आत्मा परवस्तु की किसी भी पर्याय को करता नहीं। क्यों? कि वस्तु सत्तामात्र अपने में है, उस सत्ता का प्रवेश, एक सत्ता का दूसरे में होता नहीं तो करे क्या? आहाहा! बोलने का करे क्या? हिलने का करे क्या? खाने का करे क्या? पीने का करे क्या? वह सब जड़ की पर चीज़ है। उसकी सत्ता में वह सब है। उसकी सत्ता में जीव की सत्ता का प्रवेश नहीं तो उस खाने-पीने की क्रिया को आत्मा कैसे करे? ऐसा कहते हैं? हैं? आहाहा! यह तो मैं करूँ, मैं करूँ सब जगह है न? हमने व्यापार किया, हमने ऐसा किया, हमने यह किया.... धन्धे में पैड़ी पर बैठा हो तब... कितने ही ऐसा कहते हैं कि यहाँ हाँ करना पड़ती है परन्तु वहाँ दुकान में जायें, तब तो करना पड़े न? परन्तु कर सकता है ही कहाँ? आहाहा!

यहाँ तो छह द्रव्य में एक वस्तु ऐसा भिन्न किया। है न? छह द्रव्य है, उसमें प्रत्येक एक-एक वस्तु, ऐसा कहा। देखा न? आहाहा! **अन्य द्रव्य से सर्वथा नहीं मिलता...** प्रत्येक वस्तु सत्तारूप विद्यमान है। आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय की सत्ता से प्रत्येक वस्तु अस्ति धराती है। उसकी अस्ति में दूसरे की अस्तिवाला तत्त्व, दूसरे की सत्ता की अस्ति में कुछ मिलावे, पलटावे, ऐसा कुछ नहीं हो सकता। आहाहा! अब यह पण्डितों के बड़े विवाद हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न करे, (ऐसा माने), वह दिगम्बर जैन नहीं है, ऐसा वे लोग कहते हैं। है?

मुमुक्षु : व्यवहार को उड़ाते हैं (ऐसा कहते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार को उड़ाते हैं, परन्तु व्यवहार कौन सा? वह कहनेमात्र

है। व्यवहार से यहाँ राग हो, वह कहीं कर्म के कारण होता है, ऐसा नहीं है। तथा राग हो, इससे यहाँ धर्म की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। अपना जो चैतन्यस्वभाव है, या परद्रव्य की क्रिया के समय राग करके राग का अभिमान करे या परद्रव्य की क्रिया के समय राग न करके ज्ञाता होकर जाने, तो उस जानने की क्रिया का कर्ता सही और अज्ञानभाव से पर को जानते हुए राग करे तो राग का कर्ता वह सही, अज्ञानभाव से। आहाहा! व्यवहार उड़ाते हैं। व्यवहार कहेंगे कि वह तो कथनमात्र है। आहाहा! गाँव का मुसलमान ननिहाल में हो, उसे मामा कहे, वह तो कहनेमात्र है या मामा मुस्तगी? यह चूहे को मामा कहते हैं, नहीं कहते? चूहा मामा। किसलिए? मामा हो जाता होगा वह? वे वस्त्र काटे नहीं, ऐसा करके चूहा मामा लोग कहते हैं। कहनेमात्र है, कहते हैं।

छह द्रव्य में एक द्रव्य, ऐसी भाषा है न? '**एकम् वस्तु**' आहाहा! कोई भी एक परमाणु या एक आत्मा। आहाहा! **अन्य द्रव्य से सर्वथा नहीं मिलता...** आहाहा! ठीक! 'सर्वथा' शब्द प्रयोग किया है। पास में यह है और वह है, इस प्रकार तो मिलता है या नहीं? परन्तु ऐसा नहीं है। यह है, इसलिए पर में कुछ होता है, परिणमाता है—ऐसा नहीं है। वह सर्वथा मिलता अर्थात् परिणमा सकता नहीं। है यह और यह है, इस प्रकार तो सत्ता मिलती है। समझ में आया? परन्तु यह है, वह दूसरी सत्ता को कुछ करे, ऐसा नहीं मिलता, ऐसा कभी मिलान नहीं खाता। आहाहा! गजब बातें हैं न!

यहाँ से कफ निकलता है, उसे आत्मा के प्रदेश का सहचरपना है, इसलिए अहं... करके कफ निकले, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह रजकण की पर्याय उस समय अपनी सत्ता से वह पर्याय निकलने की हुई है। उसे दूसरे की सत्ता उसमें प्रवेश नहीं करती कि जिससे वह कफ निकाल सके। आहाहा! ऐसा मार्ग! यहाँ तो पूरे दिन हम करते हैं, हम करते हैं... हम करते हैं और फिर नाम धरावे हम जैन हैं। जैन कहाँ रहे? समझ में आया?

मुमुक्षु : डॉक्टर के टका करे या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर के टका डॉक्टर के घर में। उसके राग में और या परभाव की पर्याय में उसके। पर में वह कुछ कर सकता नहीं। रोग मिटा सके, (ऐसा

है नहीं)। प्राणभाई डॉक्टर नहीं? जामनगरवाले। वे डॉक्टर थे? डॉक्टर नहीं? वे कहते थे कि हम देखने जायें तो ख्याल आ जाता है कि यह थोड़े समय में निपट जायेगा। परन्तु हम मिथ्या बड़प्पन करें कि दिक्कत नहीं। करने दो। घर जायें वहाँ सुने की उड़ गया है। कहते थे यह प्राणभाई। हैं न अभी यहाँ कहीं मुम्बई में है। हैं? जामनगरवाले, परन्तु अभी अन्यत्र हैं कहीं। मुम्बई आये थे, मुम्बई। आहाहा! कौन करे? भाई! आहाहा! एक समयमात्र की प्रत्येक द्रव्य की उत्पाद-व्यय की सत्ता उसकी सत्ता में दूसरे के उत्पाद-व्यय की सत्ता का कहाँ प्रवेश है? आहाहा!

यह कपड़ा है, यह मैंने ओढा है, ऐसा नहीं है। यहाँ तो कहते हैं। यह परमाणु की पर्याय से वहाँ उस प्रकार की अपनी सत्ता से वहाँ आयी है। आहाहा! ऐसी बातें जगत को (कठोर लगती है)। कहो, सेठ! क्या तुम यह सब बहुत करते हो, तम्बाकू का और मोटरें रखते हैं न पचास, पचा मोटरें... हैं? क्या कहा?

मुमुक्षु : माल मोटर बिना लाना कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका माल? कहाँ? माल है, वह उसके द्रव्य की सत्ता नहीं? और उसकी सत्ता का कार्य दूसरी सत्ता करे? उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्। प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्। अब उत्पाद है, वह उसका अपना स्वयं करता है। अब वह उत्पाद पर के उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् नहीं? वह उसकी पर्याय का उत्पाद वह करे। आहाहा! बहुत कठिन काम। पण्डितों को यह भारी कठिन पड़ता है। वे कहते हैं कि सोनगढ़वालों ने निकाला। यह कहाँ का है? यह सोनगढ़ का है?

मुमुक्षु : सोनगढ़वालों ने कहा, वह सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने ऐसा निकाला ऐसा कि, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करता नहीं। व्यवहार से तो कर सकता है या नहीं? भले निश्चय से नहीं कर सके। व्यवहार से कर सकता ही नहीं। कथन व्यवहार से भाषा बोली जाती है, यह मनुष्य था और यह मकान हुआ। यह मनुष्य था और यह पुस्तक हुई। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना कथन तो गुरुदेव! जँचता है कि अपनी पर्याय अपने घर की चीज़ है तो करे, परन्तु अपनी पर्याय को भी करे नहीं, यह किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बाद में बात। यह अभी यहाँ नहीं। यहाँ तो एक द्रव्य की सत्ता के तीन प्रकार—उत्पाद-व्यय-ध्रुव। उसे दूसरे द्रव्य के उत्पाद-व्यय और ध्रुव में उसका उत्पाद कुछ कर नहीं सकता। और पर्याय द्रव्य की कर्ता नहीं, वह तो अन्दर में भेद पाड़ते हुए (कहा जाता है)। यहाँ तो अभी परद्रव्य से भेद करते हुए यह बात है। आहाहा! अभी परद्रव्य की सत्ता भिन्न है, उसकी पर्याय कर्तापने का अभिमान टले नहीं, उसे पर्याय और द्रव्य भिन्न है, यह बात कैसे बैठे? आहाहा! पर्याय का द्रव्य भी कर्ता नहीं। आहाहा! यहाँ तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्ता और पर की भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्ता, उसमें उत्पाद वहाँ है, उसे यह उत्पाद वहाँ उत्पाद किस प्रकार करे? ऐसा कहते हैं, इतना। आहाहा! समझ में आया?

दवा के रजकणों की उत्पाद-व्यय की सत्ता तो दवा में है। अब सामने शरीर को रोग मिटाने में उसका क्या कारण है? आहाहा! उसके रोग के रजकण जो रोगरूप हुए थे, उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव की सत्ता उसमें है। उसकी उत्पाद की सत्ता में दूसरा उत्पाद घुसकर अन्दर मिटा दे? अरे... अरे! ऐसी कठिन बात। समझ में आया?

यहाँ तो एकदम छह द्रव्य लिये हैं और उनमें से एक, कोई भी एक। आहाहा! यह क्या कहा जाता है यह बिछाने का? यह ऐसा समेटा हुआ था और दो कौने से ऐसा चौड़ा किया। क्या कहा? अटलस (वस्त्र) आता है न अटलस? कापडिया। अटलस की घड़ी आती है, (जिसे) आवे समेटे, हों! दूसरे को नहीं आवे। (जिसे) आवे वह समेटे? आती है वह उसके ज्ञान में पर्याय रही। अटलस होता है न अटलस? घड़ीवाला। लोग ऐसा कहते हैं कि जिसे आता हो वह उसे समेटे। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि आनेवाला भी समेट सकता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत मार्ग वीतराग का...

एक-एक सत्ता स्वयं से जहाँ विराज रही है... आहाहा! विराज अर्थात् शोभित है, सहित है। आहाहा! शरीर के रजकणों की यह अवस्था... आहाहा! उसकी इन्द्रिय की अवस्थायें जो होती हैं, उत्पाद-व्यय, उसकी सत्ता में, आत्मा की सत्ता उसका उत्पाद कैसे कर सकती है? आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें, बापू! ऐसे जीभ वळे है, यह कहते हैं कि उसके कारण होंठ में ऐसे बोलने का होता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि जीभ की सत्ता के उत्पाद-व्यय भिन्न हैं, इसके उत्पाद-व्यय भिन्न हैं। इसके उत्पाद व्यय

को दूसरा कैसे कर सकता है? आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात भाई! भाषा से अन्दर बैठना कठिन। भाषा से ऐसा सुन और हाँ करे, परन्तु अन्दर में बैठना चाहिए। आहाहा! क्योंकि अनन्त द्रव्य है या नहीं? जो अनन्त है तो अनन्तरूप से अनन्त कब रहे? कि अनन्त-अनन्त के उत्पाद अपने में रहे और उसके उत्पाद के कारण दूसरे में उत्पाद न हो, तब तो वे अनन्त अनन्तरूप से रहे। नहीं तो अनन्त का नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

इस सेठ ने तो बहुत मेहनत की थी, पैसा प्राप्त करने के लिये। अपने तो सेठ का दृष्टान्त, बड़े आदमी का देते हैं। आहाहा! हमारे कुँवरजीभाई थे, नहीं? बुआ के पुत्र भागीदार। हम करते हैं... हम करते हैं.. हम करते हैं.. परन्तु क्या है यह? तुम क्या करते हो? मैंने तो (संवत्) १९६६ के वर्ष में कहा था। ६८ वर्ष हुए। क्या तुमने यह लगायी है? गाँव में कोई साधु आवे तो सुनने का समय नहीं, पूरे दिन सामने देखना नहीं। रात्रि में आठ बजे जाये। साधु बेचारे सवेरे आये हों, अपने आप आहार ले आवे। यह लौकिक सम्प्रदाय में...

मुमुक्षु : आप जाते थे, फिर कहाँ दिक्कत थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं तो उस समय दुकान छोड़ देता था। गाँव में साधु आवे, तब दुकान छोड़ देता। शिवलालभाई हमारे भागीदार थे, वे किया करे। अपने तो उन्हें आहार-पानी देना, सब करते। परन्तु वह कर देते हैं और आहार-पानी दे देते हैं, और ऐसा मानते थे न उस समय? आहाहा! कौन किसे दे और कौन किसे दे? आहाहा!

मुनि को ऐसे आहार के रजकण जाते हैं, कहते हैं कि वह तो उसकी सत्ता के उत्पाद से वहाँ वे गये हैं। देनेवाले ने ऐसा किया, इसलिए गये हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! अनन्त द्रव्यों को अहंकार उड़ाना और फिर तो राग का अहंकार उड़ाना। यह तो उसे राग होता है, (वह) पर के कारण नहीं। उसमें तो यह भी आया कि कर्म के उदय की सत्ता कर्म में है और राग की सत्ता जीव की पर्याय में है। तो उस कर्म की सत्ता का उदय राग करे, यह तीन काल में नहीं है। अभी बड़ा विवाद यह है। है? कर्म के कारण विकार होता है, बड़ा विवाद। ठेठ एक-एक सम्प्रदाय, तीनों में। कर्म का उदय है तो विकार होता है, कर्म का उदय है तो विकार होता है। यहाँ तो इनकार करते हैं।

कर्म के उदय की सत्ता उसकी सत्ता में रही और राग है, वह आत्मा की पर्याय की सत्ता में है। अब इस सत्ता की पर्याय को वह सत्ता की पर्याय करे कैसे? आहाहा! यह बड़ा विवाद है, जैन के तीनों सम्प्रदाय को। स्थानकवासी में थे तो भी विवाद उठा, श्वेताम्बर में बात गयी तो विवाद उठा, यह दिगम्बर में आये तो विवाद उठा। नहीं, कर्म से विकार नहीं होता? बड़ी भूल में पड़े हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, कर्म के रजकण द्रव्य है या नहीं? तो कर्म का एक-एक परमाणु सत्ता—अपनी सत्ता से वहाँ रहा है या नहीं? विद्यमान अर्थात् उत्पाद से वहाँ रहा है या नहीं? और यहाँ राग के उत्पाद में वह सत्ता यहाँ रही है। अब यह कर्म के उदय की सत्ता यह राग की सत्ता को करे किस प्रकार? समझ में आया? यह अभी बड़ा विवाद है सम्प्रदाय में, पूरा पण्डितों में, साधुओं में। आहाहा!

मुमुक्षु : कोई ऐसा कहते हैं कि जैसे बाँधे होंगे, वैसे भोगने पड़ेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बाँधे और कौन भोगे? यह तो आता है। अनाथिमुनि का आता है, स्थानकवासी में यह आता है। 'अप्पा कर्ता विकर्ता है दोहाणीयो सोहाणीयो' यह आता है। अनाथिमुनि का बीसवाँ अध्ययन है न! आत्मा कर्ता और आत्मा भोक्ता। कौन? कर्म का कर्ता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह भी भावकर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावकर्म करे और उसे वह भोगे अज्ञानभाव से। आहाहा! भानभाव में तो ज्ञान को करे और ज्ञान के आनन्द को भोगे। यह सत्ता का स्वरूप है। क्योंकि निजसत्ता में विकृत होने का गुण नहीं। इससे विकृत होने की अवस्था पर्यायदृष्टि में जो है, वह दृष्टि जिसे छूट गयी और द्रव्यदृष्टि स्वभाव शुद्ध चैतन्यशक्तिवाला तत्त्व, ऐसा भान, अनुभव हुआ तो उसकी कोई शक्ति विकार को करे, ऐसा कोई गुण, शक्ति नहीं। आहाहा! पर्याय में वह विकृत स्वतन्त्र होता है, उसे ज्ञातारूप से जानता है। आहाहा! एक द्रव्य की सत्ता में अनन्त शक्तियों की कोई ऐसी सत्ता नहीं कि विकृत करे। आहाहा! पर्याय में विकृत होने की योग्यता के कारण से पर्याय में होता है। वह अज्ञानी हो तो उसका कर्ता होता है, ज्ञानी हो तो उसका ज्ञाता होता है, बस, यह अन्तर। आहाहा!

यह मोरपिच्छी पड़ी, लो! अपने आप उठती होगी? ऐसा करके एक व्यक्ति कहता था। यह मोरपिच्छी होती है न? अपने आप उठती है? हाँ, हाँ। अपने आप उठती है, सुन न!

मुमुक्षु : बना हुआ बनाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? यह पूछा था, कहा नहीं? तुम मोरपिच्छी उठाओ तो उठेगी। परन्तु वह उठने के समय उसके उत्पाद की पर्याय से खड़ी हुई है। वह इस अँगुली के कारण नहीं। यह वह बात...! आहाहा! प्रत्येक द्रव्य अपने समय के उत्पाद-व्ययरूप होता है, उस उत्पाद-व्यय को दूसरा इस द्रव्य किस प्रकार करे? आहाहा! कठिन काम है, भाई! यह कर्म के सिद्धान्त का कठिन काम है। श्रीमद् ने कहा कि मुनि तो ऐसा कहते हैं कि तेरे दोष के कारण तुझे भटकना हुआ। तेरा दोष इतना कि तूने उस दोष को अपना माना और अभिमान, अज्ञान किया। वह पर के कारण दोष हुए, कर्म के कारण विकार होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अन्दर सातावेदनीय का उदय है, इसलिए यह पैसे आते हैं, इसके राग के कारण आते हैं, यह तो नहीं परन्तु इसे पूर्व की सातावेदनीय का उदय है, इसलिए इसे पैसे और सामग्री का संयोग आता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि सातावेदनीय के परमाणु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव की सत्ता विद्यमान भिन्न है और यह पैसा आवे, उसकी उत्पाद-व्यय-ध्रुव की सत्ता विद्यमान उसमें है। उस पैसे को लावे कौन? आहाहा! बोला जाता है ऐसा व्यवहार से कि इस पुण्य था तो पैसा आया। बोला जाता है, परन्तु यह वस्तु ऐसी नहीं। आहाहा! इसने राग का व्यवसाय किया, इसलिए पैसे आये, यह बात तो एकदम खोटी ही है। ऐसा होगा? चिमनभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : आप कहो वह बराबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो छह द्रव्य में एक द्रव्य के साथ **सर्वथा नहीं मिलता...** भाषा देखी? हें? एक तो यह लिया है, उसमें नहीं? परमार्थ वचनिका। जीव के एक परिणाम के साथ दूसरे जीव के परिणाम का मिलान नहीं खाता। है उसमें? परिणाम, हों! वापस। आता है न? अपूर्वकरण और अनिवृतिकरण आता है। आहाहा! एक-एक

जीव के परिणाम और दूसरे जीव के परिणाम का (मिलान नहीं)। परिणाम करे तो नहीं परन्तु उनके दो के परिणाम समान नहीं होते। परिणाम भी स्वतन्त्र सत्ता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! क्या हो? दुनिया को न बैठे, इससे कहीं सत्य चला जायेगा?

मुमुक्षु : अनिवृत्तिकरण में परिणाम समान होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे समान हों तो भी अमुक में सब समान नहीं होते। वह अमुक प्रकार के परिणाम समान होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। वहाँ आता है। परमार्थ वचनिका में (आता है)। उसके सब परिणाम समान नहीं होते, किसी जीव के। क्योंकि सत्ता भिन्न है तो केवलज्ञानी की सत्ता समान है न? तो भी उसे कुछ अन्तर हो। शरीर की आकृति में व्यंजनपर्याय में... आहाहा!

सर्वथा नहीं मिलता ऐसी द्रव्यों के स्वभाव की मर्यादा है। आहाहा! हाथ बाँधकर बैठे रहो, अपने आप होगा, (ऐसा अज्ञानी) कहते हैं। परन्तु हाथ बाँधकर बैठा भी कौन रहे और हाथ हिलावे भी कौन? ऐसा कि अपने आप होगा? अपने आप ही वहाँ होता है, तू वहाँ आगे खड़ा है, इसलिए व्यवस्था मुझसे होती है—(ऐसा मानना) वह तो तेरा अभिमान है, अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसी द्रव्यों के स्वभाव की मर्यादा है।** ऐसा कहा, देखा? एक द्रव्य की मर्यादा में दूसरे द्रव्य का संक्रमण नहीं होता। यह १०३ में गाथा में आया न? समयसार। एक द्रव्य की पर्याय में दूसरे द्रव्य की पर्याय का संक्रमण नहीं होता। संक्रमण नहीं होता तो पर को किस प्रकार करे? आहाहा! १०३ (गाथा में) आता है। आहाहा!

'तेन खलु वस्तु तत् वस्तु' आहाहा! **तिस कारण से निश्चय से जो कोई द्रव्य...** परमाणु या आत्मा **वह अपने स्वरूप है—जिस प्रकार है, उसी प्रकार है,...** आहाहा! यह तो अपने आ गया नहीं पहले? चार बोल नहीं आ गये? चार बोल। प्रत्येक द्रव्य के परिणाम वह कर्म है। हुआ? वह कर्म परिणामी के आश्रय से है। अभी तो पर से भिन्न करके (बात है)। परिणामी जो परिणमनेवाला है, उसके आश्रय से वह कर्म है। दो (बात)। वह कर्म कर्ता के बिना नहीं होता। तीन (बात)। और वह परिणाम एकरूप रहता नहीं। पहले बात आ गयी है। २११ (श्लोक)। आहाहा! एक-एक श्लोक! जिस प्रकार भिन्न वस्तु है, उस प्रकार भिन्न की सत्ता का यहाँ स्वीकार कराते हैं। आहाहा! तेरी

पर्याय में तुझे राग आया, इसलिए यह शरीर को ऐसा कि ऐसे चलाऊँ या शरीर की इन्द्रियों को ऐसे करूँ, यह तीन काल में हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

पाँचों इन्द्रियों के परमाणुओं की पर्याय उस काल में उत्पादरूप से होती है, उसमें आत्मा राग करे तो वह इन्द्रियों की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी भ्रमणा एकदम हो जाती है। इन्द्रिय, इन्द्रिय है, वह पर्याय में जागृत होती है तो उसे आत्मा ने जागृत किया है, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! भारी गजब बात है न! समझ में आया? तेरी सत्ता में तूने काम लिया। अब पर की सत्ता में लेने कहाँ गया? आहाहा! गले उतारना, बापू! यह तो अन्दर की बात है, हों! श्रद्धा करने की बात है। ऐसे के ऐसे भाषा में भले ऐसा कहे कि हम कर सकते नहीं परन्तु अन्दर में कर सकने का अभिप्राय छूटता नहीं। आहाहा!

महासिद्धान्त तो इसमें से इतना लेना है कि कर्म का उदय है, उसकी सत्ता भिन्न है और राग करनेवाले का राग की पर्याय भिन्न है। एक समय में भले हो, तो भी वह कर्म के कारण यहाँ राग हुआ है, या वहाँ वेद का उदय आया, वह जड़ है, अजीव है, इसलिए यहाँ वेदवासना हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! लो!

वह अपने स्वरूप है—जिस प्रकार है, उसी प्रकार है,... उस-उस वस्तु की उस समय की जो पर्याय जैसी है, वैसी ही है। आहाहा! **'अयं निश्चयः' ऐसा तो निश्चय है,...** एक बात। **परमेश्वर ने कहा है,...** दो बात। ऐसा तो निश्चय है परमेश्वर ने कहा है। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने भी ऐसा कहा है। आहाहा! भगवान भी ऐसा कहते हैं कि यह वाणी निकलती है, वह मुझसे नहीं। यह बड़ी चर्चा चली थी। पालीताणा... पालीताणा। रामविजय थे वहाँ। पहले (संवत्) १९९५ में जब गये (तब)। भगवान पहले समय में परमाणु ग्रहते हैं, दूसरे समय में छोड़ते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवती (सूत्र) शास्त्र में ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब उनके लिखे हुए हैं। कल्पित लिखे हैं सब। आहाहा! सत्य सिद्धान्त तो जो हो, तत्प्रमाण होगा तो सिद्धान्त कहलाये न? विपरीत बातें करे और सिद्धान्त कहलाये? आहाहा! भगवान भी ऐसा कि परमाणु को ग्रहे और दूसरे समय में छोड़े। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में एक... शुकनलालजी कहीं गये लगते हैं। हाँ, उन्हें ठीक नहीं था। आत्मा में त्यागोदापादान(शून्यत्व) नाम की एक शक्ति है। पर का ग्रहण और पर का त्याग रहित ही उसका स्वरूप है। पर का त्याग करना या ग्रहण करना, वह उसका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! कहो! यह रोटी उठाना, ग्रहण करना और थूँक डालना, कहते हैं कि यह ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। अज्ञानी के आत्मा में भी नहीं। आहाहा! यह तो मानता है। श्रीमद् ने एक बार ऐसा कहा, तिनके के दो टुकड़े करने की हमारे में सामर्थ्य नहीं। तब लोग ऐसा कहे कि, निर्बलता के कारण से है? एक तणखलुं समझे? तिनका... तिनका। उसके दो टुकड़े करने की हमारे में सामर्थ्य नहीं है अर्थात् कि आत्मा कर नहीं सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : एक वाक्य में पूरा 'कर्ता-कर्म अधिकार' लिख दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ जाता है। विस्तार से समझाना तो पड़े न! बहुत प्रकार पड़ते हैं।

वहाँ तो कहा कि विकारभाव, वह संयोगीभाव है। वह संयोगीभाव जीव कैसे करे? ज्ञानी स्वभावभाव को करे। आहाहा! यहाँ तो संयोगीभाव सिद्ध नहीं करना है। उसका भाव उसमें है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! कर्ता-कर्म में तो यह लिया है कि पुण्य और पाप का, दया, दान, व्रत का विकल्प जो उठता है राग, वह संयोगी चीज़ है, इसकी स्वभाव की चीज़ नहीं है। आहाहा! इसलिए उस संयोगीभाव का कर्ता हो, वह अज्ञानी है। यह अभी यहाँ सिद्ध नहीं करना। यहाँ तो उसकी सत्ता में जो भाव होता है, वह पर की सत्ता के कारण से नहीं और पर की सत्ता में जो भाव होता है, वह दूसरे के सत्ता के कारण नहीं। आहाहा! ऐसा सुनने को भी मिलता नहीं, कहते हैं। हैं? आहाहा! जहाँ-तहाँ गड़बड़ घोटाला। सेठियाओं को प्रसन्न रखे, पैसा खर्च करे। उसे होता है कि, ओहोहो! तुमने तो बहुत काम किये। तुमने तो ऐसा किया है, वैसा किया है। अमुक भी किया नहीं। आहाहा! पर के काम किये हैं, ऐसी मान्यता मनवानी है, वह मिथ्यात्व है, महापाप है। आहाहा! कहो, सेठ!

मुमुक्षु : अनादि का अभ्यास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो कहते हैं, यह छुड़ाते हैं। अनादि का अभ्यास है और उस प्रकार के इसे प्ररूपक भी मिल गये हैं। यह बात इसे रुचती-सुहाती है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान परमेश्वर ने ऐसा कहा है। उसमें आया न? हें? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने ऐसा फरमाया है कि एक देह की यह चलने की क्रिया है, वह आत्मा से नहीं होती। उसकी सत्ता में आत्मा की सत्ता का प्रवेश नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। एक सब्जी के दो टुकड़े, घीसोड़ा पूरा हो, (उसके) टुकड़े करने की पर्याय है, वह जीभ ने नहीं की, दाँत ने नहीं की। क्योंकि दाँत की सत्ता के रजकण भिन्न है और सब्जी की जो सत्ता है, उसके रजकण भिन्न हैं। दूसरे के रजकण के उत्पाद में उसका विद्यमानपना है परन्तु दूसरे की पर्याय के विद्यमानपने में इसका विद्यमानपना जाये और उत्पन्न करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! इसमें तो यही हुआ, पर की दया पाल सकता नहीं, ऐसा कहा। पर को मार सकता नहीं, पर की दया पाल सकता नहीं, पर को सुविधा दे सकता नहीं कि भाई! इसे क्षुधा है, इसलिए आहार दूँ; प्यास है इसलिए पानी दूँ; सर्दी है इसलिए कपड़ा दूँ। कि, नहीं। किसी द्रव्य की कोई सत्ता किसी को दे सके या ले सके, यह है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सेठिया तो कपड़ा देते हैं गरीब लोगों को।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई देता नहीं, कौन देता है? उन जाने के रजकण में क्रियावती नाम की शक्ति है, इससे क्रियावतीशक्ति के कारण वे रजकण यहाँ से अन्यत्र जाते हैं। उसके अपने उत्पाद की पर्याय के कारण से वहाँ जाते हैं। दूसरे ने उसकी जाने की क्रिया की है कि यह पैसा लो, हाथ से गिनकर दिये। यह पैसा, यह अनाज, यह दाल, यह भात, यह सब्जी। यह कहते हैं कि एक द्रव्य की सत्ता दूसरे द्रव्य की सत्ता में कुछ कर नहीं सकती। आहाहा! एकदम अनन्त शक्ति है, उसकी प्रत्येक में, परन्तु कोई ऐसी शक्ति नहीं कि पर की सत्ता का कर सके। आहाहा! समझ में आया? यह एक जगह आया है कि भाई! आत्मा में अनन्त शक्ति है तो एक शक्ति ऐसी भी लो कि कर्म को करे, पर को करे, ऐसी शक्ति लो न! उसे तेजहीन कैसे ठहरा देते हो? अनन्त शक्ति है तो उसमें की कोई एक शक्ति ऐसी भी है कि पर का कुछ कर सके। आहार दे, पानी दे,

अमुक (करे)। आहाहा! गजब बात है। ऐसा सुनने को मिलता नहीं कितनों को। इसलिए बेचारे क्या करे? कहीं स्थिर न हो। आहाहा! है?

परमेश्वर ने कहा है.... दो बात। **अनुभवगोचर भी होता है।** देखा? तीसरी बात। ज्ञान में भी ऐसा ज्ञात होता है, कहते हैं। कल आया था न? भाई! चन्दुभाई! नहीं? '**इष्यते**' आया था न? हें? ज्ञान में ऐसा ज्ञात होता है, ऐसा कल आया था। २०१ (पृष्ठ पर) परन्तु कहाँ आया? बीचोंबीच। '**इष्यते**' बस, यह। **निश्चय से अपने स्वरूप है, ऐसा अनुभवगोचर होता है।** है। '**इष्यते**' कल आया था। बीच में है। '**स्वभावनियतं**', '**स्वभावनियतं इष्यते**'। आहाहा! हमारे ज्ञान में भी ऐसा ज्ञात होता है। वह एक व्यक्ति आया था। (वह कहे) पानी अग्नि से गर्म होता है, यह प्रत्यक्ष दिखता है और उसे तुम इनकार करते हो, यह दृष्टि का विरोध है। दिखता है न? परन्तु दिखता नहीं, ऐसा कहते हैं। तू संयोग से देखता है।....

एक आया था, एक पण्डित था। आहाहा! दृष्टि भी यह दिखती है, ऐसा है। पानी गर्म हुआ है, वह स्वयं से हुआ है, ऐसा दिखता है। उसकी उस समय की गर्म पर्याय का उत्पाद अपने गुण के कारण हुआ है अथवा पर्याय की स्वतन्त्रता के कारण हुआ है। आहाहा! आहाहा! आत्मा में... कितने ही ऐसा कहते हैं कि आत्मा तो शुद्ध हे तो उसमें विकार आया कहाँ से? एक चिदानन्दजी (नाम के) क्षुल्लक थे। नहीं वे चिदानन्दजी? दो चातुर्मास थे। छह दिन तक बहुत चर्चा चली। क्योंकि वे लोग पूरे सम्प्रदाय में सर्वत्र कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है, बस! यह प्रश्न करते थे कि आत्मा तो शुद्धस्वरूप है, वह विकार कैसे करे? और विकार तो है, इसलिए विकार पर से होता है। आत्मा में कोई द्रव्य-गुण ऐसा नहीं है कि अशुद्ध है। तब अब पर्याय में अशुद्धता आयी कहाँ से? यहाँ द्रव्य-गुण में नहीं तो यहाँ अशुद्धता आयी कहाँ से? इसलिए पर के कारण अशुद्धता होती है, ऐसी सबकी पूरी लाईन ही ऐसी है। आहाहा! तब बड़ी चर्चा चली थी। विकार कर्म के कारण निमित्त से होता है, नहीं तो विकार स्वभाव हो जायेगा, ऐसा प्रश्न था। परन्तु पर्याय में विकार होने का स्वभाव ही है। आहाहा! स्वस्य भवनं स्वभाव। अपनी पर्याय में होता है, ऐसा स्वभाव है, ऐसा ही उसका भाव है। द्रव्य-गुण का (नहीं), परन्तु पर्याय का स्वतन्त्र ऐसा स्वभाव ही है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, परमेश्वर ने ऐसा कहा है। उन लोगों की सबकी श्रद्धा ऐसी थी। वर्णीजी की सबकी, सब पण्डितों की पूरी श्रद्धा (ऐसी थी)। तब बड़ी चर्चा हुई थी। विकार अपने से होता है, कर्म से नहीं। इस बात से तो उनको बहुत हो गया, ऐसा हुआ कि, आहाहा! यह लोग तो भूले, वे कैसे भूले! वहाँ कोलकाता पत्र आया। गजराजजी के यहाँ। साहूजी सेठ लाये। यह विकार है, वह किससे होता है? कर्म से होता है, ऐसा लिखते हैं और आप कहते हो कि कर्म से नहीं। यदि कर्म से नहीं हो तो इसका अर्थ ऐसा हो गया कि वह विकार तो स्वभाव हो गया, इसलिए कर्म से होता है तो वह विकार कहलाता है। साहूजी (पत्र) लेकर आये। गजराजजी के यहाँ आहार था। कहा, वहाँ सम्मेदशिखर में जवाब दे दिया गया है। विकार के कारकों में पर कारकों की अपेक्षा नहीं है। पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा। पाठ देखो यह! भगवान का कहा हुआ पाठ है। तीनों सम्प्रदाय में पहले से ही यह है—विकार कर्म से होता है, विकार कर्म से होता है, बस!

रामविजय तो स्पष्ट यही कहता है, चर्चा करते थे तब। जेठाभाई है न एक? जेठाभाई खेडावाले (उन्होंने) पचास प्रश्न निकाले थे। फिर कहे कि, अपने चर्चा करें। जेठाभाई कहे। पहली चर्चा की, इतनी तुमको मान्य है? कि कर्म से विकार होता है, यह पहले मान्य है? फिर अपने चर्चा करेंगे। रामविजय कहे। यह कहे, यह हमारे मान्य नहीं। परन्तु इन सेठियों को भी कहाँ खबर थी वहाँ? जय नारायण! ऊपर कहे वह हाँ।

मुमुक्षु : आपके जैसा किसे ने कहा नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सेठ ऐसा कहते हैं। सेठ तो ऐसा कहते हैं कि हमको सुनानेवाले नहीं मिले। ऐसा स्वरूप कठिन है, वस्तुस्थिति ऐसी है। उन्हें भी क्यों नहीं बैठता था? कि कोई गुण ऐसा नहीं कि विकार करे और पर्याय में विकार अध्धर से होता है, वह किसके कारण होता है? चिदानन्दजी के साथ छह दिन चर्चा चली। यहाँ चातुर्मास था न? दो चातुर्मास थे। चिदानन्दजी नहीं वे, हाथ ऐसा है, गुजर गये। बहुत अभ्यासी थे। चिदानन्द, द्रोणगिरी। यहाँ बहुत चर्चा हुई। अन्त में अन्दर एकान्त में आकर उन्होंने मुझसे कहा कि आप कहते हो, तद्नुसार तो हम क्षुल्लक नहीं हैं। अब हमारे करना क्या? मैंने कहा, हम किसी को कुछ कहते नहीं। तत्त्व है, वह समझो। बाकी तुम छोड़ दो या ग्रहण करो और अमुक करो, (ऐसा नहीं कहते)। यहाँ आये थे,

बेचारे दो बार आये थे। क्या करना? क्या करना? आप जो कहते हो, उस शैली से तो क्षुल्लकपना हमारे में नहीं है। अब हम क्षुल्लक होकर बैठे, करना क्या? भाई! हम कुछ कहते नहीं कि तुम क्षुल्लकपना छोड़ दो। आहाहा!

यह तो कहा न, वे आये थे, श्वेताम्बर साधु आये थे, वे यहाँ चातुर्मास में रहे थे। ब्राह्मण थे, बहुत वाँचन किया। चातुर्मास यहाँ रहे। हमेशा सुनने आवे, उन्होंने भी मुझे एकान्त में कहा, आप कहते हो वह बात सोलह की सोलह आने है, परन्तु हमारे करना क्या अब तब? ऐसा कि आप कहो कि छोड़ो, हम यहाँ निभायेंगे। भाई! हम तो किसी को कुछ कहते नहीं। हें?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास ही यह था। उसका नाम क्या था? कुमुदविजय। ब्राह्मण थे। श्वेताम्बर साधु। चार महीने रहे। सवेरे-दोपहर आवे। उतरे थे वहाँ वह श्वेताम्बर का है न? चारित्रविजय, सुनने यहाँ आवे। बैठे। एक तो वापस चला गया, छोड़ दिया। यह कहे, बात तो सच्ची सोलह की सोलह बात है। हमारे क्या करना? हम क्षुल्लक होकर पड़े हैं। आहाहा! बापू! क्षुल्लकपना वह क्या चीज़ है? ग्यारह प्रतिमा, बापू! वह वस्तु, भाई! आहाहा! जिसे अभी राग की (या) रजकण की पर की क्रिया, मैं होऊँ तो यह होगी, ऐसी मान्यतावाले को दो द्रव्य की एकताबुद्धि है और इससे आगे जाकर राग के दया, दान का राग भी मेरा है, उसे भी स्वभाव और विभाव की एकताबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है प्रभु का। परमेश्वर ने ऐसा कहा है, यहाँ आया और ज्ञान में ऐसा आया है, और वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

अनुभवगम्य भी होता है। ऐसा कहते हैं। **'कः अपरः बहिः लुठन् अपि अपरस्य किं करोति' ऐसा कौन द्रव्य है जो यद्यपि ज्ञेय वस्तु को जानता है...** वह बाह्य लुटंति, ऐसा। ज्ञेय को जानता है, परन्तु ज्ञेय से बाह्य लुटंति। ज्ञेय से भिन्न है। ज्ञेय को आत्मा जानता है, परन्तु ज्ञेय से आत्मा भिन्न लुटंति—बाहर रहता है। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञेय वस्तु को जानता है तो भी ज्ञेयवस्तु के साथ सम्बन्ध कर सके? अर्थात् कोई द्रव्य नहीं कर सके।** आहाहा! यह वे बाबा नहीं आते? अन्दर लोलक और नीचे लकड़ा

होता है। ऐसे घुमावे वहाँ लोलक खड़खड़ाहट होती है। माँगने आते हैं न? हमारी दुकान में तो बहुत देखा हुआ हो न? वे आते हैं, बाबा, नहीं? ऐसा कुछ नाम बोला जाता है। ऐसे पैसा देने में देरी लगे तो उनके पास लकड़ा होता है। उसे ऐसे-ऐसे घुमावे तो अन्दर लोलक घूमे। परन्तु वास्तव में तो लकड़ा उसे स्पर्शा नहीं। अरे! आता है न, यह? क्या कहलाता है? अन्दर ऐसे लोलक होता है। हें?

मुमुक्षु : अब कोई ऐसे आते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब बहुत थे। वे सब बाबा दुकान पर बहुत आते थे। थोड़ी सी देर लगे वह ग्राहक आया हो तो फिर ऐसे घुमावे। ऐसा कि सुनावे, झट लाओ। लकड़ा ऐसा हो कि ऐसे-ऐसे हिले वहाँ अन्दर लोलक ऊँचा-नीचा हो। वह भी यहाँ तो कहते हैं कि उसे स्पर्शा नहीं, और उसके कारण से हुआ है। आहाहा! कैसे बात बैठे? एकान्त ही लगे न! आहाहा! कहो, श्रीपालजी! ऐसी बात है। फिर सामने कितने ही विरोध करे (कि) एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है। यह सम्यक् एकान्त ही है।

मुमुक्षु : आप कहते हो सम्यक् एकान्त। वे लोग मिथ्या एकान्त कहते हैं। यही बड़ा अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। आहाहा!

ऐसा कौन द्रव्य है जो यद्यपि ज्ञेय वस्तु को जानता है... इतने तक लिया। **तो भी ज्ञेयवस्तु के साथ सम्बन्ध कर सके?** आहाहा! इस पत्र को जानता है, अक्षर को, तो भी ज्ञान ज्ञेय का सम्बन्ध करे, ऐसा कहाँ है? आहाहा! वास्तव में तो ज्ञान उसे जानता है, ऐसा भी नहीं है। क्योंकि उसे स्पर्शता नहीं। उसकी पर्याय ज्ञान है, उसे स्पर्शता है, स्पर्शता है तो ज्ञान, ज्ञान की पर्याय को जानता है। आहाहा! यह आता है न? कलश में नहीं? ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता। ज्ञान भी आत्मा, ज्ञेय भी स्वयं अपना। परज्ञेय नहीं। आहाहा! स्वयं ज्ञान, स्वयं ज्ञाता, स्वयं ज्ञेय। आहाहा! ऐसी अपनी सत्ता का उत्पाद, ज्ञेय का, ज्ञान अपने को जाने। आहाहा! यहाँ तक अन्दर जाना, बापू! आहाहा! यह धीरज का काम है। यह कहीं कोई पठन पढ़ जाये, इसलिए हो जाये, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

अन्दर वस्तु यह राग को ज्ञेय जानता है, राग को ज्ञेयरूप से ज्ञान जानता है वह

भी व्यवहार है, कहते हैं। और राग है, इसलिए यहाँ ज्ञान में उसके सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। उस समय के ज्ञान की पर्याय का अपना स्वतः उत्पाद स्वपरप्रकाश के सामर्थ्य से हुआ है। राग हुआ, उसका ज्ञान भी राग है, इसलिए हुआ है—ऐसा भी नहीं है। आहाहा! यहाँ तो परद्रव्य के साथ सम्बन्ध कहते हैं, परन्तु अन्दर में भेद पाड़े तो यहाँ तक भेद है। आहाहा! ऐसा खींच-खींचकर बहुत आगे ले गये, ऐसा लोग कहते हैं। खींचकर नहीं, वस्तु ही ऐसी है। नहीं कहा ऊपर? **ऐसा तो निश्चय है,...** है न? '**अयं निश्चयः**'। क्या? वस्तु वस्तुरूप से है, ऐसा निश्चय है। आहाहा! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपनी-अपनी पर्याय में रहा हुआ है, वह पर के कारण नहीं और पर को स्वयं करता नहीं, ऐसी वस्तु है, ऐसा निश्चय करो। आहाहा! परमेश्वर ने ऐसा कहा है और ज्ञान में भी इसी प्रकार से ज्ञात होता है। आहाहा!

ज्ञेयवस्तु के साथ सम्बन्ध कर सके? कि नहीं। **भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुस्वरूप की मर्यादा तो ऐसी है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्य के साथ एकरूप नहीं होता है।** आहाहा! कर्म के रजकण और आत्मा के प्रदेश एक क्षेत्र में हैं, तथापि कर्म के परमाणु आत्मा को जड़ नहीं बना सकते और चैतन्य ज्ञान है, वह कर्म को बाँध नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? **इसके उपरान्त भी जीव का स्वभाव ज्ञेय वस्तु को जाने...** यह तो अपना स्वभाव है, ज्ञेय के कारण नहीं। आहाहा! **ऐसा है तो रहो तो भी धोखा तो कुछ नहीं है।** पर को जानने का स्वभाव है। (तो कहते हैं) हो, ऐसा कहते हैं। वह तो पर को जानने का स्वभाव अपना है। उसमें कुछ विरोध नहीं। **जीवद्रव्य ज्ञेय को जानता हुआ अपने स्वरूप है।** लो। सामने चीज़ है, वैसा यहाँ जानता हुआ स्वयं अपने स्वरूप में रहकर जानता है, उसके स्वरूप में गया है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वस्तु की मर्यादा अनादि परमेश्वर ने कही है, वस्तु की मर्यादा ऐसी है और ज्ञान में भी इस प्रकार से ही निश्चय है, ऐसा ज्ञात होता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २१४

(रथोद्धता)

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः
किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ।।२२-२१४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—कोई आशंका करता है कि जैनसिद्धान्त में भी ऐसा कहा है कि जीव, ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म को करता है, भोगता है। उसका समाधान इस प्रकार है कि झूठे व्यवहार से कहने को है। द्रव्य के स्वरूप का विचार करनेपर, परद्रव्य का कर्ता, जीव नहीं है। 'तु यत् वस्तु स्वयं परिणामिनः अन्यवस्तुनः किञ्चन अपि कुरुते' [तु] ऐसी भी कहावत है कि [यत् वस्तु] जो कोई चेतनालक्षण जीवद्रव्य, [स्वयं परिणामिनः अन्यवस्तुनः] अपनी परिणाम शक्ति से ज्ञानावरणादिरूप परिणमता है, ऐसे पुद्गलद्रव्य का [किञ्चन अपि कुरुते] कुछ करता है-ऐसा कहना, 'तत् व्यावहारिकदृशा' [तत्] जो कुछ ऐसा अभिप्राय है, वह सब [व्यावहारिकदृशा] झूठी व्यवहारदृष्टि से है। 'निश्चयात् किं अपि (अन्यत्) नास्ति' [निश्चयात्] वस्तु के स्वरूप का विचार करने पर, [किमपि (अन्यत्) नास्ति] ऐसा विचार-ऐसा अभिप्राय कुछ नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कुछ ही बात नहीं, मूल से झूठ है—(इह मतं)—ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ।।२२-२१४।।

माघ शुक्ल १४, मंगलवार, दिनांक-२१-०२-१९७८, कलश-२१४, २१५, प्रवचन-२३८

यह कलशटीका है। समयसार जो कुन्दकुन्दाचार्यदेव संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में हुए, वे भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है और इसकी टीका अमृतचन्द्राचार्यदेव ने (की है) उनके कलश हैं। २१४, लो, सेठ! आज हिन्दी चलेगा। २१४। हिन्दी है न? २१४।

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः
किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ।।२२-२१४।।

क्या कहते हैं ? **कोई आशंका करता है कि जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है कि जीव ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म को करता है, भोगता है।** यह मूल चीज़ है।

मुमुक्षु : गोम्मटसार में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखा है। यह कहते हैं, वह व्यवहारिक झूठी दृष्टि से कहा गया है। ज्ञानावरणीय आदि कर्म बँधते हैं, वह तो अपनी पर्याय से बँधते हैं, आत्मा उन्हें बाँधता है, ऐसी बात है ही नहीं। एक द्रव्य की पर्याय—अवस्था दूसरे द्रव्य की पर्याय कभी नहीं करती। ऐसी चीज़ है।

वीतराग परमेश्वर ने अपने ज्ञान में जाना, ऐसा वस्तु का स्वरूप कहा। जैन सिद्धान्त में ऐसा आता है न कि ज्ञानावरणीय (आदि) आठ कर्म जीव बाँधता है। बाँधता है कहते हैं न ? और ज्ञानावरणीय कर्म को आत्मा भोगता है, ऐसा आता है न ? वह तो व्यवहारिक झूठी दृष्टि से कहने में आया है। आहाहा! ऐसे ज्ञानावरणीय कर्म हैं, वह अपनी ज्ञान की पर्याय को हीन करे, यह भी व्यवहार से झूठी दृष्टि से कहने में आया है। परद्रव्य की पर्याय को, पर्याय अर्थात् अवस्था, परद्रव्य परिणमन करता है, उसकी अवस्था को परद्रव्य कर सकता है, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

जो छह प्रकार से ज्ञानावरणीय बँधता है। ज्ञानावरणीय (कर्म) बाँधने के छह प्रकार हैं न ? अतत्प्रदोष, निन्हव आदि छह बोल हैं। ज्ञानावरणीय के बन्धन में निमित्त रूप से छह बोल हैं, उनका भी कर्ता आत्मा अज्ञानी है। आहाहा! अपनी पर्याय में भी जो पुण्य-पाप के दोष उत्पन्न होता है, वह विकार है और आत्मा निर्विकारी स्वभाव है तो जिसकी दृष्टि स्वभाव पर गई वह, जो छह (प्रकार से) ज्ञानावरणीय बँधे, उन छह कारण का भी वह कर्ता नहीं होता। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी सूक्ष्म बात है, प्रभु!

एक द्रव्य—एक वस्तु दूसरी वस्तु को कुछ भी करे, यह तीन काल में जैनदर्शन

में ऐसी बात है नहीं। आहाहा! जैसे आत्मा इच्छा करे तो शरीर चले या वाणी बोले, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। क्योंकि परद्रव्य की पर्याय को परद्रव्य की पर्याय करे, वह परिणमने वाला द्रव्य है तो स्वयं से परिणमता है, उसे दूसरा परिणमावे, ऐसा नहीं होता। कहो, सेठ! हें?

मुमुक्षु : होने मात्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं, अज्ञानी झूठी दृष्टि से देखता है। हम तम्बाकू बेचते हैं और तम्बाकू लेते हैं, तम्बाकू के पैसे हम लेते हैं, वह सब परद्रव्य की क्रिया आत्मा करे, ऐसा तीन काल में नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव, जिन्होंने तीन काल—तीन लोक एक समय में देखे। परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं सीमन्धर भगवान, उनके पास कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे, आठ दिन रहे थे और आकर यह शास्त्र बनाये हैं। भगवान का यह सन्देश है। आहाहा!

आत्मा, जो ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म बँधते हैं, उनका आत्मा कर्ता नहीं। तो शास्त्र में आता है न, यह कहा न? **जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है...** देखो! लोग तो कहते हैं परन्तु जैन सिद्धान्त में ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न? **जैन सिद्धान्त में भी...** ऐसा। लोग तो कहते हैं, परन्तु जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है कि **जीव ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म को करता है,...** और आत्मा ज्ञानावरणीय कर्म को **भोगता है।** आहाहा! क्या कहा यह? जैन सिद्धान्त में ऐसा कहा है कि ज्ञानावरणीय कर्म के परिणाम का आत्मा कर्ता है और ज्ञानावरणीय के परिणाम से अपनी पर्याय में जो हीन दशा होती है, वह उससे होती है, तो ज्ञानावरणीय कर्म का भोक्ता भी आत्मा है। ऐसा जैन सिद्धान्त में कहने में आया है। है? आहाहा!

उसका समाधान इस प्रकार है कि झूठे व्यवहार से कहने को है। सेठ, है? क्या कहा? कहाँ है? नहीं खबर। यह इनके वे बहियाँ देखे तत्प्रमाण यह ध्यान में बहुत नहीं रखते। पैसे की बहियाँ। **झूठे व्यवहार से कहने को है।** है? है। **झूठे व्यवहार से कहने को है।** यह पुस्तकें पढ़ी नहीं, पैसे की बहियाँ पढ़ी हैं। सेठ! ज्ञानावरणीय कर्म को आत्मा करता है और उसे भोगता है, यह व्यवहार—झूठी दृष्टि से कहने में आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा करता है, वह झूठी दृष्टि से किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्त का ज्ञान कराया है (कि) निमित्त क्या है? निमित्त है न? उसका ज्ञान कराया है। उससे पर में कुछ होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! आत्मा पर की दया पाल सके, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य की पर्याय जो है, वह पर आत्मा कर सके, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! पर को जिला सके, पर को मार सके, पर को सुविधा—अनुकूलता दे सके, आहार-पानी (दे सके), वह आत्मा तीन काल में नहीं कर सकता। आहाहा! अरे! जैनदर्शन क्या है, इसकी खबर नहीं। अपनी कल्पना से जिन्दगी अनन्त बार व्यतीत की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आया? ज्ञानावरणीय आदि आठों कर्म। आत्मा आयुष्य बाँधता है, ऐसा कहना, वह झूठी व्यवहारदृष्टि से है। आत्मा तो, जो आयुष्य बँधता है, वह कर्म की अपनी पर्याय से बँधता है, आत्मा ने तो आयुष्य बँधे ऐसा भाव, भविष्य का आयुष्य बँधे, ऐसा भाव किया। उस भाव का निमित्त पाकर कर्म बँधता है तो व्यवहार से कहने में आता है कि आत्मा ने आयुष्य बाँधा। परन्तु ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले कहना कि ऐसा है और बाद में कहना कि व्यवहार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण निमित्त से, ऐसा लिखा है, देखो न! है? **जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है...** ऐसा लिखा है। लोग तो कहते हैं कि हम करते हैं, ऐसे काम करते हैं, ऐसे काम करते हैं, दुकान का धन्धा चलाते हैं, माल-पैसे को लेते हैं, देते हैं, माल लेते हैं, देते हैं, हम खाते हैं, पीते हैं। वह तो जड़ की क्रिया है। लोग कहते हैं हम ऐसा करते हैं तो जैन सिद्धान्त में भी आता है न? ऐसा कहा। हें? 'भी' है न? समझ में आया? जैनधर्म बहुत सूक्ष्म है, प्रभु! यह पर का तो कर्ता नहीं परन्तु अपने में जो विकार होता है, शुभ-अशुभ, दया, दान, भाव आदि, उसका भी आत्मा स्वभाव की दृष्टि से कर्ता नहीं है। अज्ञानभाव से वह विकार का कर्ता होता है। आहाहा! ऐसी बात है, बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा!

अनन्त काल से रुलता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना

सुख लेशन पायो।' आत्मा आनन्दस्वरूप है। आहाहा! पंच महाव्रत पालन किये, परन्तु वह तो राग है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के महाव्रत के भाव तो आस्रव है। तत्त्वार्थसूत्र, छठवें अधिकार में उमास्वामी ने लिया है। तो आस्रव पाले, यह तो दृष्टि मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : महाव्रत पालने की प्रतिज्ञा तो ली थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रतिज्ञा तो अशुभ को टालने को व्यवहार से कहने में आयी है। वह व्यवहार से कहने में आयी है। आहाहा! बाकी तो पुण्य, व्रत का विकल्प है, भगवान की भक्ति का भाव है, वह है शुभ, परन्तु वह शुभ मेरी चीज़ है और मैं कर्ता हूँ, तब तक वह मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी है, आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बहुत सूक्ष्म बात है। वीतरागमार्ग और यह जैनदर्शन का तत्त्व अन्तर में समझे बिना इसके जन्म-मरण कभी मिटेंगे नहीं, और ऐसी बात जैनधर्म के अतिरिक्त दूसरे में है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अन्य लोग तो कहते हैं ही, ऐसा कहते हैं। 'भी' है न? 'भी'। **जैनसिद्धान्त में भी...** ऐसा। है? सेठ! कहाँ है? अन्यमति तो कहते हैं कि पर का कर्ता पर का करे, ऐसा लोग भी कहते हैं कि हम पर का करते हैं, तो जैन सिद्धान्त भी ऐसा कहता है तो उसमें तुम्हारे क्या अन्तर पड़ा? ऐसा कहते हैं। हें? तुम बाधा किसलिए निकालते हो? सेठ! **जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है...** आत्मा आठ कर्म बाँधे, आठ कर्म भोगे—ऐसा शास्त्र में भी आता है न? तो कहते हैं, वे सब कथन झूठी व्यवहारदृष्टि से कहने में आये हैं। आहाहा! ऐसी बात अब।

मुमुक्षु : निकाचित कर्म तो भोगने ही पड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन भोगे? निद्धत और निकाचित कर्म पड़ें हो तो आत्मा को भोगना ही पड़ता है। यह बात झूठी है। कर्म जड़ हैं। भगवान आत्मा तो अरूपी चैतन्य है। वह जड़ की पर्याय भोगे या अपनी पर्याय को भोगे? आहाहा! क्या करे परन्तु तत्त्व की खबर नहीं होती।

यह कहते हैं, कर्ता है और भोक्ता है। **उसका समाधान इस प्रकार है कि झूठे व्यवहार से कहने को है।** आहाहा! कहो, सेठ! यह तम्बाकू के कमरे भर रखते हैं और

फिर पैसे पैदा करते हैं और यह क्या कहलाता है? तम्बाकू की बीड़ी लेकर मोटर... मोटर... यों क्या कहते हैं साधारण? मोटर बिना साधारण क्या कहलाता है? जीपगाड़ी। सेठ को सब है। जीप... जीपगाड़ी। एक बार तुम दिखाने ले गये थे न? मल्हारगढ़। इनके घर में चालीस तो मोटरें हैं। गृहस्थ हैं न यह तो बीड़ीवाला बड़ा व्यापारी है। कहते हैं कि उस जीव से मैंने काम लिया। आत्मा जीप को चलाता है, यह बात एकदम झूठी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लोग तो कहते हैं, परन्तु तुम जैन सिद्धान्त में क्यों कहते हो? ऐसा पूछता है। कि भाई! हम कहते हैं, वह झूठे व्यवहार से कहते हैं। वह सच्चा व्यवहार है ही नहीं। आहाहा!

सच्चा व्यवहार तो यह है कि आत्मा अपने परिणाम को करे। विकारी या अविकारी पर्याय-परिणाम को करे, यह सच्चा व्यवहार है। निश्चय में तो आत्मा विकार का भी कर्ता नहीं है। धर्मी जीव है, जो सम्यग्दृष्टि है, जिसे धर्म का भान हुआ है कि मैं तो चैतन्य आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसा समकिती जीव, धर्म की पहली सीढ़ीवाला, वह पुण्य के परिणाम का भी कर्ता नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! क्या हो? देखा!

वह **झूठे व्यवहार से कहने को है। द्रव्य के स्वरूप का विचार करने पर...** द्रव्य अर्थात् पदार्थ। आत्मा और यह पुद्गल परमाणु जड़, इनका (स्वरूप) विचारने पर। है? **परद्रव्य का कर्ता जीव नहीं है।** आहाहा! परद्रव्य का आत्मा कर्ता नहीं है। क्योंकि परद्रव्य स्वयं से परिणमते हैं, उसे दूसरा क्यों परिणमावे? आहाहा! समझ में आया? यह लकड़ी चलती है तो आत्मा इसे चला सकता है, इससे भगवान इनकार करते हैं। क्योंकि जड़ परमाणु है, उसकी पर्याय जड़ से होती है। आत्मा ऐसा कहे कि यह मुझसे हुई है (तो वह) मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। जैन के तत्त्व की उसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? **कर्ता जीव नहीं।** सेठ! बात तो समझ में आये ऐसी है। सादी भाषा है और हिन्दी है। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : आत्मा लकड़ी नहीं चलता परन्तु हाथ तो चलाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ को चला नहीं सकता। यह तो (कहते हैं)। यह तो जड़

मिट्टी है। ऐसे जो होता है, वह तो जड़ की पर्याय है, जड़ से होती है।

मुमुक्षु : आत्मा हाथ तो ऊँचा कर सकता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँचा नहीं कर सकता। कहा न, आत्मा यह ऊँचा नहीं कर सकता। इस हाथ से ऊँचा होता है, ऐसा भी नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! एक तत्त्व दूसरे तत्त्व के कोई परिणाम करे, यह तीन काल में जैन सिद्धान्त में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? है?

विचारने पर... सत्य को विचारने पर, प्रभु मुनि ऐसा कहते हैं कि एक जीवद्रव्य परद्रव्य का कर्ता नहीं। आहाहा! आहार और पानी खाता (पीता) है, उसकी क्रिया आत्मा करता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह तो जड़ की क्रिया है, वह तो मिट्टी-धूल है। दाल, भात, रोटी सब पुद्गल अजीव है तो अजीव का परिणमन आत्मा करे? खाने की (पर्याय करे)? अज्ञानी राग करे कि मैं खाता हूँ, मैं पीता हूँ, ऐसा राग करे। वह अज्ञानी (करे)। समझ में आया? धर्मी वह जड़ की क्रिया करे तो नहीं, परन्तु सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली शुरुआतवाला, यह दया, दान के परिणाम हैं, वे भी मेरे नहीं, वे विभाव हैं, विकार हैं, उनका भी कर्ता मैं नहीं, (ऐसा मानता है)। आहाहा! समझ में आया?

श्लोक का (आधार) दिया था। कर्ता-कर्म का नहीं? 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा, जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।' यह अमृतचन्द्राचार्य महाराज के श्लोक में से बनारसीदासजी ने समयसार नाटक उन्होंने बनाया (उसमें कहते हैं)। 'करे कर्म सो ही करतारा' पर के परिणाम मैं कर सकता हूं और मेरे राग के परिणाम भी मैं कर सकता हूँ, वह करनेवाला जाननेवाला नहीं रह सकता। और 'जाने सो कर्ता नहीं होई' मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञाता हूँ, ऐसा जो जाननेवाला है, वह राग और परद्रव्य का कर्ता नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ओहो! यह तो सबसे लूला हो गया, लूला (पंगु) पर का कुछ नहीं कर सकता। आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : पंगु... पंगु...

पूज्य गुरुदेवश्री : पंगु है। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, पुत्र सबको मैं निभा सकता हूँ, वह मेरी चीज़ है, वह मेरी मान्यता (मिथ्यात्व है)। परवस्तु जड़ और आत्मा तो पर है। इस आत्मा से भी यह आत्मा पर है और शरीर पर है। तो मैं पर का कुछ करता हूँ, मैं उसकी सम्हाल करता हूँ, मैं उसकी रक्षा करता हूँ... आहाहा! यह सब मान्यता मिथ्यादृष्टि—अज्ञानी की है, वह जैन नहीं है, उसे जैन की खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी के न्याय, सार बहुत अलौकिक है। आहाहा! हैं?

'तु यत् वस्तु स्वयं परिणामिनः अन्यवस्तुनः किञ्चन अपि कुरुत' क्या कहते हैं अब? **ऐसी भी कहावत है कि...** ऐसी भी कहावत है कि **जो कोई चेतनालक्षण जीवद्रव्य...** भगवान आत्मा तो चेतनालक्षण है। वह तो जानने-देखने के लक्षण से जानने में आता है। वह चेतनालक्षण पर का कुछ करे, यह तो है नहीं। आहाहा! है? **चेतनालक्षण जीवद्रव्य...** कितने ही लोग ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। **'स्वयं परिणामिनः अन्यवस्तुनः' अपनी परिणाम शक्ति से ज्ञानावरणादिरूप परिणमता है...** आहाहा! क्या कहते हैं? कि आत्मा में जो रागादि परिणाम हुए, परिणमते हैं, तो वह परिणमते हैं अर्थात् होते हैं, तो कर्म को भी परिणमाते हैं, ऐसा अज्ञानी लोग कहते हैं। है? **अपनी परिणाम शक्ति से ज्ञानावरणादिरूप परिणमता है, ऐसे पुद्गलद्रव्य का... 'किञ्चन अपि कुरुत'** आहाहा!

'तत् व्यावहारिकदृशा' जो कुछ ऐसा अभिप्राय है... जिसका ऐसा अभिप्राय है, **वह सब झूठी व्यवहारदृष्टि से है।** दो बार आया। झूठी... झूठी। आहाहा! समझ में आया? मैं आत्मा अपने परिणाम, परिणमन करता हूँ तो साथ में दूसरे को भी मैं परिणमा सकता हूँ, ऐसा माननेवाले झूठी व्यवहारदृष्टि से मानते हैं, वह सच्ची दृष्टि नहीं है। आहाहा! भारी कठिन काम। यह सब पूरे दिन काम चलाना, (वह) कुछ कर सकता नहीं।

मुमुक्षु : जब तक शुद्ध द्रव्य में दृष्टि स्थापित नहीं की, तब तक तो करता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तक राग का कर्ता है।

मुमुक्षु : पर का नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का तो बिल्कुल नहीं, अज्ञानी भी। धन्धा-बन्धा, तुम्हारी

दुकान के धन्धे का तो अज्ञानी भी कर्ता नहीं। जब तक अज्ञान है, तब तक अपने पुण्य-पाप के विकारी भाव का कर्ता होता है, बस! इतनी मर्यादा है। परन्तु पर को अज्ञानभाव से भी करे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? क्योंकि परपदार्थ अपने परिणमन से परिणमता है। परवस्तु अपनी पर्याय से परिणमती है, उसमें दूसरा उसे क्या करे? आहाहा!

जब तक अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है, तब तक भी राग और पुण्य-पाप का कर्ता है, परन्तु पर का कर्ता तो बिल्कुल नहीं। क्योंकि परद्रव्य स्वतन्त्र भिन्न है। समझ में आया? आहाहा! बहुत कठिन बातें हैं, भाई यह। बन्ध अधिकार में तो ऐसा लिया है न, कि, मैं पर की दया पाल सकता हूँ, जिला सकता हूँ, पर को मार सकता हूँ, पर को आहार-पानी, औषध, दवा, सुविधा दे सकता हूँ, (ऐसा माननेवाला) जीव मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

गाँधीजी हमारे व्याख्यान में आये थे न? गाँधीजी, राजकोट। (संवत्) २००५ के वर्ष, हों! बहुत वर्ष हो गये। ३९ वर्ष हुए। गाँधीजी व्याख्यान में आये थे। मोहनलाल गाँधी। उस समय यह बात चली थी। ३९ वर्ष पहले राजकोट में चातुर्मास था। कहा, मैं पर की दया पाल सकता हूँ, (ऐसा माननेवाला) वह तो मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। उन्हें ऐसा लगा, स्वयं दुनिया का ऐसा सब काम करते थे न?

मुमुक्षु : देश का कल्याण करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देश का कल्याण कर सकता है? देश का कल्याण कर दूँ, सुविधा दे सकूँ, यह सब मान्यता झूठी मिथ्यादृष्टि की है। ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : ऐसा माने वह मूढ़ है, ऐसा कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ है और अज्ञानी है, ऐसा कहा। बन्ध अधिकार में।

मुमुक्षु : आपने व्याख्यान में ऐसा कहा था कि, मूढ़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ है, कहा था। परन्तु पाठ में है वह कहा था न? (फिर) एक व्यक्ति को कहे, एक महाराज मुझे मूढ़ कहते थे, वे कहाँ हैं? मैंने तो सिद्धान्त की बात की थी।

मुमुक्षु : उन्होंने टोपी ओढ़ ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : टोपी ओढ़ ली। यहाँ तो वीतरागमार्ग है, यह बात चलती है। किसी व्यक्ति का यहाँ काम नहीं। आहाहा! लोगों का कल्याण करूँ, देश की सेवा कर सकूँ, वह अत्यन्त मिथ्यादृष्टि मूढ़ की मान्यता है। आहाहा! परद्रव्य की कोई भी पर्याय मैं कर सकता हूँ... आहाहा! उसे भगवान आत्मा क्या है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

जीव परिणमता है तो दूसरे को भी परिणमाता है। ऐसा है न? यह व्यवहारदृष्टि से कहने में आता है। आहाहा! '**निश्चयात् किं अपि नास्ति इह मतं**' आहाहा! **वस्तु के स्वरूप का विचार करने पर ऐसा विचार...** टीका में तो ऐसा लिया है, टीका में कि मैं पर को जान सकता हूँ, पर को देख सकता हूँ, पर को छोड़ सकता हूँ... समझ में आया? चार बोल हैं, एक बोल भूल गये। टीका में है, संस्कृत टीका है न? २१४ (श्लोक) है न? मैं पर को जानता हूँ, पर को देखता हूँ, पर को छोड़ता हूँ और पर को श्रद्धा करता हूँ। (ऐसे) संस्कृत में चार बोल हैं। पर की श्रद्धा करता हूँ, यह बात खोटी है, कहते हैं। पर को छोड़ता हूँ, आहार-पानी छोड़ सकता हूँ, आहार छोड़ देता हूँ। पर को क्या छोड़े, वह तो पर की अवस्था जानेवाली जायेगी, छूटनेवाली छूटेगी। आहाहा! यह संस्कृत टीका में है। छोड़ता हूँ, पर की श्रद्धा करता हूँ। पर को क्या श्रद्धे? स्वयं अपनी श्रद्धा करता है। मैं आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञान हूँ, मैं तो सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुण का सागर मैं आत्मा हूँ। लो, सेठ! ये सागर आया, तुम्हारा 'सागर' (गाँव) नहीं। अनन्त गुण का सागर है। आहाहा! ऐसी अन्तर सम्यक् दृष्टि हो, तब पर का कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं, परन्तु ज्ञानी होने के बाद भी राग आता है, अभी धर्मी हुआ तो भी भक्ति आदि का भाव तो आता है या नहीं? तथापि कर्ता नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। है? निश्चय में यह व्याख्या ऐसी है। निश्चय से मैं पर को देखता हूँ या पर को जानता हूँ या पर को छोड़ता हूँ, या पर की श्रद्धा करता हूँ—ऐसा है नहीं। व्यवहार से कहा (जाता है), झूठे व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! अरे..रे..!

अनन्त बार मुनिपना लिया, पंच महाव्रत धारण किये, परन्तु अन्दर में राग का

कर्ता (रहा)। मैं आत्मा भिन्न आनन्दस्वरूप हूँ, उसकी दृष्टि कभी की नहीं। उस दृष्टि बिना 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' नौंवाँ ग्रैवेयक है। ग्रीवा के स्थान में (ग्रैवेयक है)। पुरुष के प्रमाण में लोक है न? तो ग्रीवा (गर्दन) के स्थान में अनन्त बार उत्पन्न हुआ और वहाँ कौन उपज सकता है? या समकिती उपज सकता है और मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी पंच महाव्रत का धारण करनेवाला जा सकता है। आहाहा! परन्तु मैं राग से भिन्न मेरी चैतन्यक्रिया है, वह 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो' यह पंच महाव्रत के परिणाम हैं, वे भी दुःख हैं, आस्रव हैं। आहाहा! वह 'आतमज्ञान बिन' भगवान आनन्द प्रभु चैतन्यमूर्ति ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना लेश सुख न पायो। एक अंश भी सुख नहीं मिला। पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये तो भी (सुख नहीं मिला)। क्योंकि वह तो आस्रव है, दुःख है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी अन्दर पर का कर्तापना छूटना मुश्किल पड़ता है। हमारे तो दुकान व्यवस्थित चलती है, लो! ऐसा ध्यान रखें, दुकान पर बैठा हो तो नौकर-चाकर बराबर काम करे, हम घर जायें तो फिर पीछे गड़बड़ करे।

मुमुक्षु : सेठ को देखने से काम बराबर करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी करते नहीं। आहाहा! वहाँ रायचन्द गाँधी का था, बोटाद में रायचन्द गाँधी की बड़ी दुकान। वे सेठ आवे तब लोग ध्यान रखे, नहीं तो लम्बे पैर करके पड़े हों नौकर। बड़ी गली, इसलिए सेठ आवे (तब बोले) सेठ निकले। वहाँ एकदम व्यवस्थित बैठ जाये। रायचन्द गाँधी थे। पचास हजार की आमदनी थी। तब, हों! तब। यह तो बहुत वर्ष की बात है। अभी पचास हजार अर्थात् कुछ नहीं होता। आहाहा! धूल भी कुछ नहीं, बापू! कौन पैदा करे और कौन टाले? बापू! यह पैसा तो पूर्व के पुण्य निमित्त हैं और पैसे आनेवाले हों तो आते हैं। तू कहता है कि धन्धा, व्यवसाय किया राग का तो पैसे मिले, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वस्तु के स्वरूप का विचार करने पर ऐसा विचार—ऐसा अभिप्राय कुछ नहीं है।** कुछ नहीं का अर्थ यह अभिप्राय झूठा है। आहाहा! मैं पर को छोड़ता हूँ, पर का त्याग करता हूँ, पर की श्रद्धा करता हूँ, पर को जानता हूँ, पर को

देखता हूँ, यह अभिप्राय झूठा है। आहाहा! समझ में आया? यह पर के काल में अपने ज्ञान की पर्याय को जानता है और देखता है। आहाहा! समझ में आया? लो, है रतिभाई? है या नहीं उसमें? तो फिर यह कारखाना में कौन करता है सब? अभी तो ऐसा कहते हैं कि रतिभाई कर्ता-हर्ता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : रतिभाई यहाँ बैठे हैं और कारखाना तो चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! कारखाना को कौन चलावे? प्रभु! आहाहा! ये रजकण है, अजीव हैं। अजीव की पर्याय होती है, वह अजीव से होती है। जीव से अजीव की पर्याय होगी? आहाहा! अरे रे! सत्य बात सुनने को भी मिलती नहीं, वह सत् की श्रद्धा कब करे और कब ज्ञान करे? आहाहा! चौरासी के अवतार कर-करके दुःखी... दुःखी... दुःखी (हो गया)। आहाहा! एक श्वास में निगोद के अठारह भव करे। आहाहा! लहसुन, डुंगळी—प्याज के एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। आहाहा! ऐसे लहसुन में, प्याज में एक श्वास में अठारह भव करे। आहाहा! ऐसा अनन्त बार किया। पर की कर्ताबुद्धि छोड़ी नहीं। समझ में आया? अभिमान (किये), मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... दुकान ऐसे चलायी, बढ़ा दी, मैंने पैसे इकट्ठे किये। आहाहा! यह सब मिथ्या अभिप्राय है, ऐसा कहते हैं। है न?

ऐसा अभिप्राय कुछ नहीं है। कुछ नहीं का अर्थ, वह अभिप्राय सच्चा नहीं, ऐसा। मैंने ज्ञानावरणीय कर्म किये। 'आपा कर्ता-विकर्ता' यह श्वेताम्बर में आता है। आत्मा कर्म का कर्ता और आत्मा कर्म का भोक्ता। बस! यह ऐसा माने बराबर। यह झूठी बात है। परद्रव्य की पर्याय कौन करे और कौन भोगे? आहाहा! अपनी पर्याय में भी विकल्प करे, राग करे, और राग को भोगे, वह भी दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु अनाकुल आनन्द का कन्द, चिदकन्द, आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! जो सुख का सागर, सुख का सागर भगवान आत्मा है, आनन्द का सागर है। यह दृष्टि करने से आनन्द का करना और आनन्द का भोगना (होता है), यह बात बराबर है। समझ में आया? आहाहा! वह **कुछ नहीं...** आहाहा! वह अभिप्राय सच्चा नहीं। मैं पर का कर सकता हूँ, छोड़ता हूँ। अरे! पर को छोड़ता हूँ, यह अभिप्राय सच्चा नहीं,

ऐसा कहते हैं। स्त्री, परिवार छोड़ दिये, दुकान छोड़ दी, आहार छोड़ दिया। क्या छोड़े? वह चीज़ कब ग्रहण की थी कि छोड़े?

आत्मा में एक त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति है। भगवान ने आत्मा में अनन्त शक्तियाँ देखी हैं। गुण, शक्ति कहो या गुण कहो। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त। उसमें एक गुण ऐसा है—त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति। प्रभु ऐसा कहते हैं कि पर के त्याग और पर के ग्रहण से शून्य ऐसी आत्मा में एक शक्ति पड़ी है। आहाहा! शक्ति शून्य नहीं, हों! पर के त्यागग्रहण से शून्य। हैं? शक्ति तो अस्ति है। आहाहा! शक्ति किसे कहना? गुण किसे कहना? ऐसे का ऐसे अन्ध का अन्ध अनादि से चलता है। भवभ्रमण का नाश कैसे हो, इसकी खबर नहीं और यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा करो, धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं। वह तो राग है। आहाहा! धर्म तो राग से भिन्न होकर अपने शुद्धस्वभाव का वेदन करना और भोगना, इसका नाम परमात्मा धर्म कहते हैं। आहाहा! व्रतादि, तपादि भाव है, वह शुभभाव है। राग है, वह तो बन्ध का कारण, दुःख का कारण है। आहाहा! कहने में तो आता है। तो कहते हैं, वह तो कहनेमात्र आता है, वह सब झूठ है। आहाहा! है?

भावार्थ इस प्रकार है कि कुछ ही बात नहीं,... कुछ ही बात नहीं। **मूल से झूठ है,...** पर को छोड़ता हूँ, पर को मानता हूँ, पर को जानता हूँ, पर को देखता हूँ (यह) मूल से झूठा है। आहाहा! है? **मूल से झूठ है,..** जिसका मूल ही सब झूठा है। आहाहा! मैंने ऐसा छोड़ा, मैंने ऐसा त्याग किया, ऐसा त्याग किया। किसका त्याग करे? परवस्तु तूने कब ग्रहण की थी तो त्याग करे? आहाहा! कठिन बात, भाई! यह अमृतचन्द्राचार्य का कलश है। दिगम्बर सन्त हजार वर्ष पहले हुए और कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले हुए। उनके श्लोक की (गाथाओं की) यह टीका है। आहाहा! अरे रे! मनुष्यपना पाकर भी जैनदर्शन क्या है, वस्तुस्वरूप क्या है, ऐसी दृष्टि और ज्ञान नहीं किया तो मनुष्यपना मिला, वह नहीं मिलने के बराबर है वह तो। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **मूल से झूठ है,...** क्या? पर का कर्ता और पर का भोक्ता और पर को छोड़नेवाला और पर का श्रद्धान करनेवाला मूल से झूठ है। **'इह मतं' ऐसा**

सिद्धान्त सिद्ध हुआ। लो! ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि पर का त्याग करना और पर को पालना और पर को बचाना और पर को मारना और पर को सुख-दुःख देना, यह सब अभिप्राय झूठे हैं, ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ।

मुमुक्षु : गुरुदेव! दो सिद्धान्त आये। एक कर्म को करे और एक कर्म को न करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म को करे, यह सिद्धान्त झूठा बोलने में आया है। यह तो पहले कहा। अपसिद्धान्त है। आहाहा! यह कहा न आठवीं गाथा में? व्यवहार से कहने में आता है कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। अन्तर अनुभव, हों! वह भी व्यवहार से कहने में आया है। भेद पाड़कर कहा न? कि आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है, वह आत्मा। आठवीं गाथा में आया है। वह अनार्यभाषा से—व्यवहारभाषा से कहा। आहाहा! समझ में आया? श्रोताजन को भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, ऐसे भेद पर लक्ष्य नहीं करना। आहाहा! और कहनेवाले को भी व्यवहारनय को अनुसरण नहीं करना। भाषा आती है, विकल्प आ जाते हैं, परन्तु अनुसरण नहीं करना। आहाहा! है न? '**नानुसर्तव्यः**' व्यवहार को अनुसरण करना नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप के दया, दान, व्रत के भाव तो राग हैं, उनकी बात तो क्या करना? परन्तु एक चीज़ भगवान आत्मा (को) तीन रूप से कहना, दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! उस व्यवहार को अनुसरना नहीं। आहाहा! और व्यवहार आये बिना रहता नहीं। समझाने में व्यवहार से भेद डालकर समझाना पड़ता है, दूसरी तो कोई चीज़ नहीं। परन्तु वह व्यवहार आदरणीय नहीं। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ।** लो! आहाहा! अब २१५ (श्लोक)। २१५ है न?

कलश - २१५

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्णितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ।।२३-२१५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'जनाः तत्त्वात् किं च्यवन्ते' [जनाः] संसारी जीव, [तत्त्वात्] जीववस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है, समस्त ज्ञेय को जानती है, ऐसे अनुभव से [किं च्यवन्ते] क्यों भ्रष्ट होते हैं? भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है, भ्रम क्यों करते हैं? कैसे हैं जन? 'द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियः' [द्रव्यान्तर] समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है जीव, इससे [चुम्बन] अशुद्ध हुआ है जीवद्रव्य — ऐसा जानकर, [आकुलधियः] ज्ञेयवस्तु का ज्ञानपना कैसे छूटे, जिसके छूटने से जीवद्रव्य, शुद्ध होवे — ऐसी हुई है बुद्धि जिनकी, ऐसे हैं। 'तु' उसका समाधान ऐसा है कि 'यत् ज्ञानं ज्ञेयं अवैति तत् अयं शुद्धस्वभावोदयः' [यत्] जो ऐसा है कि [ज्ञानं ज्ञेयं अवैति] ज्ञान, ज्ञेय को जानता है-ऐसा प्रगट है, [तत् अयं] सो यह [शुद्धस्वभावोदयः] शुद्धजीववस्तु का स्वरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि का दाहकस्वभाव है, समस्त दाह्य-वस्तु को जलाती है। जलाती हुई अग्नि, अपने शुद्धस्वरूप है। अग्नि का ऐसा ही स्वभाव है; उसी प्रकार जीव, ज्ञानस्वरूप है, समस्त ज्ञेय को जानता है। जानता हुआ अपने स्वरूप है, ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है, सो मत मानो; जीव, शुद्ध है। और समाधान करते हैं। कारण कि 'किमपि द्रव्यान्तरं एकद्रव्यगतं (जातुचित्) न चकास्ति' [किमपि द्रव्यान्तरं] कोई ज्ञेयरूप पुद्गलद्रव्य अथवा धर्म-अधर्म-आकाश-काल द्रव्य, [एकद्रव्य] शुद्धजीववस्तु में [गत] एक द्रव्यरूप से परिणमता है-ऐसा [(जातुचित्) न चकास्ति] नहीं शोभता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव, समस्त ज्ञेय को जानता है; ज्ञान, ज्ञानरूप है; ज्ञेयवस्तु, ज्ञेयरूप है। कोई द्रव्य अपने द्रव्यत्व को छोड़कर, अन्य द्रव्यरूप तो नहीं हुआ — ऐसा अनुभव जिसको है, सो कहते हैं — 'शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेः' [शुद्धद्रव्य] समस्त

विकल्प से रहित, शुद्धचेतनामात्र जीववस्तु के [निरूपण] प्रत्यक्ष अनुभव में [अर्पितमतेः] स्थापित किया है बुद्धि का सर्वस्व जिसने—ऐसे जीव के। और कैसे जीव के? 'तत्त्वं समुत्पश्यतः' सत्तामात्र शुद्धजीववस्तु को प्रत्यक्ष आस्वादता है–ऐसे जीव के। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव, समस्त ज्ञेय को जानता है, समस्त ज्ञेय से भिन्न है–ऐसा स्वभाव, सम्यग्दृष्टि जीव जानता है।।२३–२१५।।

कलश - २१५ पर प्रवचन

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्णितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ।।२३–२१५।।

आहाहा! क्या कहते हैं? अरे! '**जनाः तत्त्वात् किं च्यवन्ते**' अरे! '**जनाः**' **अर्थात् समस्त संसारी जीव जीववस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है,** आहाहा! भगवान आत्मा तो शुद्ध पवित्र आनन्दस्वरूप है। आहाहा! वह पर को जानने में अशुद्ध हो जाता है, ऐसा नहीं है। वहाँ तक बात ले गये। पर को जानना-देखना, वह भी अपना स्वभाव है। वह पर को जाने-देखे अर्थात् परसम्बन्धी का ज्ञान अपना स्वभाव है। समझ में आया? तो पर को जानने से आत्मा अशुद्ध हो जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अवगुण देखने से, किसी अवगुणी प्राणी को देखने से यहाँ अशुद्ध हो जाता है, अवगुण आ जाते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

'**जनाः**' हे जीवो! **जीववस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है, समस्त ज्ञेय को जानती है...** समस्त ज्ञेय—राग, शरीर, वाणी, सब ज्ञेय है, उसे जाने। आहाहा! यहाँ तो सिद्ध करना है न, इसलिए (ऐसा कहा)। नहीं तो... **ऐसे अनुभव से क्यों भ्रष्ट होते हैं।** अरे रे! आहाहा! यह जानना-देखना तो अपना स्वभाव है। परचीज़ सम्बन्धी ज्ञान और परसम्बन्धी का दर्शन, वह अपने में अपने को जानना-देखना तो स्वभाव है। तो परचीज़ देखने से आत्मा अशुद्ध हो जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : गुरुदेव! परज्ञेय को जानता है, ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहा है न। जानता है अर्थात् ऐसा कहने का आशय है कि जानता है तो भी अशुद्ध हुआ नहीं। यह सिद्ध करने के लिये यह बात की है।

मुमुक्षु : जानता है यह झूठी दृष्टि हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे जानता है, यह व्यवहार हुआ, परन्तु यहाँ ज्ञान जानता है न? ऐसा यहाँ निश्चय सिद्ध करना है। परन्तु उसे जानता है, इसलिए यहाँ अशुद्ध हो गया, ऐसा नहीं है। इतना सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : व्यवहार तो झूठा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु है न व्यवहार? केवली लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहा जाता है न? यह झूठी बात है। भाषा क्या आवे? लोकालोक परवस्तु है और जानने कहाँ जाये? वह तो अपनी पर्याय में जानने में आ जाता है। आहाहा! लोकालोक तो केवलज्ञान में निमित्त है, परन्तु लोकालोक से यहाँ लोकालोक का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अपनी पर्याय में जो केवलज्ञान हुआ, उसमें लोकालोक जानते हैं, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। वह लोकालोक सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी स्वपर ज्ञान होता है, उसे जानते-देखते हैं। बहुत सूक्ष्म बातें! आहाहा!

(संवत्) १९८६ में बड़ी चर्चा हुई थी। दामनगर। ऐसा कि यह लोकालोक है तो केवलज्ञान होता है न? (लोकालोक तो) अनन्त काल से है। बड़ी चर्चा हुई थी। (संवत्) १९८३ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ५१ वर्ष पहले। एक दामोदर सेठ थे, पैसेवाले। तब दस लाख तो बहुत कहलाते थे न? अब अभी दस लाख अर्थात् कुछ नहीं। तब तो दस लाख रुपये, चालीस हजार की आमदनी थी और दस हजार का एक गाँव था। घर में गाँव था। बनिया हमारे दशाश्रीमाली, बड़े सेठ। घर में घोड़ा, एक-दो घोडा ऐसा नहीं। पाँच-सात-दस घोड़े। घोड़े की बड़ी लाईन की हुई। उसे यह बात तब बैठी नहीं थी। वे कहते हैं कि लोकालोक है तो ज्ञान होता है।

यह वीरजीभाई के साथ बात हुई थी। वीरजीभाई वकील थे न? वीरजी वकील

थे। जामनगरवाले। उनके साथ ऊपर चर्चा करते थे, फिर मेरे पास आये। यह कैसे है? कहा, लोकालोक है तो ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। ज्ञान तो अपनी पर्याय में अपनी से होता है। ऐसी चर्चा तो हमारे पचास-पचास वर्ष से चलता है यह सब।

मुमुक्षु : दीक्षा लेने से पहले चलता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : दीक्षा लेने से पहले भी चलता था। कहा, आहार-पानी करे, साधु के लिये मकान बनाया हो और साधु प्रयोग करे तो नौ कोटि में से कौन सी कोटि अूटे? यह दीक्षा लेने से पहले, ६५ वर्ष पहले की बात है। संवत् १९६९ के वर्ष, संवत् १९६९। ओगणसीत्तेर को क्या कहते हैं? सत्तर में एक कम। यह प्रश्न हमारे गुरु को किया था। कहा, यह मकान जो साधु के लिये बनाया हो (और) साधु प्रयोग करे तो नौ कोटि में से कौन सी टूटती है? मन, वचन, और काया। करना, कराना, अनुमोदन। वे तो बचाव करते थे। वास्तव में तो उसके लिये बनाया हुआ ले, वह नौ कोटि में से अनुमोदन की कोटि टूटती है, एक कोटि सच्ची रहती नहीं। आहाहा! ६५ वर्ष पहले, सेठ! यहाँ तो धन्धा ही यह है न पहले से। क्या कहा?

मुमुक्षु : विदेहक्षेत्र से लेकर आये हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! पूछा था कि साधू उसके लिये बनाये हुए यह मकान प्रयोग करता है। आहार-पानी का प्रश्न उस समय नहीं था। क्योंकि वे हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। उनके लिये बने हुए आहार-पानी बिल्कुल ले नहीं। उनके लिये चौका करके कुछ बने, वह तीन काल में ले नहीं। ऐसी उनकी शक्ति। वह तो महापाप है। उसके लिये बनाया हुआ ले, वह तो सब पापी है। आहाहा! यह चर्चा तो वहाँ संवत् १९६९ में (हुई थी)। कहा, भाई! देखो! मैंने तो जवाब नहीं दिया था। बड़ी उम्र के और मैंने अभी दीक्षा ली। मेरे मन में उस समय था कि जिसके लिये बनाया हो, वह प्रयोग करे, वह भले किया न हो, कराया न हो परन्तु वह उसका अनुमोदन है। उसकी नौ कोटि टूट जाती है। आहाहा! मन, वचन और काय करना, कराना, अनुमोदन (ऐसे) नौ। तो उसमें नौ कोटि में उसका अनुमोदन होता है। सेठ! यह तो ६५ वर्ष पहले की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : दिगम्बर और श्वेताम्बर में अन्तर होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मान्यता तो एक प्रकार की है, एक प्रकार की हो तो। उसके लिये बनाया हुआ चौका, आहार ले, वह महापाप है। आहाहा!

मुमुक्षु : पंचम काल है...

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में सीरा-हलुवा बनाते हैं तो आटा के बदले धूल से बनता है? सेठ! खोटे रुपये चलाते होंगे अभी? पहले तो ऐसा था, सेठ! अच्छे साहूकार को कोई खोटा रुपया आवे तो वहाँ (-चौखट में) जड़ दे। चलने न दे। उसे खतावे नहीं और लकड़ी का होता है न सामने, क्या कहलाता है? चौखट-चौखट! चौखट को क्या कहते हैं? वहाँ जड़ दे। साहूकार की पद्धति की थी खोटा रुपया आवे तो ले नहीं, चलने दे नहीं। बाहर चलने न दे। जड़ दे। इसी प्रकार वीतराग का मार्ग ऐसा है कि खोटा चलने न दे, खोटा हो उसे खोटा सिद्ध करके वहीं का वहीं जड़ दे कि खोटा है, यह मार्ग सच्चा नहीं है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं... आहाहा! कैसे हैं जन? **वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है, भ्रम क्यों करते हैं।** आहाहा! पर को जानने से तू अशुद्ध हो जाता है, ऐसा भ्रम क्यों करता है? तेरा स्वरूप ही जानना-देखना है, राग को जानने से क्या ज्ञान अशुद्ध हो जाता है? राग आता है, धर्मी को भी राग (आता है) परन्तु राग को जानता है कि यह राग है, मेरी चीज़ नहीं। क्या राग को जाना तो ज्ञान अशुद्ध हो गया? आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

कैसे हैं जन? आहाहा! क्या पर को जानने से भ्रष्ट होते हैं? **वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है, भ्रम क्यों करते हैं। कैसे हैं जन? समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है जीव, इससे अशुद्ध हुआ है, जीवद्रव्य ऐसा जानकर ज्ञेयवस्तु का जानपना कैसे छूटे,...** आहाहा! ऐसा कि इस ज्ञेय का जानना, वह कैसे छूटे? परन्तु क्यों छूटे? जानने का तो तेरा स्वभाव है। आहाहा! राग से तो छूटना चाहता है, पर से तो छूटना चाहता है, परन्तु पर के देखने और जानने से छूटना चाहता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! वीतराग का मार्ग... सम्यग्दर्शन, वह कोई अपूर्व है। अभी धर्म की पहली सीढ़ी,

मोक्षमहल की पहली सीढ़ी। यह छहढाला में आता है। सम्यग्दर्शन, हों! यह तो बापू! अपूर्व बात है और सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान और व्रत, चारित्र सब निरर्थक है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु और ज्ञान का सागर परमात्मा, स्वयं परमात्मस्वरूप है, 'जिन सो ही आत्मा' उसका अन्तर अनुभव में प्रतीति करके, आनन्द का स्वाद लेना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! इसके बिना सब क्रियाकाण्ड निरर्थक है, संसार खाते है। दिगम्बर दर्शन, जैनदर्शन सूक्ष्म है। आहाहा!

आकुलित होता है। **जिसके छूटने से जीवद्रव्य शुद्ध होवे...** पर को जानने से मैं अशुद्ध हो जाता हूँ, इसलिए पर को जानना छूट जाये तो मैं शुद्ध हो जाऊँ, ऐसी तेरी मान्यता झूठी है। ज्ञाता-दृष्टा तो स्वभाव है। परसम्बन्धी जो अपना ज्ञान अपने में उत्पन्न होता है तो पर को जानता-देखता है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है और अपने को जानता-देखता है, यह निश्चय है। आहाहा! तो आकुलित होकर दु:खी क्यों होता है कि अरे रे! मैं पर को जानता हूँ, (तो अशुद्ध हो जाता हूँ)। जैसे कसाईखाने में भेड़ कटती हो। आहाहा! वह क्या है? वह देखा तो ज्ञान अशुद्ध हो गया? वह तो देखने का स्वभाव है। अरे! क्या है तुझे? कि अरेरे! बकरा लटके, उसे काट डाले। कसाईखाने में मरे हुए को लटकावे। देखा है न? कसाईखाने में ऐसे लटकाकर रखते हैं मुर्दे। और वह मनुष्य निकला हो और देखे ऐसे... आहाहा! क्या है? देखने में आया तो तुझमें मलिनता हो गयी? समझ में आया?

एक बार तो हम मुम्बई निकले थे, मुम्बई। गृहस्थाश्रम में पालेज से माल लेने गये तो एक मुसलमान होगा, तो यह कूकड़ा... कूकड़ा होते हैं न? इतने छोटे-छोटे बच्चे। पच्चीस-पचास थे। उसका भुजिया बनाता था। मैंने नजर से देखा। वह कूकड़े के छोटे-छोटे (बच्चे) घूमते थे। चने का आटा। और मैं ऐसे बाजार में निकला। यह तो (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष की बात है। उसे लेकर पैर काटकर, चने में डुबोकर तेल में भुजिया को तलता था। पंचेन्द्रिय का एक का एक भुजिया! आहाहा! कुकर्म है। भाव में। वह क्रिया कर सकता नहीं, परन्तु भाव उसके महाक्लेश और पाप। परन्तु उसे

देखने से क्या आत्मा—ज्ञान अशुद्ध हो गया? ऐसा कहते हैं। यह तो देखता है, देखने का स्वभाव है। कारखाना देखे। केवलज्ञान में तो सब कसाई के कारखाने देखता है। हैं? जितने कसाई के कारखाने हैं, वे सब नहीं दिखते। देखने से अशुद्ध हो जाता है? अपने ज्ञानस्वरूप में स्वपरप्रकाशक जानने की शक्ति है तो जानता है। इसलिए पर को जानने से अशुद्ध होता है, ऐसा भी नहीं है और पर का कुछ कर सकता है, ऐसा भी नहीं है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण १, शुक्रवार, दिनांक-२३-०२-१९७८, कलश-२१५, प्रवचन-२३९

कलश टीका, २१५ कलश, फिर से थोड़ा लेते हैं। '**जनाः तत्त्वात् किं च्यवन्ते**' अरे! **संसारी जीवो...** आचार्य करुणा करके कहते हैं कि अरे जीवों! आहाहा! **जीव वस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है,...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा तो शुद्धस्वरूप ही है। वह पर का कर्ता भी नहीं। दया, दान के भाव को करे, ऐसा भी नहीं। पर को तो करे नहीं... आहाहा! परन्तु दया, दान के भाव को करे, ऐसा नहीं। वह तो शुद्ध चीज़-वस्तु है। आहाहा!

समस्त ज्ञेय को जानती है... अर्थात्? कि अन्दर राग आवे, उसे स्पर्श किये बिना ज्ञान जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। क्या कहा? समझ में आया? आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा को कोई दया, दान आदि का राग आवे, परन्तु इससे पर की दया कर सके-यह तो प्रश्न है ही नहीं... आहाहा! ऐसी चीज़ है, परन्तु यह भाव आया, उसे ज्ञानस्वभाव स्पर्श नहीं करता। क्या कहा? **यह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा तो चैतन्य ज्योत चेतना है। वह रागादि अचेतन स्वभाव को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! वह तो शुद्ध चैतन्य वस्तु है, ऐसा जिसके ज्ञान में ज्ञात होता है, वह आत्मा, अन्दर राग होवे तो राग को स्पर्श किये बिना राग को जानता है।** आहाहा! समझ में आया? पर की दया पालना या मारना, वह तो कर नहीं सकता, क्योंकि पर को स्पर्श नहीं कर सकता, परन्तु अन्दर में राग आवे, वह भी शुद्ध जीव के स्वभाव में राग का स्पर्शना और चुम्बन करना अर्थात् स्पर्शना, चुम्बन अर्थात् स्पर्शना (यह भी नहीं है)। आहाहा! इस चैतन्यघन भगवान आत्मा की सत्ता चेतन—जानने-देखने की है। इस जानने-देखने में जो राग आवे, उसे भी स्पर्श किये बिना, वह अपने क्षेत्र में, भाव में रहकर उसे जानता है। आहाहा! है?

भ्रष्ट क्यों करते हैं? अरे! ऐसे अनुभव में क्यों भ्रष्ट होता है? अर्थात् राग को जानने पर इसे ऐसा हो जाता है कि अरे! मैं रागरूप हो गया अथवा राग मेरे ज्ञानस्वरूप से हो गया - ऐसे जीव भ्रष्ट क्यों होता है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बाते हैं, बापू! लोगों ने माना है, वे सब बाहर की बातें हैं। आहा! यहाँ तो शुद्ध जीवस्वरूप है, वह राग को

जानने पर, राग को स्पर्श नहीं करता। वह परज्ञेय है; और वास्तव में यह राग है, वह चेतन से भिन्न जाति है, इसलिए अचेतन है। इस अचेतन को चेतन स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

मुमुक्षु : स्पर्श करे तो क्या बाधा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्श करे तो बाधा है। वह मिथ्यादृष्टि मलिन माने। छूता अर्थात् स्पर्श नहीं करता, क्योंकि राग और ज्ञायकभाव के बीच अत्यन्त अभाव है। आहाहा! रागतत्त्व, वह पुण्यतत्त्व है, मलिन तत्त्व है, अचेतन तत्त्व है। भगवान चेतन तत्त्व है, निर्मल तत्त्व है, ज्ञायकस्वभाव से भरपूर तत्त्व है। उस राग को स्पर्श किये बिना ज्ञान, राग को, अपने भाव में रहकर, क्षेत्र में रहकर राग को जानता है। परन्तु ये लोग, राग को जानते हुए 'मैं राग को जानता हूँ, अर्थात् स्पर्श करता हूँ'—ऐसे भ्रष्ट क्यों हो जाते हैं? - ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तिम गाथाएँ हैं।

मुमुक्षु : राग को ज्ञान स्पर्श करे तो दोनों एक हो जाएँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों वस्तुएँ अत्यन्त भिन्न हैं और भिन्न को भिन्न स्पर्श नहीं कर सकता, **बहिर्लुटंती** आ गया है न यह? पहले आ गया नहीं? आहाहा! उस राग से भगवान आत्मा **बहिर्लुटंती** - बाहर लोटता है और आत्मा के स्वभाव से भी राग **बहिर्लुटंती**। आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को तो स्पर्श नहीं करता... आहाहा! गजब बात है! यह तो दृष्टान्त दिया था न, चलने का? यह पैर चलता है, वह जमीन का स्पर्श नहीं करता। अरे रे! यह बात कहाँ.. ? क्योंकि जमीन की पर्याय और आत्मा की पर्याय के बीच अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव में भाव स्पर्शरूप कैसे हो सकता है? आहाहा! ऐसा है। वीतरागमार्ग, सत्य बहुत अलौकिक है। सुनने को मिले नहीं, बेचारे कहाँ जाएँ? आहाहा! यह भटकन चौरासी में कौए, कुत्ते के अवतार कर-करके मर जाए, अनन्त बार। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि **वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है...** क्या प्रगट है? कि राग को स्पर्श किये बिना, परद्रव्य को स्पर्श किये बिना ज्ञान उसे जाने,

ऐसा वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया? भाव बहुत गहरे हैं, भाषा तो सादी है। आहाहा! यह बीड़ी पीता है (तो) कहते हैं कि बीड़ी को हाथ छूता नहीं तथा होठ को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! वैसे ही राग हुआ, उसे आत्मा स्पर्श नहीं करता। अरे! प्रभु! देख तो सही! ऐ.. सेठ! तुम्हारा लिया, बीड़ी का दृष्टान्त, दृष्टान्त के बिना समझ में किस प्रकार आवे? आहाहा!

मुमुक्षु : छूता नहीं तो पीने में क्या दिक्कत है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पीना कहाँ रहा वहाँ? बीड़ी को छूता नहीं और होठ को छूता नहीं, आत्मा होठ को छूता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा का मार्ग कोई अलौकिक है! अभी तो सुनने को मिलता नहीं, ऐसी चीज़ हो गयी है। क्या हो? आहाहा!

देखो! अब आता है, **जीव वस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है, समस्त ज्ञेय को जानती है, ऐसे अनुभव से क्यों भ्रष्ट होते हैं?** देखा? आहाहा! मैं राग को, राग में प्रविष्ट हुए बिना, मुझमें रहकर राग को जानता हूँ। ऐसे स्वभाव के अनुभव से जीव भ्रष्ट क्यों होते हैं कि मैं राग को छूता हूँ, राग को स्पर्श करता हूँ, शरीर को स्पर्श करता हूँ। ऐसे राग को जाननेवाला भिन्न, ऐसे अनुभव से भ्रष्ट क्यों होते हैं? आहाहा! समझ में आया?

कैसे हैं जन? अरे! कैसे हैं जगत के जीव? आहाहा! '**द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियः**' अपने द्रव्य से अन्य **ज्ञेय वस्तु को जानता है इससे... 'चुम्बन'** मानों मैंने स्पर्श किया अर्थात् **अशुद्ध हुआ है जीवद्रव्य ऐसा जानकर...** आहाहा! शरीर और वाणी को ज्ञान जाने, तथापि ज्ञान, शरीर-वाणी को स्पर्श नहीं करता - ऐसा तो ज्ञान का स्वभाव है। उससे जन (जीव) अनुभव से भ्रष्ट क्यों होते हैं कि मैं इस शरीर को स्पर्श करता हूँ। आहाहा! इस शरीर की जो इन्द्रियाँ हैं, उन्हें भी आत्मा स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! तो भी इस ज्ञान के अनुभव में तो शरीर को स्पर्श किये बिना का ज्ञान है, ऐसी वस्तु का अनुभव है। परन्तु उसके बदले मैं शरीर को स्पर्श करता हूँ, यह कोमल शरीर है, उसे मैं स्पर्श करता हूँ, इस प्रकार जीव को परद्रव्य के साथ चुम्बन अर्थात् स्पर्श कैसे मानता है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! जन्म-मरण का अन्त लाने की बातें, बापू!

बहुत कठिन! उसका फल भी कितना! अनन्त आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आहाहा!

जीवतत्त्व ज्ञानस्वरूप से स्थित है। यह परतत्त्व जो है शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार आदि, सबको अपने में रहकर जानने का स्वभाव है, तथापि उसे यह लगता है कि मैं उन्हें स्पर्श करता हूँ, उन्हें स्पर्श करता हूँ - ऐसा (मानकर) ज्ञान के स्वरूप से भ्रष्ट क्यों हो जाता है? आहाहा! समझ में आया? चुम्बन का अर्थ यहाँ अशुद्ध किया, परन्तु चुम्बन का अर्थ स्पर्श करना होता है। आहाहा! यह चुम्बन नहीं लेते शरीर का और बालक का? यह होंठ भी वहाँ स्पर्श नहीं करता, कहते हैं। आहाहा! आत्मा का ज्ञान तो होंठ को कैसे छुए, परन्तु होंठ, उसके लड़के का चुम्बन लेता होंठ उसके शरीर को स्पर्श नहीं करता। अरे! ऐसी बात! क्योंकि तत्त्व (से) तत्त्व भिन्न है। शरीर, वाणी, मन, अजीवततत्त्व है। दया, दान के, व्रत के भाव होते हैं, वे आस्रवतत्त्व अथवा पुण्यतत्त्व है। भगवान है, वह ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा! ऐसी बात है। वह ज्ञायकतत्त्व पर को स्पर्श किये बिना जानने का स्वरूप ही उसका ऐसा है। तथापि यह क्या हुआ? जीव, जगत के प्राणी क्या करते हैं? आहाहा! कि हम इस राग को जानते हुए राग को स्पर्श करते हैं। आहाहा! इससे हम अशुद्ध हो जाते हैं। आहा! ऐसी यह भ्रमणा क्यों हुई जगत को? आहाहा! समझ में आया?

एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को स्पर्श करे तो दो तत्त्व एक हो जाते हैं, भिन्न रहते नहीं। आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! यह कोई बाहर से कोई व्रत किये और उपवास किये और इसे हो गया धर्म, वह तो कहीं तीन काल में नहीं है; परन्तु यह व्रत का विकल्प उठा.. आहाहा! उसे भी ज्ञानस्वरूपी भगवान अपने में रहकर, उसे स्पर्श किये बिना जाने, तथापि उसे मैं स्पर्श करता हूँ, छूता हूँ और इससे मैं पर को जानने से अशुद्ध हो जाता हूँ - ऐसा भ्रम अज्ञानी को क्यों होता है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। समझ में आया? है?

'द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियः' 'आकुलधियः' क्या? पर को स्पर्श कर **ज्ञेयवस्तु का जानपना कैसे छूटे...** पर को स्पर्श करना, मानों मैं स्पर्श करता हूँ - यह कैसे छूटे? अथवा मुझे पर का जानना होता है, वह तो पर का जानना हुआ, वह तो अशुद्धता हुई;

इसलिए पर का जानना कैसे छूटे? - ऐसा अज्ञानी भ्रम करता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसे बहुत जगह से विमुख होना पड़ेगा। हें? आहा! यह कहीं बातों से बड़ा हो ऐसा नहीं है। बड़ा बनाने के लिये अनाज, तेल और घी चाहिए। ऐसे यह अन्दर का माल है। आहाहा!

चैतन्यतत्त्व , वह अचेतनतत्त्व को कैसे स्पर्श करे? अचेतन-जड़ तो ठीक, परन्तु राग भी अचेतन है, उसे कैसे स्पर्श करे? आहाहा! अर्थात् कि उसे कैसे स्पर्शे? अर्थात् कि ज्ञान में ऐसे हो जाए कि इस राग को जानता हूँ; इसलिए मैं स्पर्शा हूँ और इससे मुझे ज्ञान होता है। वह अशुद्ध है, इससे उसका ज्ञान छूटे तो मैं शुद्ध होऊँ, यह भ्रम है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी पर की दया पाले तो धर्म हो, (ऐसा लोग मानते हैं)। अरर! कुकर्म करते हैं न! आत्मा का घात कर डालते हैं। मरणतुल्य करते हैं। नहीं आया? कलश टीका में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : समाधिशतक में ऐसा कहा, घात हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जगत घात होता है, परन्तु यहाँ तो स्वयं मरणतुल्य हो जाता है। अपने को मरणतुल्य कर डालता है। आहाहा! अर्थात् मानो कि मैं जागती ज्योति चैतन्य ज्ञान, दर्शन, आनन्द के स्वभाववाला हूँ - ऐसा नहीं मानता। वह तो मानो कि राग को करता हूँ और राग को स्पर्श करता हूँ। वह जीव के स्वरूप को इसने मरणतुल्य कर डाला है। जानने-देखनेवाले के स्वभाव को इसने घात कर डाला है। आहाहा! पर का घात तो कर नहीं सकता.. आहाहा! परन्तु स्वयं को इस प्रकार से व्यवहाररत्नत्रय का राग आवे, उसे मैं स्पर्श करता हूँ, यह तो ठीक, यह तो और व्यवहाररत्नत्रय से मुझे निश्चय में लाभ होता है, अरे! प्रभु! तू ज्ञान और आनन्द का धनी है, इस राग के विकार से तुझे अविकारी का लाभ हो, (ऐसा कैसे बने)? तू अविकारी है, उसमें से अविकारी लाभ होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म अब।

मुमुक्षु : अपराधभाव से निरपराधभाव कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु अभी तो यह चला है।

यहाँ तो इससे आगे जाकर उसे जानने से मैं अशुद्ध हो जाता हूँ, तो वह तो उसका जानना और अपना जानना, वह तो अपने स्वभाव में रहकर जान सकने का स्वभाव है। पर का जानना हो गया, इसलिए अशुद्ध हो गया। परवस्तु है न? उसे जाना तो अशुद्ध हो गया, इसलिए स्व को जानूँ तो शुद्ध, वह पर को जानना छोड़ दूँ। तो पर को जानना तो तेरा स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। उसे छोड़ने जायेगा तो तेरी वस्तु छूट जायेगी। आहाहा! अरे रे! चौरासी के अवतार में भटक मरा है अनन्त काल। ऐसी भ्रमणा कहीं-कहीं इसी (प्रकार से की है)। अटकने के साधन अनन्त, छूटने का साधन एक-स्वरूपसन्मुख जाना वह (एक साधन है)। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दीपक विष्ठा को प्रकाशित करता है, तथापि दुर्गन्ध प्रविष्ट नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : दीपक उसे छूता ही नहीं। छूए किसे? एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में तो अभाव है। छूए किसे? छून भाव हो गया। आहाहा! कठिन काम। अरे! पैर जमीन को स्पर्श नहीं करता, तथापि नीचे कंकड़ी हो तो लगती है, ऐसा दिखता है। आहाहा! वह लगी भी नहीं, कंकड़ी शरीर को छुई ही नहीं। आहाहा! और इस शरीर में कुछ हुआ, उसे ज्ञान ने स्पर्श नहीं किया। आहाहा! अरे! उसमें उस ओर का जरा अरुचि का विकल्प आया, उसे ज्ञान छुआ नहीं। ज्ञान का स्वभाव ऐसा कहाँ है कि पर को स्पर्श करे! आहाहा! वह तो भगवान अपने स्वभाव में रहकर, उसका ज्ञान करे, ऐसा कहना वह व्यवहार है। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान उसे (स्वयं को) वह जानता है। उसे स्पर्श कर जानता है। राग को स्पर्श कर राग को नहीं जानता। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसा कहाँ तुम्हारे लोहे में था वहाँ? आहाहा! और न्याय से इसके ख्याल में आ सकता है। आहाहा! अरे रे! मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? और मैं क्या हूँ? वह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है। वह कहाँ जाये? आहाहा!

बहिन का शब्द आया है, वह सबको बहुत मीठा लगा है। 'जागता जीव विद्यमान है न!' बहुत कहते हैं, लिखो। इतना सब कहाँ लिखना? ॐ करते हैं मुश्किल से, बस। लिख दो! (ऐसा कहते हैं) ॐ बस है। जागता जीव विद्यमान है न! वह कहाँ जाये? वह जाननस्वभावी भगवान ध्रुव है न! वह परिणमे तो जाननेरूप से

परिणमे, परन्तु पर है, इसलिए पर को जाननेरूप परिणमता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! वह तो अपना स्वभाव ही स्व-पर जानने का स्वभाव वह आत्मज्ञपना, वह तो स्वपना है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी को भ्रम हो जाता है कि मैं पर को जानता हूँ तो बाहर चला गया। पर को जानता हूँ, इसलिए मैं बाहर गया, ऐसा हो जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। पर को जानने का कहना, वह भी उपचार व्यवहार है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

चैतन्यस्वरूपी भगवान! 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रमभारि ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी स्वरूपा पररूपा भासी।' यह राग और शरीर, वाणी परज्ञेय है। उन्हें ज्ञान में अपने में रहकर उन्हें जानना, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है परन्तु उन्हें स्पर्श करता है अथवा जानता है; इसलिए ज्ञान अशुद्ध हो गया, वह ज्ञान बाहर चला गया... आहाहा! बाहर को जानता है, इसलिए ज्ञान अपने स्थान से, भाव से छूटकर बाहर में गया, ऐसा अज्ञानी को भ्रम हो जाता है। आहाहा! है?

मुमुक्षु : ज्ञान सर्वगत तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वगत नहीं, वह व्यवहार से कहा है। यह तो प्रवचनसार में (कहा) ज्ञान अथ्था—अर्थ ज्ञान में है अर्थात् उनका ज्ञान है, वहाँ उसका अर्थ (यह है)। अर्थ ज्ञान में है, ऐसा कहा उसका अर्थ (यह है कि) अर्थ सम्बन्धी का ज्ञान, ज्ञान में है ऐसा कहना है। अर्थ तो अर्थ में है। आहाहा! वहाँ तो सर्वगत कहा है। पंचाध्यायी में सर्वगत माने उसे निश्चयाभास कहा है। पंचाध्यायी में सर्वगत को (ऐसा कहा है)। अपेक्षित जानना चाहिए न! आहाहा! सर्वगत तो सैंतालीस नय में एक स्वभाव है। किस अपेक्षा से? अपने को और पर को सर्व को जानने का स्वरूप है, इसलिए सर्वगत है परन्तु पर को जानना, इससे उस पर को जानने पर ज्ञान बाहर चला गया है, अपने अस्तित्व में से एक प्रदेश भी भिन्न / दूर हो गया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अपने घर में रहकर जैसे लश्कर निकले उसे देखे, उस लश्कर में वह आँख गयी नहीं और लश्कर आँख में आया नहीं। घर में खड़ा-खड़ा देखे, वह सब निकले उसे (देखे)। जुलूस निकले, रथ निकले, हाथी निकले, आहाहा! वैसे भगवान ज्ञानस्वरूपी अपने में बैठा है।

आहाहा! उसमें यह सब जड़ के और राग के प्रकार लश्कर निकलें, उस समय उन्हें उनका उस सम्बन्धी का स्वभाव उसका ज्ञान होने का उस काल में अपना स्वभाव अपने से है। वह अशुद्ध नहीं है। आहाहा! और पर को जाना, इसलिए ज्ञान बाहर में चला गया है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! यह कहा था न तब? राणपुर (संवत्) १९८४ के चातुर्मास में। (एक) वेदान्ती भावसार था। खत्री.. खत्री.. रूगनाथ। महाराज! आप कहते हो... व्याख्यान में सब आवे, वेदान्ती, परन्तु अन्दर में प्रविष्ठ हुए बिना, यह उसे जानना अन्दर में प्रविष्ट हुए बिना किस प्रकार जाने? ऐसा प्रश्न किया था। खत्री ने (प्रश्न किया था)। भाई! आहाहा! इस अग्नि को ज्ञान जानता है, वह ज्ञान अग्नि में प्रविष्ट है? ज्ञात होती है या नहीं? यह अग्नि है, ऐसा ज्ञात होता है या नहीं? यह १९८४ की बात है। कितने हुए? ५० वर्ष। राणपुर चातुर्मास था न! लोग बहुत सब आते, नाम प्रसिद्ध था न! आवे, अन्यमती भी आवे, मन्दिरमार्गी सुनने आवे। परन्तु अपना पक्ष अन्दर से छोड़ना कठिन पड़े। आहाहा! इस सम्प्रदाय में अभी पक्ष लेकर बैठे, उसमें से उन्हें हटना कठिन पड़े। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **ज्ञेयवस्तु का जानपना कैसे छूटे,...** ऐसा अज्ञानी मानता है। **जिसके छूटने से जीवद्रव्य शुद्ध होवे, ऐसी हुई है बुद्धि जिनकी, ऐसे हैं। उसका समाधान ऐसा है...** यहाँ तक आया है। यहाँ तक कल आया था। परसों, कल तो सज्झाय थी। **'यत् ज्ञानं ज्ञेयं अवैति तत् अयं शुद्धस्वभावोदयः'** आहाहा! **जो ऐसा है कि ज्ञान ज्ञेय को जानता है...** आहाहा! **ऐसा प्रगट है...** ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, शरीर, वाणी, कुटुम्ब, कबीला, सब परज्ञेय हैं। देव, गुरु, शास्त्र भी परज्ञेय हैं और अन्दर में दया, दान का राग आता है, वह भी परज्ञेय है। आहाहा! यह उन्हें जाने, यह प्रगट है।

सो यह 'शुद्धस्वभावोदयः' यह तो **शुद्ध जीव वस्तु का स्वरूप है।** उदय-प्रगट है, ऐसा कहते हैं। **'शुद्धस्वभावोदयः'** यह तो शुद्ध जीवस्वभाव का प्रगटपना है। स्व-पर प्रकाशक, यह तो शुद्ध जीव का उदय है - प्रगट है। आहाहा! भारी काम कठिन। यह तो पूरे दिन मानो धन्धे में पड़ा और यह किया और यह किया और यह किया... आहाहा! मार डाला जीव को। मरणतुल्य कर डाला है। यह आता है, पहले आ गया है। मरणतुल्य किया है। आहाहा!

चैतन्य जागती ज्योति स्वपर प्रकाशक स्वरूप में विराजमान है। उसे पर के ज्ञेय को जानना, वह तो उसका स्वरूप ही है, कहते हैं। वह तो शुद्ध जीव का स्वभाव, उदय हुआ स्वभाव ही है। पर को जानना, वह कहीं अशुद्धता है और पर को स्पर्श करता है, इसलिए पर को जानता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : पर के सामने देखकर जानता है... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर के सामने देखकर जानता है, ऐसा नहीं है। जानता है अपने में, अपने से।

मुमुक्षु : उपयोग तक कहाँ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग भले पर की ओर है परन्तु वह जानता है अपने को अपने में रहकर।

मुमुक्षु : उपयोग को पर का आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय-फाश्रय कुछ नहीं होता।

मुमुक्षु : उपयोग पर में है अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर में नहीं, पर को जानने में है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, उपयोग भले विकल्प में आया परन्तु फिर भी उस विकल्प को उपयोग जानता है, ऐसा उसका स्वरूप है।

मुमुक्षु : उपयोग स्व में ही जाये, ऐसा नियम नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञान का उपयोग बाहर में होवे....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में नहीं। वह अन्दर में अपने में है।

मुमुक्षु : अन्दर में है परन्तु मुख बाहर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मुख भी बाहर नहीं। मुख भी अन्दर है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो स्वसन्मुख और परसन्मुख में अन्तर क्या रहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वसन्मुख दृष्टि ध्रुव ज्ञायक पर ही पड़ी है। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो उपयोग अन्दर में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ही है वह, भले रागादि में हो, विषय-कषाय में (हो), तथापि उसके जाननहार में स्वयं है, राग में नहीं। ऐसा कठिन काम है। आहाहा! अरे! जिन्दगी चली जाती है। मरण के तुल्य हो जायेगा। मरण का एक समय आयेगा, वहाँ छूट जाएगा ऐसे। युवा अवस्था होगी तो भी छूट जायेगा। आहा! क्योंकि वह पृथक् तत्त्व है, उसके साथ में एक कहाँ रहा हुआ है? आहाहा! एक क्षेत्र में परन्तु शामिल नहीं। अपने और पर के क्षेत्र, आकाश की अपेक्षा से कहे जाते हैं। आहाहा! शरीर और कर्म... अरे! यहाँ तो राग का क्षेत्र भी भिन्न गिना है। संवर अधिकार। दया, दान, भक्ति के परिणाम हों... भाई! वह विकल्प है, उसका क्षेत्र इतना भिन्न गिना है। उस भिन्न क्षेत्र को, भिन्न भाव को ज्ञान में रहकर, स्व में रहकर जानना स्व-पर प्रकाशक, वह तो शुद्ध जीव का उदयभाव-स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आया न? '**शुद्धस्वभावोदयः**'

मुमुक्षु : स्वच्छता का उदय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपना प्रगटपना है। अपना स्वभाव है, वह तो स्वभाव ही है, ऐसा कहते हैं। उदय अर्थात् स्वभाव है। '**शुद्धस्वभावोदयः**' वह तो शुद्धस्वभाव का प्रगटपना है। आहाहा! अब ऐसी बातें पकड़ में नहीं आवे, बेचारे क्या करे? आ जाते हैं फिर बाहर में क्रियाकाण्ड में लग जाते हैं। व्रत करो और अपवास करो और आंनवेल करे.. धर्म हो जायेगा। अरे रे! जीव को कहाँ भटका मारा है! भ्रमणा ही भ्रमणा में।

यहाँ तो यह सिद्ध करते हैं कि शुद्ध जीव का स्वभाव तो स्व-पर को जानना, वह अपेक्षा से पर को कहा है। ज्ञान, ज्ञान को जाने और ज्ञान में पर ज्ञात होता है, वह तो ज्ञान है और ज्ञान के अतिरिक्त अपने दूसरे अनन्त गुण को जाने, वह भी पर प्रकाशक है... आहाहा! तथापि वह ज्ञान अनन्त गुण को जाने, तो भी वे गुण ज्ञान में नहीं आ गये। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : तादात्म्यसम्बन्ध होने पर भी स्वरूप पृथक् का पृथक् रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तादात्म्यसम्बन्ध ज्ञान को आत्मा के साथ है। राग को संयोगी

सम्बन्ध नहीं कहा? संयोगीभाव है। उस संयोगीभाव को स्पर्श भी नहीं करता। है?

मुमुक्षु : राग को क्षणिक तादात्म्य कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपेक्षा से। इसकी पर्याय में है न, इस अपेक्षा से। बाकी परमार्थ से तो वह संयोगीभाव है, तो उसके सम्बन्ध है ही नहीं। तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, इसलिए सम्बन्ध नहीं है, ऐसा। त्रिकाली के साथ सम्बन्ध नहीं है, ऐसा। तथापि वह पर्याय में है, उसे जानने पर, ज्ञान राग में स्पर्श कर जानता है, ऐसा नहीं है। वह तो इसकी पर्याय में है, वह तो अशुद्धता बतानी हो इसलिए। परन्तु यहाँ तो इसकी पर्याय में है, इसकी ही पर्याय उस काल में उसे और पर को जाने, ऐसा अपने में रहकर राग को जाने ऐसा स्वभाव है। रागरूप उस समय भी ज्ञान हुआ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो '**शुद्धस्वभावोदयः**' शुद्ध जीवस्वभाव उदय अर्थात् स्वरूप ही है, ऐसा कहना है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि का दाहक स्वभाव है... देखा! दृष्टान्त दिया। **समस्त दाह्य वस्तु को जलाती है।** अग्नि का दाहक स्वभाव है, वह समस्त वस्तुओं को जलाती है। तथापि... आहाहा! है? **जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है। अग्नि का ऐसा ही स्वभाव है...** सबको जलाने पर भी अग्नि, अग्निस्वरूप से रहकर जलाया है। वह अग्नि कहीं परस्वरूप लकड़ीरूप होकर जलाया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जलाती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जलाती है, ऐसा कहना, वह व्यवहार कहा न! आहा! (अग्नि का) **दाहक स्वभाव है, समस्त दाह्य वस्तु को जलाती है। जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है।** समझाना हो तो किस प्रकार समझाना? आहाहा! लकड़ी, गोइंठा, कण्डे ये कण्डे ऐसे बने हुए, वह अग्नि उनरूप होती है, परन्तु वह अग्नि अपने स्वरूप से ही हुई है। वह कण्डे के स्वरूप से नहीं हुई। आहाहा! अपना अस्तित्व कितना और कैसा है और कहाँ है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! अपने अस्तित्व में अग्नि भी अपने अस्तित्व में रहकर जलाती है, ऐसा कहना परन्तु वह तो अग्निरूप होकर है। ऐसे पर को जानता है, वह अपने स्वरूप से उस रूप होकर जानता है, पररूप होकर जानता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है। देखा? शुद्धस्वरूप भाषा ली है। **अग्नि का ऐसा ही स्वभाव है; उसी प्रकार जीव...** यह दृष्टान्त का सिद्धान्त। **ज्ञानस्वरूप है...** है? जैसे अग्नि का दाहकस्वभाव है, वैसे जीव का ज्ञानस्वरूप है। जैसे अग्नि सबको जलाती है, वैसे (ज्ञान) **समस्त ज्ञेय को जानता है।** उसमें जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है, वैसे जानता हुआ अपने शुद्धस्वरूप है। आहाहा! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी शक्ति में भी लिया नहीं? कि सर्वज्ञ है, वह आत्मज्ञपना है। सर्व है, ऐसा जानता है, ऐसा नहीं है; वह आत्मज्ञ है, वह सर्वज्ञपना है। आत्मज्ञ का ही सर्वज्ञस्वभाव है, वह स्वयं अपने को जानता है। सर्वज्ञ कहा, तथापि वह आत्मज्ञ है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी शक्ति। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! क्या हो?

अनन्त काल जन्म-मरण कर-करके... उन्हें मिटाने का उपाय अलौकिक है। आहाहा! चैतन्यसत्ता अर्थात् कि जिसका अस्तित्व अकेला चैतन्य से है, जिसका अस्तित्व अकेला चैतन्य से है, उसे पकड़कर अनुभव करना... आहाहा! इसका नाम प्रथम धर्म की शुरुआत है। जिसका अस्तित्व, सत्ता अर्थात् ज्ञानरूप से जिसका अस्तित्व है, वह रागरूप या शरीररूप जिसका अस्तित्व नहीं है। इसलिए वह ज्ञान सबको जानता होने पर भी अपने ज्ञानस्वरूप से ही होकर रहा है। पर को जानते हुए परस्वरूप होकर रहा है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है, सो मत मानो,... आहाहा! परसम्बन्धी का ज्ञान होने पर मैं पर को स्पर्श कर गया हूँ अथवा पर मुझमें आ गया है, ऐसा मत मानो। आहाहा! अब ऐसी व्याख्या सूक्ष्म। है? बहुत कठिन पड़े। सम्प्रदाय में तो मानो यह व्रत, तप, भक्ति और यह पूजा, भक्ति, पूजा करे, यात्रा-वात्रा में धर्म (माने), वह और दया, और सामायिक और प्रौषध प्रतिक्रमण (में धर्म माने)। सब राग की क्रियाएँ हैं। आहाहा! कहते हैं कि उस समय भी राग हुआ परन्तु जीव का स्वभाव तो जानना ही है। उस राग के काल में भी जीव, राग को और अपने को जानता है, वह तो अपना स्वभाव है। वह तो शुद्ध जीव का स्वरूप ही है। आहाहा! पर का करना, वह तो नहीं होता परन्तु राग का करना, वह तो नहीं होता परन्तु

राग को जानना, वह भी राग में जाकर जानता है, ऐसे भी नहीं होता। आहाहा! देवीलालजी! ऐसा मार्ग है। वीतराग परमेश्वर जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ का गणधरों और इन्द्रों के बीच का पुकार यह है। आहाहा! यह मार्ग है, भाई! तूने सुना न हो, इसलिए कहीं दूसरी चीज़ हो जायेगी? आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान, राग को स्पर्श कर न जाने, परन्तु ज्ञान, निर्मल पर्याय को स्पर्श करके तो जाने न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस पर्याय को अपने को जाने, उसमें क्या है? वह तो स्वज्ञेय है न! अपने को जानता है न! अपनी पर्याय को जानता है और अनन्त पर्याय को जानता है, परन्तु उस अनन्त पर्याय को स्पर्श कर नहीं जानता। बहुत सूक्ष्म, आहाहा! एक ही ज्ञान की पर्याय इतनी ताकतवाली है कि एक पर्याय में छह द्रव्य के गुण-पर्याय ज्ञात हों और अपने त्रिकाली द्रव्य- गुण-पर्याय ज्ञात हों, ऐसी एक समय की पर्याय की ताकत है। वह पर्याय, पर को तो स्पर्श नहीं करती... आहाहा! यहाँ इससे आगे नहीं कहना है... परन्तु वह पर्याय, द्रव्य को भी स्पर्श नहीं करती। यहाँ तो पर की अपेक्षा की बात है। आहाहा! पर्याय, द्रव्यरूप हो जाये तो पर्याय एक क्षण की है और वस्तु त्रिकाल है। आहाहा! त्रिकाल को स्पर्श कर पर्याय काम नहीं करती। आहाहा! क्योंकि दो के बीच भी अभाव है। अतद्भाव है। है प्रवचनसार (में)? अतद्भाव है। आहाहा! जो पर्याय भाव है, वह द्रव्य में अतद्भाव है। द्रव्यभाव है, वह पर्याय में अतद्भाव है। आहाहा!

पर्याय में स्व-पर जानने का स्वभाव स्वतः स्वतः है। उसमें राग को और शरीर को जानना, इससे मेरा ज्ञान भ्रष्ट हो गया या पर में चला गया, ऐसा नहीं है। यह भ्रमणा अज्ञानी अनादि से (कर रहा है)। आहाहा! जीव का ज्ञानस्वभाव वहाँ दया, दान के विकल्प का करना, वह उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! तथा उसे स्पर्श कर जानना, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। उससे भिन्न रहकर अपने को जानने पर वह ज्ञात हो जाता है, वह तो जीव के स्व-पर ज्ञानस्वभाव का उदय है। आहाहा! समझ में आया? वह तो स्व-पर प्रकाशित करना, वह ज्ञान का अस्तित्व है। वह ज्ञान का अस्तित्व है, वह राग का अस्तित्व नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान में पर का प्रतिभास होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिभास होता है, यह भाषा व्यवहार है।

मुमुक्षु : ज्ञान के कारण या स्वच्छता के कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। प्रतिभास होता है, यह भाषा व्यवहार है। परन्तु जैसा स्वरूप वहाँ है, वैसा यहाँ ज्ञान का उस काल में स्वयं से जानना हो जाता है, ऐसा उसका स्वरूप है।

मुमुक्षु : तब स्वच्छत्वशक्ति का किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : वही, स्वयं अपने को पूर्ण जाने। दृष्टान्त तो क्या करे? स्वच्छ में तो यह कहा है, दर्पण का दृष्टान्त देकर (कहा है)। स्वच्छत्वशक्ति में है न? परन्तु दर्पण में जो कुछ चीज़ ज्ञात होती है, वह कहीं दर्पण की हुई नहीं है। अग्नि है, यहाँ अग्नि, वह दर्पण में ज्ञात होती है। वह दर्पण में ज्ञात होती है, वह अग्नि है? वह तो दर्पण की स्वच्छता है। अग्नि को ऐसे हाथ लगाओ तो गर्म लगेगा। यहाँ (दर्पण में) जो अग्नि ऐसे-ऐसे दिखती है, वह अग्नि है वहाँ? दर्पण की अवस्था है। वहाँ हाथ लगाओगे तो गर्म लगेगा, वहाँ? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, सेठ! यह जानना पड़ेगा इसमें, हों! नहीं तो यह सब घोदा, चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है।

मुमुक्षु : जानने में तो यह ए, बी, सी, डी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की ए, बी, सी, डी, कक्का है यह तो। बात सत्य है। आहाहा! ये क्या कहा देखा?

जानता हुआ अपने स्वरूप है, ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है, सो मत मानो; जीव शुद्ध है। आहाहा! **और समाधान करते हैं। कारण कि... 'किमपि द्रव्यान्तरं एकद्रव्यगतं न चकास्ति'** आहाहा! देखो! **कोई ज्ञेयरूप पुद्गल द्रव्य अथवा धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य शुद्ध जीव वस्तु में एक द्रव्यरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं शोभता है।** आहाहा! ये दूसरे छह द्रव्य शुद्ध जीव वस्तु में एक द्रव्यरूप से आते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है; ज्ञान, ज्ञानरूप है,...** आहाहा! ज्ञान, ज्ञानरूप रहकर ज्ञान जानता है, ऐसा

कहना है, वह तो ज्ञानरूप है इसका। आहाहा! सबको जानता है परन्तु वह तो ज्ञान का रूप है, कहते हैं। वह तो जीव का स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? आज तो सब सूक्ष्म बहुत आया, हों! ऐसा सुनना तो कभी मिले। बापू! आहाहा! लोग मानें, न मानें परन्तु वस्तुस्थिति यह है। आहा! परमसत्य का पुकार प्रभु का तो यह है। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक है कि राग के अस्तित्व में तेरा ज्ञान गया, इसलिए राग को जानता है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अग्नि को जानता है, इसलिए तेरा अस्तित्व अग्नि में जाकर जानता है, (ऐसा नहीं है)। तेरे ज्ञान में रहकर, उस अग्नि का ऐसा स्वरूप है, वैसा ज्ञात हो, वह तेरे ज्ञान में रहकर; अपने अस्तित्व में रहकर ज्ञात होता है। आहाहा! पर का अस्तित्व तो यहाँ कभी आता नहीं। परसम्बन्धी का ज्ञान वह वास्तव में परसम्बन्धी का नहीं; वह ज्ञान अपना ही है। आहाहा! समझ में आया? बाद के श्लोक बहुत सूक्ष्म हैं। ऐसी साधारण भाषा है, परन्तु भाव बहुत गहरे हैं। आहाहा!

अब इसमें चर्चा किसके साथ करना? आया था न? चन्द्रशेखर। कहे, चर्चा करते हैं। श्वेताम्बर, जीवाप्रताप के भतीजे ने श्वेताम्बर दीक्षा ली है न? भाई! हम तो चर्चा करते नहीं, बापू! क्या कहें? तुम सिंह हो तो हम सिंह के बच्चे हैं, कहे। भाई! मैं तो सिंह हूँ, मैंने तो यह कहा नहीं। अन्त में खड़े होते कहे, देखो! इस चश्मे के बिना ज्ञात होता है? चर्चा हो गयी, बापू! इस चश्मे का अस्तित्व भिन्न है और जाननेवाला का अस्तित्व भिन्न है। वह चश्मे से जानता है, ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञान के अस्तित्व से जानता है। जीवाप्रताप है, अभी गुजर गया। करोड़पति श्वेताम्बर, उसके भतीजे ने दीक्षा ली है। लींबड़ी आया था। तुम थे वहाँ, नहीं? चर्चा करने आया था।

रामविजय ने वहाँ जामनगर भेजा था, बहुतों को। इन लोगों की भूल होती है। व्रत, तप और भक्ति धर्म नहीं है, तो बड़ी गलती खड़ी होती है। भाई! मार्ग तो यह है, बापू! कहा। तुम्हें मिथ्या लगता हो तो ऐसा मानो, बाकी वस्तु तो यह है। बाकी इससे विरुद्ध मानते हैं, वे सब झूठे हैं, इसलिए हमें चर्चा किसके साथ करना? आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक ले गये... आहाहा! कि जिस काल में जिस प्रकार का... यह तो व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान आया है न? यह इसका अर्थ यह स्पष्ट करते हैं।

उस काल में दया, दान, व्रतादि का जो राग आया, उतने प्रकार का, उस प्रकार का ही यहाँ ज्ञान अपने स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य के कारण (होता है), वह राग आया, उसके कारण नहीं। उस काल में इसका स्वभाव पर्याय में स्व-पर प्रकाशक, इसका और उसका दोनों का जितना स्वरूप है, वैसा जानने की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : परसम्बन्धी का अपना ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : परसम्बन्धी का कहना, वह व्यवहार है, वह भी नहीं। वह अपना है।

मुमुक्षु : ज्ञान में और पर का सम्बन्ध कहाँ डालना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सम्बन्ध कहा किसने? पर है, उतने सम्बन्ध का स्वरूप अपने में जानपने की शक्ति है, इसलिए अपने में जानता है। लोकालोक को जानता है, वह लोकालोक के कारण नहीं। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय का उतना स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य है, वह स्व-स्वरूप ही है। स्वज्ञेय का उतना स्वरूप है उसका। आहाहा! समझ में आया? आज सब सूक्ष्म पढ़ा एक घण्टा। यह अधिकार ऐसा है। गाथा ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसे शुद्धस्वरूप का उदय त्रिकाल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समय-समय की पर्याय इतनी है। त्रिकाल तो ध्रुव है, परन्तु यहाँ अपनी स्व-पर (प्रकाशक) पर्याय प्रगट होती है, उतना जितना ज्ञेय का प्रमाण है, उतने ही प्रमाण में ज्ञान की पर्याय स्वयं से स्वयं में प्रगट होती है। पूरी प्रगट है, अभी यह प्रश्न नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जिस समय में जो ज्ञेय सामने है, उतने प्रमाण में ज्ञान की पर्याय स्वयं से स्वयं में स्व-पर प्रकाशकरूप स्व से प्रकाशती है। ऐसा है। एक अक्षर बदले तो बदल जाये, ऐसा है सब यह तो। आहाहा! यह बात थी ही नहीं, इसलिए लोगों को नया लगता है। यह मानो सब नया धर्म निकाला। नया नहीं, बापू! अनादि का तू है ही। स्व-पर प्रकाशक का सामर्थ्य स्व से-अपने से अपने में अनादि का है। आहाहा! यह चेतन.. चेतन.. चेतन.. चेतन.. यह अचेतन को जाने, ऐसा कहना भी व्यवहार है। अचेतन में राग और शरीर सब अचेतन आ गया। आहाहा! और

उसके सम्बन्धी का उतना ही ज्ञान, वह ज्ञेय उतना है; इसलिए उतना यहाँ ज्ञान स्व-पर प्रकाशक उसके कारण प्रगट हुआ, ऐसा भी नहीं है। उस समय का उसका स्व-पर प्रकाशक का जितना सामर्थ्य है, उससे वह प्रगट हुआ है, वह स्व है। आहाहा! पकड़ में आये, उतना पकड़ना, बापू! आहाहा! तेरी लीला तो अपार है। आहाहा! यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो अन्तर के स्वभाव के नाद की चीज़ है। है? आहाहा!

मुमुक्षु : अलग प्रकार की पढ़ाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग प्रकार की है। बात सत्य है। आहाहा! इतनी बात कान में पड़ती है, वह भाग्यशाली है न! ऐसी बात, परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई बात है। आहा! समझ में आया? देखो! धनपालजी! कहीं मुम्बई में भी नहीं था और कहीं (नहीं था)। आहाहा! प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? कितना है? समय-समय में तू कितना है? कि पर जो ज्ञेय है, उतना ही यहाँ ज्ञान हो और स्व का ज्ञान हो, उतना उस समय में उतनी तेरी पर्याय है, तुझसे है। आहाहा!

मुमुक्षु : आज तत्त्व की बहुत छनावट की गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्लोक ऐसा है। यहाँ तो अधिक तो चुम्बन में से आया। चुम्बन है न? इन्होंने अर्थ कर दिया है अशुद्धपना। परन्तु चुम्बन का अर्थ स्पर्श करना है। जो तीसरी गाथा में कहा न? कि अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को स्पर्श करता है परन्तु पर को स्पर्श नहीं करता। उसका यह सब विस्तार है। आहाहा!

यह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान में स्थित हो, उसकी बातें हैं, बापू! आहाहा! जैसी जिसकी सत्ता अर्थात् अस्तित्वरूप है, उसका में वह स्थिर हो। आहाहा! समझ में आया? वह वस्तु है। आहाहा! **जीव वस्तु में एक द्रव्यरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं शोभता है।** रागरूप से आत्मा परिणमता है या आत्मा रागरूप होता है या ज्ञेय आत्मारूप होता है, ऐसा नहीं शोभता। आहाहा! **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है, ज्ञान ज्ञानरूप है, ज्ञेय वस्तु ज्ञेयरूप है.. आहाहा! कोई द्रव्य अपने द्रव्यत्व को छोड़कर अन्य द्रव्यरूप तो नहीं हुआ ऐसा अनुभव जिसको है, सो कहते हैं...** आहाहा! '**शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेः**'

समस्त विकल्प से रहित शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तु के... निरूपण... अर्थात् **प्रत्यक्ष अनुभव...** आहाहा! देखा? कथन है, उसका वाच्य है, उसे यहाँ लिया फिर। **निरूपण..** और वाच्य है उसे **निरूपण** शब्द से कहा। आहाहा! वह तो **प्रत्यक्ष अनुभव में स्थापित किया है बुद्धि का सर्वस्व जिसने ऐसे जीव के।** वह होता है। ऐसा अनुभव उसे होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी में बुद्धि को स्थापित करके ज्ञान का अनुभव किया, उसे यह बात होती है। आहाहा! अज्ञानी को यह बात नहीं होती। चाहे तो साधु हुआ हो, पंच महाव्रत पालता हो परन्तु अज्ञानी है, उसे यह बात नहीं शोभती, उसे नहीं होती। आहाहा!

सत्तामात्र शुद्ध जीववस्तु को प्रत्यक्ष आस्वादता है... देखा? '**समुत्पश्यतः**' '**समुत्पश्यतः**' सम्यक् प्रकार से उग्ररूप से '**पश्यतः**' अर्थात् आस्वादता है। **ऐसे जीव को।** आहाहा! ऐसे जीव को यह होता है। वस्तु का स्वरूप है, वैसा उसे प्रगट है कि जो पर को जानने पर, पर से ज्ञान हुआ नहीं और ज्ञान पर में गया नहीं। आहाहा! **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है, समस्त ज्ञेय से भिन्न है, ऐसा स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानता है।** लो, (विशेष कहेंगे..) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २१६

(मन्दक्रान्ता)

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष–
मन्यद्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि–
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ।।२४–२१६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'सदा ज्ञानं ज्ञेयं कलयति अस्य ज्ञेयं न अस्ति एव' [सदा] सर्व काल [ज्ञानं] अर्थग्रहणशक्ति [ज्ञेयं] स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेयवस्तु को, [कलयति] एक समय में द्रव्य–गुण–पर्याय भेदयुक्त जैसी है, उस प्रकार जानता है। एक विशेष — [अस्य] ज्ञान के सम्बन्ध से, [ज्ञेयं न अस्ति] ज्ञेयवस्तु, ज्ञान से सम्बन्धरूप नहीं है। [एव] निश्चय से ऐसा ही है। दृष्टान्त कहते हैं — 'ज्योत्स्नारूपं भुवं स्नपयति तस्य भूमिः न अस्ति एव' [ज्योत्स्नारूपं] चन्द्रिका का प्रसार, [भुवं स्नपयति] भूमि को श्वेत करता है। एक विशेष — [तस्य] ज्योत्स्ना के प्रसार के सम्बन्ध से [भूमिः न अस्ति] भूमि, ज्योत्स्नारूप नहीं होती। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्योत्स्ना फैलती है, समस्त भूमि, श्वेत होती है तथापि ज्योत्स्ना का (और) भूमिका सम्बन्ध नहीं; उसी प्रकार ज्ञान, समस्त ज्ञेय को जानता है तथापि ज्ञान का (और) ज्ञेय का सम्बन्ध नहीं है। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ऐसा कोई नहीं माने, उसके प्रति युक्ति के द्वारा घटित करते हैं — 'शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्' शुद्धद्रव्य अपने–अपने स्वभाव में रहता है, तो 'स्वभावस्य शेषं किं' [स्वभावस्य] सत्तामात्र वस्तु का [शेषं किं] क्या बचा? भावार्थ इस प्रकार है कि सत्तामात्र वस्तु, निर्विभाग एकरूप है, जिसके दो भाग होते नहीं। 'यदि वा' जो कभी 'अन्यद्रव्यं भवति' अनादिनिधन सत्तारूप वस्तु, अन्य सत्तारूप होवे तो 'तस्य स्वभावः किं स्यात्' [तस्य] पहले साधी हुई सत्तारूप वस्तु का [स्वभावः किं स्यात्] (स्वभाव क्या रहा? अर्थात्) जो पूर्व का सत्त्व, अन्य सत्त्वरूप होवे, तो पूर्व सत्तामांहे का (सत्ता का) क्या बचा? अपितु पूर्व सत्ता का विनाश सिद्ध होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य, चेतनासत्तारूप है, निर्विभाग है सो चेतनासत्ता, जो कभी पुद्गलद्रव्य–अचेतनारूप हो जाये, तो चेतनासत्ता का विनाश

होना कौन मेट सकता है? सो वस्तु का स्वरूप ऐसा तो नहीं है; इसलिए जो द्रव्य जैसा है, जिस प्रकार है, वैसा ही है; अन्यथा होता नहीं। इसलिए जीव का ज्ञान, समस्त ज्ञेय को जानता है तो जानो तथापि जीव, अपने स्वरूप है।।२४-२१६।।

माघ कृष्ण २, शुक्रवार, दिनांक-२४-०२-१९७८, कलश-२१६, प्रवचन-२४०

कलश टीका २१६। है न?

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव।।२१६।।

क्या कहते हैं? देखो! '**सदा ज्ञानं ज्ञेय कलयति अस्य ज्ञेयं न अस्ति एव**' आत्मा स्वरूप से सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप है। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी परमात्मस्वरूप है। वह पर को जानता है, कहते हैं। **सर्व काल ज्ञान अर्थात् अर्थग्रहणशक्ति...** उसका स्वभाव तो पदार्थ को जानन (वह है)। ग्रहण अर्थात् जानना। अर्थग्रहण — स्व और पर, ऐसे अर्थ का ग्रहण। पदार्थ का जानना उसकी शक्ति है। आहाहा!

भगवान आत्मा तो सर्वज्ञस्वभावी प्रभु, उसे तो स्व और पर पदार्थ को जानने की शक्ति है। आहाहा! पर का कुछ करना, वह तो है नहीं। पर को जानना, इससे ज्ञान की पर्याय का जो अस्तित्व है, उसका अंश कहीं ज्ञेय की ओर अन्दर जाता है? ज्ञानस्वरूप जो अस्तित्व सत्ता है, ज्ञानस्वभावी, सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा स्वयं, ऐसी उसकी सत्ता का सिद्ध होना, उसकी सत्ता का कोई अंश जानने के पदार्थ में प्रविष्ट होता है? समझ में आया? आहाहा!

अर्थग्रहणशक्ति.... ज्ञेय के दो प्रकार। **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय वस्तु को...** स्व भी ज्ञेय। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में जानने की शक्ति है, वह स्व अर्थात् ज्ञायकभाव परिपूर्ण प्रभु को भी जाने। और स्वयं से परज्ञेय है, उसे जानने का स्वभाव अपना है। उसे जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है परन्तु स्वयं स्व-पर को जाने, ऐसे उसके

अस्तित्व की पर्याय का स्वभाव है। ज्ञेय जानता है, इसलिए यहाँ ज्ञेय का ज्ञान है, ऐसा नहीं है। ज्ञान उसे जानता है, इसलिए ज्ञेय ज्ञान में आ जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब, भाई! है?

एक समय में द्रव्य-गुण-पर्यायभेदयुक्त जैसी है, उस प्रकार जानता है। ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि पर्याय में भी ऐसा स्वभाव है कि स्व और पर जो पदार्थ है, उसे एक समय में, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय दोनों को एक समय में जाने ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? **एक समय में द्रव्य-गुण-पर्यायभेदयुक्त...** वापस, ऐसा। प्रत्येक द्रव्य, द्रव्यरूप से; गुण, गुणरूप से है; पर्याय, पर्यायरूप से है ऐसा भेद जैसा है, उस प्रकार से जाने। अस्तिरूप से-सत्तारूप से सिद्ध हुआ है, वह स्व और पर को जानना... आहाहा!

अन्दर तो भगवान सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप है, यह आत्मा। ज्ञ-स्वभावी परमात्मस्वरूप है। वह सर्व इसमें आया है, इसलिए जरा स्व और पर इकट्ठे इसमें डाले। समझ में आया? पर और स्व को जानने की सत्ता में रहकर, अपने जानने के अस्तित्व में रहकर, अपने जानने की मौजूदगी में रहकर द्रव्य-गुण में प्रवेश नहीं करता और द्रव्य-गुण को जानता है। हैं?

मुमुक्षु : किस आत्मा की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस आत्मा की बात अन्दर तुम्हारा है उसकी। सेठ! इसलिए पहले कहा न कि प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! अरे! कैसे इसे जँचे?

स्व और पर को परिपूर्ण रीति से जाने, ऐसा ही इसका सर्वज्ञस्वभाव स्वरूप है। यह प्रत्येक आत्मा की बात है। अरे! इसने देखा नहीं। पर्याय जो है, स्व और पर का जैसा-जैसा जितना स्वरूप, वैसा उसका वह बराबर जाने। आहाहा! एक समय में जाने, यहाँ लिया है। भले श्रुतज्ञान हो परन्तु एक समय में जानने की इसकी ताकत है। आहाहा! अपने स्वभाव के अतिरिक्त परद्रव्य का कुछ करना, एक पर्याय का बदलना, इसमें नहीं है। आहाहा! यहाँ तो यह कहेंगे। दृष्टान्त देंगे।

ज्ञान के सम्बन्ध से ज्ञेय वस्तु ज्ञान से सम्बन्धरूप नहीं है। यह क्या कहा? जो जाननेयोग्य पदार्थ है, अरे! स्व और पर दोनों। आहाहा! उस **ज्ञान के सम्बन्ध से ज्ञेय वस्तु ज्ञान से सम्बन्धरूप नहीं है।** आहाहा! ज्ञेय तो दो प्रकार से कहे न? हैं?

मुमुक्षु : पर के साथ सम्बन्ध नहीं, पर्याय के साथ तो सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ यह नहीं। स्व-पर को साथ में जानता है, दोपहर में ऐसा आया था।

मुमुक्षु : अपने में तन्मय होकर नहीं जानता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तन्मय है नहीं, भिन्न ही है पर्याय। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू!

मुमुक्षु : प्रदेश से तो तन्मय है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रदेश भी भिन्न है और भाव भी भिन्न है।

यहाँ तो उसे जानने की पर्याय का स्वभाव सर्वज्ञस्वभावी तो शक्ति है, स्वभाव है परन्तु पर्याय में सर्व जानना, ऐसा पर्याय का स्वभाव है। वह जानना, ऐसी पर्याय की सत्ता में स्व द्रव्य-गुण-पर्याय स्वयं। पर्याय, पर्याय को जानती है वह तो छूकर-स्पर्शकर परन्तु द्रव्य-गुण और दूसरे के द्रव्य-गुण-पर्याय की सत्ता को जानने पर वह पर्याय उसरूप / पररूप नहीं होती। आहाहा! ज्ञेय तो यहाँ दो प्रकार के कहे न? हें? क्या कहा? **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय...** ऐसा लिया न? आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ प्रभु है। आहाहा! वह तो त्रिकाली स्वभाव, उसका परमात्मस्वरूप ही है। उसकी दृष्टि करने पर, उस सर्वज्ञस्वभाव की दृष्टि करने पर दृष्टि में वह ज्ञेय आता नहीं, परन्तु ज्ञेय का जितना सामर्थ्य है, उतना ज्ञान की पर्याय में आ जाता है, अतः वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय स्व-पर जानने की है, उस ज्ञान की अवस्था को इसका द्रव्य-गुण का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! वह वर्तमान ज्ञान की पर्याय अपने द्रव्य-गुण को जाने, तथापि वह पर्याय ज्ञेय के साथ सम्बन्धरूप नहीं है। सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु! आहाहा! एक समय की पर्याय के समीप में प्रभु विराजता है। एक समय की पर्याय के पास-पास—साथ में भगवान विराजता है। आहा! उसका इसने दर्शन नहीं किया। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि उस पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है। उस ज्ञान की सत्ता को सिद्ध करने पर उसके स्वभाव का स्वरूप ही ऐसा है कि स्वज्ञेय और परज्ञेय को अपने में रहकर पर के साथ सम्बन्ध बिना जानना, उसका स्वरूप है। धीरे से समझना। यह तो अन्तिम श्लोक है और बहुत ऊँचे हैं। 'सर्वविशुद्धज्ञान' है यह। आहाहा! अरे! दृष्टान्त आयेगा।

मुमुक्षु : इसका नाम ज्ञायक ही पड़ा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है, कहा न, पर्याय जानती है। किसे जानती है? - कि स्व और पर दोनों को। जानने की पर्याय स्व-पर दोनों को जानती है, वह ज्ञायक है। द्रव्य-गुण तो ज्ञायक है, परन्तु पर्याय भी ज्ञायक है। चन्दुभाई! ऐसा है जरा। आहाहा! भगवान बड़ा समुद्र, गम्भीर सागर अन्दर पड़ा है। आहाहा! ऐसा होने पर भी वह स्वज्ञेय है, उसे भी पर्याय जानती है। अर्थग्रहण आया न? अर्थग्रहण अर्थात् अर्थ अर्थात् पदार्थ को जानना, ऐसी शक्ति। एक बात। अब अर्थ दो प्रकार के —स्व और पर। इन दो को जानने की पर्याय में ताकत, ज्ञायक की पर्याय में ताकत है। आहाहा! हें?

मुमुक्षु : स्व और पर को जाने तो स्व में कितना द्रव्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व में पूरा द्रव्य-गुण सब लेना। कहा न यह? तथापि उस ज्ञेय और ज्ञान को सम्बन्ध नहीं है। उस ज्ञान को और ज्ञेय को सम्बन्ध नहीं है अर्थात् ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं हुआ। तथा वह ज्ञेय द्रव्य-गुण है, वह ज्ञान की पर्याय में नहीं आये। आहाहा! उस सम्बन्धी का ज्ञान आया परन्तु वह चीज़ जो द्रव्य-गुण है, जानने की पर्याय में द्रव्य-गुण नहीं आये तथा परवस्तु को जानने पर वह तो चैतन्य की सत्ता के स्वभाव का अस्तित्व सिद्ध हुआ। उसमें परवस्तु ज्ञेय यहाँ आयी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! तत्त्व ही अलौकिक है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्व को जाने और पर को तो परज्ञेयरूप से जानता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को जानता है। स्व को स्व रूप से, पर को पर रूप से। पर्याय दोनों को जानती है। अर्थग्रहणशक्ति कही न? तो अर्थग्रहणशक्ति में ज्ञेय दो प्रकार से कहे। ऐसा कहा? है? **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय वस्तु...** ऐसा कहा न? या पर ही

कहा? सूक्ष्म बात है, भाई! यह मार्ग तो अलौकिक है। आहाहा!

ध्रुव है, वह जानने का कार्य नहीं करता। शक्ति है उसकी, परन्तु जानने का कार्य जिस सत्ता में होता है, उस सत्ता की पर्याय-अस्तित्व स्व और पर दोनों पदार्थों को बराबर जानती है, तथापि उस ज्ञेयरूप वह ज्ञान की पर्याय नहीं होती। अर्थात्? जानने की पर्याय द्रव्य-गुण को जानती है तो भी द्रव्य-गुण की नहीं होती। जानने की पर्याय पर को जानती है तो भी वह पर्याय पर की नहीं होती। अरे! ऐसी बातें हैं। चिमनभाई! सूक्ष्म बातें, बापू! यह तो मार्ग...

प्रभु साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा विराजमान हैं। प्रभु स्वयं सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव! आहाहा! स्वयं देवाधिदेव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो पहले आया था। कहा न (संवत्) १९६३ के वर्ष में। 'तूं ही देवनो देव छो।' १९६३ के वर्ष में। आहाहा! सब विवाह में गये थे और मैं तथा नौकर दो रहे थे। दो दुकानें थीं। दो व्यक्ति कहाँ बैठे? दुकान बन्द रखें परन्तु ध्यान रखते। दुकान के सामने बड़ी रामलीला आयी थी। वह लीला देखने गये, उसमें यह (आया) प्रभु! तू कौन है? 'शिवरमणी रमनार तू, तू ही देव का देव तू है।' कितने वर्ष हुए? ६३, ६३। कितने वर्ष हुए? ६३, ६३। तुम्हारे जन्म के पहले। आहाहा! 'तू ही देव का देव' ऐसा आया था। और यह स्त्री का रमण तुझे न हो। तू तो शिवरमणी रमनेवाला है न, प्रभु! यह क्या है यह? ऐसा अन्दर से आया था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! ओहोहो! इसे ज्ञान की वर्तमान पर्याय की जानने की ताकत, स्व और परज्ञेयों को जानने की ताकत, ऐसा कहा है न? या पर को जानने का अकेला नहीं लिया। और ज्ञेय दो प्रकार के लिये हैं—स्व और पर। आहाहा! वह पर्याय पर्याय को जाने, पर्याय द्रव्य-गुण को जाने, पर्याय परद्रव्य-गुण को जाने तो भी परद्रव्य-गुणरूप और स्व के द्रव्य गुणरूप वह पर्याय नहीं होती। आहाहा! ज्ञेयरूप से वह ज्ञान की पर्याय नहीं होती, इसका अर्थ क्या हुआ? कि स्वज्ञेयरूप भी, पर्याय स्वज्ञेय है, वह पर्यायरूप हुई है, परन्तु द्रव्य-गुणरूप पर्याय नहीं होती। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत, जन्म-मरण के अन्त की बातें बहुत सूक्ष्म, भाई! अनन्त काल से इसे यह बात अन्दर बैठी नहीं है। आहाहा!

इस राग को जानने पर रागरूप होकर जाना नहीं, ज्ञानरूप रहकर राग को जानता है, तो उस ज्ञेयरूप ज्ञान हुआ नहीं और वह ज्ञेय-राग वह ज्ञानरूप आया नहीं। आहाहा! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उठता है, उसे ज्ञान की पर्याय परज्ञेयरूप से जानती है, तथापि उस जानने की पर्याय का अंश उस राग के ज्ञेय में गया नहीं। तथा उस राग का अंश है, वह यहाँ ज्ञात हुआ है, वह ज्ञात हुआ है, वह तो उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान, उस ज्ञान में कहीं राग आया नहीं, ज्ञेय का अंश यहाँ आया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो ज्ञानी की बात है, वस्तु के स्वभाव की बात है। वस्तु का स्वभाव ऐसा है। माने अज्ञानी चाहे जिस प्रकार। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अपने आनन्दस्वभाव में आनन्द की पर्याय को क्या कहोगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द की पर्याय भी पररूप से ज्ञेय है।

मुमुक्षु : परज्ञेय रूप से?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न?

मुमुक्षु : द्रव्य, गुण और पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह अपनी पर्याय के अतिरिक्त सब पर्याय परज्ञेयरूप से है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म पड़ेगा। आहाहा! उसका अस्तित्व कितना और कैसा है और कैसे है, यह बात है। क्या कहा?

'**सदा**' अर्थात् **सर्व काल...** '**ज्ञानं**' अर्थात् **अर्थग्रहणशक्ति...** अर्थ अर्थात् पदार्थ को जानने की शक्ति। देखो! ग्रहण का अर्थ जानना। भाई ने कहा है न कि व्यवहार को ग्रहण करना अर्थात् कि जानना। मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अधिकार। यह अर्थग्रहणशक्ति ज्ञान, यह ज्ञान की व्याख्या की। अब ज्ञेय? **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय वस्तु...** यह ज्ञेय की व्याख्या की। आहाहा! **एक समय में द्रव्य-गुण-पर्यायभेदयुक्त जैसा है, उस प्रकार जानता है।** आहाहा! यह तो नियमसार में आगे नहीं आया यह? निश्चय से ज्ञान अपने को जानता है और निश्चय से पर जो गुण हैं, उन्हें भी जानता है। यह निश्चय से कहने में आता है, स्व के हैं इसलिए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अमृत का सागर भगवान पूरा स्थित है, परन्तु जिसे कहते हैं कि उसे जाना... आहाहा! वह जानने की पर्याय स्वयं ज्ञेयरूप, स्व और पर ज्ञेयरूप नहीं होती, तथापि वह जाने बिना नहीं रहती, तथापि उस ज्ञेय का अंश ज्ञान में आता नहीं और ज्ञान का अंश ज्ञेय में जाता नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। अब यहाँ तो अभी बाहर में तूफान... यह किया और यह किया और यह किया... आहाहा! विपरीत मान्यता, कहते हैं, वस्तु के स्वरूप से विपरीत है।

सम्बन्धरूप नहीं है। 'एव' है? **'एव' निश्चय से ऐसा ही है। 'एव'** अर्थात् निश्चय। **निश्चय से ऐसा ही है।** आहाहा! **दृष्टान्त कहते हैं - 'ज्योत्स्नारूपं भुवं स्नपयतिं तस्य भूमिः न अस्ति एव' चन्द्रिका का प्रसार...** यह चन्द्र, चन्द्र की चाँदनी के प्रकाश का प्रसार **भूमि को श्वेत करता है। एक विशेष - ज्योत्स्ना के प्रसार के सम्बन्ध से भूमि ज्योत्स्नारूप नहीं होती।** चाँदनी के प्रकाश से भूमि चाँदनीरूप हुई नहीं तथा चाँदनी का प्रकाश भूमिरूप हुआ नहीं। आहाहा! तथा चाँदनी का प्रकाश भूमि को स्पर्शा-छुआ नहीं।

मुमुक्षु : श्वेत करता है, ऐसा तो लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग देखते हैं, इस अपेक्षा से कहा है। यह तो अन्दर पहले आया था। लोग ऐसा कहते हैं न, देखो! यह सफेद हुआ। परन्तु क्या सफेद हुआ? सफेद तो चाँदनी हुई है। सफेद पृथ्वी हुई नहीं। आहाहा! सफेदरूप का परिणमन का अस्तित्व वह तो सफेदरूप स्वयं चाँदनी है, वह हुई है। वह चाँदनी पृथ्वी को सफेद करती है, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार का कथन है। पृथ्वी चाँदनीरूप हुई नहीं। चाँदनी पृथ्वीरूप हुई नहीं। प्रत्येक अपने अस्तित्व में-सत्ता में रहे हुए हैं। प्रकाश पर को करता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! है? क्या कहा?

मुमुक्षु : कलई के दृष्टान्त से कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलई... कलई का दृष्टान्त... कलई दीवार को स्पर्श नहीं करती। कलई, कलई में रहकर सफेदरूप पसरती है। उस दीवार को कलई ने सफेद नहीं किया तथा दीवार सफेदरूप हुई नहीं अर्थात् सफेद की अवस्था में दीवार आयी

नहीं। आहाहा! ऐसा है। मूल तत्त्व दृष्टि का विषय बहुत सूक्ष्म है। यह विषय अभी पूरा पड़ा रहा। बाहर में सब हालमहोल... आहाहा! अरेरे! ऐसी जिन्दगी मिली और ऐसा मनुष्यपना (मिला), उसमें वास्तविक तत्त्व की व्यवस्था और अवस्था, उसका ज्ञान यथार्थ न हो तो इसके जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। आहाहा! क्या?

मुमुक्षु : सबको लागू पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको लागू पड़े। न समझे उसे (सबको)। आहाहा! कहा? श्रीमद् ने यह दृष्टान्त दिया है, उनकी पुस्तक में।

चाँदनी का प्रकाश पृथ्वी को सफेद करता है, ऐसा कहना तो निमित्त का कथन है। चाँदनी पृथ्वी को स्पर्श नहीं करती और पृथ्वी चाँदनी के प्रकाश में आयी नहीं और स्पर्शी नहीं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान ज्ञान की पर्याय... आहाहा! ज्ञेय को जानने पर ज्ञेयरूप हुई नहीं, तथा वह ज्ञेय ज्ञानरूप में आया नहीं। आहाहा! वास्तव में तो ज्ञान (जिस ज्ञेय को) जानता है, उस ज्ञेय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! स्वयं स्वद्रव्य और गुण। आहाहा!

इसकी ज्ञानपर्याय के अतिरिक्त की भी पर्याय हैं, उन्हें भी वह स्पर्श नहीं करता, ऐसा जिसका स्वभाव, चैतन्य का स्व-परप्रकाशक अस्तित्व अनन्त पर्याय को ज्ञेयरूप से ज्ञान जानता है, आहाहा! परन्तु वह पर्याय पर अनन्त पर्यायरूप हुई नहीं और वे अनन्त पर्यायें जो हैं, वे जानने की पर्याय में आयी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान आनन्द बिना का हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्दवाला होता है यहाँ।

मुमुक्षु : एक का रूप दूसरे में आता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक का रूप आता है, यह कहना था। रात्रि में नहीं कहा था? आत्मा में अनन्त सामान्य गुण हैं, अनन्त विशेष गुण हैं। एक गुण का अनन्त में रूप है और अनन्त गुण का एक गुण में रूप है। आहाहा! दूसरा गुण दूसरे गुण में आता नहीं, परन्तु दूसरे गुण का स्वरूप और रूप, रूप तरीके इसमें होता है। आहाहा! ज्ञानगुण में अस्तित्वगुण आता नहीं, परन्तु अस्तित्वगुण का रूप ज्ञान 'है', वह अपनेरूप है, ऐसा

अस्तित्व आता है। आहाहा! और वह ज्ञानगुण अस्तित्व को... आहाहा! अतद्भाव है न? एक गुण, गुण में अतद्भाव है। आहाहा! एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं है। सर्व गुण असहाय है। आहाहा! अरे! अरे..! यह तत्त्वज्ञान का विशाल भाव है। है? लोग बाहर से अटक (गये हैं)। यह बात तो समझना नहीं और बाहर से करके जिन्दगी निकाल डालते हैं। आहाहा! व्यक्ति को मनुष्यपना मिला और फिर भी ज्ञायक क्या चीज़ है, उसे अनुभवे-जाने नहीं, तब तो वह मनुष्यपना मिला, नहीं मिला (बराबर है)। पशु को मिला नहीं और इसे मिला है, दोनों व्यर्थ गये। आहाहा!

ध्वजा को पवन स्पर्श नहीं करता और ध्वजा हिलती है। वह हिलती है, वह पवन को स्पर्श नहीं करती, पवन उसे स्पर्श नहीं करता। एक-दूसरे के अभावस्वभावस्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : दवा का क्या काम?

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा का क्या... धूल भी नहीं होती। दवा, दवा की पर्याय। यह तुम्हारे डॉक्टर का पूछता है। दवा का एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्श नहीं करता। इस दवा का एक रजकण शरीर के रजकण को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा तत्त्व है। है? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : दवा खाना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाता है? तुम्हारे तो सामने बहुत दवायें होती हैं। छह लाख का मकान है इनका। वहाँ हमारा आवास था। वह मैं भोजन करके ऐसा घूमता था, जहाँ उसका सोने का था, वहाँ बहुत दवायें पड़ी थीं। छह लाख का रहने का मकान है इन्हें। भाई का अलग है, वह भी बड़ा मकान है, शोभालाल! किसका मकान? बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मकान को जानता है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। आहाहा! ज्ञान, ज्ञान को जानता है, उसमें स्पर्शकर-छूकर जानता है, वह ज्ञान। पर को स्पर्श नहीं करता, इसलिए पर को किस प्रकार जाने? परसम्बन्धी का ज्ञान अपना है, उसे वह जानता है। ऐसे कठोर नियम गजब...! आहाहा! लो, कलई ने दीवार को सफेद

नहीं किया। अब दृष्ट इष्ट ऐसा बहुत से कहते हैं। दिखता है, उसका तुम निषेध करते हो। अरे..! प्रभु! तू सुन तो सही। एक पण्डित आया था। (वह कहता है), पानी अग्नि से गर्म होता है, इसका तुम निषेध करते हो। दिखता है सीधा। परन्तु बापू! पानी की पर्याय को अग्नि की पर्याय ने छुआ ही नहीं। आहाहा! कहो, रजनीभाई! ऐसा है। कभी सुना है कहीं? सब धमाधम... आहा! पोपटभाई का पुत्र है। एक बार निकाला था बड़ा... क्या कहलाता है? यात्रा नहीं निकाली थी? कान्तिभाई ध्रांगध्रावाला। आहाहा! थोड़ा पैसा खर्च करे, पाँच-पच्चीस हजार, वहाँ ऐसा हो जाता है कि आहाहा! हमने तो बड़ी यात्रा (निकाली) और धर्म किया। आहाहा! अरे..! यहाँ तो कहते हैं कि पर का तो कर सकता नहीं परन्तु पर को जानने में पर है, इसलिए ज्ञान जानता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर को जानता तो है...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर को जानता है अर्थात् उस सम्बन्धी का ज्ञान (हुआ) इसलिए जानता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! बाकी ज्ञान, ज्ञान को जानता है। आहाहा! जिसे स्पर्शकर जाने, उसे जाना कहा जाता है। पर को स्पर्शकर नहीं जानता, इसलिए पर को निश्चय से वास्तव में नहीं जानता। ऐसा भेद, ज्ञान है। सूक्ष्म बात। आहाहा!

ज्योत्स्ना के प्रसार के सम्बन्ध से भूमि ज्योत्स्नारूप नहीं होती। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्योत्स्ना फैलती है,... सफेद होती है। **समस्त भूमि श्वेत होती है, तथापि ज्योत्स्ना का भूमिका सम्बन्ध नहीं...** सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! चाँदनी की सफेद पर्याय को और पृथ्वी को दो को सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पृथ्वी सफेद हुई तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ की है? यह तो बताया, यह लोग कहते हैं। सफेद स्वयं अपनेरूप के अस्तित्व में सफेद हुई है। वह पृथ्वी के अस्तित्व में सफेद नहीं हुई। अपना अस्तित्व वहाँ जरा भी गया है? आहाहा! चाँदनी का सफेदी का अस्तित्व, वह पृथ्वी के अस्तित्व में वह सफेदपना गया है? आहाहा! ऐसा है। धीरे से समझे नहीं, सुने नहीं और फिर यह... एकान्त है, एकान्त है, एकान्त है - ऐसा कहे। निश्चय को ही

मानते हैं, व्यवहार को (मानते नहीं)। परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? यह पर को सफेद करे, ऐसा जानना, वह व्यवहार। परन्तु वह व्यवहार अभूतार्थ-झूठा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। है?

तथापि ज्योत्स्ना का भूमिका सम्बन्ध नहीं उसी प्रकार ज्ञान समस्त ज्ञेय को जानता है... समस्त ज्ञेय लिये न? स्व-पर सबको। **तथापि ज्योत्स्ना का भूमिका सम्बन्ध नहीं...** आहाहा! जाननहार पर्याय... आहाहा! उसकी ताकत तो देखो! अपने द्रव्य-गुण को जाने तो भी उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! अपने अतिरिक्त अनन्त पर्यायें हैं, उन्हें जाने तो भी उनके साथ सम्बन्ध क्या? स्वतन्त्र पर्याय है, वहाँ उसे पर के साथ सम्बन्ध क्या? आहाहा! चन्दुभाई! आहाहा! क्योंकि एक समय की ज्ञान की पर्याय में षट्कारक स्वयं अपने से हुए हैं। आहाहा! वह द्रव्य-गुण के कारण नहीं, दूसरी पर्याय के कारण नहीं। आहाहा! भगवान एक समय के ज्ञान की दशा वह स्वयं ही कर्ता है, वह ज्ञान की दशा, वह कर्म / कार्य है, वही साधन है, उससे-पर्याय से पर्याय हुई है, पर्याय होकर पर्याय में रखी है, पर्याय के आधार से पर्याय हुई है। आहाहा! जिसे द्रव्य और गुण की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार अज्ञानी यहाँ पर में सुखबुद्धि मानता है... आहाहा! वह तो मिथ्याभ्रम है परन्तु उसे जानता है, ऐसा कहना वह भी ज्ञान कहीं पर के ज्ञेय में स्पर्शा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वहाँ टाईल्स-फाईल्स में कहीं मिले ऐसा नहीं है। इनको बीड़ी का बड़ा तूफान है। तम्बाकू के बड़े भरे हुए... क्या कहलाते हैं? बड़े गोदाम, उसकी पूरी लाईन है। परन्तु किसके? वह चीज़ कहाँ इसकी है? इसने कहाँ भरा है और रखा है? आहाहा! उसे जानता है, ऐसा कहना वह भी वह ज्ञान कहीं पर में प्रविष्ट नहीं है कि जाने है। आहाहा! आहाहा! तत्त्वज्ञान का विषय बहुत कम हो गया, फेरफार (हो गया) इसलिए लोगों को यह ऐसा लगता है कि यह क्या परन्तु ऐसा? हमें क्या करना, इसमें सूझ पड़ती नहीं। तुझे करना क्या है? तू कौन है? उसे यथार्थ रीति से जानना, यह करना है। आहाहा!

ज्योत्स्ना का भूमिका सम्बन्ध नहीं उसी प्रकार ज्ञान समस्त ज्ञेय को जानता है तथापि ज्ञान का ज्ञेय का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! एक ओर स्व-पर ज्ञेय कहे,

एक ओर स्व-पर ज्ञेय को भी ज्ञान जाने, तथापि स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान और आत्मा का सम्बन्ध ही न रहे तो आत्मा में जड़पना हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध है ही नहीं, भिन्न चीज़ है। पर्याय का सम्बन्ध और द्रव्य-गुण का भिन्न सम्बन्ध है, अतद्भाव है। पर्याय में द्रव्य-गुण नहीं और द्रव्य-गुण में पर्याय नहीं। अतद्भावरूप से अन्य है, अन्यत्वरूप से अन्य नहीं। अन्यत्वरूप से अभाव नहीं। अतद्भावरूप से अभाव है। आहाहा! प्रवचनसार में आता है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय का इतना स्वभाव है, इतना स्वभाव है कि वह पर्याय इतनी ही है, ऐसा कहें तो भी बस... आहाहा! क्योंकि उस पर्याय में अनन्त पर्याय का, अनन्त द्रव्य का, गुण का और यहाँ का सब ज्ञान एक समय की पर्याय में आ जाता है। वह ज्ञान, हों! वह ज्ञेय आता नहीं। द्रव्य-गुण यहाँ आते नहीं। दूसरी पर्यायें, इस पर्याय में आती नहीं, परन्तु पर्याय-जानने की पर्याय... आहाहा! उन सबको जानने पर भी पर की नहीं हुई और पर के साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग, बापू! जिनेश्वर-सन्त, दिगम्बर सन्त... आहाहा! परमेश्वर के पुत्र हैं। आहा! गणधर को पुत्र कहा है न! भगवान के पुत्र कहा है। आगम.. क्या कहलाता है वह? धवल.. धवल। धवल, जयधवल में कहा है। आहाहा! लोग कहते हैं न, ईशु परमेश्वर का पुत्र है। ईशु.. ईशु कहते हैं न वे। वह तो सब गप्प है। गणधर आदि हैं, वे सर्वज्ञ के पुत्र हैं। यह भी एक अपेक्षा से। आहाहा!

ज्ञान की एक पर्याय सर्वज्ञ पर्याय को भी... परद्रव्य है न वह? परद्रव्य का सर्वज्ञपना, उसका अनन्त आनन्द, उसकी अनन्त शान्ति, ऐसी पर्याय को, गुण को, द्रव्य को ज्ञान की पर्याय उसे जानती है तो भी उस जानने के अस्तित्व का अंश पर के ज्ञेय को जानने में अस्तित्व का अंश जाता नहीं, तथा पर के अस्तित्व का अंश जानने के ज्ञान में आता नहीं। आहाहा! अस्तित्व का अंश आता नहीं। आहाहा! ऐसा बड़ा भगवान (है), उसे पामररूप से माना है। आहाहा! उसने जीव को मरणतुल्य कर डाला। ऐसा स्वरूप जीवनज्योति, अस्तिधारक ऐसा तत्त्व, उसे ऐसी अस्तिवाला नहीं... आहाहा! और अल्प अस्तिवाला माने, वह तो उसकी अस्ति का इसने मरण कर डाला। आहाहा! है?

(ज्ञान का और) ज्ञेय का सम्बन्ध नहीं है, **ऐसा वस्तु का स्वभाव है।** यह तो वस्तु का ऐसा स्वभाव है, भाई! आहाहा! यह किसी ने किया नहीं और किसी से यह हुआ नहीं। आहाहा! यह वस्तु का ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-पर को जाने, तथापि स्व-पर में जाये नहीं और पर इसमें आवे नहीं। आहाहा! ऐसी बातें सूक्ष्म पड़ती है, इसलिए लोग फिर (ऐसा कहते हैं), ऐ... निश्चय है, निश्चय है। परन्तु निश्चय है अर्थात् सत्य है, ऐसा कह। आहाहा!

ऐसा कोई नहीं माने उसके प्रति युक्ति के द्वारा घटित करते हैं... इस प्रकार कोई न माने तो न्याय द्वारा अब उसे सिद्ध करते हैं। **'शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्' शुद्ध द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में रहता है तो... 'स्वभावस्य शेषं किं'** स्वभाव का कौन सा बाकी शेष (अंश) रहा, वह पर में जाये? आहाहा! **सत्तामात्र वस्तु का क्या बचा?** जब सिद्ध किया कि ज्ञान है, ऐसे अस्तित्व सत्ता सिद्ध की तो उस ज्ञान का अंश पर में जाये तो यहाँ सत्ता सिद्ध हुई, वह रही कहाँ? है? आहाहा! अस्तित्व-ज्ञान का अस्तित्व इतना है कि जो स्व-पर को जानता है। वह स्व-पर को स्पर्शे बिना इतनी सत्ता सिद्ध की, अब वह सत्ता पर में जाये तो इस सत्ता का क्या रहा? सत्ता रही कहाँ? सत्ता बची कहाँ? आहाहा! अपनी सत्ता तो सिद्ध की, अब वह सत्ता इतनी है, ज्ञान की स्व-पर जानने की सत्ता का अस्तित्व, वह तो सिद्ध किया। अब यदि वह अंश पर में जाये तो यहाँ बाकी क्या रहा? सत्ता का एक अंश भी पर में जाये तो सत्ता जो पूरी सिद्ध है, उसमें रहा क्या? बचा क्या? आहाहा! बहुत सूक्ष्म। ऐसा तो तुम्हारे कहीं (सुनने को मिलता नहीं होगा)। आहाहा! पाँच, पचास हजार खर्च करे, पश्चात् यह करे और मानो हो गया धर्म। इस सेठ ने तीन लाख की एक धर्मशाला बनायी है। सागर में (बनायी है)। दूसरे बहुत भी देते हैं परन्तु यह सब क्रियाएँ स्वयं कर सकता है, यह बात ही मिथ्या है, यहाँ तो कहते हैं। सेठ!

मुमुक्षु : आपने ही ऐसा कहा कि धर्मशाला सेठ ने बनायी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा दूसरी क्या होगी? आहाहा! इसलिए निर्जरा अधिकार में कहा न? ज्ञानी सचेत—अचेत को भोगता है, ऐसा तो पाठ यह आया और एक ओर कहते हैं कि पर को भोगता नहीं। परन्तु लोग कहते हैं, उस भाषा से उन्हें समझाते हैं।

आहाहा! आता है न? धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि, सचेत-अचेत को भोगता है तो उसे निर्जरा का हेतु है, ऐसा कहते हैं। सचेत को छूता है, उसे भोगता है? अचेत को छूता है, उसे भोगता है? परन्तु दुनिया ऐसा कहती है कि देखो! यह सचेत को भोगता है, अमुक को भोगता है, यह सब्जी को खाता है, स्त्री को भोगता है, पैसे को भोगता है, बड़े मकान पाँच-पचास लाख के बनाकर यह... झूले में झूलता है। लोग ऐसा मानते हैं, (इसलिए) उस भाषा में बात की है। आहाहा! अब ऐसी बात समझ में न आवे, इसलिए फिर निकाल डाले, यह तो निश्चय है, एकान्त है, एकान्त है। व्यवहार चाहिए। परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? वह तो कहनेमात्र व्यवहार है, कथनीमात्र। आगे आयेगा। आहाहा! नियमसार में आयेगा। व्यवहाररत्नत्रय कथनमात्र है, वह अनन्त बार किया है, कहते हैं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, भक्ति यह तो अनन्त बार किया है। यह नयी चीज़ कहाँ है? आहाहा!

'**स्वभावस्य शेषं किं**' क्या कहा? **शुद्ध द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में रहता है तो सत्तामात्र वस्तु का क्या बचा?** यदि पर में अंश जाये तो सत्ता जो सिद्ध की है, उसमें रहा क्या? उसका अस्तित्व जिस प्रकार है, वह तो रहा नहीं। आहाहा! पवन की सत्ता सिद्ध की कि पवन है। एक दृष्टान्त (लेते हैं)। अब उसका अंश यदि ध्वजा में जाये तो यहाँ जो सत्ता भिन्न सिद्ध की, वह रही कहाँ? ध्वजा को पवन स्पर्श नहीं करता और ध्वजा हिलती है। आहाहा! जो सत्ता सिद्ध की कि यह वस्तु है, पवन वस्तु है, पानी वस्तु है। अब पानी की सत्ता सिद्ध की, अब उसकी पर्याय में उष्णता आयी, वह अग्नि से आयी तो यहाँ सत्ता जो सिद्ध की है, उस सत्ता का अंश कहाँ गया? आहाहा! समझ में आया? ऐसी धर्मकथा सूक्ष्म है। आहाहा! है? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : दृष्टि स्थिर हुए बिना भिन्न ज्ञात होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान स्थिर ही है। माना है अस्थिर। यहाँ तो स्थिर की ही बात है। ज्ञानस्वभाव ही उसका ऐसा है। यहाँ तो सिद्ध यह करना है। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान का स्वभाव ही ऐसा है कि स्व-पर को जानना, बस। उस स्व-पर की अपेक्षा से स्व-पर को जाने, ऐसा भी नहीं। आहाहा! उस पर का और स्व का ज्ञान (जो हुआ), वह पर और स्व की अपेक्षा बिना स्वयं से जानता है। उस जानने का अस्तित्व जो है,

वह पर की अपेक्षा नहीं रखता। आहाहा! यह तो कल भी सूक्ष्म आया और आज भी सूक्ष्म आया। चन्दुभाई कल बहुत बोले थे, आज आया, ऐसा सब आने देना। वह तो आवे अन्दर से। आहाहा!

मुमुक्षु : दुःख को जानता है, तब तो दुःखी है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दुःख को जानता कहाँ है? दुःख को स्पर्श नहीं करता न! और दुःख का भाव है, इसलिए यहाँ दुःख का ज्ञान हुआ है, ऐसा भी नहीं है। वह तो ज्ञान का स्वभाव है कि स्व-पर को जाने। वह तो अपनी स्व-पर (प्रकाशक) शक्ति है, वह तो अपनी ताकत है। आहाहा! बहुत कठिन लगे ऐसा। तीन लोक के नाथ ने ऐसी पुकार की है। आहाहा! दिव्यध्वनि द्वारा (ऐसी बात की है) ऐसी वाणी कहाँ है? भाई! आहाहा! ऐसा परमसत्य तो सुनने को मिले, वह भाग्यशाली है। ऐसी बात है, बापू! क्या कहें? क्या कहा यह अन्तिम?

जो कुछ चीज़ की सत्ता सिद्ध की है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसी सत्ता-अस्तित्व सिद्ध किया है। अब यदि उसका अंश भी पर में जाये तो यह सत्ता है, उसमें रहा क्या? आहाहा! समझ में आया? पर को जानने पर ज्ञान पर में जाये तो अपनी सत्ता जो भिन्न सिद्ध की है, वह सत्ता रही कहाँ? आहाहा! कहो, पण्डितजी! यह लॉजिक से तो बात है। आहाहा! बनिया बाहर के धन्धे में पूरे दिन रचे-पचे (रहते हैं), वह इनकी यह पंतु जैसी भाषा। उसे कुछ नया सीखना है। वह भाव यह, वह भाव यह। वह का वह करे पूरे दिन। नये तर्क उसमें (नहीं आते), वकीलों को तो तर्क करना पड़ते हैं। यह तो वह का वह। इसका यह भाव है और टाईल्स का भाव है और अमुक का भाव है, वह का वह सीखा। पाँच मण चाहिए हो, दस मण चाहिए हो, परन्तु वह के वह शब्द। आहाहा!

हमारे मास्टर थे, हीराचन्द मास्टर। वे ऐसा कहते थे कि हम सब मास्टर पंतु... क्या कहलाता है? पंतु.. पंतु। पंतु हैं। क्योंकि हमें वह का वह सिखाना, नया कुछ नहीं। पहली पुस्तक में यह, दूसरी में यह। हीराचन्द मास्टर थे। रतिभाई रहते हैं न, उनके पुत्र। रतिभाई वहाँ मुम्बई में रहते हैं। यहाँ मास्टर थे। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : आप भी भाव बताते हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बताता है? ऐसी बातें, बापू! सूक्ष्म, भाई! भाषा भाषा के कारण निकलती है। भाषा को ज्ञान का अंश स्पर्श करता है? और भाषा का जो अस्तित्व-सत्ता है, उस प्रकार से जो सिद्ध की है कि यह पर्याय भाषा की है, अब उसे ज्ञान के कारण से यह भाषा होती है तो उसकी सत्ता जो सिद्ध की, वह तो रहती नहीं। आहाहा! ऐसा कहीं मिले ऐसा है वहाँ मुम्बई? रजनीभाई! ऐसी बात है, बहुत फेरफार (हो गया है)। आहाहा!

यह तो वस्तु की स्वयंसिद्ध सत्ता की सिद्धता करनी है। आहाहा! और वह भी यहाँ तो जानने की पर्याय की सत्ता को सिद्ध किया है। आहाहा! स्व-पर को जानने की ताकतवाली वह शक्ति है, उसकी शक्ति का एक अंश पर में-ज्ञेय में जाये तो यहाँ सत्ता का जो सामर्थ्य सिद्ध किया है, वह रहा कहाँ? आहाहा! समझ में आये ऐसा है, हों! भाषा कहीं ऐसी कठिन नहीं है। भाषा तो सादी है। आहाहा! अरे! किसका अभिमान इसे, बापू! आहाहा! थोड़ा बहुत जानपना जहाँ धारणा का हो तो इसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! मानो मैं कुछ बढ़ गया! आहाहा!

यहाँ तो ज्ञान की पर्याय ऐसी, स्व-पर को पूर्ण जाने तो भी उस सत्ता का अभिमान नहीं, क्योंकि वह तो इसका इतना स्वभाव ही है। हैं? आहाहा! और सर्वज्ञ हो तो भी वह तो जो स्वभाव था, वह स्वभाव आया है, वह कहीं नया नहीं है, वह तो इसका स्वरूप ही-स्वभाव ही है। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा स्वयं भगवानस्वरूप भगवान है आत्मा। आहाहा! उसकी शक्ति में से व्यक्तता सर्वज्ञ की आयी, वह भी कहीं नवीन बात नहीं है। वह तो इसका स्वरूप इतना था, ऐसा एक पर्याय में जानने में आया? आहाहा! नये लोगों को ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? इसमें कुछ पकड़ में नहीं आता। अरे! भाई! तेरे घर की बातें हैं, प्रभु! तेरा घर कितना है, उसकी बात है। तेरा घर इतना है कि एक समय की पर्याय में तेरा इतना विशाल घर है कि तेरी पर्याय का उस ओर लक्ष्य किये बिना, उसे स्पर्श किये बिना... आहाहा! उस ज्ञान में अपने स्वभाव के स्व-परप्रकाशक के सामर्थ्य से प्रकाशित हो रहा है। आहाहा! उसकी सत्ता को पर सत्ता

की सहायता की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! अरे..रे..! उस ज्ञान की पर्याय की सत्ता को द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

'**स्वभावस्य शेषं किं**' है? स्वभाव में क्या बचा? ऐसा कहते हैं। **सत्तामात्र वस्तु निर्विभाग...** निर्विभाग अर्थात् भाग पड़े बिना की वस्तु। **एकरूप है,...** ऐसा। उसमें थोड़ा भाग पर में जाये और थोड़ा भाग यहाँ रहे, ऐसा है उसमें? ऐसा। **निर्विभाग एकरूप है,...** ज्ञान की पर्याय निर्विभाग एकरूप है। **जिसके दो भाग होते नहीं।** आहाहा! **जो कभी... 'अन्यद्रव्यं भवति' अनादिनिधन सत्तारूप वस्तु अन्य सत्तारूप होवे...** दूसरे के अस्तित्व में थोड़ा इसका अपना अस्तित्व जाये तो इसका अस्तित्व रहा कहाँ? जितना है, उतना तो रहा नहीं। अर्थात् वास्तव में वह रहा ही नहीं। आहाहा! '**तस्य स्वभावः किं स्यात्' पहले साधी हुई सत्तारूप वस्तु का स्वभाव क्या बचा?** आहाहा! देखा? पहले सत्ता सिद्ध की है। ज्ञानपर्याय स्व-पर को जानने के स्वभाववाली ताकतवाली पर्याय है। ऐसी तो उसकी सत्ता सिद्ध की है। अब, उसमें से कोई अंश पर में जाये तो वह सत्ता रही कहाँ? आहा..! पर को जानने पर में जाये, पर को जानने पर में जाये,... अरेरे..! द्रव्य-गुण को जानने द्रव्य-गुण में जाये... आहाहा! वीतराग.. वीतराग मार्ग.. आहाहा! परमेश्वर त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा। आहाहा! और पीछे यह बात ऐसी रह गयी है। विशेष कहा जायेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ३, शनिवार, दिनांक-२५-०२-१९७८, कलश-२१६, २१७, प्रवचन-२४१

कलश टीका, २१६ का भावार्थ। अन्त में है न? थोड़ा सूक्ष्म विषय है, अनादि का अभ्यास नहीं और उसमें यह बातें बहुत सूक्ष्म। आहाहा! भावार्थ है? डॉक्टर! भावार्थ है? **भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य चेतना स्वरूप है,...** क्या कहते हैं? यह भगवान आत्मा जो जीव है—आत्मा, वह तो चेतनास्वरूप है। जानन-देखन स्वरूप उसका है। आहा! उसका स्वरूप पररूप नहीं और उसका स्वरूप राग-द्वेषरूप नहीं। आहाहा! भगवान अन्दर चैतन्यस्वरूप जो आत्मा, वह तो चेतन—जानन-देखनस्वरूप उसका है। दूसरे प्रकार से कहें तो ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव—सूर्य चैतन्यसूर्य है। आहाहा! जैसे पानी का पूर चलता है, वैसे अन्दर में चेतना—जानन-देखन का पूर—स्वभाव उसका भरा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अनेक प्रकार से अभी तो बात चलती है, परन्तु यह बात तो कोई दूसरी प्रकार की है।

चेतनास्वरूप है। **चेतनासत्तारूप है...** आया था कल? भाई! वह तो चेतनासत्तारूप —अस्तिरूप है। जानन-देखन स्वभाव अकृत्रिम अकृत अनादि-अनन्त चेतनासत्तास्वरूप वस्तु है। आहाहा! वह **निर्विभाग है...** क्या कहते हैं? कि चेतनास्वभाव स्वरूप है, उसमें भाग नहीं, निर्विभाग है। भाग नहीं पड़ते कि चेतनासत्ता अपने में रहे और थोड़ी चेतनासत्ता पर में भी जाये। यह शरीर, वाणी, मन तो जड़, धूल है। उसमें भी थोड़ी चेतना जाये और अपने में भी रहे, ऐसी चेतना भागरूप नहीं, वह तो निर्विभाग है। अपने में रहकर अपनी सत्ता में रहकर, अपने को और पर को अपनी सत्ता में रहकर जानती है, परन्तु वह निर्विभाग है, उसमें कोई भाग नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म तत्त्व। अभ्यास नहीं होता, डॉक्टर! यह सब बाहर के अभ्यास कर-करके... आहाहा!

अन्दर अस्ति है न? मौजूदगी चीज़ है न? चेतना—जानन-देखन अस्ति मौजूदगी चीज़ है। वह चीज़ निर्विभाग है, निर्भाग—भाग नहीं। किसके? कि वह अपने स्वरूप में भी रहे और थोड़ा स्वरूप इस शरीर, वाणी, मन में भी जाये। जानने के लिये पर में जाये, ऐसा भाग नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! अभी

तो पूरी बात धर्म के नाम से दूसरी चलती है। यह करो और यह करो व्रत करो और तप करो और अपवास करो। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा। आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी—ज्ञ-स्वभावी कहो, सर्वज्ञस्वभाव कहो, पूर्ण ज्ञान कहो। आहा! एकरूप अभेद ज्ञानस्वभावी प्रभु की अनादि से खबर नहीं। वह चेतनासत्ता निर्विभाग है, उसके दो भाग पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! है?

सो चेतना सत्ता जो कभी पुद्गलद्रव्य-अचेतनारूप हो जाये तो चेतना सत्ता का विनाश होना कौन मेट सकता है? है न? आहाहा! क्या कहते हैं? अपनी सत्ता चेतन है, उसमें यह शरीर, वाणी पुद्गल जड़ है, वह तो उसमें है नहीं, तो वह चेतनसत्ता यदि अचेतन जड़ में जाये तो अपनी चेतनासत्ता का नाश हो जाता है। समझ में आया? जैसे आँख में जानने का भाव है, अन्दर ज्ञान में, वह पर को जाने, परन्तु उस पर को जानने के लिये आँख का ज्ञान का भाग पर में नहीं जाता। पर में प्रवेश नहीं करता। आहाहा! अपने में रहकर अपना और पर का जानपना अपने स्वभाव में रहता है। बहुत सूक्ष्म। आहाहा! कभी अभ्यास किया नहीं। अनन्त काल में यह चेतनसत्ता भगवान अन्दर पूर्णाननद का नाथ पूर्णम् इदम्, यह तो आता है न? तुम्हारे वैष्णव में भी आता है। पूर्णम् इदम्। पूर्ण वस्तु, अन्दर पूर्ण स्वभाव, परिपूर्ण। ज्ञान-आनन्द, ऐसी सत्ता से—अस्तित्व से परिपूर्ण प्रभु अन्दर है। उसकी इसे खबरनहीं। आहाहा! ऐसी चेतनसत्ता पुद्गल को—अचेतन को जाने, परन्तु यदि जानने में ज्ञान अचेतन हो जाये तो चेतन का नाश हो जाता है। आहाहा! क्या कहते हैं?

चेतनसत्ता ज्ञानस्वरूप भगवान वह यदि इस शरीर को जानने में शरीर में घुस जाये तो चेतन अचेतन हो जाये। यह तो जड़ है। आहाहा! अपनी सत्ता में रहकर स्व को और पर को जानना, वह तो अपना स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, परन्तु पर का प्रकाश करने में पर में प्रवेश करे तो अपनी चेतनसत्ता की पूर्णता है, उसमें तो भाग पड़ जाये। चन्दुभाई! ऐसा सूक्ष्म है। कभी अभ्यास नहीं होता, धर्म के नाम से अभ्यास नहीं होता। बाहर की सिरपच्ची। आहाहा!

प्रभु चेतन जानन-देखन स्वभाव से परिपूर्ण भाग किये बिना निर्विभागरूप से विराज रहा है। आहाहा! वह चेतनसत्ता पर को जानने के काल में प्रवेश करे तो अपनी चेतनसत्ता की पूर्ण सत्ता है, उसके भाग पड़ जाये, तो नाश हो जाये। आहाहा! यह नियम कठिन पड़े। वह तो यह व्रत करो और ध्यान करो। परन्तु किसका ध्यान? वस्तु समझे बिना! वस्तु क्या चीज़ है और किस प्रकार से है, यह जाने बिना ध्यान किसका? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि चेतन भगवान अचेतन हो जाये। यदि अचेतन को जानने में अचेतनपने में प्रवेश करे तो... **चेतना सत्ता जो कभी पुद्गलद्रव्य-अचेतनारूप हो जाये तो चेतना सत्ता का विनाश होना कौन मेट सकता है?** आहाहा! अपनी चेतनासत्ता के अस्तित्व में, अपना अस्तित्व, जड़ को जानने में अपने अस्तित्व का भाग यदि उसमें जाये तो उस चेतनसत्ता का तो नाश हो जाये। परिपूर्ण चेतनस्वभाव स्व-पर जानने की सत्ता रखता है। वह पर को जानने में पर में प्रवेश करे तो अपनी चेतनसत्ता का नाश हो जाता है। आहाहा! पर का कर सकता तो नहीं।

चैतन्यसत्ता भगवान आत्मा... भग का अर्थ संस्कृत में लक्ष्मी होता है। भग— आनन्द और ज्ञान जिसकी लक्ष्मी, वान अर्थात् रूप। ज्ञान और आनन्द जिसका रूप है। भग-वान, भग-वान। भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द जिसकी लख्मी, वान अर्थात् उसका स्वरूप है। आहाहा! परन्तु अनादि काल से उसकी उसे खबर नहीं। यह पर का यह किया और यह किया और यह किया। समझ में आया? यह दवा की और अमुक किया। वह कर सकता नहीं, ऐसा कहते हैं। डॉक्टर! दवा-बवा कर सकता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जान सकता है। होता है, उसे जान सकता है, अपने में रहकर। पर में प्रवेश किया बिना जो कुछ क्रिया होती है, उसे अपने में रहकर, पर को स्पर्श किये बिना पर को जानता है और जानने में अपने दशा पर में एक अंश भी जाती नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। इतने में यह कहा है। है न? आहाहा!

सो वस्तु का स्वरूप ऐसा तो नहीं है,... आहाहा! क्या कहते हैं?—कि चेतन भगवान चेतनास्वरूप, वह पर को जानने में अपना अंश पर में जाता है, ऐसा तो वस्तु

का स्वरूप नहीं है। आहाहा! ज्ञान ऐसे अग्नि को जानता है, परन्तु ज्ञान अग्नि में प्रवेश नहीं करता। ज्ञान अरूपी चैतन्य अग्नि में प्रवेश करे, तब तो रूपी हो जाये। जानना अपनी चेतनसत्ता में—अपना आत्मा आनन्द है, ज्ञान है और यह अग्नि है—ऐसा अपनी सत्ता में रहकर स्व-पर का जानना होता है, परन्तु पर को जानने में अपना ज्ञान पर को स्पर्शता नहीं। पर को—अग्नि को स्पर्श करे, तब तो अरूपी ज्ञान रूपी हो जाये। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो लॉजिक, सर्वज्ञ के कुदरत के नियमों के सब लॉजिक हैं। कायदे बहुत सूक्ष्म, इसने अनन्त काल में कभी सुने नहीं। सुने हों तो अन्दर में रुचि की नहीं, क्या चीज़ है अन्दर? देह में विराजता है। यह तो देहदेवल में भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, पूर्ण ज्ञानशक्ति से भरपूर ऐसी शक्ति पर को जानने में अपना अंश यदि वहाँ चला जाये तो आत्मा की चेतनसत्ता का भाग पड़ जाये। भाग पड़ जाये तो पूरी अखण्ड (वस्तु) है, उसका नाश हो जाये। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वस्तु का स्वरूप ऐसा तो नहीं है, इसलिए जो द्रव्य जैसा है,... द्रव्य अर्थात् वस्तु। जैसे चेतनद्रव्य चेतन है, जड़ जड़रूप है, जैसा द्रव्य जैसा है, **जिस प्रकार से है... जो द्रव्य जैसा है, जिस प्रकार है,...** आहाहा! चेतना, चेतनारूप है। वह चेतना जिस प्रकार से है कि अपने जानन-देखन स्वभावरूप है, और जड़ जड़रूप है। तो जड़ कैसा है? अपने को और पर को जानता नहीं, वह जड़ है, मिट्टी-धूल है। वे दोनों भिन्न सत्ता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। धर्म के बहाने भी यह वस्तु लोगों को समझ में नहीं आती।

द्रव्य जैसा है,... है न? आत्मा और जड़ जैसे हैं और **जिस प्रकार है,...** आहाहा! यह तो महासिद्धान्त है, यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। यह तो महासिद्धान्त है। सिद्ध-वस्तु सिद्ध हो चुकी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? शशीभाई! **वैसा ही है, अन्यथा होता नहीं।** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है, जैसा है, जिस प्रकार से है, वह ज्ञान प्रकार से है, आनन्द प्रकार से है। वैसा ही रहता है। आहाहा! **अन्यथा होता नहीं।** वह चेतनसत्ता शरीररूप नहीं होती, रागरूप नहीं होती। आहाहा! राग आता है परन्तु राग है, विकल्प है, वह अचेतन है और भगवान चेतनस्वरूप आत्मा है, तो वह चेतनसत्ता राग को जानती है, परन्तु रागरूप नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

वैसा ही है, अन्यथा होता नहीं। भगवान ज्ञानस्वरूप है, वह अन्यथा नहीं होता। आहाहा! पर के प्रवेश में जाता है, ऐसा नहीं होता। आहाहा! वह तो पर से भिन्न रहकर अपनी सत्ता में स्व-पर को जानने का सामर्थ्य है तो पर को जानता है, परन्तु पर में प्रवेश करके जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा समझ में आती है? भाव तो बहुत सूक्ष्म है। पूरी जिन्दगी में सुने नहीं, ऐसे हैं। आहाहा!

इसलिए जीव का ज्ञान समस्त ज्ञेय को जानता है... है। इतना यहाँ सिद्ध करना है। जीव का ज्ञान, वस्तु ज्ञानस्वरूप भगवान, वह सब ज्ञेय को जानता है, **तो जानो, तथापि जीव अपने स्वरूप है।** वह पररूप कभी होता नहीं। आहाहा! यह अँगुली है। स्वपने है। इस अँगुलीपने (दूसरे अँगुलीपने) नहीं। अपनेरूप से है, पररूप से नहीं। तो उसका अस्तित्व टिक रहा है। क्या कहा? फिर से, यह अँगुली है, वह स्वयं से है, वह (दूसरी) अँगुली से नहीं। स्वयं से है और पररूप से नहीं, तो अपनी सत्ता पर से भिन्न टिक रही है।

मुमुक्षु : अँगुली अलग है परन्तु एक डॉक्टर को दूसरा डॉक्टर भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक डॉक्टर दूसरे डॉक्टररूप नहीं होते और उनका आत्मा शरीररूप नहीं होता। एक डॉक्टर का आत्मा में दूसरे डॉक्टर के आत्मारूप का अभाव है। इसीलिए तो दृष्टान्त देते हैं। डॉक्टर गांगुली में इस भाई डॉक्टर का अभाव है।

मुमुक्षु : गांगुली में इस डॉक्टर का अभाव है और इस डॉक्टर में गांगुली का अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों का अभाव है। इसमें उसका अभाव है और उसमें इसका अभाव है। तब तो अपनी सत्ता पर से भिन्न रह सकती है। आहाहा! अपने से भी है और पर से भी है तो पर में प्रविष्ट हो जाये, अपनी सत्ता भिन्न न रख सके। लॉजिक है, यह जरा सूक्ष्म है। समझ में आया? आहाहा! दुनिया तो कैसे चलती है, सब बातें बहुत समय से खबर है न, बापू! आहाहा! यह पूरा विषय ही कोई अलग है। अन्तर का विषय अपूर्व अनन्त काल में कभी सुना नहीं, समझा नहीं। चौरासी लाख में भटक मरा है, ऐसा का ऐसा। ऐसा किया और वैसा किया, करते-करते चौरासी लाख योनि, एक-

एक योनि में अनन्त बार जन्म धारण किये हैं। आहाहा! यह कहीं नया मनुष्यभव नहीं। क्योंकि आत्मा तो है, वह है। है तो अनादि का है। है तो रहा कहाँ? अपने स्वरूप की तो खबर नहीं, तो चार गति में चौरासी लाख अवतार में भटकने में रहा।

मुमुक्षु : भिन्न-भिन्न आत्मा भिन्न-भिन्न....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा भिन्न-भिन्न है। आत्मा भिन्न है, सब एक नहीं, सर्व व्यापक नहीं। इसलिए डॉक्टर ने स्पष्टीकरण कराया नहीं, भाई! सब एक आत्मा है? एक आत्मा में दूसरे आत्मा का अभाव है। ऐसे एक आत्मा में दूसरे जड़ का भी अभाव है। जड़ में भी आत्मा का अभाव है और दूसरे जड़ का भी जड़ में अभाव है। इसलिए यह दृष्टान्त जड़ का दिया। सूक्ष्म बात। आहाहा!

मुमुक्षु : जन्म-जन्म में सुधरता जाये तो आत्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी अभी भान बिना कहाँ से करेगा? पहले भान किया हो तो फिर भान ऐसा का ऐसा रहेगा। दूज उगी हो, दूज... दूज-दूज कहते हैं न? चन्द्र की दूज। दूज हो तो पूर्णिमा होगी, परन्तु दूज नहीं तो पूर्णिमा होगी कहाँ से? इसी प्रकार पहले से आत्मा चिद्घन आनन्दकन्द, मैं राग से और पर से भिन्न हूँ—ऐसी दृष्टि और अनुभव हुआ हो तो फिर भी भिन्न पड़ेगा।

मुमुक्षु : आगे की कक्षा में बढ़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विशेष आगे बढ़ेगा। समझ में आया? परन्तु वह कक्षा में आया ही नहीं तो बढ़ेगा कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? यहाँ यह कहा, **तथापि जीव अपने स्वरूप है।** लो, यह पूरा हुआ। अब २१७(कलश) उसमें जरा विशेष (बात है)।

कलश - २१७

(मन्दाक्रान्ता)

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम्।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन् येन पूर्णस्वभावः ।।२५-२१७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'एतत् रागद्वेषद्वयं तावत् उदयते' [एतत्] विद्यमान [राग] इष्ट में अभिलाष, [द्वेष] अनिष्ट में उद्वेग—ऐसे [द्वयं] दो जाति के अशुद्धपरिणाम [तावत् उदयते] तब तक होते हैं, 'यावत् ज्ञानं ज्ञानं न भवति' [यावत्] जब तक [ज्ञानं] जीवद्रव्य, [ज्ञानं न भवति] अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप नहीं परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने काल तक जीव, मिथ्यादृष्टि है, उतने काल तक, राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणमन नहीं मिटता। 'तथा (पुनः) बोध्यं बोध्यतां यावत् न याति' [तथा (पुनः)] तथा [बाध्यं] ज्ञानावरणादि कर्म अथवा रागादि अशुद्धपरिणाम, [बोध्यतां यावत् न याति] ज्ञेयमात्र बुद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि कर्म, सम्यग्दृष्टि जीव को जानने के लिए हैं। कोई, अपने कर्म का उदय—कार्य, जिस तिस प्रकार करने के लिये समर्थ नहीं है। 'तत् ज्ञानं ज्ञानं भवतु (इदम्)' [तत्] तिस कारण से [ज्ञानं] जीववस्तु, [ज्ञानं भवतु (इदम्)] शुद्धपरिणतिरूप होकर, शुद्धस्वरूप के अनुभव (को) समर्थ होओ। कैसा है शुद्धज्ञान? 'न्यक्कृताज्ञानभावं' [न्यक्कृत] दूर किया है [अज्ञानभावं] मिथ्यात्वभावरूप परिणति जिसने, ऐसा है। ऐसा होनेपर, कार्य की प्राप्ति करते हैं— 'येन पूर्णस्वभावः भवति' [येन] जिस शुद्धज्ञान के द्वारा, [पूर्णस्वभावः भवति] जैसा द्रव्य का अनन्त चतुष्टयस्वरूप है, वैसा प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि मुक्तिपद की प्राप्ति होती है। कैसा है पूर्ण स्वभाव? 'भावाभावौ तिरयन्' चतुर्गतिसम्बन्धी उत्पाद-व्यय को सर्वथा दूर करता हुआ, जीव का स्वरूप प्रगट होता है।।२५-२१७।।

कलश - २१७ पर प्रवचन

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम्।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन् येन पूर्णस्वभावः ।।२५-२१७।।

आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! '**एतत् रागद्वेषद्वयं तावत् उदयते**' '**एतत्**' अर्थात् **विद्यमान इष्ट में अभिलाष...** इष्ट पदार्थ देखकर अभिलाषा, राग (होना) और **अनिष्ट में उद्वेग ऐसे दो जाति के अशुद्ध परिणाम...** आहाहा! आत्मा में अज्ञानभाव जब तक है, तब तक इष्ट में (राग होता है) २१७ कलश। यहाँ तो एक लाईन, दो लाईन चले एकदम पूरा चलता नहीं। एक-दो लाईन में बहुत भरा है। क्या कहते हैं? देखो!

'**एतत्**', '**एतत्**' (अर्थात्) **विद्यमान इष्ट में अभिलाष...** आत्मा में जब तक अज्ञानपना है, तब तक इष्ट पदार्थ देखकर राग होता है और अनिष्ट को देखकर द्वेष होता है। वह अज्ञानरूप से है। अपने स्वरूप में राग-द्वेष है नहीं, परन्तु जब तक अज्ञान है, और स्वरूप का भान नहीं तो इष्ट देखकर राग (होता है) और अनिष्ट देखकर द्वेष (होता है), ऐसे राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, परन्तु अपने ज्ञान और आनन्द की उत्पत्ति नहीं होती। आहाहा! एक-एक शब्द में बहुत अन्तर है, बापू!

यहाँ तो कहते हैं, इष्ट में अभिलाष—राग, अनिष्ट में द्वेष, ये दो जाति के मलिन परिणाम—अशुद्ध परिणाम (होते हैं), वे दोनों अशुद्धभाव हैं। आहाहा! यह विकल्प उठता है, वृत्ति (कि) यह करूँ, यह करूँ, यह छोड़ूँ, यह सब वृत्ति राग है और विकार है। विकार है, उस विकार के दो प्रकार हैं—एक राग और एक द्वेष। तो कहते हैं कि राग और द्वेष कब तक उत्पन्न होते हैं? कि जब तक आत्मा को अपने स्वरूप का भान नहीं और राग से भिन्न अपना भान नहीं, तब तक इष्ट पदार्थ को देखकर राग, अनिष्ट को देखकर द्वेष उत्पन्न करता है। वह आनन्द और ज्ञान की उत्पत्ति करता नहीं और विकार की उत्पत्ति करता है। आहाहा! है?

मुमुक्षु : पदार्थ में इष्ट-अनिष्टपना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में इष्टपना नहीं, वस्तु में इष्टपना नहीं, वस्तु में इष्टपना नहीं। अज्ञानी मानता है। वस्तु में इष्टपना क्या? वस्तु, वस्तु है, ज्ञेय है। वह इष्ट-अनिष्ट है कहाँ? वह तो ज्ञेय है, जाननेयोग्य है, जड़ आदि सब। परन्तु अज्ञानी 'यह ठीक है', ऐसा इष्ट पदार्थ में आरोप करके राग उत्पन्न करता है। पदार्थ इष्ट-अनिष्ट है नहीं, वह तो जड़ है, मिट्टी है, ज्ञान में ज्ञेय है, जाननेयोग्य है। उसमें दो भाग कहाँ से लाया, कि यह ठीक और यह अठीक है? वह अज्ञानरूप से उत्पन्न किये हुए राग-द्वेष के भाव हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बीमार निरोग हो और डॉक्टर....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। निरोग कौन हो? क्या कहा?

मुमुक्षु : मनुष्य जन्म हो, तब पहले आत्मज्ञान हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहले होता है। तिर्यंच में-पशु में होता है। होता है, अन्दर शक्ति है न, आत्मा पड़ा है न! पशु में होता है। यह मनुष्यक्षेत्र है, यह मनुष्यक्षेत्र जितने में मनुष्य है न, उस क्षेत्र को मनुष्यक्षेत्र कहते हैं। वह ४५ लाख योजन में है। ४५ लाख योजन में यह मनुष्यक्षेत्र है। पश्चात् बहुत क्षेत्र है, असंख्य योजन है, वहाँ मात्र तिर्यंच हैं। गाय, भैंस, सिंह, बाघ, मछली, पानी में बड़ी-बड़ी मछलियाँ होती हैं, हजार योजन की। बहुत लम्बी बात है। उसमें मच्छ है, वह भी आत्मज्ञान पाता है। आत्मा है न अन्दर? पहले यहाँ ज्ञानी ने कहा था तो सुना था, परन्तु समझा नहीं, वहाँ जाकर अन्दर (भान होता है कि) ओहोहो! यह चीज़ क्या! ज्ञानी कहते हैं कि तू तो भिन्न है। राग से, पुण्य से, शरीर से भिन्न है, ऐसा भान होकर तिर्यंच में भी आत्मज्ञान होता है।

अरे! नरक में भी होता है। नीचे नरक है। यह सूक्ष्म बात है। यह माँस खाते हैं, माँस, मछली, अण्डे खाते हैं तो वे नरक में जाते हैं। नीचे नरक है। नरक में इतना दुःख है कि यहाँ जितनी प्रतिकूलता परप्राणी को दी, उससे अनन्तगुणी प्रतिकूलता वहाँ है। वहाँ इसका जन्म होता है। जितने प्रमाण में आत्मा ने पर को प्रतिकूलता अर्थात् द्वेष आदि दिये या राग किया, उतने प्रमाण में प्रतिकूल स्थान वहाँ नरक में है, वहाँ वह

उत्पन्न होता है। वहाँ अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। अनादि काल है। अनादि काल में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। वहाँ भी कोई आत्मज्ञान पाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्ष में जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष नहीं जाता। मोक्ष नहीं, आत्मज्ञान पाता है। मोक्ष तो इस मनुष्यपने में आकर पाता है। मनुष्यपने बिना मोक्ष नहीं होता। अन्दर पूर्णानन्द की प्राप्ति होना, वह मोक्ष। वह दशा मनुष्यपने में ही होती है, तिर्यंच में और नरक में नहीं होती। स्वर्ग के देव हैं। यह चन्द्र, सूर्य है न? पत्थर। यह देव है। दिखते हैं, वे तुम्हारे वे कहते हैं न... क्या? विज्ञानवाले चन्द्र में ले गये और अमुक ले गये। कहते हैं, सब खबर है। चन्द्र, सूर्य दिखते हैं, वे तो पत्थर हैं। प्रकाश अनादि का है, उसमें देव है। ज्योतिष के देव हैं। वे देव भी आत्मज्ञान पाते हैं। आहाहा! ऐसे तो अनन्त बार सबमें जन्मा है परन्तु आत्मा के ज्ञान बिना चौरासी के अवतार—परिभ्रमण मिटा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा तो शुद्ध है तो उसे नीचे क्यों जाना पड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बुरे भाव करता है, राग-द्वेष करता है तो जाना पड़ता है। है तो शुद्ध, परन्तु भान नहीं न! राग-द्वेष करता है, यह किया और यह किया और यह किया।

मुमुक्षु : आत्मा ने तो यह कुछ किया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है। मानता है न? मानता है कि मैंने ऐसा किया और ऐसा किया और ऐसा किया। तो उतने प्रमाण में पाप बाँधता है। पाप के कारण उस गति में जाना पड़ता है। जैसे लोहा हो लोहा, भारी, पानी में डालो ऊपर से तो अन्दर चला जाता है। क्योंकि बोझा हुआ न! उसी प्रकार आत्मा में बोझा हुआ न? लोहे की भाँति। पानी में नीचे चला जाता है। वैसे आत्मा में पाप करता है—हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह आत्मा पर्याय में—दशा में करता है। अपने स्वभाव को भूलकर, उस पाप के बोझ से नीचे चला जाता है। जैसे लोहा पानी के तल में नीचे उतर जाता है, वैसे नीचे गति है। सूक्ष्म बात है। सब सिद्ध करने जायें तब तो... लॉजिक से सब सिद्ध किया जा सकता है। समझ में आया? परन्तु एक-एक बात सिद्ध करने जायें तो दूसरी बात पड़ी रहे। आहाहा!

यहाँ तो आत्मा ही दोष करता है। इस वस्तु की—अपनी चीज़ की खबर नहीं तो दोष यही करता है। यह विषयभोग, वासना, राग, द्वेष करता है, वह कौन करता है? वह आत्मा पर्याय में करता है। पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत, हालत, दशा। त्रिकाल में नहीं, त्रिकाल तो शुद्ध है। परन्तु हालत में, वर्तमान दशा में यह राग-द्वेष करता है। आहाहा! यह तो कहा न? इष्ट को देखकर राग करता है, अनिष्ट को देखकर द्वेष करता है। इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं, परन्तु कल्पना करता है कि यह ठीक है। यह स्त्री ठीक है, पैसा ठीक है, कीर्ति ठीक है—ऐसा मानकर अज्ञानी राग-द्वेष करता है और रोग आता है, निर्धनता होती है तो अहंहं... यह ठीक नहीं, ऐसे द्वेष करता है। तो यह राग-द्वेष करता है, उतने प्रमाण में उसे चार गति में भटकना पड़ता है। आहाहा!

चार गति है, उसे लॉजिक से सिद्ध किया जा सकता है सब बात, परन्तु एक साथ (करने जायें) तो पार न आवे। नीचे नरकयोनि है, ऊपर स्वर्ग योनि है, मनुष्य योनि और तिर्यंच योनि दो तो यहाँ दिखती है। यह तिर्यंच कहते हैं न? गाय, भैंस, सिंह, बाघ तिर्यंच है न तिर्यंच? तिर्यंच कैसे कहते हैं? तिर्यंच—तिरछा, तिरछा। यह मनुष्य ऐसे (सीधा) है न? तो गाय, भैंस, सिंह, बाघ आड़े हैं। शरीर आड़ा हो गया। क्यों? पूर्व में वक्रता बहुत की। माया, कपट, कुटिलता बहुत की थी, वक्रता बहुत की थी तो उनका शरीर भी आड़ा हो गया है। यह मनुष्य ऐसे (सीधे) हैं, गाय, भैंस ऐसे (आड़े) हैं। आड़ा है न? गाय, भैंस, सिंह, बाघ, नेवला, मोटा चूहा (आड़े हैं)। उन सबने पूर्व में वक्रता की थी, उसका फल है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! क्या करे?

कभी अभ्यास नहीं। मैं क्यों भटका? चार गति में भटकता हूँ वे भव क्यों हुए? मैं तो अरूपी आनन्दकन्द हूँ और यह क्या है? यह कलंक क्या? यह शरीर और यह...? उसका कारण क्या? अज्ञानरूप से राग-द्वेष किये, उसके फल में यह चार गति मिली। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जीवद्रव्य... है? '**यावत् ज्ञानं ज्ञानं न भवति**' क्या कहते हैं? '**यावत् ज्ञानं ज्ञानं न भवति**' जब तक ज्ञान ज्ञान में रहता नहीं, तब तक उसे राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। है? '**यावत् ज्ञानं ज्ञानं न भवति' जब तक ज्ञान अर्थात् जीवद्रव्य अपने शुद्धस्वरूप के**

अनुभवरूप नहीं परिणमता है। आहाहा! उसका स्वरूप तो शुद्ध ही है, परन्तु पर्याय में—अवस्था में शुद्धरूप से होता नहीं, तब तक राग और द्वेष की उत्पत्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अध्यात्म की बात है, भाई! भगवान! सूक्ष्म है। कभी अनन्त काल में अभ्यास किया नहीं और इस अभ्यास बिना अन्तर में जा सकता नहीं। आहाहा!

अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप नहीं परिणमता है। क्या कहते हैं? जब तक राग-द्वेष उत्पन्न होता है, कब तक? कि जब तक आत्मा ज्ञानस्वरूप का अनुभव नहीं करता, तब तक राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। समकिती को उत्पन्न नहीं होते, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! आत्मज्ञान हुआ, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द, सत्, सत्—शाश्वत् चिदानन्द, सच्चिदानन्द, सत् शाश्वत् चिद् आनन्द, ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसा अन्तर में अनुभव न करे, तब तक अज्ञानरूप से पर के निमित्त में जाता है तो राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। निमित्त पर लक्ष्य जाकर राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। जब तक आत्मा का अनुभव न करे, तब तक उसे राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। और जब ज्ञान का भान हुआ, पश्चात् थोड़े राग-द्वेष होते हैं, परन्तु उनका कर्ता नहीं होता, उनका ज्ञाता-दृष्टा रहता है। आहाहा! क्या कहा? यह कहा न?

'**ज्ञानं ज्ञानं न भवति**' ज्ञान अर्थात् आत्मा। आत्मा स्वरूप से शुद्ध चैतन्य है, ऐसा अनुभव न करे, तब तक उसे राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, और राग-द्वेष की उत्पत्ति से चार गति में दुःख सहन करना पड़ते हैं। वह राग-द्वेष उत्पन्न हुए, वे दुःख है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह पापरूपी दुःख है। दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, तप यह पुण्यरूपी दुःख है। दोनों दुःख है। दोनों राग और द्वेष विकल्प है, वृत्तियाँ उठती है। आहाहा! कठिन काम!

मुमुक्षु : जीव कर्म नहीं करे तो किस प्रकार.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे तो ज्ञान में रहेगा। करे तो मर जायेगा।

मुमुक्षु : कर्म तो करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करना। यहाँ इनकार करते हैं। कर्म—राग-द्वेष करे तो मर

जायेगा यह आत्मा। वे आत्मा की शान्ति को मार डालते हैं। सूक्ष्म बात है। हैं? 'करे कर्म सो ही रे... करतारा, जो जाने सो जाननहारा; जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।' जो कर्ता (होता है), वह जानता नहीं। मैं करूँ, कर सकता हूँ, ऐसा माननेवाला आत्मा जाननेवाला रहता नहीं और जाननेवाला रहता है, वह राग का कर्ता होता नहीं। आहाहा! कर्म—राग का कर्म करना, वही मिथ्यादृष्टि मानता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! यह पर की सेवा-बेवा करना, वह सब मिथ्यात्व, भ्रम, राग है। क्योंकि यह तो ब्रह्मचारी है, विवाह नहीं किया। वहाँ सब पैसा आवे, वह डाल दे। दोनों में राग है।

मुमुक्षु : गरीबों को दवा दे....

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा कौन दे सकता है? विकल्प उठता है। सूक्ष्म बात है, भाई! चैतन्यज्योति भगवान अन्दर में राग की उत्पत्ति होती है, वह स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु : खाना कैसे मिलेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने का तो अपने सुना नहीं? अपने गुजराती में आता है, तुम्हारे हिन्दी में भी होगा। 'खानेवाले का नाम दाने दाने है।' आता है? क्या आता है हिन्दी में? यह कैसे? कि जो रजकण आनेवाले हैं, वे आयेंगे। अपने कहावत है—खानेवाले का नाम दाने पर है। दाना समझे? दाल, भात कुछ भी। नाम तो है नहीं, परन्तु जो रजकण वहाँ आनेवाले हैं, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले नहीं आयेंगे। उसके प्रयत्न से, राग से आयेंगे, यह बिल्कुल झूठ बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : जो दान करता है, उसे कुछ पुण्य नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दान करता है तो अन्दर राग की मन्दता है, वह भी बन्धन का कारण है।

मुमुक्षु : उसका पुण्य नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य होता है, बन्धन (होता है)। बन्धन दुःख है। यह तो अलग जाति है। आहाहा! दान में राग मन्द होवे तो, मन्द करता हो तो (पुण्य बँधता

है)। कीर्ति के लिये और अपनी बाहर में प्रसिद्धि के लिये करे तो तब तो पाप है, परन्तु मन्द हो तो पुण्य है, वह भी दुःखरूप है। विकल्प है न, राग वृत्ति उठती है कि मैं ऐसे दूँ। वह विकल्प दुःख है।

मुमुक्षु : पुण्य है तो डॉक्टर है, इतनी अधिक कमायी है...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कुछ नहीं। उसमें कमाने का क्या था वहाँ? कितने ही अरबोंपति हैं, बेचारे मर गये क्षण में। कहा नहीं? वह गोवावाला नहीं? हें? दो अरब चालीस करोड़। शान्तिलाल खुशाल थे। गोवा है न? गोवा। दीव, दमन और गोवा, नहीं? दीव, दमन और गोवा नहीं कहते? गोवा गाँव। वहाँ एक गृहस्थ है। अभी गुजर गये। गोवा, दीव, दमण, गोवा। पोर्टुगीझ का गाँव है न? नक्शा में आता था। नक्शा में आता था।

एक बनिया था, बनिया। दो अरब चालीस करोड़, दो अरब चालीस करोड़ रुपये। मर गया पाँच मिनिट में। उसकी स्त्री को यह हुआ... क्या कहलाता है तुम्हारे? हेमरेज। हेमरेज हुआ। गोवा में चालीस लाख का मकान है। चालीस लाख का बँगला है। दस-दस लाख के दो हैं। साठ लाख के (बँगले हैं)। बड़ा गृहस्थ है, अभी डेढ़-दो वर्ष पहले गुजर गये। उनकी पत्नी को हेमरेज हुआ था, वह मुम्बई आये थे। दो-चार दिन बाद रात्रि में डेढ़ बजे उठ गया, मुझे दुःखता है। बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर आने से पहले देह छूट गयी। तेरी धूल क्या काम करे? डॉक्टर! दो अरब चाली करोड़!

मुमुक्षु : डॉक्टर आने से पहले...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं तो डॉक्टर कर देता, यह ऐसा कहते हैं। डॉक्टर बोले ऐसा, दो घड़ी देरी हो गयी। मुझे पहले बुलाया होता तो... धूल भी करे नहीं, डॉक्टर कौन करता था? दो घड़ी पहले बुलाया होता तो मैंने बराबर सम्हाला होता। अब तो कुछ होता नहीं। यह डॉक्टर का अभिमान है। डॉक्टर!

मुमुक्षु : जीव को एक बार में तो आत्मज्ञान होता नहीं, कोई कर्म करते-करते, ठोकर खाते-खाते...

पूज्य गुरुदेवश्री : लहसुन खाते (खाते) कस्तूरी की डकार आयेगी?

मुमुक्षु : एक साथ आत्मज्ञान नहीं आता....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ आता है। पुण्य और पाप को छोड़ता है और आत्मा में जाता है तो एकसाथ आनन्द और ज्ञान में आता है। ऐसी बहुत सूक्ष्म बात है। बहुत फेरफार हो गया। बड़ा व्यक्ति रहा हो, पैसा बहुत दे, दान दे, फिर अपने को लाभ होगा। धूल भी नहीं होगा। पैसा जड़ है, धूल है। वह कहाँ तेरी चीज़ थी? मेरी थी, ऐसा मानकर दिया तो वह पाप है और राग मन्द किया हो तो पुण्य है। दोनों दुःख है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसमें जब तक न आवे, तब तक दुःखी है, चार गति में भटकेगा। हम तो सबको जानते हैं न! यहाँ तो ८८ वर्ष हुए, डॉक्टर! ८८, ८९। गर्भ के तो ८९ चलते हैं। सवा नौ महीने माता के गर्भ के। यहाँ का आयुष्य है न। लोग जन्म के बाद से गिनते हैं, परन्तु शास्त्रकार तो माता के उदर में-पेट में उस भव में से आता है, तब से यहाँ का आयुष्य है। ८९ इस वैशाख शुक्ल २ को लगे, जन्म के। ८९, वैशाख शुक्ल २। वैसे तो गर्भ के तो ८९ चलते हैं। सवा नौ तो हो गये हैं। सब देखा है, सब सुना है, सब किया है। दुकान में पाँच वर्ष व्यापार भी किया था। पाप। पाँच वर्ष व्यापार किया था। १७ वर्ष की उम्र से २२ (तक)। १७ समझे? १० और ७। वहाँ से २२। पाँच वर्ष। बाईसवें वर्ष में दुकान छोड़ दी। पालेज है न? भरुच और वड़ोदरा के बीच पालेज है। वहाँ पारसी का बड़ा जीन था। अब तो भागीदार ने ले लिया, बड़ा मकान बनाया है। कौन करता है? यहाँ तो कहते हैं, आहाहा!

मुमुक्षु : निष्काम भाव से दान करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : निष्काम भाव रहता नहीं, उसमें राग ही है। अनासक्ति भाव से करना, ऐसा कहते हैं। खबर है न, हमको खबर नहीं? निष्काम भाव से करना, यह बात ही खोटी है। यह वृत्ति उठी, वह निष्काम है नहीं। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप में रहे, फिर वृत्ति उठे तो उसका जाननेवाला रहता है, परन्तु अभी ज्ञाता-दृष्टा की खबर ही नहीं होती। मैं राग का कर्ता नहीं और पर का करनेवाला मैं नहीं। आहाहा! मैं तो स्व-पर को अपने रहकर जाननेवाला हूँ, बस! ऐसी दृष्टि जब तक न हो, तब तक तो राग-द्वेष उत्पन्न किये बिना रहे ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : एकसाथ तो आत्मज्ञान होता नहीं, ...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकसाथ होता है, एक क्षण में।

मुमुक्षु : कोई कर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म छोड़कर आत्मधर्म एक क्षण में होता है। आहाहा! पुण्य और पाप के राग के भाव हैं, उनकी रुचि छोड़कर, आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि करे (तो) एक क्षण में हो जाता है। आहाहा! पानी शीतल है तो एक क्षण में उष्ण हो जाता है न! और उष्ण है, वह क्षण में शीतल हो जाता है। उसका स्वभाव है। इसी प्रकार आत्मा राग-द्वेष करता है तो उष्ण है, दुःखी है। उसे छोड़कर मैं तो आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसा होता है तो वह सुखी है। यह ज्ञाता-दृष्टा कर्म का कर्ता नहीं होता। बहुत सूक्ष्म बात है। यह सबको यही हो गया न? सबको ऐसा करें... करें... करे...

मुमुक्षु : निष्काम दृष्टि से....

पूज्य गुरुदेवश्री : निष्काम दृष्टि ही है नहीं। निष्काम दृष्टि तो उसे ही कहते हैं, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ, मैं किसी का कर्ता नहीं। राग का भी कर्ता नहीं तो पर की लेने-देने की क्रिया का मैं कर्ता नहीं।

इनके पिताजी सोगानी थे न? उनकी पुस्तक है—'द्रव्यदृष्टि प्रकाश', तुमको मिला है? हिन्दी... हिन्दी। मिला है? तब दिया था? तब दिया था, ठीक! इनके पिताजी में बहुत शक्ति थी। आत्मज्ञान हुआ था यहाँ, इस गाँव में। पहले आये। साधु, बाबा का बहुत परिचय किया था। यम, नियम और ऐसे ध्यान सब गप्पगप्प। फिर यहाँ आये, इतना कहा, 'भैया! यह विकल्प उठता है न राग, चाहे तो दया, दान का हो। उस सब राग से प्रभु अन्दर भिन्न है।' इतना कहा। ध्यान में चले गये। अपने समिति है न, रसोई? रसोईखाना... क्या कहलाता है अपने? समिति है न? वहाँ जीमे थे न कल? शाम को वहाँ जीमे। उस समिति में गये और शाम से सवेरे तक ध्यान में बैठे। इनके पिताजी। और अन्दर में धोलन करते-करते राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव यहाँ समिति में हुआ था। पूरी जिन्दगी बहुत अच्छे संस्कार लेकर स्वर्ग में गये। आहाहा! बहुत शक्ति!

द्रव्यदृष्टि प्रकाश दिया था न? उसमें बहुत है। और बहिन का (बहिनश्री के वचनामृत) तुमको दिया न? वचनामृत दिया या नहीं?

मुमुक्षु : स्वर्ग में जाने के बाद जीव का क्या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे वहाँ से निकलकर दूसरे भव में केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जायेंगे।

मुमुक्षु : स्वर्ग में जाने के बाद जीव किस प्रकृति में स्थिर होता है? कहाँ स्थिर होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी वे तो आत्मा में स्थिर होते हैं। स्वर्ग में भी। परन्तु थोड़ा राग है तो मनुष्यभव प्राप्त करके, केवलज्ञान प्राप्त करके राग का नाश करके मोक्ष में जायेंगे।

मुमुक्षु : उसमें कुछ रूप है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वर्ग है वह तो। अरूपी वस्तु है न पदार्थ है, चैतन्य आनन्दकन्द वस्तु।

मुमुक्षु : स्वर्ग में जीव का रूप कैसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वर्ग में देव होता है। जैसे यह मनुष्य हो, वैसा देव है। देव का शरीर है। वह बहुत सुन्दर देह और बहुत रूपवान (होते हैं)। परन्तु वह भी सब धूल है।

मुमुक्षु : आँख, कान होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सब है।

मुमुक्षु : देव को आँख, कान है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचों इन्द्रियाँ हैं। बड़ी देह है। पाँच इन्द्रियाँ हैं। बहुत पुण्य है, परन्तु वह सब राग का फल था। दया, दान, भक्ति के भाव किये थे, तो वह पुण्य था, उसके फल में स्वर्ग मिला। ज्ञानी तो यह भी जानते थे कि यह दुःख है। स्वर्ग में भी दुःख है। अनन्त आत्मा अपने में है, ऐसे अनुभव में है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य करके स्वर्ग में जाना वही मोक्ष...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। धूल में भी वहाँ मोक्ष नहीं। स्वर्ग भी एक गति है। मोक्ष तो सर्वथा राग से और गति से छूट जाये, उसका नाम मोक्ष है।

मुमुक्षु : स्वर्ग में जाये तो थोड़ा नजदीक होगा न! यहाँ से देव फिर मनुष्य और फिर मोक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, नहीं, नहीं। उसे पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना, पश्चात् पुण्य और पाप के विकल्प से मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है, ऐसा अनुभव हो तो वह प्रथम धर्म की शुरुआत है। पश्चात् राग का भाव है, उसे छोड़कर स्वरूप में लीनता, आनन्द में जमावट हो जाना, वह चारित्र है। परन्तु इससे पहले सम्यग्दर्शन हुआ हो तो फिर चारित्र होगा। चारित्र कोई क्रियाकाण्ड नहीं है। अन्दर में रमना, आनन्द में जम जाना, अतीन्द्रिय आननद का भोजन करना, वह चारित्र। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, जब तक '**ज्ञानं ज्ञानं न भवति**' है न? **अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप नहीं परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने काल तक जीव मिथ्यादृष्टि है...** देखो! आहाहा! यह राग मेरा कर्तव्य है, (ऐसा मानता है) तब तक वह मिथ्यादृष्टि, मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि है, सत्य दृष्टि नहीं। आहाहा! क्योंकि आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें राग का कर्म वह उसका कर्तव्य है ही नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत के भाव भी राग है, अनुकम्पा का भाव भी राग है। आहाहा! वह राग मेरा है, यह मिथ्यादृष्टि होकर करता है। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि है, उतने काल तक राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणमन नहीं मिटता।** देखो! जब तक राग मेरी चीज़ है और राग से मुझे लाभ होगा और मुझे राग करना ही पड़ेगा, (ऐसा मानता है), तब तक उसे मिथ्यादृष्टिपना है, वह झूठी दृष्टि नहीं छूटती। आहाहा! है?

मिथ्यादृष्टि है, उतने काल तक राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणमन नहीं मिटता। आहाहा! जब तक मैं शरीर का कुछ कर सकता हूँ, पर का कर सकता हूँ, देश की सेवा कर सकता हूँ, पर की सेवा कर सकता हूँ, जब तक ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है, तब तक उसे राग-द्वेष छूटते नहीं। आहाहा! कठिन काम है, भाई! **मिथ्यादृष्टि है, उतने**

काल तक राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणमन नहीं मिटता। 'पुनः बोध्यं बोध्यतां यावत् न याति' तथा ज्ञानावरणादि कर्म अथवा रागादि अशुद्ध परिणाम... पुण्य-पाप के भाव। वे **ज्ञेयमात्र बुद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं।** आहाहा! क्या कहते हैं? रागादि है, वे जब तक ज्ञेयरूप न हों और आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है, उसका राग से भिन्न अनुभव न हो, तब तक मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष का कर्ता है। आहाहा! परन्तु जब राग-द्वेष ज्ञेयरूप से रहे और मैं ज्ञानरूप से हूँ, ऐसा भान हुआ, तब राग-द्वेष का स्वामी नहीं होता। आहाहा! राग-द्वेष होते हैं। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक होते हैं, परन्तु उनका मैं स्वामी हूँ और मेरा कर्तव्य है, ऐसा मानता नहीं। आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है भाई यह तो! अभी तो बहुत अधिक चलता है, अनासक्ति से करना, अनासक्ति योग है। निष्काम वृत्ति से करना। सब गप्प ही गप्प है।

मुमुक्षु : साधारण संसारी जीव को सवेरे से रात्रि तक क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को छोड़ना पड़े, कल्याण करना हो तो।

मुमुक्षु : क्या करेगा, साधारण जीव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान करेगा, अन्दर में रहेगा। अन्दर में ज्ञान में रहेगा।

मुमुक्षु : कोई कामकाज नहीं करेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : काम कर सकता ही नहीं न! होता है, उसे वह जानता है। अज्ञानी है, वह कर्ता होता है। अन्तर है। गाँधीजी व्याख्यान में आये थे। (संवत्) १९९५ के वर्ष में राजकोट में आये थे। मोहनलाल गाँधी व्याख्यान में आये थे और उनकी पत्नी कस्तूरबा, वे दो बार व्याख्यान में आये थे और साथ में था न कौन दूसरा? महादेव देसाई। गाँधीजी के साथ सब व्याख्यान में आये थे। वहाँ तो उस समय हमने तो कहा था कि पर की दया पाल सकता हूँ और पर को मैं सुखी कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता अज्ञानी मूढ़ जीव की है। तुम थे तब? तब नहीं थे। ३९ वर्ष हुए। ३९, चालीस में एक कम। व्याख्यान में सब आये थे। गाँधीजी को कमेटी भरनी थी। देश के लिये करने आये थे, तो आधे घण्टे, पैंतीस मिनिट व्याख्यान में आये थे। मार्ग तो यह है। देश की सेवा करता हूँ और पर को सुखी कर सकता हूँ, सब अज्ञानी की भ्रमणा है। ऐई! पर को

जिला सकता हूँ, पर को मार सकता हूँ, पर को अनुकूल सुविधा दे सकता हूँ, यह सब मिथ्यादृष्टि की भ्रमणा है। आहाहा! वह जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक राग-द्वेष का कर्ता होता है।

मुमुक्षु : दूसरे को उपयोगी होने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोगी तीन काल में कभी हो सकता नहीं। मैं दूसरे को उपयोगी हो सकता हूँ। कौन उपयोगी हो सकता है? परद्रव्य का उपयोगी कौन हो सकता?

मुमुक्षु : निमित्त होऊँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या? वहाँ तो उसका कार्य होता है, तब तो निमित्त कहने में आता है, परन्तु निमित्त ने किया क्या वहाँ? आहाहा! यह वकालत की होगी नहीं रामजीभाई ने? उपयोगी हो गये होंगे दूसरे को! पैसा पैदा करने के लिये वहाँ बैठे थे। पाप... पाप।

मुमुक्षु : वकीलों की बात दूसरी है, डॉक्टर...

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर भी पाप है, डॉक्टर क्या, धूल में डॉक्टर...

मुमुक्षु : आप तो एकदम मोक्ष की क्लास लेते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष की कक्षा की शुरुआत यह है।

मुमुक्षु : यह मोक्ष की कक्षा है। उसके पहले जो नीचेवाली कक्षा...

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे नीचेवाली कक्षा वह तो सब संसार में भटकने की कक्षा है। चार गति में भटकने की नीचे की कक्षा है।

मुमुक्षु : उसमें पास होवे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा तो अनन्त बार किया, उसमें क्या हुआ? वह कुछ कर सकता नहीं। आहाहा! पर की दया का भाव होना, दया तो पाल सकता नहीं क्योंकि परवस्तु है, परन्तु पर की दया का भाव होना, वह भी राग है और हिंसा है। ऐसी बात है, बापू! बहुत कठिन काम है, बापू!

मुमुक्षु : उसमें हिंसा कहाँ.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग अर्थात् हिंसा। भगवानस्वरूप प्रभु आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी हिंसा होती है। आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय है न? अमृतचन्द्राचार्य का।

मुमुक्षु : राग बराबर है। किसी को मार डाला हो तो हिंसा, इसने तो जिलाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने जिलाया कहाँ है? राग किया न, मैं जिलाऊँ। तो जिला सकता नहीं, वह तो उसके आयुष्य से जीता है। तूने उसे आयुष्य दिया तो जिला दिया? उसका रहने का आयुष्य है। एक टुकड़ा दे दिया उसको? अभिमान किया कि मैं पर को जिला सकता हूँ। मैं पर के रोग मिटा सकता हूँ।

मुमुक्षु : डॉक्टर ने रोग मिटा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मिटाता नहीं, उसका स्वयं का मिटा (सकता नहीं)।

मुमुक्षु : एक साथ मोक्ष का आईडिया मिलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से यह मिलता है। पहली श्रेणी में मैं राग का कर्ता नहीं। मैं तो ज्ञाता हूँ—ऐसा अनुभव होना, यह पहली श्रेणी की बात है। दूसरी श्रेणी की बात—उसमें स्थिर होना, आनन्द में लीन होना वह दूसरी श्रेणी की बात है।

मुमुक्षु : पहले जीव खराब काम करता था, अब शुभ काम करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। वह सब अज्ञान है। सदाचरण शुभराग है, वह भी अज्ञानभाव है। कठिन बात, डॉक्टर! है?

मुमुक्षु : यह आपका डॉक्टर नहीं, आप इसके डॉक्टर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा तो यह है।

मुमुक्षु : हम जड़ के डॉक्टर हैं और आप आत्मा के हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। कोई किसी का क्या कर सकता है? उसकी योग्यता है तो पकड़ सकता है, वह तो उसके कारण से है, यह तो निमित्त है। आहाहा!

यहाँ दो बातें की, भाई! चन्दुभाई! जब तक ज्ञानस्वरूपी भगवान, मैं ज्ञान हूँ, राग

का कर्ता भी नहीं—ऐसा अनुभव नहीं होता, तब तक अज्ञानी राग-द्वेष करता है। वह मिथ्यादृष्टि है। शुभभाव करे, दया, दान के भाव करे और वह मेरा कर्तव्य है, वह सब मिथ्यादृष्टि—झूठी दृष्टि है। वह चार गति में नीचे उतरने का रास्ता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जो करे वह सब खोटा, एकाध तो सच्चा कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाध सच्चा परन्तु सच्चा करे तो सच्चा कहे कि यह राग करे, वह सच्चा कहाँ था? सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञानस्वरूपी प्रभु, वह ज्ञान का-जानने का काम करे वह सत्य है। बाकी राग का कार्य करे, वह तो असत्य है, झूठी दृष्टि है। आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! हें? है?

ज्ञेयमात्र बुद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि कर्म सम्यग्दृष्टि जीव को जानने के लिये हैं। कोई अपने कर्म का उदय कार्य जिस-तिस प्रकार करने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा! क्या कहा? **कोई अपने कर्म का उदय कार्य जिस-तिस प्रकार करने के लिए समर्थ नहीं है।** राग का करना आत्मा की सामर्थ्य नहीं। आहाहा! वह तो अज्ञान से किया है। पर का कौन करे? आहाहा! पर का तो कौन करे, परन्तु राग का कर्ता, उसे भी अपने कार्य का कर्ता मानता है तो वह मूढ़ है। आहाहा! यह पहले के दर्जे का नहीं, यह तो अन्तिम दर्जे का पाप है। ऐसा कि पहले सत्कर्म करे, फिर आगे बढ़कर धर्म करे तो शुद्ध हो। वह सत्कर्म मैंने किये और मेरा कार्य है, (यह मान्यता ही) महापाप है।

मुमुक्षु : थोड़ा कम पाप....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कम पाप नहीं; मिथ्यात्व का महापाप है। झूठी दृष्टि है। यहाँ हमारे पास तो बहुत आ गये हैं। ४३ वर्ष तो यहाँ हुए। चैत्र कृष्ण ३ (गुजराती फाल्गुन कृष्ण १) को यहाँ आये थे। (संवत्) १९९१। आज तीज हुई न? एक महीना बाकी है। चैत्र, चैत्र समझे? चैत्र कृष्ण ३ को यहाँ आये हैं। आज फाल्गुन कृष्ण ३ है न? एक महीना रहा। ४३ वर्ष यहाँ होंगे। ४३, चालीस और तीन। यह तो पूरा जंगल था। बाद में तो करते-करते बस्ती बढ़ गयी। हम तो अकेले आये थे। आहाहा! ४३ (वर्ष) तो यहाँ, परन्तु हम तो छोटी उम्र से शास्त्र (पढ़ते थे)। पिताजी की घर की

दुकान थी। पूर्व के संस्कार थे तो हम तो पढ़ते थे। दुकान का काम भी करते थे, थोड़ी देर बैठते थे। बाकी तो शास्त्र पढ़ते थे। १८-१९ वर्ष की उम्र। २० वर्ष के अन्दर। १८-१९ वर्ष की उम्र से शास्त्र का अभ्यास है। ७० वर्ष से। (अभी) ८८ हुए न? ७० को क्या कहते हैं? आहाहा! ऐसे प्रश्न तो बहुत बार आये। मार्ग यह है, भाई!

जब तक यह शुभराग का भी कर्ता मानेगा, तब तक मिथ्या—झूठी दृष्टि है। तब तक भटकना पड़ेगा। राग मेरी चीज़ ही नहीं, मैं कर्ता हूँ ही नहीं, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसी दृष्टि हो, तब उसकी धर्म की पहली सीढ़ी में शुरुआत होती है। पश्चात् आगे जाकर स्थिर हो तो विशेष सिद्धि होती है। (विशेष कहेंगे...)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ४, रविवार, दिनांक-२६-०२-१९७८, कलश-२१७, २१८, प्रवचन-२४२

कलशटीका २१७। बीच में भावार्थ है, भावार्थ। बताओ, भाई! २१७ का थावार्थ। हिन्दी... हिन्दी। थोड़ा सूक्ष्म है। अनन्त काल से आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप होने पर भी अपनी चीज़ को जानने का प्रयत्न किया नहीं। वह अन्दर में राग और द्वेष, पुण्य और पाप भाव उत्पन्न होते हैं, वह वास्तव में तो परज्ञेय में जाते हैं। ऐसा नहीं मानकर वह पुण्य और पाप के भाव मेरे हैं और वह मेरी चीज़ है, वह भूल आत्मा की दशा में आत्मा करता है। दशा में (भूल करता है)। वस्तु तो शुद्ध ध्रुव है, परन्तु पर्याय में जो उसकी हालत, विचार बदलते हैं न? उस बदलती दशा में आत्मा अपने स्वरूप का भान नहीं, वह पुण्य और पाप के भाव को अपने मानकर दुःख को वेदता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा में विकार आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में विकार आता है। विकार न हो तो दुःख कैसे हो? दुःख कैसे है? दुःख भोगता है न? दुःख वेदता है, वह और सुख वेदता है वह। सुख अर्थात् आत्मा की शान्ति। सूक्ष्म विषय है। अपने में भूल न हो तो फिर इसे आनन्द होना चाहिए। उसकी पर्याय में-दशा में भूल है। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' अपनी चीज़ जो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, ऐसा आत्मा अपने को ऐसा नहीं जानकर अपनी पर्याय में—अवस्था में निजस्वरूप से विरुद्ध ऐसे पुण्य-पाप के भाव उत्पन्न होते हैं, वे मेरे हैं—ऐसी भूल आत्मा ही करता है। आहाहा! भूल करे जड़ और वेदन करे आत्मा, ऐसा कैसे बने? भूल आत्मा करता है। आहाहा! त्रिकाल में नहीं, वर्तमान में। आहाहा!

चिदानन्द चैतन्यघन आनन्द ध्रुव, वह तो ध्रुव है ही, परन्तु वर्तमान पर्याय है, अवस्था है, हालत-दशा है, वह भी उसकी है। उस हालत-दशा में विकार स्वयं से करता है। और स्वयं से मानता है कि मेरा है। वह मिथ्याश्रद्धा, भ्रान्ति अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! भावार्थ।

ज्ञानावरणादि कर्म सम्यग्दृष्टि जीव को जानने के लिये हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है। यह तो बात ही अत्यन्त अलग है। जगत को अभ्यास ही नहीं होता। धर्म के नाम से भी बाहर के क्रियाकाण्ड में रुका, संसार परिभ्रमण में। आहाहा! यहाँ कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव-सत्यदृष्टि जीव अर्थात् जिसका आत्मा आनन्द और ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, ऐसा स्वसन्मुख होकर दृष्टि हुई है और राग और पुण्य-पाप के भाव से अपने भाव को भिन्न किया है, आहाहा! अनादि से उस विकारभाव को अपना मानकर दुःख और भ्रान्ति में पड़ा है। वह आत्मा ही भ्रान्ति करता है। आहाहा! वह सम्यग्दृष्टि जीव, सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि जीव। सत्यदृष्टि जीव का अर्थ (यह कि) मैं पुण्य-पाप के भाव वर्तमान विकृत हैं, वह मैं नहीं। आहाहा! तो शरीर-बरीर, कर्म तो पर धूल बाहर रह गया। मैं तो शुद्ध चैतन्य अनाकुल आनन्द के रस से भरपूर पड़ा प्रभु हूँ। आहाहा! और मैं तो अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति हूँ। ऐसी सत्यदृष्टि अन्तर में हो, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की पहली शुरुआत कहते हैं। शब्दों की शर्तें बहुत हैं। सोगानी! आहाह! समझ में आया?

ज्ञानावरणादि कर्म सम्यग्दृष्टि जीव को जानने के लिये हैं। क्या कहते हैं? आहाहा! अपना शुद्ध चैतन्य राग से, पुण्यभाव से भिन्न होकर पूर्ण स्वरूप का वेदन हुआ, वह अनादि से पुण्य और पाप के राग का, दुःख का, आकुलता का वेदन था, वह सब भ्रान्ति थी और वह सब संसार में भटकने के भाव थे। आहाहा! वह सम्यग्दृष्टि—सत्यदृष्टि तो सत्य स्वरूप जो त्रिकाल ज्ञायक और आनन्द है, उस ओर सन्मुख होकर वह मैं हूँ, ऐसे वेदन में—अनुभव में आना, इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी, सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? है?

सम्यग्दृष्टि जीव को जानने के लिये हैं। यह क्या कहते हैं? पश्चात् जरा राग-द्वेष होते हैं। आत्मा का अनुभव, सम्यक् चैतन्य का भान होने पर भी राग-द्वेष होते हैं परन्तु वे जाननेयोग्य हैं, बस! वे ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य हैं; मेरे है नहीं। आहाहा! समझ में आया? है? यह तो अध्यात्म की बात है, भाई! अनन्त काल में कभी किया नहीं, सुना ही नहीं। बाहर की गड़बड़ी सब कर-करके मर गया। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव

पर्यायबुद्धि अर्थात् राग के पुण्य-पाप के जो क्षणिक भाव उत्पन्न होते हैं, उनकी दृष्टि छोड़कर त्रिकाली आनन्दस्वरूप ज्ञायक ध्रुव चैतन्य अनादि-अनन्त स्वभाव का पिण्ड प्रभु, उस ओर की दृष्टि हुई तो सत्यदृष्टि हुई। सत्यदृष्टि होने के पश्चात् थोड़ा रागादि होता है, परन्तु वह राग को जाननेवाला रहता है। धर्मी राग आता है उसे जाननेवाला रहता है, करनेवाला नहीं रहता। आहाहा! ऐसा अन्तर। सब बात में अन्तर। डॉक्टर! तुम्हारे दवाखाने में ऐसी बात कभी नहीं आयी होगी। धर्म के बहाने अभी बहुत फेरफार, क्या कहें अभी इसे? बहुत अन्तर हो गया। आहाहा!

भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अपने को भूलकर... आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव के रागभाव का कर्ता—रचनेवाला होता है, यह मिथ्या भ्रान्ति, अज्ञान और संसार है। समझ में आया? यह भ्रान्ति जिसे अपने शुद्धस्वरूप पवित्र परमात्मा, सर्वज्ञ परमात्मा ही अपना स्वरूप है, आहाहा! सर्वज्ञ—सर्व को जानना। परिपूर्ण ज्ञान, जिस ज्ञान में सबको जानना, बस! किसी को करना, ऐसा उसका रागादि स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अज्ञान का नाश करके पुण्य-पाप के भाव मेरे हैं और मेरी त्रिकाली चीज़ है, उसमें उसे खतौनी करता था, खतौनी को क्या कहते हैं? मिलाता था। वह मिलाने का धर्मी जीव ने छोड़ दिया। आहाहा! शरीर तो मेरा नहीं, वाणी मेरी नहीं, परन्तु अन्दर पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह भी मेरी चीज़ नहीं। वे तो मेरे जानने में आते हैं कि है, बस! वे ज्ञेयरूप से जानने में आते हैं। अज्ञान में मेरे हैं, ऐसा जानने में आता था। आहाहा! दृष्टि के अन्तर से बड़ा अन्तर है।

भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु की दृष्टि राग और पुण्य के प्रेम से छूटकर स्वभाव के प्रति—त्रिकाली आनन्द के प्रति प्रेम हुआ, अन्तर में एकाग्रता हुई तो उस सम्यग्दृष्टि को भले थोड़े रागादि होते हैं पूर्ण वीतराग न हो, तब तक (होते हैं)। सर्वज्ञ दशा में पूर्ण न हो तब तक अल्पज्ञ प्राणी को राग होता है, परन्तु वह राग जाननेयोग्य रहता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी को राग जाननेयोग्य रहता है। है, बस! बात तो ऐसी है, भगवान! आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? भगवन्त! तेरी चीज़ क्या है? आहाहा! तुझमें तो प्रभु भगवन्त

तुझमें तो अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। आहाहा! प्रभु! अतीन्द्रिय ज्ञान तुझमें पड़ा है, भगवन्त! आहाहा! उस चीज़ को जाने नहीं और कृत्रिम पुण्य और पाप के विकार को जानकर वहाँ रुक जाये, वह बड़ी भ्रान्ति—भ्रमणा है। आहाहा!

कहते हैं कि **सम्यग्दृष्टि जीव को जानने के लिये हैं। कोई अपने कर्म का उदय कार्य जिस-तिस प्रकार करने के लिए समर्थ नहीं है।** क्या कहते हैं? कर्म का उदय आता है। राग आया, परन्तु वह राग अपने में—आत्मा में है, ऐसा करने को वह समर्थ नहीं। राग आता है परन्तु राग की सामर्थ्य नहीं कि आत्मा में (वह राग) अपना है, ऐसा मानने का करे। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा साक्षी चिदानन्दस्वरूप हूँ। राग होता है तो उसे मैं जाननेवाला हूँ। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! धर्मदृष्टि कोई अलौकिक है। साधारण लोगों ने मान लिया है, वैसा धर्म नहीं है। ईश्वर भक्ति करना और अमुक करना, वह तो सब राग है, भगवान! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अपनी ज्ञान की पर्याय तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसी पर्याय—अवस्था प्रगट की। तीन काल—तीन लोक जानने की जिसकी सामर्थ्य! वे परमात्मा ऐसा फरमाते हैं... आहाहा! जिसके पन्थ में सर्वज्ञ परमात्मा नहीं है, उसने तीन काल तीन लोक देखे नहीं, तो उसकी बात में सत्य बात होती नहीं। समझ में आया? क्यों? कि इस आत्मा का स्वरूप ही सर्वज्ञ—ज्ञ-स्वरूप—पूर्ण स्वरूप ही आत्मा है। यह ज्ञ-स्वरूप, सर्वज्ञ स्वरूप है, उसका अन्तर एकाग्रता में ध्यान करते-करते राग से भिन्न करते-करते स्वरूप में स्थिरता हो गयी तो सर्वज्ञपर्याय प्रगट हो गयी। जो शक्तिरूप से सर्वज्ञस्वभाव था, वह व्यक्तरूप से दशा हो गयी, इसका नाम सर्वज्ञ परमात्मा कहा जाता है। शब्द शब्द में एक अक्षर आगे-पीछे हो तो भूल हो, ऐसी बात है। यह तो सिद्धान्त है।

मुमुक्षु : आत्मा परमात्मा में यह अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर यह है। यह मानता नहीं। है तो परमात्मस्वरूप ही।

मुमुक्षु : आत्मा में विकार आ सकता है, परमात्मा में विकार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा को पर्याय में विकार समाप्त हो गया। यहाँ पर्याय

में—अवस्था में विकार है, वस्तु में नहीं। वस्तु तो परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। परन्तु पर्याय में (जो) उसकी दशा है, उसमें विकार है। परमात्मा हो गये उनकी दशा में विकार भी नहीं। त्रिकाल में भी नहीं और दशा में भी नहीं। और यहाँ तो आत्मा में त्रिकाल वस्तु में विकार नहीं परन्तु उसकी वर्तमान दशा—हालत में—पर्याय में विकार है। आहाहा! शशीभाई! आहाहा!

कहते हैं कि वह राग का सामर्थ्य नहीं कि आत्मा को राग का कर्ता बना दे। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया? यह शब्द है यहाँ। है? **कोई अपने कर्म का उदय कार्य जिस-तिस प्रकार करने के लिए समर्थ नहीं है।** आहाहा! जहाँ अपना स्वरूप राग और पुण्य से भिन्न जाना, ऐसी दृष्टि जहाँ चैतन्य तत्त्व पर आ गयी... आहाहा! तो फिर राग का सामर्थ्य नहीं, राग की ताकत नहीं कि आत्मा को राग का कर्तृत्व मनवा दे। ऐसी राग में सामर्थ्य नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! दुनिया की बात सब जानते हैं। बहुत प्रकार से है। यह बात कोई अलग ही है। आहाहा! अभी तो सुनने को मिलना कठिन हो गयी है। आहाहा!

संन्यास इसको कहते हैं? लो, डॉक्टर! संन्यासी होना है? पहले राग और पुण्य-पाप के भाव, वह मेरी चीज़ नहीं; मेरी चीज़ आनन्दस्वरूप है, ऐसा अनुभव होना, वह मिथ्या राग का त्यागी—संन्यासी है। तब वह राग का त्यागी होता है। और फिर अस्थिरता जो होती है, उसे भी स्वरूप में स्थिरता करके, आनन्द में जमकर राग का अभाव होता है तो वह पूर्ण संन्यासी हुआ। बाकी बाहर के त्याग, स्त्री, पुत्र छोड़े, वह संन्यासी-फन्यासी है ही नहीं, सब भोगी और रोगी है।

मुमुक्षु : आत्मा-परमात्मा में कितना अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय में अन्तर है, वस्तु में अन्तर नहीं, शक्ति—स्वभाव में अन्तर नहीं। स्वभाव तो (दोनों का समान है)। जैसे गेहूँ का दाना होता है न? गेहूँ। गेहूँ... गेहूँ कहते हैं न? वह लाख गेहूँ है, वैसे दूसरे हैं, गेहूँ में अन्तर नहीं। परन्तु उसकी पर्याय में अन्तर है। एक आटा हो गया है, एक आटा हुआ नहीं, कच्चा है। समझ में आया? एक... क्या कहते हैं? थूली... थूली कहते हैं? थूली को क्या कहते हैं?

थूली कहते हैं? आटे की थूली होती है एक गेहूँ की... क्या कहते हैं? भूल जाते हैं तुम्हारे नाम। दलिया... दलिया! दलिया नहीं करते? फाड़... फाड़। गेहूँ तो गेहूँ है, परन्तु उसका प्रकार, पर्याय में अन्तर हो गया। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा और परमात्मा हो गये, वे वस्तुरूप से तो एक समान हैं, परन्तु अन्दर दशा में अन्तर है। आहाहा! समझ में आया?

कोई अपने कर्म का उदय कार्य जिस-तिस प्रकार करने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं? जिसे अपने आनन्द और ज्ञान के सामर्थ्य, पूर्ण शक्ति का अनुभव—प्रतीति हुई तो उसके सामर्थ्य में राग उसे कर्ता बनावे, ऐसा राग में सामर्थ्य नहीं। आहाहा! कठिन बातें, भाई! ऐसे सिद्धान्त सूक्ष्म! वह तो सीधा सट्ट था—व्रत करो, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करो, जाओ, धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं, सुन न अब! शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया, उसमें क्या है? वह तो राग है। ब्रह्म अर्थात् भगवान आनन्द का नाथ, उसमें चरना-रमना और राग से भिन्न हो जाना, तब तो सम्यग्दृष्टिरूपी ब्रह्मचर्य कहते हैं। आहाहा! पश्चात् चारित्र में स्वरूप में बहुत जम जाना, रमना, तब राग का त्याग और राग का संन्यास हुआ, ऐसा कहने में आता है। इसके बिना सब व्यर्थ है। बाहर से तो अनन्त बार साधु हुआ, नग्न हुआ, हजारों रानियाँ छोड़ी, हजारों रानियाँ छोड़कर ब्रह्मचारी हुआ और नग्न हुआ, परन्तु अन्तर में राग से भिन्न भगवान है, (ऐसा अनुभव नहीं किया)। उस राग की क्रिया में ही अपनापन (मानकर) सन्तोष में आ गया, परन्तु उससे भिन्न मेरी चीज़ पूर्णानन्द है, उसका आत्मज्ञान और वेदन किया नहीं। इसके बिना इसके भवभ्रमण मिटेगा नहीं। आहाहा!

एक नरसिंह मेहता हुए हैं न? वैष्णव में। नहीं? जूनागढ़ (में)। नरसिंह मेहता हुए हैं। भगत नहीं कहते? वे भी उनकी दृष्टि प्रमाण ऐसा कहते थे। 'मैं करूँ, मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे।' अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं शरीर का कर दूँ, पर का कर दूँ, देश का कर दूँ, पुण्य-पाप के भाव को कर दूँ, ऐसा मैं करूँ, मैं करूँ—ऐसे अज्ञान में। मैं करूँ... मैं करूँ। मैं अर्थात् मैंने किया। ऐसा अज्ञान है। आहाहा! गाड़ी का भार। शकट अर्थात् गाड़ी। कुत्ता नीचे हो। गाड़ी गाड़ी से चलती है,

नीचे कुत्ता हो, उसका (गाड़ी का) ठूंठा नीचे से छूता हो तो वह ऐसा मानो कि यह गाड़ी मुझसे चलती है। ऐसे कुत्ते जैसा अज्ञानी अनादि से यह पर की क्रिया मैं करता हूँ, शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, राग को मैं करता हूँ, वह कुत्ते जैसा प्राणी अज्ञानी मनुष्य स्वरूपे मृगा चरंति। है मनुष्य का स्वरूप परन्तु मृग जैसा है। हिरण समझ में आता है, न?

यहाँ कहते हैं कि स्वरूप राग से, पुण्य की क्रिया से भी भिन्न है, ऐसा सम्यक् अनुभव हुआ तो सामर्थ्य नहीं कि राग अपने को करा दे कि आत्मा में राग का कार्य हो जाये, ऐसी राग में सामर्थ्य नहीं। ज्ञान में ऐसी सामर्थ्य प्रगट हुई कि स्व को भी जाने और राग है, उसे जाने, पररूप से जाने; परन्तु राग मेरा कार्य है—ऐसी राग में सामर्थ्य नहीं और ज्ञान में सामर्थ्य नहीं कि राग का कर्ता हो जाये। आहाहा! ऐसी बात है। शशीभाई! भाई आ गये हैं? हसमुख! आ गये। सवेरे पूछा था। डॉक्टर को छोड़ने गये होंगे। आहाहा!

अरे! प्रभु! क्या कहें? यह बात कैसी है और क्यों है? प्रभु! अलौकिक बातें हैं, नाथ! आहाहा! तेरी चीज़ को तूने जाना नहीं और तेरी चीज़ में जो चीज़ है, पर्याय में है परन्तु त्रिकाली स्वरूप में नहीं। उसे अपना मानकर चार गति में भटकने के भ्रान्ति भाव उत्पन्न किये। आहाहा! एक बार प्रभु, एक बार सुन तो सही, ऐसा कहते हैं। अपना चैतन्य, अनन्त वीर्य, अनन्त ज्ञान... नीचे कहेंगे। नीचे कहते हैं। अन्तिम लाईन है। **अनन्त चतुष्टयस्वरूप है...** अनन्त चतुष्टयस्वरूप। क्या कहते हैं? आहाहा!

अन्तर में तो भगवान स्वरूप में, आत्मा में तो अनन्त ज्ञान, जानन स्वभाव बेहद है, अपरिमित है, मर्यादारहित जिसका अनन्त ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा का है। ऐसा अनन्त दर्शन स्वभाव है, ऐसा अनन्त आनन्द स्वभाव है, ऐसा अनन्त बल—वीर्य आत्मा का वीर्य, हों! यह वीर्य शरीर से पुत्र होता है, वह नहीं। आत्मा में एक बल ऐसा है कि अनन्त वीर्य है, अनन्त बल है। आहाहा! वह अनन्त चतुष्टय जो शक्तिरूप से था, उसका अनुभव करके प्रतीति में पहले आया। आहाहा!

श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं कि आत्मा का भान हुआ, सम्यग्दर्शन, तो श्रद्धा अपेक्षा

से केवलज्ञान प्रगट हुआ। एक श्रीमद् राजचन्द्र हुए हैं। बहुत शक्ति थी, छोटी उम्र में ३३ वर्ष में देह छूट गयी। ३३ वर्ष और चार महीने। परन्तु शक्ति बहुत लेकर आये थे। छोटी उम्र में उन्हें २२ वर्ष में तो आत्मज्ञान हुआ था, २२ वर्ष में अनुभव हुआ। ३३ वर्ष में देह छूट गयी। जवाहरात का धन्धा था। मुम्बई। लाखों रुपये का जवाहरात का धन्धा था। परन्तु उन्हें कुछ नहीं। जैसे नारियल में गोला पृथक् होता है न? नारियल में खड... खड... खड... खड... (होती है)। वैसे आत्मा राग से अन्दर भिन्न है। आहाहा!

यहाँ भिन्न का भान हुआ तो अपनी ताकत ऐसी प्रगट हुई कि राग को जानने में रहे, ऐसी सामर्थ्य प्रगट हुई और राग की सामर्थ्य ऐसी नहीं कि आत्मा को कर्ता बनावे, वह सामर्थ्य राग में नहीं है। आहाहा! ज्ञेय-ज्ञान। सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या कहें? आहाहा! अरे! भाई! धर्म की रीति, बापू! अलौकिक चीज़ है, भाई! क्या करें? आहाहा! यह कोई बाहर की प्रवृत्ति से दया, दान, भक्ति, व्रत और तप से वह प्रगट नहीं होता। आहाहा! कितनी बात की है, देखो न! क्या कहा?

सम्यग्दृष्टि जीव ने अपने में इन पुण्य और पाप के मैल से भगवान निर्मलानन्द भिन्न है, ऐसा अनुभव किया तो उसके ज्ञान में सामर्थ्य नहीं कि राग का कर्ता हो और राग में सामर्थ्य नहीं कि आत्मा के ज्ञान को राग का कर्ता बना दे। यह राग में सामर्थ्य नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! अन्दर में चैतन्य के स्वभाव का भान, देह और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है, ऐसा भान हुआ तो कहते हैं कि उस ज्ञान में ऐसी सामर्थ्य उत्पन्न हुई, दशा में कि राग होता है, उसका कर्ता नहीं होता—ऐसी सामर्थ्य उत्पन्न हुई। आहाहा! और राग की ऐसी सामर्थ्य रही कि आत्मा को राग का कर्ता बना दे, ऐसी राग में सामर्थ्य नहीं रही। ज्ञेय बनाकर रहे। आहाहा! धर्मी को राग आता है, जब तक पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ न हो, तब तक राग आता है, परन्तु उस राग की सामर्थ्य नहीं कि आत्मा को राग का कर्ता बना दे। राग का कर्ता आत्मा को बना दे, ऐसी सामर्थ्य नहीं और आत्मा की सामर्थ्य नहीं कि राग का कर्ता हो। वह तो जाननेवाला रहता है। आहाहा! समझ में आया? क्या नाम तुम्हारा? नरेन्द्र? प्रवीणभाई! ठीक! ऐसी बात वहाँ कहीं मिले, ऐसा नहीं है। क्या कहलाता है तुम्हारे वह? टाईल्स। टाईल्स तो यहाँ थान में,

वहाँ तुम्हारे दूसरा होगा या नहीं? गाँव में तो धन्धा दूसरा होगा या नहीं? आड़त का। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा, ज्ञान और राग ये जो तीन चीज़ हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा ज्ञानस्वरूपी है। शक्कर और मिठास ऐसे दो नाम आते हैं। शक्कर है न शक्कर? परन्तु मिठास और शक्कर दोनों एक ही चीज़ है।

मुमुक्षु : ज्ञान और आत्मा एक ही चीज़ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान और आत्मा एक चीज़ है। ज्ञान और आत्मा दो एक चीज़ है। ज्ञान गुण है, भगवान आत्मा गुणी है। ज्ञान का धारक आत्मा है और ज्ञान उसमें रहता है। वह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। दो चीज़ उसमें नहीं है। उसकी दशा में दो भिन्न हैं। हालत में—वर्तमान दशा में रागादि है, वह भिन्न चीज़ है।

मुमुक्षु : राग को मिटानेवाला तो ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानस्वरूप में अन्दर दृष्टि जाये तो हट जाये।

मुमुक्षु : राग को मिटानेवाला ज्ञायक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञायक है, ज्ञान है।

मुमुक्षु : आत्मा तो भिन्न रहता है ज्ञान से...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। ज्ञानस्वरूपी ही आत्मा है। वह ज्ञायक स्वयं ही आत्मा है। है सूक्ष्म बात है। वह ज्ञायक आत्मा जहाँ राग से भिन्न हुआ तो पर्याय में ज्ञायक हुआ। वस्तु में तो था। सूक्ष्म बात बहुत। बहुत मुश्किल। पर्याय न माने तो? यह लोगों को पर्याय की खबर नहीं। वस्तु है, वह त्रिकाल है और उसमें बदलती पर्याय है, अवस्था है। जैसे सुवर्ण है न, सुवर्ण? सोना। चैन बनती है न? उसे चैन कहते हैं न, क्या कहते हैं? वह चैन पूरे सोनेरूप है। उस प्रत्येक कड़ी में सोना है। और पूरी चीज़ सोना है परन्तु उसमें से कड़ा, कुण्डली, अँगूठी होती है, वह उसकी अवस्था है, दशा है। सोना सोनेरूप होकर अवस्था पलटती है। कड़े का कुण्डल होता है, कुण्डल के बाजूबन्ध होते हैं इत्यादि। वह सब पर्याय कही जाती है। वह पर्याय सोने की है।

उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान दोनों एक होने पर भी, उसकी पर्याय में विचार बदलते हैं, अल्पज्ञपना, रागपना, सर्वज्ञपना, वह सब पर्याय है। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! वस्तु का ज्ञान भी अभी घट गया पूरा। बाहर की सिरपच्ची में मर गया। आहाहा! वह ज्ञान और आत्मा दोनों एक ही चीज़ है। जैसे शक्कर की मिठास और शक्कर एक ही चीज़ है। मिठास निकाल डालो तो शक्कर रहे कहाँ? शक्कर निकाल डालों तो मिठास रहे कहाँ? मिठास का पिण्ड ही शक्कर है, उसी प्रकार ज्ञान और आनन्द का पिण्ड ही आत्मा है। आहाहा! शशीभाई! भाषा तो सादी होती है। आहाहा!

प्रभु! अन्दर ऐसा है। यहाँ तो कहते हैं। इन दो बोल में तो गजब किया है! हें? प्रभु! तेरी चीज़ तूने जब अन्दर में जानी कि राग और पुण्य के, दया, दान, व्रत, ईश्वर की भक्ति, इन सब राग से भिन्न मेरी चीज़ है। ऐसे आत्मा को जाना, तब उसकी दृष्टि सत्य हुई और सत्यदृष्टि हुई तो राग का कर्ता हो, ऐसा सत्यदृष्टि में रहता नहीं और राग की सामर्थ्य नहीं आत्मा के ज्ञान में राग का कर्तापना करा दे, ऐसी राग में सामर्थ्य नहीं रही। राग ज्ञेयरूप रहता है, आत्मा ज्ञानरूप जानता है। ज्ञान की सामर्थ्य नहीं कि राग को करे। राग की सामर्थ्य नहीं कि आत्मा के ज्ञान को राग का कर्ता बनावे।

मुमुक्षु : आत्मा का अनुभव किस प्रकार होता है? राग की ताकत नहीं तो किस प्रकार ऊपर से पड़ जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानरूप से मानता है। यह तो कहा न? अपने आत्मा का अज्ञान करता है, स्वयं आत्मा। 'अपने को आप भूलकर' राग का कर्ता होता है। यह खबर नहीं, पूरी चीज़ में अन्तर है। भूल इसकी दशा में है। भूल आत्मा करता है। हें?

मुमुक्षु : दो वस्तु मानने की नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्वैत है, वस्तु द्वैत है। यहाँ बहुत चर्चा होती है। एक परमहंस आया था। परमहंस। तुम्हारा मोतीलाल नहीं? तब (संवत्) १९९५ के वर्ष, आठ सौ (रुपये) वेतन था। रेल... रेल। वहाँ व्याख्यान में हमेशा आता था, वेदान्ती। फिर परमहंस हो गया। फिर यहाँ आया था। बहुत चर्चा हुई। वह द्वैत माने नहीं, अद्वैत माने। द्वैत न माने तो अनुभव क्या? आत्मा और आत्मा का अनुभव, यह तो द्वैत हो

गया। और भूल यदि न मानो तो भूल निकालने का जो वेदान्त ने (उपदेश) किया कि, भूल निकालो। तो भूल है या नहीं? है तो निकालनी है या नहीं? है तो उसमें है या पर में है?

मुमुक्षु : वह माया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माया। यामा वह नहीं परन्तु, वह नहीं त्रिकाली, वह नहीं। परन्तु वर्तमान है या नहीं? वह तो सबकी खबर है। माया, या-मा। या—वह नहीं। परन्तु यह 'वह नहीं' वह तो त्रिकाली वह नहीं है। परन्तु उसकी वर्तमान दशा में, आत्मा की वर्तमान पर्याय में विकार होता है, अज्ञानी करता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो दोनों को भिन्न कर दिया। अब क्या कहते हैं? देखो! **'तत् ज्ञानं ज्ञानं भवतु' तिस कारण से ज्ञान अर्थात् जीव वस्तु...** देखो! ठीक। ज्ञान का अर्थ ही जीववस्तु, वह ज्ञान। ज्ञानस्वरूपी जीववस्तु। प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप। प्रज्ञा का पिण्ड, वह जीव। अर्थात् ज्ञान का अर्थ किया, भाई! ज्ञान अर्थात् जीववस्तु। है? **'ज्ञानं भवतु' शुद्ध परिणतिरूप होकर...** आहाहा! **शुद्धस्वरूप के अनुभव समर्थ हो।** आहाहा! भगवान! तू तो आनन्द और शुद्ध है न! तो तेरी अनुभूति में शुद्ध का अनुभव करो, तब शुद्ध है—ऐसी तुझे प्रतीति और अनुभव होगा। आहाहा! यह राग का अनुभव है, वह मलिनता का (अनुभव है), वह तेरी चीज़ नहीं। तू भ्रान्ति में पड़ा है। आहाहा! शुद्ध का अनुभव करो। राग के विकल्प से भिन्न निर्विकल्प चीज़ जो भगवान आत्मा, जीववस्तु, उसका अनुभव करो। अर्थात् शुद्ध परिणति प्रगट करो। अर्थात्? जो शक्तिरूप से शुद्ध है, उसे वर्तमान दशा रूप से प्रगट करो। आहाहा! समझ में आया? है? भाषा तो सादी है, कठिन, परन्तु अनन्त काल से अभ्यास नहीं होता। यह डॉक्टर का अभ्यास करने जाये तो दस वर्ष निकालता है। यह वकालत का अभ्यास किया होगा तब रामजीभाई ने दस-पन्द्रह वर्ष मजदूरी नहीं की होगी? यह तो समझने के लिये। एल.एल.बी. होना हो तो कितने ही वर्ष व्यतीत करता है या नहीं? कितने वर्ष व्यतीत करे अर्थात् इतने वर्ष अभ्यास में रुकता है न? डॉक्टर में भी थोड़े वर्ष अभ्यास करता है या नहीं? तो यह तो अनन्त काल में कभी अभ्यास किया ही नहीं। तो उसके लिये थोड़ा काल तो चाहिए। आहाहा!

अज्ञानरूप से भी कितना काल अभ्यास में व्यतीत करता है, तो यह तो सम्यग्ज्ञान करने की चीज़ में तो काल निकालना चाहिए। आहाहा!

वर्तमान में तो बहुत फेरफार हो गया न! कुछ का कुछ लोगों ने माना है। कोई कहता है कि आत्मा अत्यन्त शुद्ध ही है। कोई कहता है कि आत्मा त्रिकाली अशुद्ध ही है, कोई कहता है कि आत्मा सर्वव्यापक है, यह सब होकर। सब भ्रान्ति है। कोई कहे, पुण्य से धर्म होता है। कोई कहे, पाप करते-करते फिर निर्विकल्प हो जाता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं न? वह रजनीश... रजनीश है। वह कहे, पहले खूब दाँत निकालो, खूब दाँत निकालो (हँसों) फिर निर्विकल्प हो जाओगे। बहुत रोओ। रुदन करने के पश्चात् निर्विकल्प हो जाओगे। आहाहा! अरे... प्रभु! यह चीज़ ऐसी नहीं है। रजनीश का सुना है? एक रजनीश है।

मुमुक्षु : वह राग का अध्ययन करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना पकड़ा। वह मुम्बई में था। फिर वहाँ से निकाला। अभी पहले पूना में था, अब पूना में से भी निकाला। क्योंकि वह ऐसा कहता है कि अन्दर कोई भी व्यभिचार का राग आया तो व्यभिचार सेवन करना। तो निर्विकल्प हुआ जाता है। अर र र!

मुमुक्षु : वह सम्भोग से समाधि....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब गड़बड़ है। सब खोटा है। अब कच्छ में भी विवाद हुआ है। अब कच्छ में गया है तो वहाँ जमीन ली है। युवराज राजकुमार है...

मुमुक्षु : ऊपर के आत्मा को नीचे कैसे ले जाना, उसकी बात करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नीचे ले जाने की बात है। आहाहा! विषय की वासना का विकल्प आया परन्तु इससे विषय भोगना तो राग का नाश होगा, यह बात अत्यन्त पाखण्ड है। आहाहा! वह तो यहाँ तक कहता था कि आत्मा का जो ज्ञानानन्द है, वह भोगानन्द में भी आनन्द आता है। अरे रे! प्रभु! क्या करता है यह? भोग में भी आनन्द आता है, वह आत्मा के आनन्द का एक नमूना है। (ऐसा वह कहता है।) अर र र!

मुमुक्षु : जैसे शराब पीकर मस्त हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मस्त होता है, ऐसा दुःख है। भोग में तो पाप का भाव है। अरर! आहाहा! विषय सुख में बुद्धि, वह सुखबुद्धि महा पाखण्ड अज्ञान है। भगवान आनन्दस्वरूप की बुद्धि छोड़कर विषय में सुख है, यह महापाप है। ऐसी हिन्द की विद्या ही नहीं, हिन्दुस्तान की विद्या ही अलग प्रकार की है। आहाहा!

शुद्ध परिणतिरूप होकर शुद्धस्वरूप के अनुभव समर्थ हो। देखो! भगवन्त! तू आनन्द का नाथ है न, प्रभु! आहाहा! तो राग से भिन्न होकर शुद्धस्वरूप की दशा प्रगट करो। आहाहा! वह धर्म है। कैसा है शुद्ध ज्ञान? **'न्यकृताज्ञानभावं' दूर किया है मिथ्यात्वभावरूप परिणति जिसने...** आहाहा! कैसे स्वरूप का भान वहाँ हुआ? कि जिसमें भ्रान्ति का नाश हो गया। विषय में सुख है, पैसे में सुख है, पुण्य भाव में सुख है, ऐसी भ्रान्ति थी, वह आत्मा का ज्ञान हुआ तो भ्रान्ति का नाश हो गया। आहाहा! आनन्द तो मेरी चीज़ में है। मृग की नाभि में कस्तूरी। मृग होता है न मृग? (उसकी) नाभि में कस्तूरी है, परन्तु कस्तूरी की कीमत नहीं। मृग होता है न, मृग? हिरण। नाभि में कस्तूरी है। सुगन्ध आती है तो बाहर से ऐसा है, ऐसा लगता है, परन्तु वह अन्दर में है, उसकी खबर नहीं। उसी प्रकार अज्ञानी का आत्मा पर में सुख है, ऐसी बुद्धि, ऐसा मानता हुआ मृग जैसा है। अपने भगवान आत्मा में आनन्द है, ऐसी दृष्टि करता नहीं और पुण्य करते-करते मुझे धर्म होगा, यह भी सब भ्रान्ति है। आहाहा! समझ में आया? सदाचरण व्यवहार करो, सदाचरण करो, फिर लाभ होगा। धूल में भी नहीं होगा, सुन न!

यहाँ तो कहते हैं, **'न्यकृताज्ञानभावं'** दूर किया है अज्ञानभाव जिसने। **ऐसा होने पर कार्य की प्राप्ति कहते हैं...** अब क्या हुआ? कहते हैं, जब अपने स्वरूप की दृष्टि, अनुभव किया तो पुण्य-पाप में धर्म है, पुण्य में सुखी है, ऐसी भ्रान्ति का नाश हुआ। नाश होकर कैसा कार्य हुआ? कार्य कैसा हुआ? आहाहा! है? **'येन पूर्णस्वभावः भवति' जिस शुद्ध ज्ञान के द्वारा पूर्ण स्वभाव अर्थात् जैसा द्रव्य का अनन्त चतुष्टयस्वरूप है...** क्या कहते हैं? कि आत्मा में अनन्त बेहद आनन्द, ज्ञान है, वह अन्तर में एकाग्र होकर, वह शक्तिरूप से जो अनन्त आनन्द था, उसे दशा में अनन्त आनन्द प्रगट हुआ। जैसे छोटी पीपर में, छोटी पीपर चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। घोंटने से बाहर

आती है, परन्तु है प्राप्त की प्राप्ति है। है वह मिलती है। उसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका ध्यान करने से, उस ओर का लक्ष्य करने से व्यक्त अर्थात् प्रगट अनन्त आनन्द प्रगट होता है। वह कार्य अपना है। आहाहा! बाकी थोथे हैं। आहाहा! ऐसी बात सुनते हुए अनजाने लोगों को कठिन पड़ता है। यह क्या कहते हैं? पागल जैसी बात, बापू! सुन, भाई! आहाहा!

अन्तर प्रभु चैतन्यस्वरूप शक्तिरूप से स्वभावरूप से अनन्त आनन्द, ज्ञान है, उसका राग से भिन्न होकर अन्तर में ध्यान करते... करते... करते... पूर्ण ज्ञान प्रगट हो जायेगा। सर्वज्ञ ज्ञान प्रगट होगा, अनन्त आनन्द प्रगट होगा, उसका नाम मुक्ति है। आहाहा! है? **जैसा द्रव्य का अनन्त चतुष्टयस्वरूप है...** वस्तु का अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन—ऐसा स्वरूप अन्दर में है। कली है न, कली? फूल की कली, मोगरा की कली खिलती है तो ऐसे अन्दर शक्ति है तो खिलती है। उसी प्रकार आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द शक्तिरूप है, उसे राग से भिन्न पड़कर अन्तर शुद्धता का अनुभव करते-करते पर्याय में—अवस्था में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द खिल निकलेगा। यह मुक्ति हुई। दूसरा कोई कार्य आत्मा में है नहीं। आहाहा! यह कार्य उत्पन्न होता है, कहते हैं। **वैसा प्रगट होता है।**

भावार्थ इस प्रकार है कि मुक्तिपद की प्राप्ति होती है। ऐसा कहते हैं। अनन्त आनन्दस्वरूप भगवान, अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप स्वरूप को राग से भिन्न करके, अनुभव करते-करते, अनुभव करते-करते पूर्ण आनन्द की दशा प्रगट होगी, पूर्ण ज्ञान की दशा प्रगट होगी, उसका नाम मुक्ति है। फिर उसे अवतार नहीं है, संसार नहीं है, भवभ्रमण नहीं है। अनन्त आनन्द का वेदन, बस! यह मुक्ति। आहाहा! अतीन्द्रिय... अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का वेदन और अतीन्द्रिय पूर्ण ज्ञान, वह पर्याय उसमें है, वह जानता है, देखता है, अनुभव करता है, बस! इसका नाम मुक्ति है। ऐसा है।

संसार में क्या करता है? बहुत तो राग और द्वेष करता है और राग-द्वेष को भोगता है, बस! पूर्ण हुआ, वहाँ वीतरागदशा को करता है और वीतरागदशा को भोगता है। आहाहा! समझ में आया? **कैसा है पूर्ण स्वभाव अर्थात् स्वरूप? 'भावाभावौ तिरयन्'**

आहाहा! **चतुर्गतिसम्बन्धी उत्पाद-व्यय को सर्वथा दूर करता हुआ...** भाव-अभाव। जिस गति का उत्पाद है, यह मनुष्यगति, स्वर्गगति, पशुगति, वह उत्पाद है, उसका अभाव। जो भाव है, उसका अभाव करके। आहाहा! समझ में आया? भाव-अभाव। जो इस संसार में राग से मनुष्यगति मिलती है, मनुष्यगति (अर्थात्) यह मनुष्य शरीर नहीं, यह तो जड़ है। अन्दर मनुष्यपने की योग्यता है। वह गति का उदय है। वह भाव है। उस भाव का अभाव कर डालता है। आहाहा! चार गति में उत्पन्न होना, और चार गति में व्यय होना, चार गति है न? मनुष्य, तिर्यंच—पशु, नीचे नरक है, ऊपर स्वर्ग है (ऐसी) चार गतियाँ हैं। चारों गतियाँ परिभ्रमण का कारण है। यह भाव जो उत्पन्न होते थे, उनका अन्तर अनुभव करते-करते पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हुई तो भाव जो चार गति के थे, उनका अभाव हो गया। अतीन्द्रिय आनन्द का भाव प्रगट हुआ, तब चार गति के उत्पाद के भाव का अभाव हो गया। अस्ति-नास्ति, आहाहा! समझ में आया?

चतुर्गतिसम्बन्धी उत्पाद-व्यय को सर्वथा... सूक्ष्म बात है। वस्तु का स्वरूप उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत् है। नयी-नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था का व्यय होता है—अभाव होता है, ध्रुवरूप से कायम रहता है। ऐसी वस्तु की स्थिति है। तो जब आत्मा का राग से भिन्न पड़कर अनुभव किया, अनुभव करते-करते जहाँ पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ, वह भाव प्रगट हुआ। तो संसार की गति का जो भाव था, उसका अभाव हो गया। अन्दर का भाव था, वह भाव प्रगट हुआ और गति का उत्पाद भाव था, उसका अभाव हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : भावअभाव, अभावअभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग। वे छह शक्तियाँ हैं न? वह जब चले तब बात, भाई!

यहाँ तो इतनी ही बात की है कि आत्मा के अन्तर स्वभाव में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, बेहद शान्ति और वीर्य पड़ा है। वह अन्तर ध्यान से जो भाव अन्दर में थे वह पर्याय में भावरूप से आया, दशा प्रगट हुई। एक बात। और जो चार गति का भाव था, उत्पाद भाव था, उसका अभाव किया। उस भाव का भाव किया और इस भाव (गतिरूप) का अभाव भाव किया। आहाहा!

फिर से, जो अन्दर में भाव था—अनन्त चतुष्टयशक्ति, उसका शक्तिरूप भाव था, उसका स्वभावरूप भाव था, स्वरूपरूप भाव था, उसे प्रगट पर्याय में भाव किया, अवस्था में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन भाव आया। उस भाव का भाव हुआ और जो चार गति का भाव था, उसका अभाव हुआ। आहाहा! शब्द शब्द में न्याय भरे हैं। नि धातु है। नि धातु (अर्थात्) ले जाना। ज्ञान को सत्य की ओर ले जाना, इसका नाम न्याय है। न्याय कहते हैं न? न्याय में नि धातु है। धातु कहते हैं? नि अर्थात् ले जाना, ले जाना। ज्ञान को वहाँ ले जाना। जैसा सत्य है, वहाँ ले जाना, इसका नाम न्याय। लॉजिक है, न्याय है।

यहाँ कहते हैं कि जो शक्तिरूप परमात्मा था। प्रत्येक आत्मा शक्तिरूप से तो परमात्मा ही है। तो प्रगटरूप जब हुआ, ऐनलार्ज हुआ। आहाहा! अन्तर के भाव पर दृष्टि की और स्थिरता होकर अनुभव करते-करते अन्दर शक्तिरूप से जो भाव पूर्ण था, वह अवस्थारूप से-दशारूप से बाहर (प्रगट) हो गया। भाव का भाव हो गया। और चार गति का जो भाव था, उत्पाद था, उपजना था, उसका अभाव हो गया। आहाहा! कहो, देवीलालजी! समझ में आये ऐसा है, नहीं समझ में आये ऐसा नहीं। भाषा तो बहुत सादी है। परन्तु कभी दरकार की नहीं। पैसा और स्त्री और पुत्र और धन्धा धमाल... धमाल... धमाल...

मुमुक्षु : जल एक ही समय में गर्म भी है और ठण्डा भी है, दोनों बात बराबर बैठती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जल ठण्डा भी है, वह स्वभाव से ठण्डा है। पर्याय में उष्ण है। अग्नि का निमित्त है। उष्ण स्वयं से है यदि उष्ण न हो तो पीने में उष्णता कैसे लगती है? गरम है, पर्याय में गरम है।

मुमुक्षु : उसी समय में ठण्डा किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति से ठण्डा है। स्वभाव में ठण्डा है, पर्याय में नहीं। आहाहा! जैसे पानी उष्ण है, वैसे आत्मा अज्ञानरूप से राग-द्वेष में आकुलतामय दुःख है। आत्मा को दुःख है। आनन्द का भान हुआ, तब आनन्द जो स्वभाव में था, वह पर्याय में आनन्द आया तो दुःख का अभाव हो गया। आहाहा! भाव का अभाव और भाव का

भाव। आहाहा! ऐसा वहाँ मुम्बई में मिले ऐसा नहीं है, सब भटकने का है। कल कोई आया था, कहता था, पोपटभाई के दुकान के साथ हमारी दुकान है। कोई कहता था। हें? कोई आया था कल। मुझे पहिचान देते थे, पोपटभाई की दुकान के साथ हमारी दुकान है। होगा, अपने को कुछ खबर नहीं। यहाँ तो दुकान इसकी—आत्मा की है। आहाहा!

भाव का अभाव **करता हुआ जीव का स्वरूप प्रगट होता है।** देखो! चार गति उत्पन्न होने का अभाव करके अपने स्वभाव को प्रगट करता है। आहाहा! शक्तिरूप तो है। जैसे छोटी पीपर में चरपराई सोलह आने, चौंसठ पहर अर्थात् सोलह आना। रुपया, रुपया अन्दर भरी है। वह घोंटने से बाहर आती है। अन्दर शक्ति है, वह व्यक्तरूप से होती है; इसी प्रकार आत्मा में आनन्द और अनन्त ज्ञान शक्तिरूप तो है। परन्तु उसका ध्यान करने से, शुद्ध में रमणता करने से पर्याय में व्यक्त होता है। जब पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ, वह मुक्ति और चार गति का भाव था, उसका अभाव हुआ, वह दुःख का अभाव हुआ और सुख की प्राप्ति हुई। यह कैसे कहा? भाई! समझ में आया? यह भाव-अभाव का कैसे कहा?

मोक्ष-मुक्ति है न? मुक्ति है, उसमें 'छूटना'—ऐसा शब्द है। मुक्ति है न? मुक्ति। तो छूटना, छूटा। इसलिए भाव का अभाव कहा। जो दुःख का भाव था, चार गति का भाव था, उसका अभाव किया तो मुक्ति (हुई) और वह भाव अन्दर में था, वह बाहर आया, उस भाव का भाव हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : राग की स्तुति छोड़कर आत्मा की स्तुति करनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा। बाकी सब थोथा है। यह आत्मा अन्दर कैसा है, उसकी अभी पहिचान नहीं। शक्ति क्या है, शक्तिवान कौन है, उसकी दशा क्या है? उसका पहले ज्ञान करना पड़े, भाई! फिर उसकी यथार्थ प्रतीति होती है। आहाहा! भावभासन होना चाहिए न! भाव में ख्याल आना चाहिए न? कि यह शक्कर है, यह काली जीरी है। काली जीरी समझ में आया? काली जीरी कड़वी होती है, कड़वी। कड़वाहट होती है। चाय बनाते हैं न? काली जीरी की चाय बनाते हैं। कड़वी, कफ पृथक् करने के

लिये। हम पहले पीते थे, बहुत कफ होता था। काली जीरी की चाय। फिर चाय छोड़ दी। चाय बिल्कुल नहीं। ७० वर्ष से चाय नहीं पी। पहले पीते थे, काली जीरी की। कफ रहता था। काली जीरी समझ में आया? पंसारी की दुकान पर मिलती है। कड़वे-कड़वे दाने, उसकी चाय बनाते थे। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ चार गति काली जीरी का भाव था, उसका अभाव कर दिया और भाव में जो भाव नहीं था, पर्याय में—अवस्था में भाव नहीं था, उस भाव का भाव प्रगट किया। आहाहा! देखो तो अस्तित्व! सत् को सिद्ध करने की पद्धति। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ पर दृष्टि पड़ने से राग की क्रिया से भिन्न होकर प्रथम तो सम्यग्दर्शन प्रगट करता है, पश्चात् स्वरूप में स्थिरता... स्थिरता... स्थिरता... स्थिरता (करते हुए) चारित्र (प्रगट करता है)। सर्वथा भाव जो शक्तिरूप से है, वह प्रगट हो जाता है, इसका नाम मुक्ति, इसका नाम मोक्ष। और मोक्ष हुआ तो कहते हैं कि संसार का दुःख का भाव था, उसका अभाव हुआ तो मोक्ष हुआ। आहाहा! लो! २१७ (श्लोक पूरा) हुआ। दो मिनिट है।

कलश - २१८

(मन्दक्रान्ता)

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटन्तौ
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ।।२६-२१८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ततः सम्यग्दृष्टिः स्फुटं तत्त्वदृष्ट्या तौ क्षपयतु' [ततः] तिस कारण से, [सम्यग्दृष्टिः] शुद्धचैतन्य अनुभवशीली जीव, [स्फुटं तत्त्वदृष्ट्या] प्रत्यक्षरूप है जो शुद्धजीवस्वरूप का अनुभव, उसके द्वारा [तौ] राग-द्वेष दोनों को [क्षपयतु] मूल से मेटकर, दूर करो। 'येन ज्ञानज्योतिः सहजं ज्वलति' [येन] जिन राग-द्वेष के मेटने से, [ज्ञानज्योतिः सहजं ज्वलति] शुद्धजीव का स्वरूप जैसा है, वैसा सहज प्रगट होता है। कैसी है ज्ञानज्योति? 'पूर्णाचलार्चिः' [पूर्ण] जैसा स्वभाव है-ऐसा, और [अचल] सर्व काल अपने स्वरूप है - ऐसा [अर्चिः] प्रकाश है जिसका, ऐसी है। राग-द्वेष का स्वरूप कहते हैं — 'हि ज्ञानं अज्ञानभावात् इह रागद्वेषौ भवति' [हि] जिस कारण [ज्ञानं] जीवद्रव्य, [अज्ञानभावात्] अनादि कर्मसंयोग से परिणमा है विभावपरिणति मिथ्यात्वरूप, उसके कारण, [इह] वर्तमान संसार अवस्था में [रागद्वेषौ भवति] राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति से, व्याप्य-व्यापकरूप आप परिणमता है। इस कारण 'तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्' [तौ] राग-द्वेष, दोनों जाति के अशुद्धपरिणाम, [वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ] सत्तास्वरूप दृष्टि से विचार करने पर, [न किञ्चित्] कुछ वस्तु नहीं। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे — सत्तास्वरूप एक जीवद्रव्य विद्यमान है; वैसे — राग-द्वेष, कोई द्रव्य नहीं; जीव की विभावपरिणति है। वही जीव, जो अपने स्वभावरूप परिणमे, तो राग-द्वेष सर्वथा मिटे। ऐसा होना सुगम है; कुछ मुश्किल नहीं है-अशुद्धपरिणति मिटती है; शुद्धपरिणति होती है।।२६-२१८।।

कलश - २१८ पर प्रवचन

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटन्तौ
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ।।२६-२१८।।

अरे! सम्यग्दृष्टि जीवो! आहाहा! देखो! है? सम्यग्दृष्टि अर्थात् सच्ची दृष्टिवन्त जीवों! अर्थात? **शुद्ध चैतन्य-अनुभवशील जीव...** आहाहा! जो अनादि का राग और पुण्य के भाव का वेदन है, वही मैं हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! क्या? **शुद्ध चैतन्य-अनुभवशील जीव...** आहाहा! सत्य दृष्टिवन्त समकिती उसे कहते हैं... आहाहा! शुद्ध चैतन्य अनुभवशील। अनुभव अकेला नहीं लिया, अनुभवशील। अनुभव उसका स्वभाव हो गया है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य के अनुभवशील। अनुभवशील स्वभाव हो गया। आहाहा! जैसे राग का अनुभव था, वैसे शुद्ध का अनुभव हो गया। अन्तर्मुख दृष्टि करने से, राग से भिन्न होने से। आहाहा! ऐसी बातें हैं, उसमें कहीं हाथ आता नहीं। है?

प्रत्यक्षरूप है जो शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव... आहाहा! आनन्द के नाथ का अनुभव करते-करते... आहाहा! अनु-भव। त्रिकाली आनन्द है, उसे अनुसरकर होना, राग को अनुसरकर होना, वह तो संसार है, वह दुःख है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप को अनुसरकर होना था, वह सम्यग्दृष्टि का अनुभव, **उसके द्वारा राग-द्वेष दोनों को मूल से मेटकर दूर करो।** आहाहा! वह पुण्य और पाप के भाव से भिन्न हुआ और सम्यग्दृष्टि हुआ। अब स्वरूप में रमणता करके, उन राग-द्वेष का त्याग करता है। आहाहा! तब तुझे वीतरागता और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होगी। उसका नाम धर्म का फल मोक्ष है। वह यह धर्म और यह धर्म का फल मोक्ष। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ५, सोमवार, दिनांक-२७-०२-१९७८, कलश-२१८, प्रवचन-२४३

कलशटीका २१८। फिर से। '**ततः सम्यग्दृष्टिः स्फुटं तत्त्वदृष्ट्या तौ क्षपयतु**' सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार चलता है। कहते हैं कि हे सम्यग्दृष्टि! जिसने वस्तु का स्वभाव दृष्टि में लिया है। चैतन्यरत्नाकर भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, अचल और पूर्ण, वह पूर्ण है और अचल अर्थात् ध्रुव है, चलित नहीं, ऐसी वस्तु को जिसने अनुभव में लिया है, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! वे सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा कहते हैं। **शुद्ध चैतन्य अनुभवशीली जीव...** ऐसा। सम्यग्दृष्टि की व्याख्या की। शुद्ध चैतन्य के अनुभवशील जीव। त्रिकाली जो शुद्ध चैतन्य स्वभाव परम पवित्र और आनन्दस्वरूप, उसका अनुभवशील। उसके अनुभव का जिसका स्वभाव है। आहाहा! यह धर्मी की पहली सीढ़ी। सम्यग्दृष्टि। आहाहा!

शुद्ध चैतन्य... त्रिकाली परम पवित्र प्रभु, ध्रुव स्वभाव जो है, उसका अनुभवशील है। यह पर्याय हुई। शुद्ध चैतन्य द्रव्य स्वभाव सत्ता, अस्तित्वरूप से जो महाप्रभु, उसका अनुभवशील। उसे अनुसरकर भवना अर्थात् अनुभव करना और वह अनुभव जिसका शील अर्थात् स्वभाव है... आहाहा! वह जीव सम्यग्दृष्टि कहलाता है। आहाहा! समझ में आया?

वह '**स्फुटं**' **प्रत्यक्षरूप है...** आहाहा! **शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव उसके द्वारा...** '**स्फुटं तत्त्वदृष्ट्या**' '**स्फुटं**' का अर्थ पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसका प्रत्यक्ष वर्तमान अनुभव। आहाहा! वह अनुभव **शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव, उसके द्वारा...** उस शुद्ध चैतन्यस्वरूप के अनुभव द्वारा राग-द्वेष को मिटाओ, राग-द्वेष को टालो। आहाहा! समझ में आया? **शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव...** आहाहा! **उसके द्वारा राग-द्वेष दोनों को मूल से मेटकर दूर करो।** आहाहा! है?

दो बात। एक तो चैतन्यसत्ता पूर्ण अचल वस्तु है, सत्तारूप से-अस्तिरूप से कायम ऐसा जो नित्यानन्द प्रभु, उसका अनुभवशील प्रत्यक्ष उसे आनन्द के वेदन के अनुभव से, उसे राग और द्वेष जो मलिन पर्याय है, उसे मिटाओ। ऐसी बात है। पहले

उसका ज्ञान में निर्णय तो करे कि वस्तु तो यह है। धर्म—सम्यग्दर्शन कैसे हो और सम्यग्दृष्टि कैसे हो, वह क्या करे? ऐसी बात है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु, जिसका तत्त्व अस्तिरूप से महाप्रभु पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञानादि एकरूप जिसका स्वरूप, ऐसी सत्ता का अनुभव करके... आहाहा! राग-द्वेष को मिटाओ। आहाहा! राग-द्वेष मिटाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

प्रथम इसे क्या करना? कि इसे तत्त्व महासत्ता प्रभु चैतन्यज्योति है, चैतन्य रत्नाकर, चैतन्य चिन्तामणि वस्तु है, उसकी दृष्टि करके अनुभव करना। आहाहा! और वह अनुभवी जीव को अनुभव द्वारा राग-द्वेष को मिटाना। ऐसी बात है। तो फिर यह भक्ति, पूजा और मन्दिर, यह सब कहाँ गया? यह सब राग के निमित्त हैं। राग को मिटाना है, उसे तो पहले रागरहित चीज़ जो शुद्ध चैतन्यघन है, अनन्त-अनन्त चतुष्टय शक्ति से विराजमान वस्तु है, आहाहा! आनन्द का बादशाह है, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का राजा है (उसे अनुभव करना)। आहाहा!

मुमुक्षु : राजा बड़ा या बादशाह बड़ा?

पूज्य गुरुदेवश्री : बादशाह कहो या राजा कहो, यहाँ तो एक ही है। राज्यते इति राजा। अपने स्वभाव की शोभा से शोभता है, वह राजा। आहाहा! वह बादशाह है, जगत का जाननेवाला-देखनेवाला। जाननेवाला-देखनेवाला, हों! आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा को, जिसे हित करना हो, उसे हितस्वरूप भगवान है, उसका आश्रय लेकर अनुभव करना। आहाहा! ऐसी बात है।

अनुभव करके **राग-द्वेष दोनों को मूल से मेटकर दूर करो।** आहाहा! क्योंकि राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव, वे दुःखरूप हैं। मिटानेयोग्य हैं; रखनेयोग्य नहीं। आहाहा! चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का राग हो, परन्तु वह मिटानेयोग्य है, टालनेयोग्य है। उससे लाभ नहीं होता, उसे रखनेयोग्य नहीं है। आहाहा! इस प्रकार से उसे स्वरूप के अनुभव से मिटाओ, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : महाव्रत तो कुन्दकुन्द भगवान ने पालन किये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत पालन कहाँ किये थे? विकल्प था, उसे जानते थे।

पालन किये, यह तो व्यवहारनय से कथन है। पालन कौन करे? आहाहा! यहाँ तो राग है, उसे भी आत्मा के अनुभव द्वारा टालो। वे महाव्रत के परिणाम भी संसार हैं, राग है। आहाहा! जगपंथ है। मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! और स्वयं तो महाप्रभु है। आहाहा! जिसके चैतन्यरत्नाकर-समुद्र, रत्न, चैतन्य के रत्न के समुद्र भरे हैं। आहाहा! वह अतीन्द्रिय रत्न का समुद्र है, प्रभु! आहाहा! ध्रुव, हों! पूर्ण अचल। अभी कहेंगे। '**पूर्णाचलार्चिः**' है वह तो। पूर्ण स्वरूप और अचल अर्थात् पलटता नहीं, ऐसी '**अर्चि**' अर्थात् जिसका प्रकाश है। आहाहा! ऐसी बात है। यह कहीं...

जिन राग-द्वेष के मेटने से... 'ज्ञानज्योतिः सहजं ज्वलति' आहाहा! **ज्ञानज्योति अर्थात् शुद्ध जीव का स्वरूप...** ज्ञानज्योति अर्थात् शुद्ध जीवस्वरूप। त्रिकाली चैतन्य शुद्ध जीवस्वरूप। राग-द्वेष मिटाने से। आहाहा! है? **शुद्धस्वरूप जैसा है, वैसा...** जैसा है, जैसा है, वैसा प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी बातें। वे चिल्लाहट मचाये, अरे! यह तो व्यवहार का तो लोप करते हैं। परन्तु व्यवहार का लोप अर्थात् राग का लोप करने के लिये तो यह वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु निश्चय बिना व्यवहार आया कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ये मानता है। क्या हो? भाई! प्रभु... प्रभु... प्रभु! इसे कहाँ जाना? भाई तुझे! तू तो पूर्ण अचल '**अर्चि**' प्रभु है न! आहाहा! पूर्ण, चलित नहीं, ऐसी चीज़ ध्रुव, ऐसा तेरा प्रकाश है न! आहाहा! ऐसे स्वरूप की रमणता करने से राग-द्वेष को मिटा। आहाहा! कैसी है वह चीज़ प्रगट होने पर? आहाहा! ज्ञानज्योति **सहज प्रगट होती है।** है न? स्वाभाविक वस्तु है, वह प्रगट होती है। आहाहा!

कैसी है ज्ञानज्योति? अर्थात् कि शुद्ध जीवस्वरूप। ऐसा। आहाहा! शुद्ध जीवस्वरूप कैसी है ज्योति वह? है? '**पूर्णाचलार्चिः' जैसा स्वभाव है ऐसा...** पूर्ण का अर्थ ऐसा किया, देखा? जैसा स्वभाव है पूर्ण... आहाहा! एक समय की पर्याय के अतिरिक्त उसका स्वभाव तो पूर्ण है। **जैसा स्वभाव है ऐसा...** उसकी व्याख्या ऐसी की है। पूर्ण उसका स्वभाव है। ऐसा उसका अनुभव करने पर वह पर्याय में स्वभाव प्रगट होता है। वे राग-द्वेष मिटाने पर वह पर्याय में प्रगट होती है। आहाहा!

मूल सामर्थ्य इसमें है, इसकी प्रतीति नहीं आती। बाहर के भपके के आश्चर्यकारी दिखाव में रुक जाने से आश्चर्यकारी चीज़ अन्दर है, उसमें उसे जाना पोसाता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह बाहर की सब भभक तो श्मशान की हड्डियों की चमक है। आहाहा! अन्दर तो भगवान अमृत का सागर डोलता है। ऐसे पूर्ण अचल '**अर्चि**'। पूर्ण का अर्थ किया कि जैसा है वैसा, ऐसा। वस्तु जैसी है, वैसी। आहाहा! सत्ता—जिसका अस्तित्व जैसा है, वैसा। आहाहा! पूर्ण **जैसा स्वभाव है ऐसा... 'अचल'।** यह तो पूर्ण का अर्थ जैसा है, वैसा किया। अब अचल का अर्थ क्या किया? **सर्व काल अपने स्वरूप है...** अपने स्वरूप से सर्व काल भगवान पूर्णानन्द से है। आहाहा! सर्व काल वह तो पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्त स्वरूप त्रिकाल है। आहाहा! ऐसी बात!

सर्व काल अपने स्वरूप है ऐसा... जैसा स्वभाव है, वैसा और सर्व काल अपने स्वरूप से है, ऐसा। ऐसा। आहाहा! क्या कहा यह? कि पूर्ण अर्थात् जैसा स्वभाव है, वैसा और सदा काल प्रकाशमान रहता है, वैसा। आहाहा! समझ में आया? अपने स्वरूप से है... है। अचल अर्थात् उस स्वरूप ही है। आहाहा! ऐसी '**अर्चि**' **प्रकाश है जिसका,...** ऐसी ज्ञानज्योति भगवान आत्मा है। आहाहा! बाहर की चीज़ें इसे खींचती है, राग-द्वेष करने को। अन्दर में इसका खिंचाव नहीं होता। आहाहा! बाहर की चीजों में आकर्षित हो जाता है, उससे स्वरूप की प्रतीति इसे नहीं आती। स्वरूप के सामर्थ्य का भरोसा, स्वरूप के सामर्थ्य का भरोसा विस्मयकारी, आश्चर्यकारी है, वह भरोसा नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है, सूक्ष्म बहुत, भाई! आहाहा! लोग तो यह बाहर की क्रिया करो और यह करो और उसी और उसी में... वह तो सब राग है, यहाँ राग को तो मिटाने की बात है, रखने की बात नहीं।

राग-द्वेष का स्वरूप कहते हैं—वह अपना स्वरूप पहले कहा। '**पूर्णाचलार्चिः**'। पूर्ण जिसका स्वभाव है ऐसा, अचल अर्थात् तीनों काल ऐसा का ऐसा जिसका प्रकाश है, ऐसा वह भगवान है। आहाहा! समझ में आया? दवा कुछ ले, इस बुखार पर, वह क्या कहलाती है? कुनेन, कुनेन लो तो इसे भरोसा है कि यह बुखार मिटायेगी। भरोसा, जड़ का भरोसा इसे है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह भरोसा सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नहीं। वह तो कैसे होता है, इसकी खबर नहीं। आहाहा! ग्रास लड्डू इतना डालकर इसे भरोसा है कि नीचे उतर जायेगा, ऐसा। यहाँ क्या है? पोल कितनी है? कहाँ जाता है, इसकी खबर नहीं होती। रोटी का टुकड़ा, रोटी का टुकड़ा कहीं फँस जायेगा तो? इसकी शंका नहीं वहाँ। पानी पीवे तो वहाँ... फँसा हो, अटका हो, वह पानी में बाहर निकल जाये। आहाहा! यहाँ तो कहना है कि जगत के बाह्य पदार्थ के कारण-कार्य का भरोसा है कि इससे ऐसा होगा और इससे ऐसा होगा। रोटी खाऊँ तो भूख मिटेगी और पानी पीने से प्यास मिटेगी और दवा खाऊँ तो रोग मिटेगा, यह सब भरोसा। आहाहा! यह भरोसा करनेवाला तो आत्मा ही है, उल्टा। हें? आहाहा! परन्तु उसका स्वरूप ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वरूप तो पूर्णानन्द से भरपूर अचल ऐसी की ऐसी ज्योति सत्ता सदाकाल चैतन्य के रत्न से भरपूर सागर से—समुद्र से भरा प्रभु है। आहाहा! ऐसे प्रकाश को अनुभव द्वारा राग-द्वेष को मिटाये। अब यह राग-द्वेष कैसे है, यह कहेंगे। वह पहले स्वरूप कहा, अब राग-द्वेष कैसे हैं, यह कहते हैं। आहाहा!

'हि ज्ञानं अज्ञानभावात् इह रागद्वेषौ भवति' आहाहा! **जिस कारण जीवद्रव्य...** वस्तु, भगवान आत्मा वस्तु। **अनादि कर्म संयोग से परिणमा है...** कर्म के संयोग से वह परिणमा है। वह वस्तु तो है, वह है, परन्तु कर्म के संयोग से अनादि से विकाररूप परिणमा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है, कहते हैं।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा आता है कि अनादि का कारण होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण नहीं होता, कारण तो ना ही करते हैं। कारण कहाँ कहते हैं? यहाँ तो कहते हैं कि अनादि से राग की उत्पत्ति इसने की है कर्म के संयोग से। बस! इतनी बात है। संयोग, वह तो बताया। उससे हुआ, ऐसा यहाँ नहीं कहा। उसकी स्वभाव पर दृष्टि नहीं और संयोग पर दृष्टि है तो उसके लक्ष्य से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। वह कर्म के संयोग से हुई, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

अनादि कर्म संयोग से परिणमा है... वह तो है, इतनी बात यहाँ सिद्ध करनी है।

कर्मसंयोग है इसलिए। और परिणमा है स्वयं अपने भाव को भूलकर। **विभावपरिणति मिथ्यात्वरूप,...** आहाहा! वह मिथ्यात्वरूप स्वयं परिणमा है। कर्म के संयोग के लक्ष्य से स्वयं परिणमा है। आहाहा! कर्म ने इसे राग-द्वेषरूप परिणमाया है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्मसंयोग वह अनादि से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, वस्तु है, उस पर लक्ष्य है, बस! लक्ष्य है, इसलिए राग-द्वेष करता है, परिणमता है। आहाहा! वह कहीं कर्म स्वयं राग-द्वेष कराता नहीं। कर्म को कर्म की खबर नहीं कि मैं कौन चीज़ हूँ? आहाहा! अज्ञानी को अपनी चीज़ कौन है इसकी खबर नहीं। आहाहा! आहाहा! कर्म और शरीर को खबर नहीं कि हम कौन हैं? ऐसा जिसे अज्ञान है और आत्मा कौन है, ऐसी अज्ञानी को भी खबर नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत बापू ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को फिर निश्चयाभास है, व्यवहार से होता नहीं, ऐसा मानते हैं, इसलिए व्यवहार को मानते नहीं—ऐसा (वे) कहते हैं। व्यवहार है परन्तु व्यवहार टालनेयोग्य है।

मुमुक्षु : निश्चय हो वहाँ सच्चा व्यवहार होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता तो है न। पूर्ण वीतराग न हो तो। आहाहा! टालना है तो वह है या नहीं? है, उसे टालना है या नहीं, उसे टालना है? आहाहा! और यह है, उसे मानना है या न हो उसे मानना है? आहाहा!

भगवान चैतन्यस्वरूप... आहाहा! अचल पूर्ण '**अर्चि**'—प्रकाश की मूर्ति प्रभु है। अरूपी चैतन्यप्रकाश की मूर्ति ध्रुव भगवान है। उसे अनुभव करने से राग-द्वेष टलते हैं। वे राग-द्वेष कैसे थे? क्यों थे? कि वे कर्म के संयोग से विभावरूप जीव परिणमा, इसलिए वे राग-द्वेष थे। आहाहा! ऐसा है। वीतराग मार्ग ऐसा है। अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव प्रभु दिव्यध्वनि में इस प्रकार से प्रभु ने फरमाया, वह सन्त आड़तिया होकर बात करते हैं। माल प्रभु का है। आहाहा! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वस्तु है, वह तो ऐसी पूर्ण है, परन्तु तब वह विकार क्यों

हुआ? ऐसा कहते हैं। वह विकार दूसरी चीज़ के सम्बन्ध से, सम्बन्ध से विकार उत्पन्न हुआ। आहाहा! यहाँ सम्बन्ध तोड़ा और वहाँ सम्बन्ध जोड़ा। आहाहा! ऐसी चीज़ अब। आहाहा! छोटी-छोटी उम्र के चले जाते हैं। देखो तो बीस-बीस वर्ष के बेचारे। निमोनिया और यह... आहाहा!

ओहो! ऐसी स्थिति में भी चोरिया करे। आहाहा! मोती का चोरिया यह सब देखो न! कुण्डला की बात की न? कोई दर्शन करने आये, वे कहे, हम इसे मानते नहीं, परन्तु हमारा भाई मानता है। ऐसा करके वह चाँदी का उठाकर ले गया। क्या कहलाता है? सिंहासन। चाँदी का सिंहासन ले गया। अर र र! ये क्या करते हैं? कुण्डला में। भाई ने अभी बात की। क्या करता है? जीव! भगवान की मूर्ति उसमें रखी थी, उसे नीचे रखकर ले गया। दर्शन करने आये थे। क्या करते हैं यह? वह अपना स्वभाव भूल जाता है और इसमें मानो कुछ मिल जायेगा। परन्तु पाव घण्टे में पाँच सौ रुपये का सिंहासन मिले। किसलिए... पाँच सौ रुपये का होगा। वह और बेचे... आहाहा! क्या करते हैं? कहाँ जाना है प्रभु तुझे। आहाहा! तेरी अस्तिवाली चीज़ को तो स्वीकारता नहीं और तुझमें नहीं, ऐसी चीज़ को स्वीकार कर तू ऐसा करता है। तू यह क्या करता है? प्रभु! यह तुझे लांछन है। यह राग-द्वेष है, वह लांछन है, कलंक है। आहाहा! ऐसा निष्कलंक भगवान आत्मा को अनुभव करने से वे राग-द्वेष की उत्पत्ति संयोग से हो, उसका नाश कर सकता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। दुनिया के साथ मिलान (खाये ऐसा नहीं)। आहाहा!

मुमुक्षु : अनादि से कर्मसंयोग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि है न, अनादि है न! है अनादि, इतनी बात है। उससे हुआ है, यह प्रश्न यहाँ नहीं। वह वस्तु अनादि की है, विकार का भाव, वह संयोग से अनादि से करता है, बस इतना।

मुमुक्षु : राग पहले हुआ या कर्म पहले हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म दोनों अनादि से साथ हैं। कर्म पर लक्ष्य जाता है तो कर्म चीज़ है न? लक्ष्य जाता है, तब राग-द्वेष उत्पन्न करता हैं, बस!

मुमुक्षु : कर्म का उदय तो अन्तर्मुहूर्त बाद आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय-फुदय की कुछ बात नहीं। उदय आवे जड़ में। यहाँ तो उसके ऊपर लक्ष्य करता है, तब राग-द्वेष होते हैं, इतनी बात है। आहाहा! कर्म से होते नहीं। कर्म ने कराये नहीं। मात्र कर्म निमित्तरूप से संयोगरूप से है, इतनी सिद्ध किया है। आहाहा! राग-द्वेष कैसे होते हैं, उसकी उत्पत्ति की बात की है कि, संयोग के लक्ष्य से उत्पत्ति होती है। और स्वभाव के अनुभव से उनका नाश होता है। आहाहा! ऐसी बात है कहाँ? परमेश्वर वीतराग के अतिरिक्त... और वह भी दिगम्बर के अतिरिक्त... आहाहा! दिगम्बर धर्म वह कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का स्वरूप है, वैसा भगवान ने देखा वैसा कहा, वैसा बताया। आहाहा! ऐसा मार्ग, अरे! जिसे सुनने को न मिले, अरे! क्या हो? कहाँ जाये? समझ में आया?

यहाँ तो दो बातें सिद्ध कीं। एक ओर भगवान पूर्ण अचल '**अर्चि**' विराजता है। आहाहा! अर्थात्? जैसा जिसका स्वभाव है, उस प्रकार से, पूर्ण रीति से प्रकाशित करता है। आहाहा! और एक ओर कर्म के संयोग से राग-द्वेष की उत्पत्ति करता है। वह स्वयं अपने अपराध से करता है। कर्म से विकार होता है और कर्म कराता है, इस बात में एक भी प्रतिशत सच्चाई नहीं है। अभी विवाद पूरा यह है न? कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण होता है। आहाहा! यह श्लोक भी ३७२ गाथा के पहले का है। ३७२ गाथा है न? कुम्हार घड़ा बनाता है, यह हम देखते नहीं, ऐसा अमृतचन्द्राचार्य पुकारते हैं, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य पुकारते हैं। घड़ा कुम्हार से हुआ, ऐसा हम देखते नहीं, हमको दिखता नहीं। घड़ा मिट्टी से हुआ, यह हम देखते हैं। आहाहा! हें? ऐसा है। उसके पहले का यह श्लोक है। ३७२ गाथा है न? उसके पहले के ये दो श्लोक हैं। आहाहा! उसके बाद का वह आयेगा। '**यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः**' आहाहा! थोड़ा भी सत्य को सत्यरूप से इसे जानना चाहिए। गड़बड़ करके सत्य जाने, वह सत्य नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू परमात्मा मेरी जाति की तेरी जाति है। आहाहा! तू मेरी नात का है। समझ में आया? परन्तु तेरी दशा में तूने कर्म के संयोग से विकार उत्पन्न किया, वह तूने अपराध किया है। आहाहा! यह तो राग-द्वेष की उत्पत्ति है, ऐसा

सिद्ध किया, इतना। अब है, उसे टालने के लिये यह बात चलती है। आहा! इतनी बात तो सुनते हुए भी कितनों को मुश्किल पड़ता है। क्या कहते हैं यह? क्या बात करते हैं यह? आहाहा! बापू! मार्ग यह है, भाई! आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ' वीतराग जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ और दिगम्बर सन्तों ने जो बात की है (वह) त्रिकाल परमसत्य है। आहाहा! उसे समझना लोगों को आता नहीं। वाड़ा में पड़े हैं उन्हें भी खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भगवान एक ओर पूर्ण है। जैसा स्वभाव है, वैसा ही पूर्ण रीति से है और एक ओर राग-द्वेष की उत्पत्ति संयोग के लक्ष्य से होती है। है न? वह मिथ्यात्वरूप भाव है, ऐसा कहा, देखा? **विभाव परिणति मिथ्यात्वरूप...** है। आहाहा! संयोग के लक्ष्य से विभाव होता है, वह मेरा है, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! क्या कहा यह? कि त्रिकाली शुद्ध चैतन्य भगवान है, उसके भरोसे में जाना, वह सम्यक्त्व है परन्तु कर्म के संयोग में विभाव होता है, वह मेरा, उसमें जाना, वह मिथ्यात्व है। आहाहा!

अब इसमें वाद-विवाद—बड़ी चर्चा चले, लो! वर्णीजी के साथ चर्चा हुई थी, २१ वर्ष पहले। निमित्त—कर्म से कुछ नहीं होता। तो वे कहें, नहीं। ज्ञानावरणीय कुछ करता नहीं। तो कहे, करता है। अरे! प्रभु! क्या है? उसका (दोष) नहीं, वह प्रथा थी। उसे प्रथा थी। यह प्रथा उनके ख्याल में ही आयी नहीं थी। विकार अपने से स्वतः अपने से अपराध करता है। आहाहा! तब कर्म को निमित्त कहा जाता है, बस! वह निमित्त कुछ करता नहीं। आहाहा! यह तो अभी कैलाशचन्दजी ने सिद्ध किया। तब तो नहीं था। सोनगढ़वाले निमित्त को मानते नहीं, ऐसा नहीं है, परन्तु निमित्त से पर में होता है, ऐसा मानते नहीं। दो बातें अभी स्वीकार की है। एक क्रमबद्ध की स्वीकार तब नहीं की। क्रमबद्ध है, क्रमबद्ध बराबर है, ऐसा माना है। आहाहा! बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है। आहाहा! त्रिलोक के नाथ सीमन्धर भगवान ने प्रकाशित किया है, वह यह मार्ग है। आहाहा!

अरे! 'नयन के आलस्य से रे मैंने निरखे न नयन से हरि'। मेरे सम्यक् नेत्र बिना

मैंने चैतन्य-भगवान को देखा नहीं, निहारा नहीं और मिथ्यात्व के कारण मैंने राग को ही अपना स्वरूप माना है। आहाहा! क्योंकि जो सत्ता पूर्ण शुद्ध है, वह सत्ता नजर में आयी नहीं और राग की सत्ता है, ऐसे नजर में आयी, आहाहा! इससे उसे ऐसा हुआ कि राग, वह मैं हूँ। यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञानी को राग का कर्ता कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा है, कहा नहीं? वह कर्ता है। मिथ्यात्वी। अज्ञान कर्ता है, मिथ्यात्व का कर्ता वह है। कर्म ने मिथ्यात्व कराया है, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! राग का कर्ता अज्ञानी स्वयं है। यहाँ पाठ में यह आया था न? '**ज्ञानं अज्ञानभावात्**' है न? पहले पद में दूसरा बोल। '**रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्**' आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप चिदानन्द, वह '**अज्ञानभावात्**' राग-द्वेष करता है, अज्ञान से। आहाहा! समझ में आया? वह मिथ्यात्वभाव—राग-द्वेष कर्म कराता है, कर्म है तो विकार मुझमें होता है। परन्तु तुझमें अज्ञान है, स्वरूप का भान नहीं; इसलिए विकार होता है। सत्य तो यह है। आहाहा! किसी द्रव्य को कोई द्रव्य स्पर्श करता कहाँ है? आहाहा! कर्म का संयोग कहीं जीव को स्पर्श नहीं करता। मात्र संयोग चीज़ है। वहाँ उसका लक्ष्य जाता है। इतनी बात है। यह लक्ष्य जाता है परन्तु राग कहीं उसे स्पर्श नहीं करता। राग करे, वह राग कहीं कर्म को स्पर्श नहीं करता, तथा कर्म का उदय है, वह कहीं राग को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा है, भाई! दुनिया चाहे जो मानो, चाहे जो कल्पना करो, परन्तु वस्तु तो यह है।

मुमुक्षु : ईश्वर कर्ता नहीं, इसलिए जो जीव जैसा कर्म करे, वैसा भोगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अज्ञानी है, मूढ़ है। ईश्वर कर्ता माने और यह कर्म कर्ता माने। वह ईश्वर चैतन्य है, उसे कर्ता माने और यह कर्म कर्ता माने, जड़ को कर्ता माने। महामूढ़ है।

मुमुक्षु : भगवान के ऊपर दोष नहीं डाला, कर्म के ऊपर दोष डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न कि, जड़ हमको कराता है। वह ईश्वर हमको कराता है। वह तो चैतन्य है और यह जड़ मिट्टी कर्म है, वह हमको कराता है। आहाहा! विभाव

का परिणमन तो अपना अपने से पर के लक्ष्य से स्वयं अपराध करता है। पर से बिल्कुल एक प्रतिशत भी नहीं। आहाहा! विकार में कर्म का एक प्रतिशत भी नहीं। दोकड़ा को क्या कहते हैं? टका? यह बड़ी चर्चा हुई थी, यहाँ सेठ आये थे। पहले-वहले आये थे न सेठ यहाँ? हुकमीचन्दजी! (संवत्) २००५ के वर्ष। २९ वर्ष हुए। पण्डित जीवंधरजी साथ में थे। वे कहे, निमित्त के पचास प्रतिशत रखो, और पचास रखो इसकी ओर के— उपादान के। और हमारे दामोदर सेठ थे वे तो और कहे कि महाराज! तुम पुरुषार्थ की बात बात करते हो, आत्मा से ही उल्टा होता है। तो इक्यावन प्रतिशत पुरुषार्थ के रखो और ४९ प्रतिशत रखो कर्म के। यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष की पहले की बात है। कहा, एक भी प्रतिशत नहीं। कर्म में कर्म के सौ प्रतिशत और विकार में विकार के सौ प्रतिशत, अपने से। थोड़ा इसका भाग और थोड़ा इसका भाग, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! अरे! यह भूल क्या करता है, इसकी भी जिसे यथार्थ प्रतीति नहीं, वह भूल कराता है कर्म, इसमें तो अपने आता है, स्तुति में नहीं आता? भगवान की स्तुति में। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' आता है? चन्द्रप्रभ (भगवान) की स्तुति में आता है। 'कर्म विचारे कौन' हें? 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' आहाहा! कर्म जड़ हैं, वह परद्रव्य को स्पर्शता नहीं और तुझे राग-द्वेष करावे? अर र रर!

मुमुक्षु : जो नोकर्म में दोष डाले, उसकी अपेक्षा तो अच्छा न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सब समान है। आयेगा अभी यहाँ। यहाँ आयेगा। यह आयेगा, देखो उसमें। आठ कर्म, शरीर,... बाद के श्लोक में आयेगा। २१९। २१९ के पीछे है, देखो! **आठ कर्मरूप अथवा शरीर, मन, वचन—नोकर्मरूप अथवा बाह्य भोगसामग्री इत्यादिरूप है जितना परद्रव्य वह, द्रव्य का स्वरूप देखने पर सच्ची दृष्टि से अशुद्ध चेतनारूप है जो राग-द्वेषपरिणाम उनको उपजाने में समर्थ नहीं दिखलाई देता...** है? आहाहा! यह बात तो हमारे (संवत्) १९७१ से चलती है। सम्प्रदाय से विरुद्ध। १९७१ के वर्ष, कितने वर्ष हुए? ६३। तब से चलती है। वह कहे, संशय मिथ्या भ्रमणा कर्म से होती है। बिल्कुल हराम है, कहा भ्रमणा कर्म से होवे तो। भ्रमणा स्वयं भगवान को भूलकर भ्रमणा स्वयं उत्पन्न करता है। आहाहा! पश्चात् यह ऐसा कहे, पचास प्रतिशत यह रखो और पचास यह रखो।

मुमुक्षु : इक्यावन रखो अपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और सेठ कहता था। इक्यावन पुरुषार्थ के रखो और उनपचास कर्म के रखो। पण्डित कहे, कानजीस्वामी कहते हैं वह मानना पड़ेगा। आहाहा! यह चीज़ बापू! यह तो परमसत्य का प्रवाह आया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जँचे न जँचे, स्वतन्त्र है। माने, न माने, दूसरे प्रकार से कल्पना करे कि यह तो एकान्त है, कर्म से विकार नहीं होता? शास्त्र में कार्य के दो कारण कहे हैं। एक कारण को तो औपचारिक निमित्त को देखकर उपचार किया है। वास्तविक कारण तो स्वयं ही है। आहाहा! और मोक्ष के मार्ग के लिये भी दो कहे हैं। दो नहीं, बापू! एक ही मोक्ष का मार्ग है। दो मोक्ष के मार्ग का कथन तो निरूपण में है। कथन में है, वस्तु में नहीं। वस्तु तो एक ही मोक्षमार्ग है। भगवान आत्मा के अवलम्बन में दृष्टि, ज्ञान और रमणता उत्पन्न होती है, वह एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में राग आवे वह मोक्षमार्ग के आरोप का कथन किया है। वह तो बन्ध का मार्ग है। आहाहा! आहाहा!

एक पीड़ा रात्रि में सिर की हो या शूल चढ़े, वह एक रात्रि जाना कठिन पड़ती है ऐसे। हैं? अरे! ऐसा बोले कि आज तो रात्रि बड़ी हो गयी। बापू! रात्रि तो जो है, वह है। आहाहा! ऐसी पीड़ा उठे। आहाहा! भगवान! यह तो साधारण दुःख है। इससे तो अनन्त गुण दुःख नरक में भोगे हैं, भाई! आहाहा! यह तेरी दुःख की दशा सुनकर लोग रोने लगे, ऐसे तेरे दुःख हैं, भाई! आहाहा! नरक और निगोद में बापू! तूने काल व्यतीत किया, भाई! वह इस मिथ्यात्व के कारण है। मिथ्यात्व के गर्भ में अनन्त भव पड़े हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, परन्तु वह मिथ्यात्व किया क्यों? कि किया तूने। कर्म के कारण मिथ्यात्व हुआ है, इसलिए भूल हुई है, इस बात में एक प्रतिशत भी सच्चाई नहीं। दोकड़ो अर्थात् टका (प्रतिशत)। आहाहा! यह तो जैन में जन्मा हो, वह सीधा ऐसा ही माने (कि) कर्म के कारण विकार होता है और शुभभाव से धर्म होता है। इसलिए कर्म के कारण धर्म होता है। आहाहा! कर्म के कारण भाव शुभ हो और शुभभाव के कारण मोक्ष हो, तो कर्म के कारण मोक्ष हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में कथन तो ऐसा ही आता है कि अन्तरंग-बहिरंग व्याप्ति से कार्य होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्याप्ति-व्याप्ति व्यवहार। व्याप्ति नहीं। उस व्याप्ति का अर्थ ८४ गाथा में किया है। बाह्य चीज़ है इतना। व्याप्ति अपने में है, बस! व्याप्य-व्यापक अपने में है, पर के साथ व्याप्ति कुछ है ही नहीं। आहाहा! ८४ गाथा में आता है। उसका अर्थ उल्टा करते हैं। बाह्य व्याप्ति है। व्यापे किस प्रकार? बाह्य चीज़ है। आहाहा! आत्मा व्यापक अज्ञानभाव से और विकार व्याप्य अज्ञानभाव से। बस! व्याप्य अर्थात् कार्य, कार्य का कारण स्वयं अज्ञानभाव और विकार उसका कार्य। आहाहा! उसमें कर्म का कुछ दोष जरा भी हराम है, कहते हैं, बापू! आहाहा! तू अपराधी होकर विकार करे और डाले कर्म के ऊपर... कहा है, उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक में, वहाँ कहा था, तब २१ वर्ष पहले, सब बैठे थे, वर्णीजी और सब (बैठे थे)। जैन की आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभवे नहीं, ऐसा पाठ है। ऐसी अनीति संभवे नहीं। कर्म विकार कराता है, यह तेरी अनीति है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! जिनाज्ञा माने और वीतराग को मानता हो तो यह तो बड़ी अनीति है परन्तु यह कहाँ निवृत्ति है? जिस वाड़ा में पड़ा, वह पड़ा और उसमें से जरा घण्टे आधे घण्टे भाग ले, वह भी ऊपरी तौर से, वह कहता हो, उसे माने और चला जाये। आयुष्य पूरा हो जाये। आहाहा! हैं? क्या?

मुमुक्षु : कर्म के संयोग से स्वयं परिणमता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग से स्वयं परिणमता है। संयोग का लक्ष्य करता है, इसलिए परिणमता है, ऐसा कहते हैं। स्पर्श नहीं करता। संयोग है, स्वभाव नहीं। संयोगी चीज़ है, इतना कहा। संयोग के लक्ष्य से, लक्ष्य वहाँ है न उसका? यहाँ सत्ता का लक्ष्य तो है नहीं। वह स्वयं परिणमता है, स्वयं अपने से। जरा भी कर्म का दोष नहीं। आहाहा! देखो! है इसमें?

राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति... होती है। देखो! **शुद्ध जीव का स्वरूप जैसा है, वैसा सहज प्रगट होता है।** राग-द्वेष कैसा है? **विभावपरिणति मिथ्यात्वरूप...** है। आहाहा! संयोग के लक्ष्य से; संयोग से नहीं। आहाहा! अरे रे! धर्म के बहाने भी फँसता

है न! साधु हो तो भी वहाँ ऐसा माने कि कर्म के कारण विकार होता है। ऐसा लिखता है। (जैन) पत्रिका में आता है। सोनगढ़वाले कर्म से विकार होता है, ऐसा नहीं मानते। नहीं, भूल है। ऐसा पत्रिका में आता है। अरे! प्रभु! भाई! तुझे खबर नहीं। वह अपराध भी स्वयं अपने से करता है।

आज और बराबर नींद नहीं थी, कल से तो यही ऐसा चला कि देखो! शास्त्र में देखो तो सही। विकार के परिणाम षट्कारकरूप से पर्याय स्वयं करती है। विकार के परिणाम... ऐसे तो अपने सब कहा। विकारी या अविकारी पर्याय होती है, वह षट्कार के परिणमन से स्वयं से है। निमित्त से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं। आहाहा! षट्कारक का परिणमन पर्याय में जो विकृत की अवस्था (होती है), वह पर्याय स्वयं कर्ता, पर्याय स्वयं कार्य, पर्याय स्वयं साधन। कर्म-बर्म काय और कर्म साधन-फाधन नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! उस विकृत पर्याय का आधार पर्याय, विकृत से विकृत हुआ है, कर्म से नहीं। आहाहा! और विकृत होकर विकृत में रहा है। विकार कर्म में रहा है, ऐसा नहीं। तथा वह विकार द्रव्य-गुण में रहा है, ऐसा नहीं। न्याय से इसे पकड़ना पड़ेगा न यह तो। आहाहा! अरे! ऐसा समय कब मिले? भाई! कहो, वीतराग का मार्ग कब सुनने को मिले? यह तो महा दुर्लभ चीज़ है। वीतराग कहते हैं, तत्प्रमाण हो तब न? आहाहा!

उसके कारण वर्तमान संसार अवस्था में... 'रागद्वेषौ भवति' देखा? **राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति से व्याप्य-व्यापकरूप आप परिणमता है।** भाषा देखी? आहाहा! क्या कहा यह? पर्याय वही व्यापक है और पर्याय वही व्याप्य है वास्तव में तो। द्रव्य कहीं व्यापक—लम्बा होता नहीं। आहाहा! यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम में व्यापक भी स्वयं और व्याप्य भी स्वयं। कर्म व्यापक और व्याप्य यह विकार, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! अरे! इसे कितनी भूलें मिटानी और भूल टालने का साधन क्या? यह अन्दर कहेंगे। आहाहा!

व्याप्य-व्यापकरूप... व्याप्य अर्थात् अवस्था—कार्य। व्यापक अर्थात् कारण। कारण-कार्यरूप से स्वयं परिणमता है। आहाहा! विकार का कारण कर्म और कार्य

विकार व्याप्य, ऐसा है नहीं। यह गड़बड़ तीनों सम्प्रदाय में है। उनमें तो हो। स्थानकवासी, श्वेताम्बर तो व्यवहार प्रधान होकर उन्होंने शास्त्र बनाये। यह तो परम शास्त्र है, भगवान के कहे हुए हैं। यह सन्तों के कहे हुए वे भगवान के ही कहे हुए हैं। आहाहा! इनमें भी यह है, उसमें भी ऐसा ही अर्थ करते हैं सब। बड़ा विवाद है। (संवत्) २०१३ के वर्ष। नहीं, ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा में ज्ञान की दशा हीनाधिक करता है, यह नहीं। स्वयं से हीनाधिक होती है। क्या ज्ञानावरणीय कुछ करता नहीं? नहीं। ग्यारह अंग माननेवाला हो तो भी नहीं। ज्ञानावरणीय करता है? ज्ञान की हीन दशा ज्ञानावरणीय बिना होती है? आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में कथन आता है कि भावक कर्म और भाव्य राग-द्वेष।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरे प्रकार से है। वह तो स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से। स्वभाव की दृष्टि हुई, शुद्ध चैतन्य भगवान को देखा, माना, फिर विकृत अवस्था उसका व्याप्य नहीं। पश्चात् ज्ञान का ज्ञेय है; परन्तु इस अपेक्षा से। कर्म से हुआ है, ऐसा नहीं। परन्तु स्वभाव जो शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप सम्यग्दर्शन में आया, इसलिए उसका व्याप्य अब विकार कैसे होगा? वस्तु है, वह तो निर्विकार है, गुण निर्विकार है, उनका व्याप्य विकार कैसे हो सकता है? इस दृष्टि की अपेक्षा से (बात है)। आहाहा! यहाँ तो अभी तो मिथ्यात्वदशा में जो विकार होता है, वह व्याप्य और व्यापक जीव स्वयं ही है। पर का एक लेशमात्र अंश नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह कहा, देखो!

राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति से व्याप्य-व्यापकरूप आप परिणमता है। देखा? **इस कारण 'तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्'** आहाहा! **राग-द्वेष दोनों जाति के अशुद्ध परिणाम... 'वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ' सत्तास्वरूप दृष्टि से विचार करने पर...** आहाहा! भगवान आत्मा का सत्ता का शाश्वत् का अस्तित्व असली आनन्द और ज्ञान के सत्ता के अस्तित्व के विचारने पर। आहाहा! ऐसा है। **'वस्तुत्व'** है न शब्द? **'वस्तुत्वप्रणिहित' सत्तास्वरूप दृष्टि से विचार करने पर कुछ वस्तु नहीं।** राग वस्तु में कहाँ है? वह तो अज्ञानभाव से उत्पन्न किया हुआ विकारभाव है। वस्तुदृष्टि से देखने पर वह वस्तु है ही नहीं। अन्दर में भी नहीं, पर्याय में कहाँ आयी है? आहाहा!

अब ऐसा पर्याय और यह और यह। कब समझना इसमें? हमारे स्त्री, पुत्र पकड़े हैं, उन्हें निभाना या इसमें यह धन्धा करना हमारे? प्रवीणभाई! आहाहा! बापू! करने का तो यह है। यह पोपटभाई कहकर नहीं गये? हें? कह गये हैं? करने का तो यह है। आहाहा! चन्दुभाई है? नहीं? गये, ठीक! आहाहा! क्या कहा?

वस्तुत्व पर दृष्टि देने से। वस्तु अर्थात् चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण अर्चि उसके ऊपर दृष्टि देने से ये राग-द्वेष कोई वस्तु है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! **कुछ वस्तु नहीं।** भावार्थ बाकी है, विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक-२८-०२-१९७८, कलश-२१८, २१९, प्रवचन-२४४

२१८ कलश, अन्तिम पाँच लाईनें हैं। भावार्थ है न? भावार्थ। **भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सत्तास्वरूप एक जीवद्रव्य विद्यमान है...** क्या कहते हैं? यह आत्मा है, वह एक वस्तु है। सत्ता अनादि-अनन्त विद्यमान पदार्थ आत्मा है। **वैसे राग-द्वेष कोई द्रव्य नहीं,...** आत्मा में पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव हों, वह राग-द्वेष है, वह कोई कायम की चीज़, रहनेवाली कोई चीज़ नहीं। जैसे भगवान आत्मा चिद्घन विद्यमान पदार्थ है, उसी प्रकार पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे कोई कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। आहाहा! है न?

राग-द्वेष कोई द्रव्य नहीं,... वस्तु नहीं। वह तो **जीव की विभावपरिणति है।** आत्मा की एक विकारी दशा है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो, वह शुभराग विकार है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना हो, वह पापरूपी विकार है, परन्तु दोनों विकार है। वह कोई कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। आहाहा! आत्मा में आत्मा की पर्याय में क्षणिक उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? आहाहा! **जीव की विभावपरिणति है।** आत्मा की विकारी वर्तमान दशा है। आहाहा!

वही जीव जो अपने स्वभावरूप परिणमे... आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु। आत्मा सच्चिदानन्द है। सत्-शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु है। वह यदि आत्मा अपने स्वभावरूप शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, इसी प्रकार से यदि परिणमे तो राग-द्वेष टल जाते हैं। आहाहा! यह सूक्ष्म बात है। यहाँ राग-द्वेष को अपनी पर्याय में उत्पन्न होने पर स्वभाविक भाव उसका है, ऐसा बतलाना है। स्वाभाविक भाव अर्थात् पर्याय का उसका स्वभाव है, उस प्रकार का। आहाहा! यह बाद में आयेगा। '**स्वस्वभावेन यस्मात्**' २१९ में आता है। '**स्वस्वभावेन**' कितने ही ऐसा कहते हैं न कि राग-द्वेष स्वभाव कहाँ है? है विभाव। विभाव है परन्तु है उसका स्वभाव। पर्याय का वह स्वभाव है। द्रव्य का नहीं। वस्तु है त्रिकाली परमात्मा स्वयं आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि करने से यह पुण्य और पाप के विकारी भाव उत्पन्न न होकर नाश हो जाते हैं। परन्तु उत्पन्न

होते हैं, उसकी पर्याय में-हालत में उत्पन्न होते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें।

शरीर, वाणी, मन तो कहीं रह गये। वह तो जड़ है, पर है। अन्दर भगवान आत्मा ज्ञानानन्द, ज्ञान का और अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज प्रभु है। वह अपनी पर्याय में स्वरूप को भूलकर अथवा स्वरूप का भान होने पर भी, पर्याय के राग-द्वेष की परिणति उत्पन्न होती है। आहाहा! वह यदि स्वभाव की शुद्ध चैतन्य की मूर्ति का आश्रय लेकर शुद्ध परिणमे तो राग-द्वेष का नाश हो जाता है। वे कोई शाश्वत् चीज़ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्व-भाव अर्थात् अपना भाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना भाव। स्व, स्व, स्व। बाद में कहेंगे।

अपने स्वभावरूप परिणमे तो राग-द्वेष सर्वथा मिटे। ऐसा होना सुगम है। आहाहा! अर्थात्? अनादि से अपनी पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत में यह मिथ्या भ्रम और राग-द्वेष उत्पन्न करता है, वह विकृत दशा इसमें यह उत्पन्न करता है। परन्तु यदि आत्मा अपना स्वभाव नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करके, उसका स्वीकार करके पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा अन्दर है, उसका स्वीकार करके यदि शुद्धरूप हो, परिणमे अर्थात् शुद्ध अवस्थारूप हो तो यह राग-द्वेष टल जाते हैं। समझ में आया? **राग-द्वेष सर्वथा मिटे।** देखा? सर्वथा मिटते हैं। आहाहा! क्योंकि इसके स्वरूप में नहीं है। त्रिकाल जो स्वरूप प्रभु आत्मा का, उसमें वह विकार नहीं है, पर्याय में विकार है परन्तु वह है उससे उसमें है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा!

सर्वथा मिटे। ऐसा होना सुगम है। आहाहा! अर्थात्? यह शरीर, वाणी, मन वह तो जड़ है, पर है, उसे तो कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के विकृत विकारी भाव (होते हैं), वे उसकी दशा में स्वयं करता है, तब परिणमता है। यदि उन्हें टालना हो तो... आहाहा! जिसे धर्म करना हो और सुखी होना हो, उसे आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसका अन्दर स्वीकार करके शुद्धरूप परिणमना, इससे राग-द्वेष सर्वथा मिट जाते हैं। अरे! भारी कठिन बातें। वह तो व्रत करो, अपवास करो, यह भक्ति करो, पूजा करो, हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। वह तो सब विकल्प, राग है। आहाहा! और

उस राग की उत्पत्ति उसकी पर्याय में स्वयं से होती है, स्वतन्त्र। समझ में आया? आहाहा! यह कहेंगे। **ऐसा होना सुगम है।**

मुमुक्षु : ऐसा आता है कि कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उग्र पुरुषार्थ अपेक्षित है, इसलिए वहाँ कठिन कहा है। परन्तु यहाँ सुगम है, ऐसा क्यों कहा? कि वह तो स्वभाव है, उसकी ओर जाना है और झुकना है, उसमें कठिन क्या? ऐसा? आहाहा! आत्मा आनन्द ज्ञाता चैतन्य प्रज्ञाब्रह्मास्वरूप है। ज्ञान और आनन्दस्वरूप उसका त्रिकाली है। आहाहा! भारी कठिन बातें! यदि उसका आश्रय ले और उसका स्वीकार करे तो वह पुण्य और पाप के मैल भाव, राग विकार दुःख सर्वथा मिट सकता है। क्योंकि वस्तु कोई शाश्वत् रहनेवाली नहीं है। कृत्रिम है, वह परिणमन करती है, वह स्वभाव का आश्रय लेने जाये तो वे छूट जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सुगम है, कुछ मुकिश्ल नहीं... आहाहा! चैतन्य ज्ञायक चैतन्य प्रभु अनादि अनन्त नित्य वस्तु अविनाशी शुद्ध आत्मा है। कहीं किसी से उतपन्न हुई है और किसी से नाश होगी, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी वर्तमान दशा में, वर्तमान हालत में, वर्तमान पर्याय अर्थात् अंश में विकृतभाव जो खड़ा हुआ है, वह जीव ने स्वयं किया है और जीव की दशा में हुआ है। आहाहा! कोई कर्म ने विकार कराया है या परद्रव्य ने उसे विकार कराया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु उस विकार का अस्तित्व क्षणिक है और भगवान जीवद्रव्य सत्तारूप से त्रिकाल है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म!

यह विद्यमान त्रिकाल प्रभु चैतन्यज्योति है, इसका यदि आश्रय करे और विकृत अवस्था की ओर का लक्ष्य छोड़ दे तो वह विकृत अवस्था सर्वथा मिट सकती है, ऐसा है। कैसा यह धर्म? किस प्रकार का? वस्तु का स्वभाव ऐसा है, बापू! जगत को हाथ आता नहीं। आहाहा! उसमें कहा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में (कहा है), हम निश्चय की श्रद्धा करते हैं और व्यवहार की प्रवृत्ति करते हैं। आता है न? तो कहा, नहीं। निश्चय की निश्चयरूप से श्रद्धा करो और व्यवहार की व्यवहाररूप से श्रद्धा करो। आता है?

इसी प्रकार राग-द्वेष व्यवहार से तुझमें होते हैं, उसकी श्रद्धा करो। तुझमें होते हैं, व्यवहारनय का विषय है, वह तुझसे होता है। आहाहा! गजब है।

निश्चयनय के दो भेद लिये हैं न? आलाप पद्धति में। द्रव्य और पर्याय। दो निश्चय हैं। निश्चय अर्थात् कि है। द्रव्य भी है और पर्याय भी है। दोनों हैं, वह निश्चय है। है, इस अपेक्षा से निश्चय है। पर्याय है। उसे पर्यायरूप से मानना चाहिए। मात्र शुद्धनय का विषय मानना और पर्याय न मानना, यह तो मिथ्यात्व है, एकान्त है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि यह स्वरूप अपना जो शुद्ध भगवान सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव नित्यानन्द नाथ आत्मा... आहाहा! उसके सन्मुख देखकर शुद्ध परिणमे तो राग-द्वेष सर्वथा मिट सकते हैं। सर्वथा मिट सकते हैं, ऐसा। किंचित्मात्र रह नहीं सकते। आहाहा! **कुछ मुश्किल नहीं है; अशुद्ध परिणति मिटती है...** परिणति अर्थात् अवस्था। अवस्था अर्थात् हालत, हालत अर्थात् दशा। उसकी मलिन परिणाम की वर्तमान दशा को परिणति कहा जाता है। वह दशा टल सकती है और शुद्ध परिणति प्रगट कर सकता है। आहाहा! ऐसी बातें! भाषा ही कोई अटपटी जैसी लगती है। है ऐसा, बापू! आहाहा! यह धर्म के विषय में अभी आया नहीं। देखने गया नहीं कि यह क्या है और यह क्या होता है? बाहर की सिरपच्ची में अनन्त काल से मर गया। आहाहा! समझ में आया?

भगवान अन्दर नित्यानन्द प्रभु अविनाशी वस्तु भगवान आत्मा है। ऐसी चीज़ की दृष्टि किये बिना पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा में—हालत में यह पुण्य-पाप भाव, सुख-दुःख कल्पना वह सब विकार है। आहाहा! वह विकार है, उसे विकार रीति से मानना, यह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! उसे न मानना तो व्यवहारनय का विषय है, वह वस्तु ही नहीं और व्यवहारनय ही नहीं, ऐसा हुआ। आहाहा! समझ में आया? तब उसमें शुद्धनय एक ही कहा है न? ग्यारहवीं गाथा। वह किस अपेक्षा से? त्रिकाल ध्रुव की अपेक्षा से। परन्तु पर्याय है, वह विकार है, पर्याय है, वह निर्विकार भी है, उसे बराबर इसे मानना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! निश्चय के दो भाग किये—द्रव्य और पर्याय। इसलिए वह मिथ्यात्व है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्योंकि वहाँ

शुद्धनय एक ही कहा, तब यहाँ कहते हैं कि निश्चय के दो प्रकार हैं। तो वह तो पर्याय का स्वीकार कराते हैं। ग्यारहवीं गाथा में **'ववहारोऽभूदत्थो'** कहा परन्तु वह तो गौण करके कहा है। है, विकार है, पर्याय है। आहाहा! वह पलट सकती है। गुलांट मारे और आत्मा का आश्रय करे तो विकार टल सकता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। यह उसे धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। है तो लॉजिक से परन्तु अब सूक्ष्म है। कभी खोज की नहीं, मैं कौन हूँ? ये क्या होता है? ऐसे का ऐसे बिना भान के अनादि से चला है।

मुमुक्षु : एक-एक जीव को ऐसा कहते कि दोष को दोष जानो तो गुण प्रगटे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष को दोषरूप से जानो, पर्याय में है—ऐसा जानो। उस मोक्षमार्गप्रकाशक में तो यहाँ तक कहा कि व्यवहार को व्यवहाररूप से श्रद्धा करो। निश्चय की अकेली की श्रद्धा करो तो एकान्त मिथ्यात्व है। आता है? सातवें अध्याय में आता है। आता है न, सब खबर है। यह तो जहाँ शुद्धनय एक ही है, वह प्रकार कहा, वह द्रव्य की अपेक्षा से (कहा है)। त्रिकाल के आश्रय में जो नय है, वह एक ही प्रकार है। अशुद्धनय उसका प्रकार नहीं। परन्तु पर्याय उसमें नहीं, ऐसा वहाँ नहीं कहना है। समझ में आया? पर्याय है, विकार है, वह व्यवहारनय से जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहा न बाद में? आहाहा! जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाननेयोग्य है, मान्यता करनेयोग्य है। आहाहा!

यहाँ तो बहुत सरस बात करते हैं, देखो! यह अशुद्ध परिणति पर्याय में है, ऐसी श्रद्धा करो। त्रिकाल में नहीं, ऐसी श्रद्धा करो। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात (समझने) कहाँ निवृत्ति मिले? इस दुनिया के काम के कारण पूरे दिन होली सुलगती है। धन्धा, व्यापार और स्त्री-पुत्र। उसमें ऐसा निर्णय करना, ऐसा आत्मा है, बापू! जन्म-मरण के चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है यह। चौरासी लाख के अवतार, भाई! तुझे खबर नहीं। वह यह मिथ्यात्वभाव, पुण्य-पापभाव पर से होते हैं, या पुण्यभाव से धर्म होता है, ऐसी मान्यता से वह चार गति में भटक रहा है। आहाहा! यह २१८ (कलश पूरा) हुआ। २१९ कलश।

कलश - २१९

(शालिनी)

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ।।२७-२१९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानता है कि जीव का स्वभाव, राग-द्वेषरूप परिणमने का नहीं है; परद्रव्य, ज्ञानावरणादि कर्म तथा शरीर, भोगसामग्री, बलात्कार जीव को राग-द्वेषरूप परिणमते हैं, सो ऐसा तो नहीं; जीव की विभावपरिणामशक्ति जीव में है; इसलिए मिथ्यात्व के भ्रमरूप परिणमता हुआ, राग-द्वेषरूप जीवद्रव्य, आप परिणमता है; परद्रव्य का कुछ सहारा नहीं है। ऐसा कहते हैं — 'किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं तत्त्वदृष्ट्या रागद्वेषोत्पादकं न वीक्ष्यते' [किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं] आठ कर्मरूप अथवा शरीर-मन-वचन नोकर्मरूप अथवा बाह्यभोगसामग्री इत्यादिरूप है जितना परद्रव्य, वह [तत्त्वदृष्ट्या] द्रव्य के स्वरूप को देखते हुए, सांचीदृष्टि से [रागद्वेषोत्पादकं] अशुद्धचेतनारूप हैं जो राग-द्वेषपरिणाम, उनको उत्पन्न करने में समर्थ [न वीक्ष्यते] नहीं दिखलाई देता। कहे हुए अर्थ को गाढ़ा-दृढ़ करते हैं — 'यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिःस्वस्वभावेन अन्तः चकास्ति' [यस्मात्] जिस कारण से [सर्वद्रव्य] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश का [उत्पत्ति] अखण्डधारारूप परिणाम, [स्वस्वभावेन] अपने-अपने स्वरूप से है; [अन्तः चकास्ति] ऐसा ही अनुभव में निश्चित होता है और ऐसे ही वस्तु सधती है; अन्यथा विपरीत है। कैसी है परिणति? 'अत्यन्तं व्यक्ता' अति (ही) हि प्रगट है।।२७-२१९।।

कलश - २१९ पर प्रवचन

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि।

सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ।।२७-२१९।।

'**किञ्चनापि**' का पूछा, परन्तु यहाँ '**किञ्चनापि**' का अर्थ ही यह है। कोई भी द्रव्य, ऐसा। किंचन अर्थात् कोई भी नहीं, ऐसा नहीं। कोई भी द्रव्य इसे विकार करा सके, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! वे कहते हैं कि विकार यदि स्वयं से माने तो स्वस्वभाव हो जायेगा। परन्तु पर्याय स्वभाव ही है। इसलिए कर्म ने कराया हो तो ऐसा मानो तो उसका नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु स्वयं ने ही किया है। 'स्वस्य भवनं स्वभाव' अपनी पर्याय में हुआ, इसलिए उसका स्वभाव, पर्याय की अपेक्षा से उसका स्वभाव कहा जाता है। आहाहा! यह भी बड़ा विवाद था न? २१ वर्ष पहले।

भावार्थ इस प्रकार है... (कुछ) कहने से पहले सीधा भावार्थ उठाया है। **कोई ऐसा मानता है कि जीव का स्वभाव राग-द्वेषरूप परिणमने का नहीं है...** देखा? भाई गांगुली ऐसा बारम्बार पूछते थे न? वैद्य। बड़े वैद्य हैं, होमियोपैथी के... कोलकोता। होमियोपैथी। वे बारम्बार पूछते थे, आत्मा दोष करे? आत्मा में दोष हो? परन्तु आत्मा त्रिकाल में दोष नहीं, परन्तु उसकी वर्तमान (पर्याय में) दोष न हो तो वर्तमान आनन्द होना चाहिए। क्योंकि वह भगवान आत्मा तो आनन्दस्वरूप है। वस्तु हो, वह दुःखरूप नहीं हो सकती। वस्तु हो, वह अपूर्ण नहीं हो सकती। वस्तु हो, उसे आवरण नहीं हो सकती। समझ में आया? आहाहा! वह त्रिकाली वस्तु है, वह तो निरावरण पूर्ण और पूर्ण शुद्ध है। आहाहा! परन्तु उसकी वर्तमान दशा में वह विकारी भाव करता है, वह दुःख है। आहाहा! उस दुःख को उत्पन्न करनेवाला आत्मा स्वयं अपने स्वभाव को भूलकर उत्पन्न करता है अथवा स्वभाव में अस्थिर होकर उत्पन्न करता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा न करे, पर्याय करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह पर्याय उसकी गिननी है न अभी यहाँ? पर नहीं, और उसकी पर्याय उसकी है, वह पर्याय आत्मा करता है, ऐसा अभी कहना है। पर्याय पर्याय को करती है, वह तो पारमार्थिक (हुआ)। परन्तु यहाँ तो पर करता नहीं परन्तु

आत्मा करता है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! कोई कर्म उसे विकार करावे, कोई कर्म का जोर आवे और विकार करना पड़े, पुण्य-पाप के भाव (करना पड़े), ऐसा नहीं है, यह सिद्ध करने के लिये उस पर्याय का कर्ता आत्मा है (ऐसा कहा है)। समझ में आया? आहाहा!

जीव का स्वभाव राग और पुण्य-पापरूप होने का नहीं है। परिणमना अर्थात् दशा में होना। आत्मा तो पवित्र है, उसकी पर्याय में विकार होना, वह उसका स्वभाव नहीं, ऐसा कोई माने... आहाहा! **परद्रव्य-ज्ञानावरणादि कर्म...** आहाहा! वह तो कर्म है, वह उसे राग कराता है, ऐसा अज्ञानी कहता है। हमारे कहाँ करने का भाव है। आहाहा! ज्ञानावरणादि है न? देखा? ज्ञानावरणीय का उदय आता है, इसलिए आत्मा में ज्ञान की दशा हीन होती है, हम उसे कुछ हीन करते नहीं। कर्म के कारण हीन दशा होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञान का विकास क्यों नहीं अवस्था में? अन्तर स्वरूप सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है। सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा है परन्तु उसकी दशा में किसी को उघाड़ कम, किसी को अधिक, यह सब अन्तर क्यों? कि कर्म के कारण वह सब अन्तर है, ऐसा नहीं है। वह अपने अपराध के कारण से है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा मानता है कि जीव का स्वभाव राग-द्वेष... अर्थात् पुण्य-पाप। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह पुण्य राग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह पापराग है। और प्रतिकूल ज्ञेय को लक्ष्य में लेकर यह प्रतिकूल है, ऐसा करके द्वेष करे, उस राग और द्वेष का करनेवाला जीव नहीं है, ऐसा अज्ञानी कहता है। समझ में आया? **परिणमने का नहीं है,...** परद्रव्य उसे करता है। आहाहा! इस शरीर के कारण अन्दर विकार होता है। झूठ बात है। शरीर जड़ पर है और विकार तू तेरी दशा में करता है। शरीर के कारण विकार नहीं होता। आहाहा!

संसार भोगसामग्री... यह शरीर, कर्म और संसार पूरा उदयभाव और भोग की सामग्री। ऐसे अनुकूल पैसे, इज्जत, स्त्री, पुत्र अनुकूल देखकर उनके कारण यहाँ राग-द्वेष होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी ऐसा मानता है, ऐसा नहीं

है। भोग की सामग्री। आहाहा! खाने-पीने के मैसूर, देखने की रूपवान वेश्यायें और सूँघने के फूल बाग, ये सब भोगसामग्रियाँ आत्मा को विकार कराती हैं, ऐसा अज्ञानी कहता है। यह बात झूठी है। आहाहा! हैं?

बलात्कार जीव को राग-द्वेषरूप परिणमाते हैं... देखा? यह शरीर, इन्द्रियाँ... आहाहा! शरीर में विकृतदशा होती है, इसलिए उसके कारण आत्मा में विकार होता है। आहाहा! वह शरीर के कारण विकार होता है, ऐसा नहीं है। वह तो परवस्तु है। आहाहा! स्त्री बहुत अनुकूल और रूपवान देखकर हमको विकार होता है अर्थात् उसके कारण विकार होता है (यह) झूठी बात है। वह तो ज्ञान में ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है, उसके बदले तूने माना कि यह ठीक है। यह तो राग तूने किया, विकार तेरे कारण से हुआ, उसके कारण से नहीं हुआ। आहाहा! न्याय से, लॉजिक से कुछ समझेगा या नहीं? यह तो तत्त्व ऐसा का ऐसा मानना, ऐसा नहीं है। अन्दर न्याय के भावभासन हो कि सत्य यह है और असत्य ऐसा है, तब उसे ज्ञान में यथार्थ प्रतीति होती है। आहाहा! परन्तु यह निवृत्ति कहाँ? आहाहा! पूरे दिन जगत की होली सुलगती है। स्त्री, पुत्र, परिवार, कमाना, खाना, पीना, भोग, छह-सात घण्टे सोना। हो गया, जाओ! जिन्दगी बर्बाद, बर्बाद। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **शरीर-संसार...** संसार की सब सामग्रियाँ। यह स्त्री, पुत्र, परिवार, सगे-सम्बन्धी, वे सब बलजोरी से जीव को राग-द्वेषरूप से परिणमाते हैं। आहाहा! कर्म का उदय आवे निमित्त, इसलिए आत्मा में करना ही पड़े। निमित्त होकर ही आवे, ऐसा कहते हैं। एकदम झूठी बात है। आहाहा! **परन्तु ऐसा तो नहीं है...** देखा? आत्मा को विकार परिणाम कर्म, शरीर, संसारभोग सामग्री बलजोरी से करते हैं, ऐसा है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बीमारी में मस्तिष्क पागल हो जाये तो पागल नहीं होना चाहता कोई।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल हो गया है, मूढ़ता स्वयं ने प्रगट की है। वह मूढ़ता स्वयं ने की है। कर्म के कारण नहीं, पर के कारण नहीं। यह प्रश्न हुआ था। पंचाध्यायी में है, यह प्रश्न हमारे हो गया है। कर्म के कारण, ऐसा कहे, यह मूढ़ता होती है,

बिल्कुल झूठ है। है, एक श्लोक है, पंचाध्यायी में है। (संवत्) १९८३ में एक सेठ के साथ चर्चा हुई। यह श्लोक ऐसा है कि कर्म के कारण ऐसा होता है, कर्म के कारण ऐसा होता है, यह तो निमित्त से कथन है। ऐसा कि यह मदिरा पीवे और मस्तिष्क बिगड़ता है, वह मदिरा के कारण बिगड़ता है, ऐसा नहीं है। स्वयं बिगाड़े, तब मदिरा को निमित्त कहा जाता है। क्या कहा?

मुमुक्षु : मदिरा पीने का भाव हुआ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव हुआ, वही बिगाड़ तूने किया। पर के कारण से क्या है? बड़ी चर्चा हुई थी। पंचाध्यायी में एक श्लोक है। वे ऐसा अर्थ करते थे कि देखो! कर्म के कारण ऐसा होता है और कर्म के कारण ऐसा होता है। क्या होता है? कहा। आहाहा! एक श्लोक है। बहुत चर्चाएँ हो गयी हैं पहले।

जीव की विभावपरिणामशक्ति जीव में है,... क्या कहते हैं? आत्मा में विकाररूप से परिणमित होने की शक्ति-योग्यता आत्मा में है। आहाहा! जीव ने विकार; विभाव अर्थात् विकार, पुण्य और पाप का विकार; विषयवासना, क्रोध, मान, माया, लोभ, दया, दान, राग, द्वेष आदि सब विकार है। वह विभावपरिणामशक्ति जीव में है। पर्याय में विभावरूप परिणमना ऐसी उसकी योग्यता है। शक्ति की बात की, है तो वह निमित्त। शक्ति है वह तो स्वयं वर्तमान पर्याय में निमित्त के आधीन होता है, वह अपनी योग्यता से होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अब एक-एक सब बात में अन्तर। इसे निर्णय करना चाहिए।

जीव की विभावपरिणामशक्ति जीव में है, इसलिए मिथ्यात्व के भ्रमरूप परिणमता हुआ... देखा? स्वयं भ्रमणारूप से परिणमता है, होता है। आहाहा! पंचाध्यायी में एक श्लोक है। कितना २६वाँ या इतना कुछ है, दूसरे भाग में। यह चर्चा हुई थी। मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता। वह राग-द्वेष, वही मैं हूँ और कर्म के कारण और पर के कारण मुझमें विकार होता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह भ्रमरूप से स्वयं होता है। कर्म उसे मिथ्यात्वपना कराता है, (ऐसा नहीं है)। दर्शनमोह का उदय एक कर्म है, उसके कारण यहाँ मिथ्यात्व होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! विपरीत भ्रमरूप से

परिणमता हुआ **राग-द्वेषरूप जीवद्रव्य आप परिणमता है,...** आहाहा! स्वयं आत्मा राग के विकल्प के पुण्य-पाप के विकार उसरूप, आनन्दस्वरूपी भगवान होने पर भी, उसकी वर्तमान दशा में दुःखरूप का परिणमन, वह स्वयं करता है। आहाहा! भले पर्याय करती है परन्तु आत्मा करता है, (ऐसा कहते हैं)।

परद्रव्य का कुछ सहारा नहीं है। देखो! आत्मा में राग-द्वेष और विषयवासना आदि हो, उसमें आत्मा के अतिरिक्त दूसरे द्रव्य का बिल्कुल सहारा नहीं है। उसके कारण से मुझे यह हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! परद्रव्य अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त शरीर, कर्म, कुटुम्ब, कबीला, भोगसामग्री, आहाहा! वह कहीं इसका सहारा नहीं। **यह कहते हैं—**

'**किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं तत्त्वदृष्ट्या रागद्वेषोत्पादकं न वीक्ष्यते**' है? '**किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं**' '**किञ्चन**' अर्थात् कोई भी अन्य द्रव्य, ऐसा। आहाहा! आठ कर्म हो... आहाहा! ज्ञानावरणीय कर्म वह ज्ञान की हीन दशा करे, यह तीन काल में नहीं होता। कहो, समझ में आया? दर्शनमोह का उदय है, वह मिथ्यात्व, विपरीत मान्यता करावे, यह बिल्कुल नहीं है। अन्दर में चारित्रमोह का उदय है, इसलिए यहाँ राग की वासना होती है, बिल्कुल झूठी बात है। आहाहा! यह बड़ा विवाद है, जैन में। वे कहें ईश्वरकर्ता है, यह कहे मेरे विकार का कर्ता कर्म है। कोई कर्ता (नहीं), तू है। कर्म-बर्म कुछ करता नहीं। ईश्वर ने तुझे किया नहीं और ईश्वर तुझे कराता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह बड़ा कसाईखाना (होता है)। अमेरिका में डेढ़ मील में एक कारखाना है। बड़ा अरबोंपति है। चाँदी की-चाँदी की कुर्सी पर बैठे। वह कसाईखाना भगवान कराता होगा? गाय काटे, एक साथ सौ-दो सौ लाईन में रखकर, चारा-पानी की जगह होती है न चारा-पानी की जगह? गायें ऐसे चरे। उस चारा-पानी की जगह में मुख रखकर घास रखा हो, ऊपर से हथियार आवे। पचास-सौ गाय एक साथ धड़ और (शरीर) दोनों पृथक् (हो जायें)। बड़ा कारखाना है। हें? ऐसे भाव ईश्वर कराता होगा कि हमारी प्रेरणा है, तू कर। कर्म भी कराता नहीं और ईश्वर भी कराता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे भाव, दुःखरूप विकारीभाव तू स्वयं करता है, भाई! आहाहा!

आठ कर्म अर्थात् देखा ? ज्ञानावरणीय आत्मा के ज्ञान को हीन करे, दर्शनावरणीय आत्मा को निद्रा दे, वेदनीयकर्म अनुकूल सामग्री दे और सुख की कल्पना करावे, आहाहा ! मोहकर्म दर्शन, चारित्र के उदय से यहाँ मिथ्यात्व और राग-द्वेष हों, आयुकर्म के कारण यहाँ आत्मा को शरीर में रहना पड़े, आहाहा ! ऐसा नहीं है। कहते हैं। तेरी योग्यता से तू शरीर में रहा, आयुष्य तो निमित्त है। आहाहा ! ऐसा है। जितना इस शरीर का आयुष्य लेकर आया है पूर्व का, उतना यहाँ रहेगा, परन्तु उस कर्म के कारण नहीं। कर्म तो कर्म में रहा, अपनी शरीर में रहने की जितनी योग्यता—लायकात है, इसलिए वह रहता है। वह लायकात पूरी होने पर देह छूट जाती है, दूसरी देह (धारण करे)। आहाहा ! वह आयुष्य से नहीं, नामकर्म के कारण नहीं। आहाहा ! यशकीर्ति और ऐसी प्रकृति होती है न ? गोत्र, अन्तराय कर्म। इन आठ कर्मों के कारण आत्मा में विकार होता है, ऐसा जो अज्ञानी मानता है, वह बिल्कुल झूठी बात है। आहाहा ! अथवा शरीर कराता है अथवा मन कराता है, वचन कराता है, यह वाणी जड़ है न आवाज ? वह तो मिट्टी है। आत्मा उसमें उतरे ? आत्मा तो अरूपी है। वाणी जड़ है। जड़ आत्मा में विकार करावे ? आहाहा ! प्रशंसा के शब्द आवें तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। इस प्रशंसा के कारण यहाँ राग-प्रसन्न हुआ है ? तूने किया तो हुआ है। निन्दा सुनी। वह भाषा तो जड़ है। उसके कारण तुझे अन्दर द्वेष होता है ? तुझे सुहाया नहीं, इसलिए तुझे द्वेष होता है, निन्दा के शब्दों से नहीं। आहाहा !

विकारी पर्याय भी स्वतन्त्र करे तो कर्ता होता है, यह बात भी जिसे न जँचे, उसे निर्विकारी त्रिकाली चीज़ स्वयंसिद्ध है, यह बात उसे कैसे बैठे ? जो प्रगट पर्याय है, उसकी विकृत अवस्था है या अविकृत अवस्था मुझसे होती है, इतना वह माने नहीं, उसे पूरा भगवान त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, पर्याय में—अवस्था में आता नहीं परन्तु अवस्था में उसकी श्रद्धा होती है, तो वह श्रद्धा किस प्रकार कर सके ? पर्याय की स्वतन्त्रता की श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे द्रव्य की स्वतन्त्रता की श्रद्धा किस प्रकार हो ? आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा किस प्रकार का उपदेश ऐसा ! व्रत पालना, दया पालना, सेवा करना, देशसेवा (करना), ऐसा तो सब सुनते हैं। धूल भी नहीं कर सकता। सुन न ! पक्षघात होता है तो पैर को हिला सकता नहीं, इतनी खबर है तुझे ?

शरीर को हिलाना चाहे तो हिलता नहीं, वह तो उसके कारण से हिलता है।

मुमुक्षु : अमुलखभाई को...

पूज्य गुरुदेवश्री : अमुलखभाई को तो जरा पैर लगा। कोई मनुष्य सामने आया तो टकरा गया। गिर गया। कल आये थे। वह तो जहाँ जड़ की पर्याय होने की हो, उससे वह निमित्त आया। परन्तु जड़ की (ऐसी पर्याय) हुई, इसलिए वहाँ आत्मा में दुःख होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वयं अन्दर द्वेष उत्पन्न करता है, ऐसे विकार को उत्पन्न करता है, वह स्वयं कर्ता जीव है। आहाहा! कठिन बातें हैं।

ऐसे छुरा गिरे शरीर पर, इसलिए उसके कारण यहाँ द्वेष होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अन्दर आत्मा के स्वभाव को भूलकर और प्रतिकूल देखकर, मानकर इसे द्वेष होता है। उस द्वेष का करनेवाला जीव स्वतन्त्र है। पर के कारण द्वेष हुआ नहीं। आहाहा! ऐसी प्रगट विकृत अवस्था की भी स्वतन्त्रता न बैठे, उसे अव्यक्त पूरा आत्मा अन्दर... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है, वह इसे कैसे जँचे? और वह जँचे बिना इसके जन्म-मरण कभी मिटें, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्रियाकाण्ड करे और व्रत करे और तप करे... वह सब राग की क्रियायें हैं। आहाहा! समझ में आया?

कोई भी द्रव्य, ऐसा कहना है। **इत्यादिरूप है जितना परद्रव्य वह...** ऐसा। '**किञ्चन**' है न? अर्थात् जितना कोई भी परद्रव्य, ऐसा। कुछ भी कर नहीं सकता, ऐसा नहीं। '**किञ्चन अपि**' कोई भी द्रव्य, ऐसा। आहाहा! क्या कहा यह? आत्मा में विकार कोई भी नहीं कर सकता, कोई भी नहीं होता, ऐसा नहीं। आत्मा में विकार कोई भी द्रव्य कर नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया?

मैसूर आया, चार सेर घी पिलाया हो। मैसूर... मैसूर। इसलिए इसे मिठास का राग (आया)। वह (मैसूर) तो जड़ है, उस जड़ का स्वाद इसे (आत्मा को) नहीं आता। क्योंकि स्वयं तो प्रभु अरूपी है और यह मैसूर तो जड़, मिट्टी, धूल है। मात्र उसका लक्ष्य करके ठीक है, ऐसा राग उत्पन्न करता है। उस राग को वेदता है। मैसूर को नहीं और मैसूर के कारण राग हुआ है, ऐसा नहीं। रमणीकभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! वस्तु का स्वरूप और स्थिति की मर्यादा जितनी जैसी है, वैसी न जाने तो सब मिथ्याभ्रम है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत पहलू जानने पड़ेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत पहलुओं से उल्टा पड़ा है न! बहुत पहलुओं से उल्टा पड़ा है, इसलिए बहुत पहलुओं से इसकी विपरीतता जाननी पड़ेगी। आहाहा! जहाँ हो, वहाँ मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ। यह सब मैंने किया है, मैंने किया है,... ऐसा किया है, वैसा किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो किसने किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? जड़ की अवस्था जड़ से होती है। आत्मा से होती होगी वह? आहाहा! यह मकान-बकान हुए, वह किसी ने बनाये होंगे? रामजीभाई ने? प्रमुख तो ये थे। मिस्त्री भी करता नहीं था, मिस्त्री राग करता है। आहाहा! परद्रव्य को कौन करे? यहाँ तो कोई भी परद्रव्य तुझे राग उपजावे, ऐसा नहीं है, इतना कहना है। आहाहा!

इत्यादिरूप है जितना परद्रव्य वह... जितना परद्रव्य है। आहाहा! स्वर्ण मोहर और हीरा, माणिक ऐसे नजर में पड़े, इसलिए उसने यहाँ राग उत्पन्न कराया है (यह) झूठी बात है। उसे देखकर तूने तुझमें राग उत्पन्न किया, उसके कारण से नहीं। आहाहा! दृष्टान्त नहीं दिया वह वैश्या का? सम्यग्ज्ञान दीपिका में। एक वैश्या मर गयी। जवान अवस्था। उसमें एक मुनि निकले। आहाहा! अरे रे! इसका शरीर अच्छा होता तो धर्म करती, ऐसे विचार आये। एक कुत्ता आया। उसे देखकर, इसे खाऊँ, ऐसा (विचार आया)। एक व्यभिचारी आया, कि यह यदि निरोग जीवित होती तो मैं ऐसा करता। वस्तु तो वह की वह है। कल्पना करनेवाले भिन्न-भिन्न वे स्वयं से करते हैं, उसके कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? है, दृष्टान्त है न? सम्यग्ज्ञान दीपिका (में है)। वैश्या मर गयी, जवान अवस्था, बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र। मुनि निकले। आहाहा! अरे रे! यह शरीर मुर्दा, उसने भगवान आत्मा को नहीं जाना। ऐसा वैराग्य हुआ। कुत्ता आकर (विचारता है), यह सब हट जायें तो खाऊँ। वस्तु तो वह की वह है। यह खाने का भाव उसने कराया है? आहाहा! मुनि को वैराग्य हुआ तो उससे उसे हुआ है? इसी तरह व्यभिचारी आकर कहता है, यह जीवित होती तो मैं विषय भोगता। तो उस मुर्दे ने

(ऐसा भाव) कराया है? एक की एक चीज़ है, वह इस प्रकार से पर को करावे? परन्तु स्वयं अपने से करे, तब उसको निमित्त कहा जाता है। आहाहा! न्याय, लॉजिक से कुछ तत्त्व को समझेगा या नहीं? आहाहा! अन्ध-अन्ध गाड़ी चलती है।

मुमुक्षु : नोकर्म के साथ राग-द्वेष का अविनाभावसम्बन्ध नहीं है परन्तु द्रव्यकर्म के साथ तो अविनाभावसम्बन्ध है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी के साथ सम्बन्ध नहीं। कर्म के साथ और नोकर्म के साथ भी नहीं। सब समान। नहीं आया? आठ कर्म, शरीर, मन, वचन और नोकर्म। नोकर्म आया है अन्दर। है? अथवा बाह्य भोगसामग्री। सब आया वहाँ। द्रव्यकर्म, नोकर्म, सामग्री, कुटुम्ब-कबीला बाह्य चीज़, वह कोई भी तुझे राग-द्वेष उत्पन्न करावे, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : करावे नहीं परन्तु अविनाभाव से हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अविनाभाव से बिल्कुल नहीं होता। करे तो उसे निमित्त कहा जाता है। अविनाभाव का अर्थ ही यह है। करना ही पड़े, ऐसा अविनाभाव है, बिल्कुल झूठ (बात है)। आहाहा! ज्ञानी को राग होता है, होता है, निर्बलता के कारण राग होता है, परन्तु तो भी उस राग का कर्ता होकर जाननेवाला रहता है, कर्ता नहीं होता। है?

मुमुक्षु : शरीर, के साथ अविनाभावसम्बन्ध है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। किसी के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। वह तो निमित्त है। आहाहा! ज्ञानी को निर्बलता के कारण सहन नहीं हो सकता हो, तो ऐसा राग आवे, विषय वासना (राग आवे), तो भी स्वयं खड़ा करता है। तथापि वह धर्मी जीव है, उसमें उसकी सुखबुद्धि नहीं है। समझ में आया? उसमें सुखबुद्धि नहीं और इस प्रकार होता है। तथा अज्ञानी तो उसमें सुखबुद्धि करता है। विषय में, इज्जत में, निन्दा सुनने में सुख-दुःखबुद्धि उत्पन्न करता है, वह मिथ्या भ्रम है। आहाहा! उसे परवस्तु सुख-दुःख की भ्रमणा करती है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

द्रव्य के स्वरूप को देखते सांची दृष्टि से... देखा? **द्रव्य के स्वरूप को देखते सांची दृष्टि से...** आहाहा! सच्ची दृष्टि से विकार स्वयं करता है, ऐसा कहते हैं। ठीक!

अशुद्ध चेतनारूप हैं जो राग-द्वेष परिणाम उनको उत्पन्न करने में समर्थ नहीं दिखलाई देता। सच्ची दृष्टि से देखें तो... आहाहा! जीव में पुण्य-पाप और अशुद्ध परिणमन को सच्ची दृष्टि से देखें तो दूसरे उसे अशुद्ध परिणमन कराते नहीं। आहाहा! देखो, यह दृष्टि! समझ में आया? बनियों को व्यापार के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। किसी दिन ऐसा सुने तो रूखा लगे, मानो यह क्या कहते हैं? बापू! मार्ग अलग है, बापू! आहाहा! तेरी मलिनता का भी स्वतन्त्र कर्ता और निर्मलता का भी स्वतन्त्र कर्ता। आहाहा! कर्म या किसी चीज़ के कारण मलिनता या निर्मलता होती है, ऐसा नहीं है। विशेष कहेंगे। देखो! **नहीं दिखलाई देता।**

कहे हुए अर्थ को गाढ़ा-दृढ़ करते हैं—क्या कहते हैं? '**यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिः स्वस्वभावेन अन्तश्चकास्ति**' आहाहा! **जिस कारण से जीव...** सर्व द्रव्य का अर्थ (करते हैं)। अनन्त आत्मायें, पुद्गल, शरीर, धर्मास्ति, अधर्मास्ति तत्त्व है। धर्म अर्थात् यह धर्म वह नहीं। जगत में एक तत्त्व है। अधर्म तत्त्व, काल, और आकाश। आहाहा! छहों द्रव्यों में उत्पत्ति '**स्वस्वभावेन**' आहाहा! ऐसे '**अन्तश्चकास्ति**' आहाहा! छहों द्रव्य में जो पर्याय होती है, वह उनसे होती है, इस प्रकार से प्रकाशित करते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ विशेष किया।

'**यस्मात्**' जीव, पुद्गल छह द्रव्य। '**उत्पत्तिः**' **अखण्ड धारारूप परिणाम...** भाषा क्या ली? प्रत्येक द्रव्य में जो पर्याय—अवस्था होती है, धारावाही, एक के बाद एक, एक के बाद एक धारावाही अवस्था होती है, उसे '**उत्पत्तिः**' का अर्थ यहाँ अखण्ड धारावाही गिना। आहाहा! जीव में धारावाही पर्याय उत्पन्न होती है—राग, द्वेष, पुण्य, पाप आदि और कर्म में भी कर्म की अवस्था धारावाही होती है, वह सब कोई पर से नहीं होती। आहाहा!

अखण्ड धारारूप परिणाम... परिणाम अर्थात् अवस्था। प्रत्येक द्रव्य की त्रिकाल रहकर भी वर्तमान अवस्था, पलटती अवस्था धारावाही उत्पन्न होती है। यह विचार बदलते हैं न? देखो न! बदलते हैं, वह दशा बदलती है, वस्तु तो ध्रुव त्रिकाल है। परन्तु उसकी अवस्था वर्तमान बदलती है। जैसे सोना सोनेरूप से कायम रहता है, उसका

पीलापन, चिकनापन गुण भी कायम रहते हैं, तथा उसकी कुण्डल, कड़ारूप अवस्था, कुण्डल, कड़ा, अँगूठी अवस्था बदलती है। उसी प्रकार आत्मा में वस्तु और उसके गुण कायम रहकर उसकी वर्तमान अवस्था राग-द्वेष, पुण्य-पाप, समकित, ज्ञानादिक हुआ करते हैं। वह उसका धारावाही परिणाम स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

अखण्ड धारारूप परिणाम... 'उत्पत्ति' की व्याख्या की है। परिणाम अर्थात् उत्पत्ति। परन्तु किस प्रकार से? कि अखण्ड धारा, ऐसा। उत्पन्न... उत्पन्न... उत्पन्न... उत्पाद... उत्पाद... उत्पाद... धारावाही। विकार का उत्पाद भी धारावाही उस-उस द्रव्य में उस-उस द्रव्य के स्वभाव से होता है। आहाहा! ऐसा तो कितना स्पष्ट कथन है इसमें! पढ़ा नहीं होगा? पढ़ते नहीं हो? सब पण्डित घोटाला करते हैं। कितने ही इसको मानते नहीं। रतनचन्दजी और है न? सुधार करना चाहते थे। कितना सुधार करे? हैं?

मुमुक्षु : वे कहते हैं कि आचार्य का कथन...

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य का कथन परन्तु न्याय का कथन है या नहीं? आहाहा! बालक हो परन्तु सत्य कहता हो तो बराबर है और बड़ा पण्डित हो और असत्य कहता हो तो झूठा है। आहाहा! वह पण्डित-बण्डित नहीं। पंड्या... पंड्या... छिलके कूटता है। चावल छोड़कर छिलके (कूटता है)। चावल है न चावल? होते हैं न... क्या कहलाते हैं? डांगर। ऊपर के छिलके कूटे, उसमें से चावल नहीं निकलते? चावल तो अन्दर अलग पड़ा है। आहाहा! उसी प्रकार बाहर के विकल्प के छिलके कूटे। आहाहा! भगवान अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, वह स्वयं भूलकर विकार करता है और भूल टालकर स्वयं निर्विकारी होता है, ऐसी उसे खबर नहीं। समझ में आया?

'स्वस्वभावेन' वजन यहाँ है, देखो! विकार भी **'स्वस्वभावेन'** आहाहा! यह प्रश्न था न वहाँ, तब? यदि विकार कर्म से न हो, तब तो इसका स्वभाव हो जायेगा। भाई! स्वभाव ही है, 'स्वस्य भवनम्'। अपनी पर्याय में-हालत में होता है, स्वपर्याय में भाव (होता है) इसलिए 'स्वभावेन' कहा है, देखो न! है? **'स्वस्वभावेन' अपने अपने...** स्वभाव अर्थात् **स्वरूप है,...** आहाहा! जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष की वासना करे, वह वह उसके स्वरूप में वह है। पर के कारण नहीं और परस्वरूप नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पत्ति... उत्पत्ति... उत्पत्ति.. ऐसे धारावाही होती है न? जब तक विकार है, तब तक। विकार पलटा तब फिर इस ओर झुका। धारावाही निर्विकारी दशा हुई। यहाँ तो अभी विकार का सिद्ध करना है न! आहाहा! अनादि से विकार की धारावाही प्रवृत्ति करता है, वह जीव स्वयं करता है, ऐसा कहते हैं। अरे रे! आहाहा! चौरासी के अवतार। एक-एक योनि में चौरासी लाख योनि में अनन्त अवतार किये। वास्तविक तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं होती। आहाहा! मनुष्य मरकर पशु होता है। यहाँ अरबोंपति हो और दूसरे दिन गाय के गर्भ में बछड़ा हो। अन्दर गर्भ में। फिर चार, छह महीने आवे। बकरी के गर्भ में (जाये)। यह बकरी के बच्चे बाहर निकलते हैं न? विचार आता है कि यह कहीं से मरकर आया होगा? छोटे-छोटे बच्चे मरकर (आये हों)। कोई मनुष्य मरकर, कोई पशु मरकर... आहाहा! स्वरूप क्या है और विकार कैसे होता है, उसकी कुछ खबर नहीं होती। अन्ध के अन्ध अनादि से चलते हैं। विकार कर्म कराता है? कर्म तो निमित्त होकर ही आवे, विकार करना ही पड़े, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं, लो! आहाहा! एकदम मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म करावे नहीं। जहाँ-जहाँ कर्म, वहाँ-वहाँ विकार।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आता है उसमें। आत्मावलोकन में आता है कि कर्म है, तब तक विकार और कर्म न हो, तब विकार नहीं। परन्तु वह तो क्या अपेक्षा सिद्ध की? आहाहा! इसका लक्ष्य जब तक कर्म के ऊपर है, तब तक विकार करता है। इसलिए कर्म से हुआ और कर्म था तो हुआ, ऐसा कहने में आया। आत्मावलोकन में दो-तीन जगह आता है।

मुमुक्षु : सिद्ध में कर्म नहीं और विकार भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिखा है। कर्म नहीं और विकार नहीं। परन्तु किस अपेक्षा से? वह विकार करता था, तब कर्म निमित्त था और विकार छोड़ दिया, तब कर्म का निमित्त नहीं रहा, वह तो स्वयं के कारण से है। आहाहा!

यहाँ अधिक वजन यहाँ है। **'स्वस्वभावेन' अपने-अपने स्वरूप से...** मिथ्यात्वभाव,

राग-द्वेषभाव अपने स्वरूप से होते हैं। आहाहा! '**स्वस्वभावेन**' का अर्थ स्वरूप से किया। स्वस्वभाव से अर्थात् स्वस्वरूप से होते हैं वे। आहाहा! एक ओर कहना कि विकार का स्वामी पुद्गल। क्या अपेक्षा है? जिसे वस्तु की दृष्टि करनी है, उसका विकार उसके स्वभाव में नहीं हे तो विकार का स्वामी कर्म है, ऐसा कहा। आहाहा! एक ही पकड़े, ऐसा कहीं चले? '**स्वस्वभावेन अन्तः चकास्ति**' देखा? प्रत्येक जीव विकार धारावाही करता है, वह स्वस्वरूप से **ऐसा ही अनुभव में निश्चित होता है... 'अन्तः चकास्ति'** है न? उसकी पर्यय में होता है, ऐसा अनुभव में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा जानने में आता है। आहाहा!

ऐसे ही वस्तु सधती है,... देखा? वस्तु की स्थिति, द्रव्य-गुण-पर्याय की स्थिति उसकी उसमें है, इस प्रकार से सधती है **अन्यथा विपरीत है। कैसी है परिणति? अति ही प्रगट है।** आहाहा! विकार दशा अत्यन्त प्रगट है और उस धारावाही का कर्ता जीव ही है, पर है नहीं। ऐसा यदि निर्णय करे तो फिर उसका योगफल ऐसा लावे कि मेरे स्वरूप में यह नहीं है। और स्वरूप की दृष्टि करे तो वह विकार टले, तब इसे धर्म हो। यह बात है, इसका योगफल। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)